... ary) — Guiding Individual
Reading (Dora V Smith) — Making the Library
Effective (Margaret R Greer and Frieda M
Heller) — Providing Special Help to Retarded
Readers (Ruth Strang) — Evaluating Growth in
Reading (Henry C Meckel) — Teacher-
Education in the Field of Reading (Harold A
Anderson) — Staff Co-operation in Improving



... Symbols" — The Word Method
Endorsed by Horace Mann — Mann's Views
about Reading Challenged — Reading from
Horace Mann to Francis Parker — The Reading
Scene as Viewed by Dr Rice — The Words-to-
Reading Method Secures a Beachhead at
Chicago — The Word Method Suits the New
Education — Public Excitement over Reading —
Reading Regularly Spelled Words First —
...ading with Temporary Alphabets
...xperiments and Their Results —
...n

20588 xii, 218 p 5¾ x 8¾
0-226-51042-5 £3 15

**...ividual Differences In Reading**
*...of the Annual Conference on*

*...VI*
*...d Edited by H Alan Robinson*
... of the Twenty-seventh Annual
...nference was to emphasize realistic
and suggest concrete methods of
...dividual Differences in Reading"
...ics and needs of students that
...ing and the influences of individual
...on the reading program were the
...xamined The Conference then
...o investigate some specific influences
...al differences—modes of learning,
social and emotional problems, and
organization Special attention was
...e culturally disadvantaged reader
...rence concluded with a discussion of
...terests and tastes, emphasizing the

*Contents*

# इतिहास-प्रवेश

[ भारतीय इतिहास का दिग्दर्शन ]

प्रारम्भिक काल से १८वीं शती तक
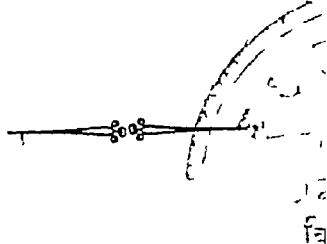
लेखक

जयचन्द्र विद्यालंकार

सम्पादक

र्गीय डॉक्टर काशीप्रसाद जायसवाल

प्रकाशक

सरस्वती प्रकाशन-मन्दिर,

( Saraswati Publishing House)

इलाहाबाद

१९४१

प्रकाशक—
सरस्वती प्रकाशन मन्दिर,
जार्ज टाउन, इलाहाबाद

मुद्रक—
सुशीलचन्द्र वर्मा, बी० एस-सी०
सरस्वती प्रेस,
जार्ज टाउन, इलाहाबाद

# वस्तुकथा

भारतीय पुरातत्व सम्मेलन ( ओरियंटल कान्फरेन्स ) के छठे अधिवेशन के सभापति पद से स्वर्गीय रायबहादुर हीरालाल जी ने कहा था, 'इस समय विशेष कर एक बड़ी आवश्यकता उत्कट रूप से अनुभव होती है, और वह है भारतीय दृष्टि से लिखे हुए एक इतिहास की।'

ये शब्द सन् १९३० में कहे गये थे। उसके नौ बरस पहले मुझे भी इस आवश्यकता ने बेचैन किया था, जिससे सन् १९२६ में मैंने "भारतीय इतिहास की रूपरेखा" लिखनी शुरू की। सन् १९३३ में उसकी १०८० पृष्ठों की पहली दो जिल्दें प्रकाशित हुई, जिनमें हमारे इतिहास की कहानी सातवाहन युग के अन्त ( लगभग २०० ई० ) तक पहुँची है। उसी पैमाने पर भारतवर्ष का पूरा इतिहास लिखने के लिए काफी साधनों और सुविधाओं की जरूरत थी, पर मेरे पास उनका अत्यन्त अभाव था। उस दशा में मेरे एक मित्र ने मुझे यह सुझाया कि जब तक वे सुविधाएँ मुझे नहीं मिलतीं, मैं भारतीय इतिहास का एक दिग्दर्शन लिख दूँ, जिससे भारतीय दृष्टि के अनुसार भारतीय इतिहास का स्वरूप दुनिया के सामने आ जाय। यह सलाह मुझे जँच गयी, और एप्रिल सन् १९३२ में, जब कि "रूपरेखा" की पाँडुलिपि प्रकाशक के पास थी, मैंने इस छोटी पोथी मे हाथ लगा दिया।

रा० ब० हीरालाल के इस कथन में कि आज भारतीय दृष्टि से लिखे हुए एक इतिहास की आवश्यकता है, एक विशेष तत्त्व है। विन्सेण्ट स्मिथ के इतिहास की आलोचना करते हुए प्रोफेसर विनयकुमार सरकार ने लिखा था, "स्मिथ ने जिस सामग्री को बरता है, एक भारतीय विद्वान् उसी का उपयोग करता तो एक सिरे से दूसरे सिरे तक बिल्कुल दूसरी कहानी पेश करता।"* आज १९ बरस बाद प्रोफेसर सरकार की वह भविष्यवाणी सफल हो रही है

* पोलिटिकल साइन्स क्वार्टरली, न्यु यार्क, दिसम्बर

डा० हीरालाल ने जिसे "भारतीय दृष्टि" कहा था, उसकी कुछ व्याख्या मैं अपने नागपुर, आरा और शिमला के अभिभाषणों* में कर चुका हूँ। जैसा कि मैंने आरा के अभिभाषण में कहा था, "राष्ट्रीय दृष्टि से अपने इतिहास का मनन करने का यह अर्थ हर्गिज नहीं कि हम अपने राष्ट्र की कमजोरियों को नजरअन्दाज करें। उल्टा उन्हीं को समझने के लिए हमें अपना ध्यान केन्द्रित करना चाहिए। और हमीं उन्हें ठीक समझ सकते हैं, क्योंकि अपने इतिहास को समझने के लिए जो अन्तर्दृष्टि हममें हो सकती है वह विदेशियों में नहीं हो सकती।" सर यदुनाथ सरकार ने उसी बात को दूसरे शब्दों में कहा है, "किसी राष्ट्र के अतीत इतिहास के पुनर्ग्रंथन में उस राष्ट्र की सन्तानों को ऐसी सुविधाएँ प्राप्त होती हैं जिन्हें कोई भी विदेशी ... नहीं पा सकता। 'राष्ट्रीय इतिहास घटनाओं के वर्णन में सच्चा और उनकी व्याख्या करने में तर्कसंगत होना चाहिए ..। वह राष्ट्रीय होगा इस अर्थ में नहीं कि वह हमारे देश के अतीत की किन्हीं लज्जास्पद घटनाओं को छिपाने या लज्जास्पद चरित्रों पर सफेदी पोतने की कोशिश करेगा।"†

इस दृष्टि से अपने इतिहास के पुनर्ग्रंथन के कार्य में पिछले ३०-३५ बरस से अनेक भारतीय विद्वान् लगे हुए हैं। भारतीय इतिहास के विभिन्न अंशों या पहलुओं पर उनके अनेक ग्रन्थ प्रकाशित हो चुके हैं और उनसे मुझे भरपूर सहायता मिली है। किन्तु मोहनजो दड़ो से मोहनदास गान्धी तक समूचे भारतीय इतिहास को आधुनिक खोज की रोशनी में भारतीय दृष्टि से कहने का काम शायद पहले-पहल मेरे ही हिस्से में पड़ा है।

हमारे इतिहास की धारा में जो अनेक विवाद के भँवर हैं, इस छोटी पोथी में मैंने उनसे भरसक बच कर खेने की कोशिश की है। इसके साथ ही, जहाँ तक बन पड़ा है, मैंने इतिहास के मूल लेखों के शब्दों को उद्धृत किया है। उन उद्धरणों से विद्वान् पाठकों को संकेत मिल जायगा कि कौन सी बात किस आधार पर लिखी गयी है।

---

* इतिहास-परिषद् के सभापति-पद से अभिभाषण, अखिल-भारतीय हिन्दी साहित्य-सम्मेलन, नागपुर, २५ एप्रिल १९३६, तथा शिमला, १८ सितम्बर १९३८, बिहार प्रादेशिक हिन्दी साहित्य-सम्मेलन, आरा, २५ दिसम्बर १९३७।

† भारतीय इतिहास परिषद्, आरम्भिक अधिवेशन के सभापति-पद से अभिभाषण, बनारस, ३० दिसम्बर १९३७।

पिछले सात बरस में इस पोथी की तैयारी में मुझे अपने गुरुजनों और मित्रों की सहायता जिस प्रकार मिलती रही है, उसके अनेक प्रसगों की पर्यालोचना आज अनेक मधुर और करुण स्मृतियों को जगा देती है। मेरे श्रद्धेय गुरु स्व० डा० काशीप्रसाद जायसवाल कैसे स्नेह और चाव से इसकी प्रगति में रुचि लेते और इसके प्रकाशित होने की राह देखते रहे! काश कि आज वे इसे देख पाते! इसके पहले सात प्रकरणों की पाडुलिपि को उन्होंने और श्री राहुल साकृत्यायन ने ध्यान से पढा और सुधारा था। जायसवालजी के हाथ की लिखी हुई तीन-चार पक्तियाँ भी इसमे हैं।

पुस्तक के चित्रों के चुनाव और प्रामाणिकता का निश्चय करने में मेरे मित्र राय कृष्णदास जी और डा० मोतीचन्द्र जी ने बडी सहायता की है। अधिकाश चित्र वस्तुओं के मूल फोटोग्राफ हैं, और उनमे से अनेक खास तौर से इसी पोथी के लिए लिये गये हैं। प्रत्येक चित्र के प्राप्तिस्थान और कापीराइट के स्वत्वाधिकारी का भी उल्लेख किया गया है। जिन चित्रों के नीचे स्वत्वाधिकारी का नाम नहीं दिया गया, वे प्राय. प्रकाशक या लेखक के हैं। बनारस के श्री दुर्गाप्रसाद जी और श्री श्रीनाथ साह का मैं विशेष अनुगृहीत हूँ। उन्होंने न केवल अपने सिक्कों के सग्रहों का मुझे उपयोग करने दिया, प्रत्युत जिन सिक्कों के चित्रों की मुझे जरूरत थी, उनके पैरिस-प्लास्टर के ढार स्वयम् तैयार करा के मुझे दे दिये। पुरातत्व-विभाग के चित्र जल्दी प्राप्त करने में भारतीय पुरातत्व-विभाग के विद्वान् अध्यक्ष रावबहादुर काशीनाथ नारायण दीक्षित से जो सहायता मिली है, उसके लिए मै उनका कृतज्ञ हूँ।

नक्शे तैयार करने मे श्री रजनीकान्त दास ने मेरे साथ बैठ कर जो मेहनत की है, उसके लिए वे मेरे धन्यवाद के पात्र हैं।

पुस्तक के प्रकाशक श्री शालिग्राम वर्मा और उनके सहकारियों का हार्दिक सहयोग और श्रम भी उल्लेखनीय हैं।

इस पोथी का उर्दू, अँगरेजी और बगला अनुवाद हो रहा है। अन्य भाषाओं मे जो सज्जन अनुवाद करना चाहे, अथवा इसके नक्शों, चित्रों या अन्य सामग्री का किसी भी प्रकार उपयोग करना चाहें, वे लेखक या प्रकाशक से इजाजत लेना न भूलें।

प्रो० विनयकुमार सरकार, डा० हीरालाल और सर यदुनाथ सरकार का भारतीय दृष्टि से लिखे हुए इतिहास से जो अभिप्राय था, यदि उसका इस "इतिहास-प्रवेश" से कुछ आभास मिल सके, यदि इसके द्वारा भारत के नवयुवक अपने "राष्ट्र के आत्मपर्यवेक्षण, आत्मानुचिन्तन, आत्मस्मरण और आत्मानुध्यान"* का रास्ता देख सकें, तो मैं अपने श्रम को सफल मानूँगा।

काशी विद्यापीठ, बनारस — जयचन्द्र

कार्तिक पूर्णिमा, १९९५ वि०

---

## दूसरे संस्करण की वस्तुकथा

"इतिहास-प्रवेश" का दूसरा संस्करण करते हुए मैं अपने बुजुर्ग और मित्र रावबहादुर काशीनाथ नारायण दीक्षित, डा० सुनीतिकुमार चटर्जी, राय कृष्णदास, श्री आनन्द कौशल्यायन तथा महाराजकुमार डा० रघुवीरसिंह को अनेक धन्यवाद देता हूँ, जिन्होंने इसमें सुधार करने की अनेक कीमती सलाहें दी हैं। प्राचीन और पहले मध्य काल की कुछ जगह से अलग माँग थी, इसलिए उतना अंश अलग भी छपवाया जा रहा है।

प्रयाग — जयचन्द्र

१७ भादों १९९७ वि०

( १-९-१९४० )

---

* नागपुर अभिभाषण, पृ० २।

# विषय-सूची

## पहला प्रकरण—हमारा देश और उसके निवासी



## दूसरा प्रकरण—आरम्भिक आर्यों का ज़माना

अध्याय ३



पाँचवाँ प्रकरण—सातवाहन-युग

[ लगभग २१० ई० पू० से १७६ ई० ]

अध्याय १



अध्याय २



अध्याय ३

अध्याय ४



अध्याय ५



अध्याय ६



———

## आठवाँ प्रकरण—दिल्ली की पहली सल्तनत

[ ११६४—१५०६ ई० ]

### अध्याय १



### अध्याय २



### अध्याय ३



### अध्याय ४

अध्याय ५

दिल्ली साम्राज्य का ह्रास और प्रादेशिक राज्यों का उदय [ १३२४—६८ ई० ]



अध्याय ६

पिछले मध्य युग के प्रादेशिक राज्य [ १३६८—१५१० ई० ]



अध्याय ७

पिछले मध्य-काल का भारतीय जीवन—

## नवाँ प्रकरण—मुग़ल साम्राज्य

[ १५०६-१७२० ई० ]

### अध्याय १



### अध्याय २

अध्याय ५



## दसवाँ प्रकरण—मराठा प्रमुखता

[ १७२० १७६१ ई० ]

अध्याय १

अध्याय २



अध्याय ३



अध्याय ४

अध्याय ५

अठारहवीं शती का भारतीय समाज



———

सित्तनवासल की गुफा में महेन्द्र वर्मा का समकालीन चित्र
( एक आधुनिक चित्रकार द्वारा प्रतिलिपि )
[ राय कृष्णदास के सौजन्य से ]

[ राजा की बायीं तरफ रानी का चित्र है, जिसकी मुख-रेखा मात्र इस प्रतिलिपि में आयी है । ]

# इतिहास-प्रवेश

## पहला प्रकरण

## हमारा देश और उसके निवासी

### अध्याय १

### हमारा देश

§१ सीमाएँ—प्रकृति ने हमारे देश भारत की बड़ी सुन्दर और स्पष्ट हदबन्दी कर दी है। संसार भर में सबसे ऊँचा पर्वत हिमालय उसके उत्तर लगातार चला गया है। उत्तर-पच्छिम तरफ पामीर और हिन्दूकुश पहाड़ तथा अफगानिस्तान और कलात पठार, और उत्तर-पूरब तरफ नामकिउ, पतकोई, नागा और लुशई के पहाड़ हिमालय के साथ मिल कर हमारे देश का परकोटा बनाते हैं। पूरब, दक्खिन और पच्छिम की बाक़ी आधी चौहद्दी समुद्र ने पूरी की है।

§२ उत्तर भारत का मैदान—हिमालय और पूरबी पच्छिमी समुद्र के बीच, उत्तर भारत का खुला और विस्तृत मैदान है। हिमालय से उतरने वाला सब पानी इस मैदान को सींचता हुआ समुद्र में बह जाता है। उस पानी के दो प्रस्रवण-क्षेत्र यानी बहाव के रास्ते हैं। सिन्ध का पानी हिमालय से निकल कर दक्खिन-पच्छिम बह जाता है, गंगा के पानी का रुख दक्खिन-पूरब है।

उत्तर भारत की बरखा अधिकतर पुरवा चलने पर होती है। पुरवा जिन बादलों को लाती है वे बंगाल की खाड़ी से उठने वाली भाप के बने होते हैं। इससे उन बादलों का जोर गंगा के काँठे* पर अधिक होता है, सिन्ध के काँठे में कम रह जाता

* काँठा = मैदान में किसी नदी के दोनों तरफ की भूमि। किसी नदी का काँठा यदि पहाड़ में घिरा हो तो उसे दून (द्रोणी) कहते हैं। अँगरेजी में दोनों के लिए व्हैली शब्द है।

है। इसी कारण गगा का कॉठा सिन्ध के कॉठा से अधिक हरा-भरा और आबाद है। यह दुनिया भर के सब से अधिक उपजाऊ और आबाद प्रदेशों मे से एक है।

सिन्ध और गगा के पानी का रुख एक तरफ नही है। इससे प्रकट है कि दोनों के बीच एक ऊँचा पनढाल है, जिसके कारण सतलज और जमना एक दूसरे से हटती गयी हैं। नदियों के कॉठो की उपजाऊ जमीन को 'खादर' कहते हैं और नदियों की पहुँच से बची सूखी ऊँची जमीन को 'बॉगर'। सतलज के खादर को जमना के खादर से ऊपर तो कुरुक्षेत्र का बॉगर अलग करता है, और नीचे जा कर उन दोनों के बीच राजपूताने के पहाड और जगल तथा थर की मरुभूमि आ गयी है। सिन्ध के कॉठे से गगा के कॉठे तक जाना हो तो इस थर और इन पहाडी जगलों को लॉघना बहुत कठिन होता है। उनके बीच एकमात्र सुगम रास्ता कुरुक्षेत्र-पानीपत के तग बॉगर मे से ही है। इसी कारण यह बॉगर सिन्ध और गगा के कॉठों के बीच एक भारी नाका है। भारतवर्ष के इतिहास की अनेक भाग्य-निर्णायक लड़ाइयॉ इसी बॉगर में हुई हैं।

नक्शे पर देखने से सिन्ध और गगा के कॉठो के कई स्पष्ट हिस्से दिखायी पडते हैं। सिन्ध नदी ने ऊपर जहॉ अपनी पॉचों बाहे फैला रक्खी हैं वह पजाब है। जहाँ उसका समूचा पानी सिमट कर एक धारा में आ गया है वह सिन्ध प्रान्त कहलाता है। गगा-जमना का रुख शुरू मे जहॉ दक्खिन-पूरब है, वही ठेठ हिन्दुस्तान या अन्तर्वेद है। बीच मे जहॉ गगा लगभग सीधी पूरब बहती है वह बिचला गगा का कॉठा बिहार कहलाता है। फिर जहॉ गगा ने समुद्र की तरफ मुँह फेर कर अपनी बाहें फैला दी हैं और ब्रह्मपुत्र भी उसमे आ मिली है वह बगाल प्रान्त है। ब्रह्मपुत्र का उपरला अकेला कॉठा आसाम है।

§३. **विन्ध्य-मेखला**—जमुना और गगा मे बहुत नदियॉ दक्खिन तरफ से भी आ मिलती हैं। इन नदियो का निकास जमीन के उठान को सूचित करता है। गगा के कॉठे के दक्खिन यह जो उठान लगातार चला गया है, वह विन्ध्याचल की शृखला या विन्ध्य-मेखला के कारण है। राजपूताने का प्रसिद्ध पहाड आडावला* तथा नर्मदा और तापी (ताप्ती) के बीच का सातपुडा पहाड भी विन्ध्य-मेखला के ही बढाव हैं। उस मेखला के उत्तरी अचल को बनास, चम्बल, बेतवा, केन, सोन

* अगरेजी में इसे 'आडावली' लिखते हैं, जिसे अशुद्ध पढ कर लोगों ने 'अरवली' बना डाला है।

आदि नदियाँ धोती हैं। पच्छिमी अचल को लूनी, साबरमती और मही, दक्खिनी अचल को नर्मदा, तापी, वर्धा, वेणगगा, महानदी और वैतरणी, तथा पूरबी अचल को सुवर्णरेखा और दामोदर। इन नदियों के बीच आबू से पारसनाथ पहाड़ तक विन्ध्य-मेखला है।

इस मेखला के कई स्पष्ट टुकडे हैं। पच्छिम से पूरब चले तो सबसे पहले गुजरात-काठियावाड़ का हरा-भरा मैदान है जो विन्ध्य-मेखला की बगल में रह जाता है। उसके उत्तर-पूरब आडावला के चौगिर्द राजपूताना है।। फिर चम्बल और सिन्ध की दूनें मालवे के प्रसिद्ध पठार को सूचित करती हैं, जिसके दक्खिनी अचल को नर्मदा और तापी धोती हैं। आगे बेतवा और केन के काँठों तथा नर्मदा के उपरले काँठे वाला टुकडा बुन्देलखड है। उसके पूरब सोन का उपरला काँठा बघेलखड है, और सोन के समानान्तर दक्खिन तथा नर्मदा-काँठे के पूरब, महानदी का उपरला काँठा छत्तीसगढ है। बघेलखड-छत्तीसगढ के पूरब विन्ध्य-मेखला का बाकी हिस्सा झाड़खड या छोटा नागपुर है।

§४ **दक्खिन**—तापी, वर्धा, वेणगगा, महानदी और सुवर्णरेखा के उपरले काँठों के दक्खिन, समुद्र की तरफ बढा हुआ, जो तिकोना पठार यानी पहाड़ी मैदान है, उसी को दक्खिन कहते हैं। इस तिकोने के पच्छिमी किनारे के साथ-साथ पच्छिमी घाट या सह्याद्रि चला गया है, और पूरबी किनारे पर पूरबी घाट अथवा महेन्द्र और मलय पर्वत हैं। दक्खिन की सब बड़ी नदियाँ पच्छिम से पूरब बहती हैं। इसका यह अर्थ है कि पच्छिमी घाट के पूरब तरफ ढाल है, और पूरबी घाट की शृखला बीच-बीच मे ऐसी टूटी हुई है कि उसमें से बडी नदियाँ लाँघ सकती हैं। पच्छिमी और पूरबी दोनो घाटो और समुद्रों के बीच मैदान की एक-एक हरी किनारी है। पच्छिम तरफ की किनारी बहुत सँकरी है, पूरब का हाशिया अच्छा चौडा है। पच्छिमी मैदान की किनारी को उत्तर वाले हिस्से में कोकण और दक्खिन वाले हिस्से में केरल या मलबार कहते हैं। पूरबी किनारे का दक्खिनी अश चोलमडल* और उत्तरी अश कलिंग है।

कृष्णा नदी दक्खिन के पठार को दो हिस्सों में बाँटे हुए है। उसके उत्तर के हिस्से का पच्छिमी अश महाराष्ट्र और पूरबी अश कृष्णा-गोदावरी के मुहानो सहित तेलगाना है। तेलगाना के उत्तर-पूरब महानदी का निचला काँठा उडीसा है। कृष्णा

---

* अँगरेजी कारोमंडल इसी का बिगड़ा हुआ रूप है।

के दक्खिन, पच्छिमी और पूरबी घाट एक दूसरे के निकट आते-आते नीलगिरि पर मिल गये हैं। उनके मेल से बना ऊँचा पठार मैसूर या कर्णाटक है। कर्णाटक के
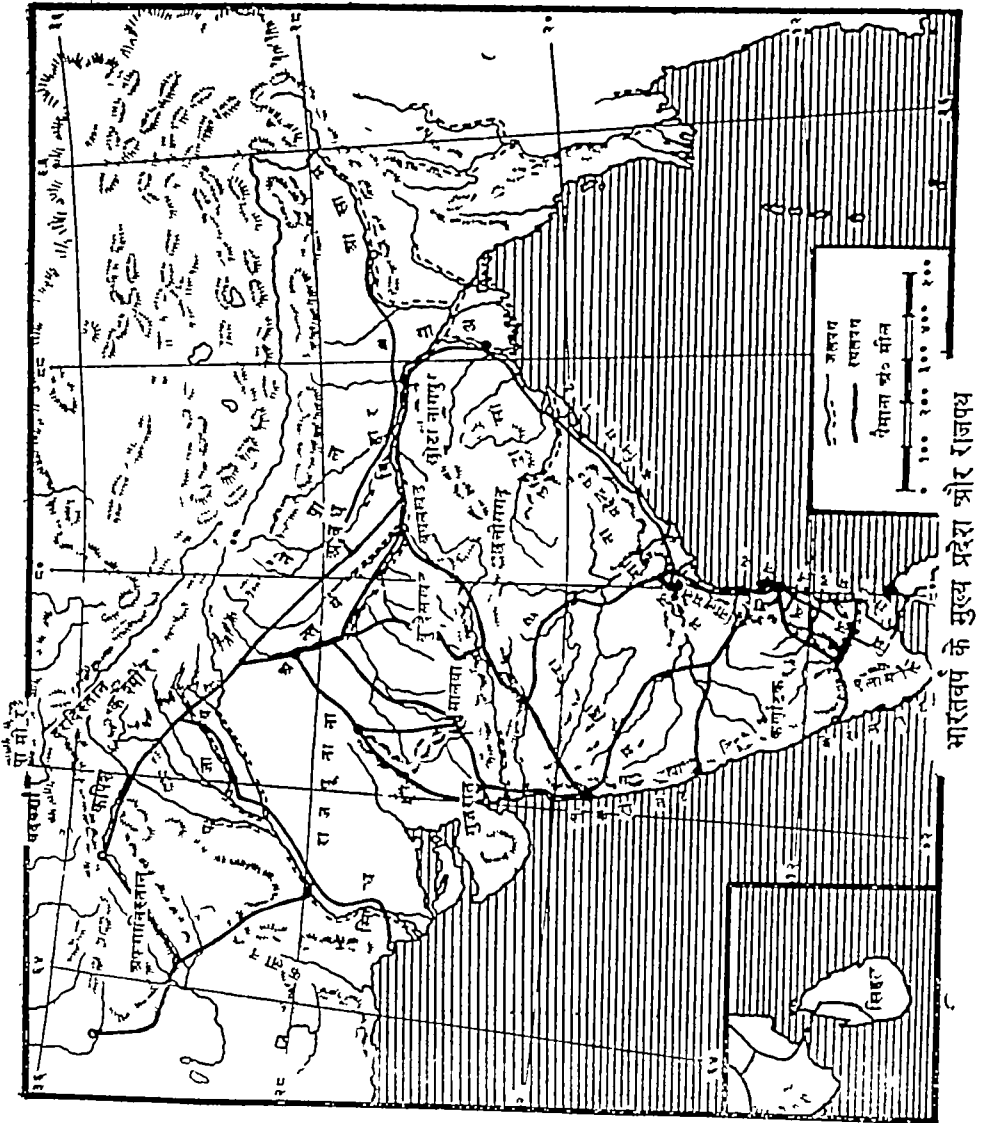
भारतवर्ष के मुख्य प्रदेश और राजपथ

पूरब तट का मैदान चोलमडल या तामिल देश है। नीलगिरि के दक्खिन और केरल तथा चोलमडल के बीच मलय पर्वत है। वह भी तामिल देश में है। समुद्र पार सिंहल द्वीप भी भारतवर्ष का एक हिस्सा है।

दक्खिन में मैदान के जो तग फीते हैं, वे उत्तर भारत के विशाल मैदान के मुकाबले में बहुत छोटे हैं। तो भी उन मे से कई बडे उपजाऊ हैं। कोंकण और केरल तो मानो भारतवर्ष के बाग ही हैं। नारियल, अनन्नास, काजू और बाइस किस्म के केले के सिवाय लौंग, इलायची आदि मसालो के पौधे भी केरल मे होते हैं, और उसके पडोस का मलय पर्वत अपने सुपारी, चन्दन और कपूर के जगलो के लिए प्रसिद्ध है। चोलमडल का तट उपज और आबादी में गगा के काँठे से कम नहीं है। तापी और वर्धा के उपरले काँठों—यानी बराड और खानदेश—की काली मिट्टी अत्यन्त उपजाऊ है, और उनमे भारतवर्ष की सब से अच्छी कपास पैदा होती है। इसके अलावा दक्खिन और विन्ध्य-मेखला के पहाडो मे अनेक क़ीमती खाने हैं। पुराने जमाने मे तेलगाना के इलाको मे गोलकुडा की हीरे की खान दुनिया भर मे मशहूर थी। आजकल मैसूर रियासत मे कोल्हार की सोने की खान वैसी ही प्रसिद्ध है। अभ्रक, लोहे, कोयले आदि की खानों से छोटा नागपुर के पहाड भरे पडे हैं।

§५ हिमालय-हिन्दूकुश—भारतवर्ष की उत्तरी सीमा पर जो बडे-बडे पहाड हैं, उन की शृखलाओ के फैलाव के बीच भी अनेक आबाद बस्तियाँ और इलाके हैं। सिन्ध और ब्रह्मपुत्र दोनों नदियाँ हिमालय की पीठ पीछे कैलाश पर्वत के पास से निकलती हैं। दोनो उलटी दिशाओ को रवाना होतीं, और ७-८ सौ मील का सफर कर एकाएक भारत के मैदान की तरफ ढल पडती हैं। उन दोनों नदियो के उन मोडों को आजकल के विद्वान हिमालय की पच्छिमी और पूरबी सीमा मानते हैं। हिमालय की गोद मे पच्छिम से पूरब, हजारा, कश्मीर, काँगडा, कुल्लू, क्युठल, गढवाल, कुमाऊँ, नेपाल, भूटान आदि रमणीक प्रदेश हैं।

भारतवर्ष के उत्तर-पूरब जो पहाड हैं उनकी पच्छिमी तलैटी ही हमारे देश की सीमा है। इस कारण उनके अन्दर के प्रदेशों से हमे मतलब नहीं। उत्तरी बगाल के आगे ब्रह्मपुत्र का और पूरबी बगाल के आगे सुरमा नदी का काँठा उत्तर-पूरबी सीमान्त पहाडो के अन्दर तक मैदान को बढा ले गया है।

उत्तर-पच्छिम के पहाडी इलाके बडे महत्त्व के हैं। सिन्ध नदी मे पच्छिम तरफ से गिल्गित, स्वात, कुनार, काबुल, कुर्रम, गोमल आदि नदियाँ हिन्दूकुश और अफगानिस्तान का धोवन लाती हैं। भूमि की बनावट की दृष्टि से इनकी दूनें भी भारतवर्ष के भाग हैं। आजकल भारतवर्ष और अफगानिस्तान के राज्य अलग-अलग हैं, किन्तु पिछले ज़मानों में वे प्राय इकट्ठे रहे हैं। पामीर और अफगानिस्तान के

पठारों के उत्तरी छोर असल मे भारतवर्ष की उत्तरपच्छिमी सीमा है। पामीर का पठार—जिसे दुनिया की छत कहा जाता है—हमारे देश के मस्तक पर मुकुट के

भारतवर्ष का उत्तर-पच्छिमी सीमान्त
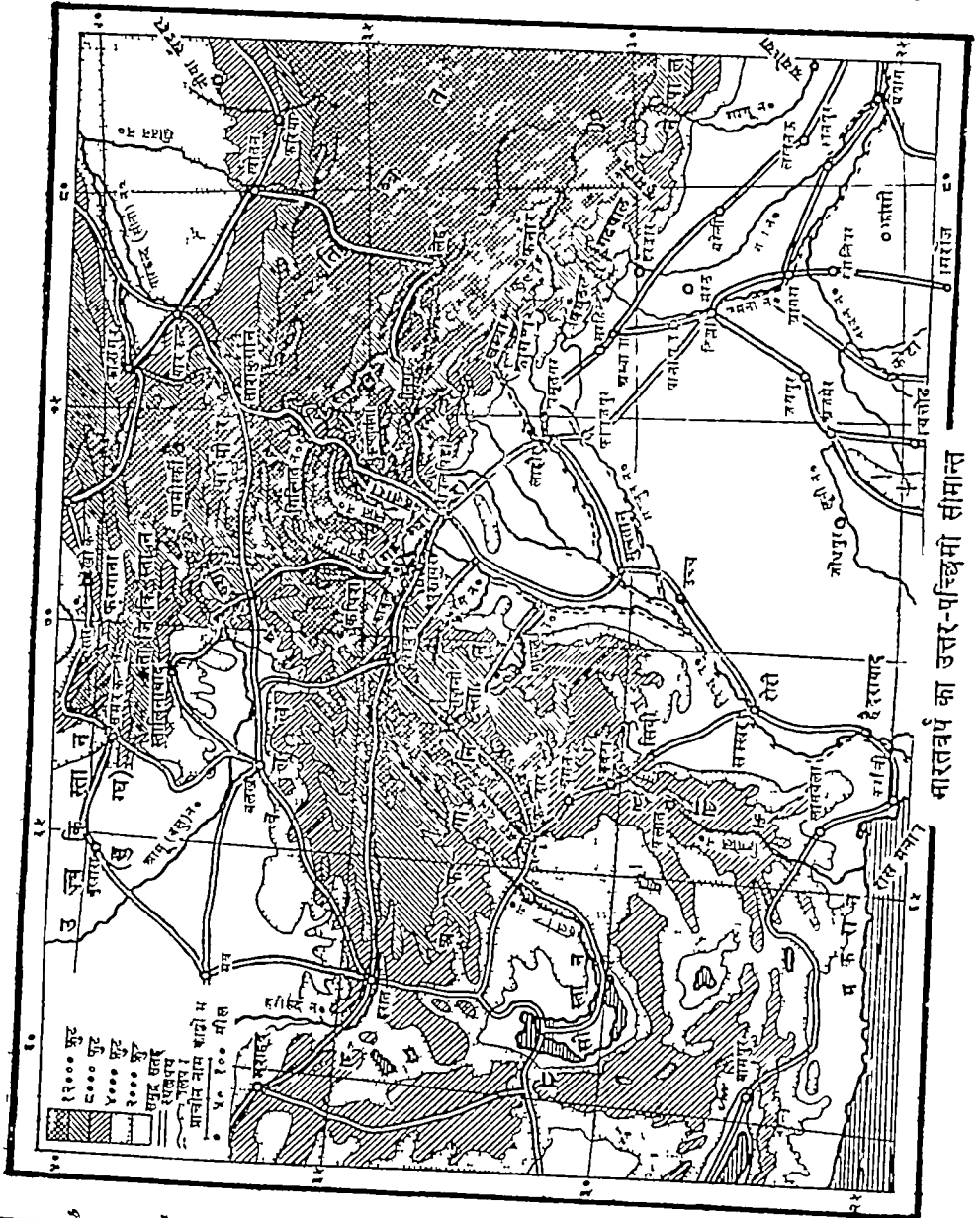
समान है। उसके पच्छिमी धोवन को लिये हुए, हिन्दूकुश के उस पार, आमू दरिया बहता है। उसी का पुराना नाम वक्षु है। पामीर का पूरबी पानी रस्कम या यारकन्द

दरिया मे जाता है, जिसका पुराना नाम सीता है। सीता नदी आगे चल कर तारीम में जा मिली है। आमू दरिया पामीर से निकल कर बदख्शाँ और बलख प्रदेशों की उत्तरी सीमा बनाता गया है। पामीर के पच्छिम बदख्शाँ है और फिर बलख। तीनों हिन्दूकुश के उत्तर सटे हुए हैं। वक्षु, सीता और तारीम के काँठो से हमारे देश का बडा सम्बन्ध रहा है। हिन्दूकुश के इस तरफ, उसके और काबुल नदी के बीच, काफिरिस्तान और यागिस्तान ( गान्धार ) प्रदेश हैं। फिर हिन्दूकुश, पामीर और कृष्णगगा* इन के बीच दरद-देश या दरदिस्तान, काबुल नदी के दक्खिन, हेलमन्द नदी के बिचले काँठे और सुलेमान पहाड तक ठेठ अफगानिस्तान है। सुलेमान के किनारे मे सिन्ध के मैदान की एक नोक—जिस मे सिबी की बस्ती है—पहाडो में पच्चर की तरह बढी हुई है। उसी नोक के ऊपर बोलान दर्रा है। सिन्ध के मैदान के पच्छिम पहाडो मे कलात और लासबेला प्रदेश हैं। वे प्रदेश तथा उनके पच्छिम मे ठेट बिलोचिस्तान का पूरबी अश मिला कर आजकल भारतीय साम्राज्य का बिलोचिस्तान प्रान्त बनता है। ठीक-ठीक कहे तो कलात-लासबेला के पच्छिम का प्रदेश हमारे देश का हिस्सा नहीं है। इस तरफ हिंगोल नदी और रास ( अन्तरीप ) मलान हमारे देश की सीमाएँ रही हैं।

यदि हम भारतवर्ष के उत्तरी और उत्तर-पच्छिमी सीमान्त पर ध्यान दे तो दोनों में एक स्पष्ट भेद दिखायी देता है। हिमालय के उस पार तिब्बत है, जो एक लम्बा-चौडा और बीहड पठार है। किन्तु इधर हिन्दूकुश के उस पार आमू और सीर दरिया के काँठे गगा-जमना के काँठों की तरह हैं। पामीर के पूरब सीता और तारीम का काँठा भी खुला मैदान है। आमू-सीर और तारीम के मैदानो तथा सिन्ध के मैदान के बीच जो पहाडी बाँध है वह तिब्बत के पहाडी बाँध से बहुत कम चौडा है। इसी कारण हिमालय और तिब्बत के आरपार भारत का दूसरे देशों के साथ वैसा सम्बन्ध नहीं रहा, जैसा कि हिन्दूकुश-पामीर के रास्ते से।

§६ समुद्र—भारतवर्ष को तीन तरफ से घेरने वाला समुद्र बडे महत्त्व का है। उसके द्वारा विदेशो से भारतवर्ष का सम्बन्ध बहुत पुराने समय से रहा है। आजकल के जहाज महासागरो में भी चलते हैं, पर पुराने समय के समुद्री व्यापार-पथ प्रायः तट के साथ-साथ थे। एशिया के नक़्शे पर ध्यान देने से मालूम होगा कि भारतवर्ष

---

* जेहलम में उत्तर-पच्छिम मे आ कर मिलने वाली नदी।

के एक तरफ आफ्रिका, अरब और ईरान हैं, तो दूसरी तरफ हिन्दचीन, सुमात्रा, जावा और चीन। अमेरिका को हम नयी दुनिया कहते हैं। पुरानी दुनिया के लोगों को उसका पता कोई साढ़े चार सौ बरस से मिला है। लेकिन जो पुरानी दुनिया के सभ्य देश थे, उनके समुद्री रास्तों के ठीक बीचोंबीच भारतवर्ष पडता था। इसी कारण वह सभ्य जगत के समुद्री व्यापार का सदा केन्द्र रहा।

**§७. भौमिक परिस्थिति का जीवन पर प्रभाव, भारतवर्ष की विविधता मे एकता**—हमारा देश विशाल है, और उसमें अनेक प्रकार के प्रदेश हैं। कहीं खुले विस्तृत मैदान हैं तो कहीं तग पहाडी दूने, कही हरे-भरे खादर हैं तो कहीं बजर मरुभूमि, इत्यादि। विविध प्रदेशों की भौमिक परिस्थिति का प्रभाव वहाँ के निवासियों के जीवन पर भी पड़ता है। किन्तु हमारे देश की बनावट मे कुछ बाते ऐसी भी हैं जो इसकी विविधता में गहरी एकता पैदा कर देती हैं। समुद्र और हिमालय, जो कि इसकी सीमाएँ हैं, इसे स्पष्ट एक देश बना देते हैं। फिर वही समुद्र और हिमालय मानो हमारे समूचे जीवन को भी चलाते हैं। समुद्र से गर्मी में जो भाप के बादल उठते हैं, वे हिमालय को नहीं लाँघ पाते। वे या तो लौट कर भारत के मैदानों पर बरसते हैं, या हिमालय की गोदी मे बरफ बन कर बैठ जाते और फिर नदियो के रूप में उन्हीं मैदानों को सींचते हुए समुद्र मे वापिस जा पहुँचते हैं। समुद्र और हिमालय के बीच पानी उछालने का जो यह खेल लगातार चलता है, इसी से हमारी सर्दी, गर्मी और बरसात की ऋतुएँ होती हैं, हमारी खेती-बारी होती है और हमारी नदियों के तथा उनके द्वारा हमारे वाणिज्य-व्यापार के रास्ते निश्चित होते हैं। समूचे भारत की ऋतु-पद्धति इसी कारण एक है। सच कहे तो उत्तर भारत का विशाल खादर हिमालय की ही देन है। वह नदियों द्वारा बहा कर लायी हुई उसी की मिट्टी से बना है। नदियों के किनारे ही प्रारम्भिक बस्तियाँ बसीं और नदियों के द्वारा ही उनमें परस्पर व्यापार चलता रहा है। स्थल के रास्ते भी मनमानी दिशा में नहीं जा सकते, वे नदियों, पहाड़ों आदि की बनावट देख कर चलते हैं। इसी कारण हमारे देश में पुराने समय से कई एक प्रमुख रास्ते चले आते हैं, और उनकी सामान्य दिशा सदा एक सी रही है।

**§८. उत्तर भारत के मुख्य राजपथ**—उनमें सब से मुख्य वह रास्ता है जो उत्तर-भारतीय मैदान को आरपार पच्छिम से पूरब लाँघता है। अटक (सिन्ध नदी) के पच्छिम से चल कर, पजाब की नदियों को उथले घाटों पर लाँघता हुआ, कुरुक्षेत्र के बाँगर मे से हो कर, वह गगा के काँठे में पहुँचता है और फिर बनारस के पास

गगा के दक्खिन उतर कर उसके दाहिने किनारे के साथ-साथ बगाल के बन्दरगाहों तक जा निकलता है। कुरुक्षेत्र के बाँगर के अतिरिक्त उस रास्ते के दो और बडे नाके हैं। एक तो सिन्ध और जेहलम नदी के बीच, जहाँ वह नमक-पहाडियों की शृखला को लाँघता है, दूसरे बिहार और बगाल की सीमा पर मुगेर से राजमहल तक, जहाँ गगा तक बढी हुई झाड़खड की पहाडियाँ उसे तग दर्रों मे से गुजरने को बाधित करती हैं।

अन्तर्वेद से इस राजपथ की एक बडी शाखा हिमालय के नीचे-नीचे अवध से आसाम तक चली गयी है। उसी प्रकार एक बडी शाखा पजाब से सिन्ध की तरफ पजाब की नदियों की दिशा मे गयी है। इस मुख्य राजपथ से उत्तर तरफ अनेक छोटे रास्ते हिमालय की ओर बढते हैं।

§६. **सीमान्त के रास्ते**—उत्तर-पच्छिमी और उत्तर-पूरबी सीमान्तों के रास्ते उत्तर भारत के राजपथ के ही बढाव हैं। जेहलम और अटक के बीच से उस राजपथ मे से फट कर एक हिमालय-गामी रास्ता, जेहलम-दून के द्वारा, कश्मीर मे घुसता है। उसी के पडोस से रास्तों का एक समूह सीधा सिन्ध-दून के ऊपर को, अथवा सिन्ध पार कर स्वात या कुनार की दून मे चढता है, और आगे बढ कर हिन्दूकुश के घाटों को लाँघता हुआ बदख्शाँ या पामीर में जा पहुँचता है। उसकी शाखाएँ बदख्शाँ से आमू के काँठे मे और पामीर में से पूरब उतर कर सीता और तारीम के काँठो मे चली जाती हैं। जेहलम से कुनार तक के पहाडी प्रदेश का पुराना नाम गान्धार है, इसलिए इन रास्तों को गान्धार के रास्ते कहना चाहिए।

सीमान्त के रास्तो का दूसरा बडा समूह अफगानिस्तान मे से गुजरता है। उनमे से एक प्रसिद्ध रास्ता काबुल नदी का है। आजकल यह अटक से काबुल नदी के दक्खिन—पेशावर और खैबर हो कर—बढता है। पुराने समय मे वह काबुल नदी के ठीक साथ-साथ जाता था। आगे काबुल के उपरले सोतो से हिन्दूकुश पर चढ कर वह आमू के सोतो के साथ बलख और आमू-मैदान मे उतर जाता है। कुर्रम की दून से भी अफगानिस्तान मे घुसने का रास्ता है। एक और व्यापार-पथ वह है जो डेरा-इस्माइलखाँ से गोमल के रास्ते गजनी और कन्दहार की तरफ बढता है। और नीचे एक रास्ता सक्खर, सिवी और दर्रा बोलान के निर्जल प्रदेश मे से हो कर कन्दहार को, और कन्दहार से हरात को, अफगान पहाडो के दक्खिन-दक्खिन चला गया है। सिन्ध के मैदान के ठीक पच्छिम कलात और खीरथर पहाडों में से लाँघने

वाले रास्ते बड़े विकट हैं। कराची से तट के साथ-साथ भी मकरान द्वारा पच्छिम जाने का एक रास्ता है।
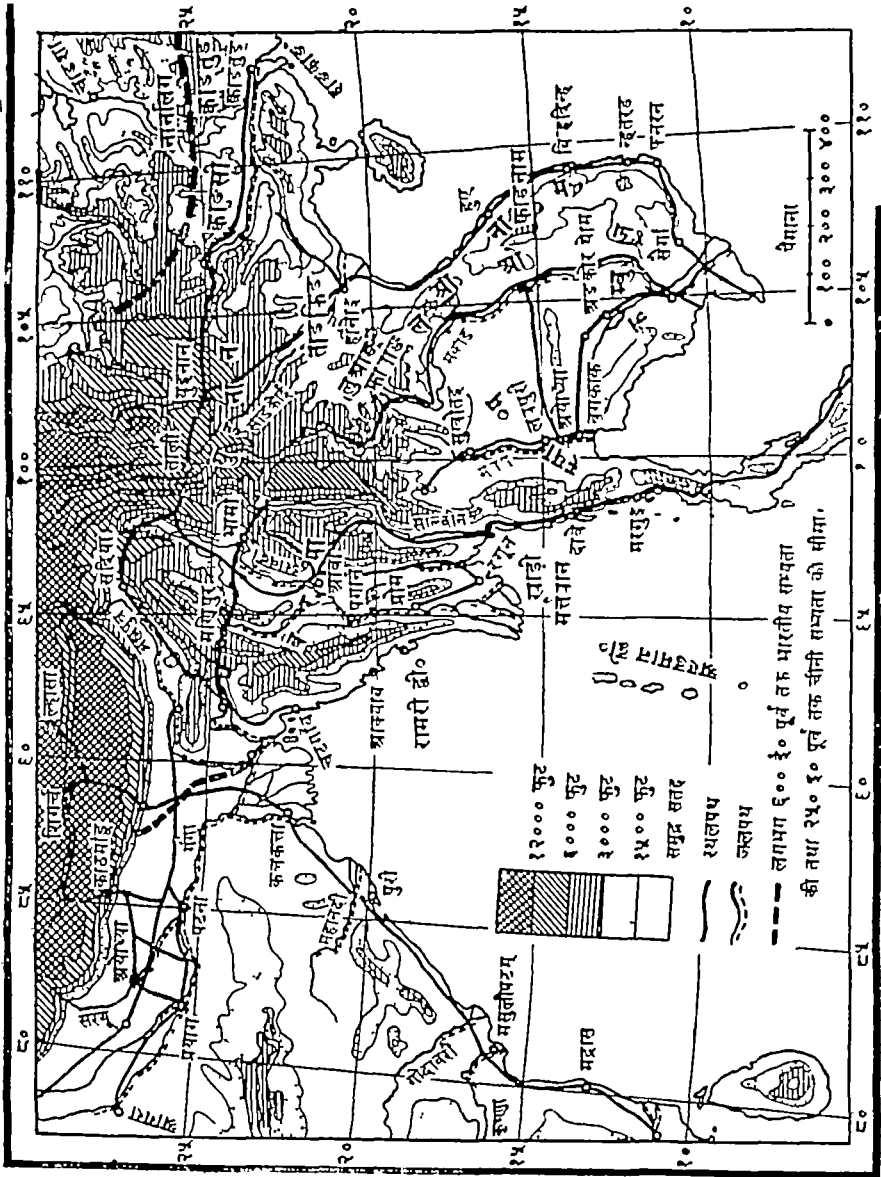
भारतवर्ष का पूर्वी सीमान्त

उत्तर-पूरबी सीमान्त पर रास्तों के तीन स्पष्ट समूह हैं। पहला उपरले ब्रह्मपुत्र काँठे से पतकोई पहाडो को पार कर चिन्दविन, इरावती, सालवीन या मेकौङ की

उपरली दूनों मे पहुँचता, और उन नदियो के साथ हिन्दचीन के खुले मैदान में उतर जाता है। दूसरा सुरमा के काँठे से मणिपुर के पहाड लाँघ कर चिन्दविन और इरावती के काँठों मे पहुँचता है और फिर उनके साथ, अथवा और पूरब बढ़ कर सालवीन या मेकौंड के साथ, दक्खिन उतरता है। तीसरा चटगाँव से समुद्र-तट के साथ-साथ जाता है।

§१० **विन्ध्य-मेखला के रास्ते**—उत्तर भारत को गुजरात और दक्खिन से मिलाने वाले रास्ते सब विन्ध्य-मेखला को लाँघ कर जाते हैं। सिन्ध से सीधा गुजरात भी जा सकते हैं, पर बीच में थर का दक्खिनी छोर और कच्छ का रन पडने से वह रास्ता बहुत कठिन है। कच्छ का रन असल मे उथला कीचड़ है जिसे झाड-झखाड ने और भी बीहड बना दिया है। इस कारण पजाब से यदि गुजरात या महाराष्ट्र जाना हो तो दिल्ली और राजपूताने या दिल्ली और मालवे के रास्ते जाना होता है। इस प्रकार कुरुक्षेत्र-पानीपत का नाका जैसे पजाब से गगा-काँठे के रास्ते पर काबू करता है, वैसे ही वह पजाब और दक्खिन के बीच के रास्तो को भी दबाये हुए है।

अजमेर का नाका, ठीक बीच मे, राजपूताने के रास्ते पर काबू करता है। वहाँ वह रास्ता आडावाला को पार कर उसके पच्छिम जा निकलता है, और वहाँ से उसकी एक शाखा सीधे दक्खिन मालवे को चली जाती है। मालवे का रास्ता, ठेट हिन्दुस्तान और दक्खिन के ठीक बीच पडने से विन्ध्य-मेखला के रास्तो मे सब से मुख्य रहा है। मालवा से निकल कर उस रास्ते की एक शाखा पच्छिमी तट के बन्दरगाहों को चली जाती है। और दूसरी नर्मदा और तापी को उपरले घाटो पर लाँघ कर बराड पहुँचती है, और फिर वर्धा नदी के साथ पूरबी तट को जाती है। प्रयाग के पास से दक्खिन जाना चाहें तो बुन्देलखड लाँघ कर जाते हैं। किन्तु यदि उसके और पूरब, बिहार से दक्खिन जाना हो तो छोटा नागपुर को लाँघने के बजाय उस का चक्कर लगा कर, बगाल-उडीसा हो कर, जाना सुगम होता है। इसी कारण छोटा नागपुर या झाडखड को उत्तर से दक्खिन या दक्खिन से उत्तर जाने वाले विजेताओं ने बहुत कम लाँघा है, और उसके जगलों मे आज तक भी बहुत सी जगली जातियाँ आराम से रहती आ रही हैं। बगाल से उडीसा होता हुआ समुद्रतट के साथ-साथ जाने वाला रास्ता बहुत सुगम है।

§११ **दक्खिन के रास्ते**—पूरबी तट के इस रास्ते के सिवाय दक्खिन भारत के सब प्रमुख रास्ते उसकी नदियों के बहाव के साथ-साथ पच्छिम से पूरब

जाते हैं। एक तापी के घाटों को गोदावरी के मुहाने से, दूसरा उत्तरी महाराष्ट्र को कृष्णा के मुहाने से, तीसरा दक्खिनी महाराष्ट्र और कर्णाटक को कावेरी के मुहाने से, तथा चौथा केरल को कावेरी या वैगै के मैदान से मिलाता है। यह अन्तिम रास्ता नीलगिरि और मलयगिरि के बीच पालक्काड* से गुजरता है।

गोदावरी और कृष्णा के रास्तों के बीच पड़ने से गोलकुंडा-हैदराबाद पठार का बड़ा महत्त्व है। उसी प्रकार कृष्णा-तुंगभद्रा का दोआब महाराष्ट्र और कर्णाटक के रास्तों पर बीचोंबीच काबू करने से बड़े महत्त्व का है। यह दोआब तो दक्खिन का कुरुक्षेत्र है। इस हिसाब से महाराष्ट्र दक्खिन भारत का अफगानिस्तान है, और चोलमंडल उसका गंगा का मैदान। महाराष्ट्र के पठार से कोंकण तट के बन्दरगाहों तक जाने को सह्याद्रि के ऊँचे घाट लाँघने पड़ते हैं। घाटों के वे तंग रास्ते भी महत्त्व के हैं और उनकी तुलना हिन्दूकुश और आमू-काँठे के बीच के घाटों से हो सकती है।

§१२ **भू-परिवर्तन**—भूमि-सम्बन्धी अवस्थाएँ मनुष्यों के जीवन पर प्रभाव डालती हैं, किन्तु वे अवस्थाएँ स्वयं भी बदलती रहती हैं। पहाड़ की बनावट में भूकम्प आदि के बिना परिवर्तन नहीं होते, पर नदियों के रास्तों और समुद्रतट की शकल प्रायः बदला करती है। बंगाल में तामलूक, ताम्रपर्णी के मुहाने पर कोरकई, और सिन्ध में ठट्ठा पिछले युगों में बन्दरगाह थे, पर अब वे सब सूखे में हैं। बहुत पुराने समय में राजपूताने का थर ठथला समुद्र था और सरस्वती नदी उसी में मिलती थी।

नदियाँ भी प्रायः अपने रास्ते बदला करती हैं। बाईस सौ वर्ष पहले पटना शहर गंगा और सोन के संगम पर था। आज सोन उसके बारह मील पच्छिम खसक गया है। व्यास नदी बहुत पुराने समय में आजकल की तरह सतलज में मिलती थी; फिर बहुत समय तक वह अपनी धारा बदल कर मुलतान के नीचे चिनाब में मिलती रही। मनुष्य अपने हाथों भी भूमि-सम्बन्धी अवस्थाओं को बहुत-कुछ बदल लेता है। जंगल काट कर, नहरें निकाल कर, तालाब बाँध कर और दलदलें सुखा कर जमीन की शकल बदल डालता और वर्षा के परिमाण को भी बहुत कुछ घटा-बढ़ा देता है। भारतवर्ष के सब उपजाऊ मैदान पहले घने जंगल थे, और हमारे पुरखों ने शताब्दियों मेहनत करके उन्हें साफ किया था।

---

*अँगरेजी रूप—पालघाट।

# अध्याय २

## भारतवर्ष के निवासी

§१. **भारतवर्ष की भाषाएँ**—भारतवर्ष बहुत बडा देश है। उसमें कई जातियों के लोग रहते हैं। भिन्न-भिन्न जातियो के लोगों को उनकी बोलचाल से पहचाना जा सकता है। कहावत है कि "कोस-कोस पर बदले पानी, चार कोस पर बानी।" किन्तु बोलचाल की वाणी चाहे चार कोस पर बदल जाय, लिखने-पढने की भाषा बहुत दूर तक एक सी रहती है। हमारे अन्तर्वेद (युक्त प्रान्त) यानी ठेठ हिन्दुस्तान मे लिखने-पढने की भाषा हिन्दी-उर्दू है। हिन्दी और उर्दू असल में एक ही भाषा के दो नाम हैं। नागरी अक्षरो या लिपि में लिखने से वह हिन्दी कहलाती है, फारसी लिपि मे लिखने से उर्दू। बिहार, राजपूताना और बुन्देलखड-छत्तीसगढ (मध्य प्रान्त) मे भी हिन्दी-उर्दू का चलन है। बगाल के लोग बँगला पढते-लिखते हैं, और आसाम के असमिया। गुजरात मे गुजराती चलती है और महाराष्ट्र मे मराठी। भारतवर्ष के भिन्न-भिन्न प्रान्तो मे इस प्रकार कुल जो भाषाएँ जारी हैं उन्हे अगले नक्शे में दिखलाया गया है। भारतवर्ष की सब बडी-बडी भाषाओं मे दो साधारण सी बाते किस प्रकार कही जाती हैं, उसका एक नमूना परिशिष्ट १ मे दिया गया है।

इन नमूनों को ध्यान से तुलना करने पर प्रकट होगा कि भारतवर्ष की बहुत सी भाषाओं का एक दूसरी से बडा सम्बन्ध है। हिन्दी, बँगला, उडिया, असमिया, पहाडी, मराठी, सिंहली, सिन्धी, पजाबी, कश्मीरी और पश्तो भाषाएँ एक ही माँ की बेटियाँ हैं। जहाँ आजकल ये भाषाएँ बोली जाती हैं, वहीं पहले जमानो मे सस्कृत, पालि और कई प्राकृते बोली जाती थी। वे इन सब की पूर्वज थी और उनकी जड़ भी शुरू में एक थी। इन सब भाषाओं के समूह को हम आर्य भाषाएँ कहते हैं।

§२. **आर्य और द्राविड जातियाँ**—आर्य और द्राविड भाषाएँ बोलने वालों के पुरखा अलग-अलग जातियो के थे। उन जातियों के रग-रूप मे भी फरक था। आर्य के खास चिन्ह हैं—रग गोरा या गेहुँआँ, कद ऊँचा, माथा उभरा हुआ, नाक लम्बी और नुकीली, दाढी-मूँछ भरपूर। काला रग, कद कुछ कम और चौडी नाक द्राविडो की विशेषताएँ हैं। किन्तु ऐसा न समझना चाहिए कि आज जो

लोग आर्य भाषाएँ बोलते हैं वे सब पुराने आर्यों की ही सन्तान हैं, और जो द्राविड भाषाएँ बोलते हैं वे द्राविडो की ही। दोनो जातियो मे परस्पर मिश्रण भी खूब हुआ
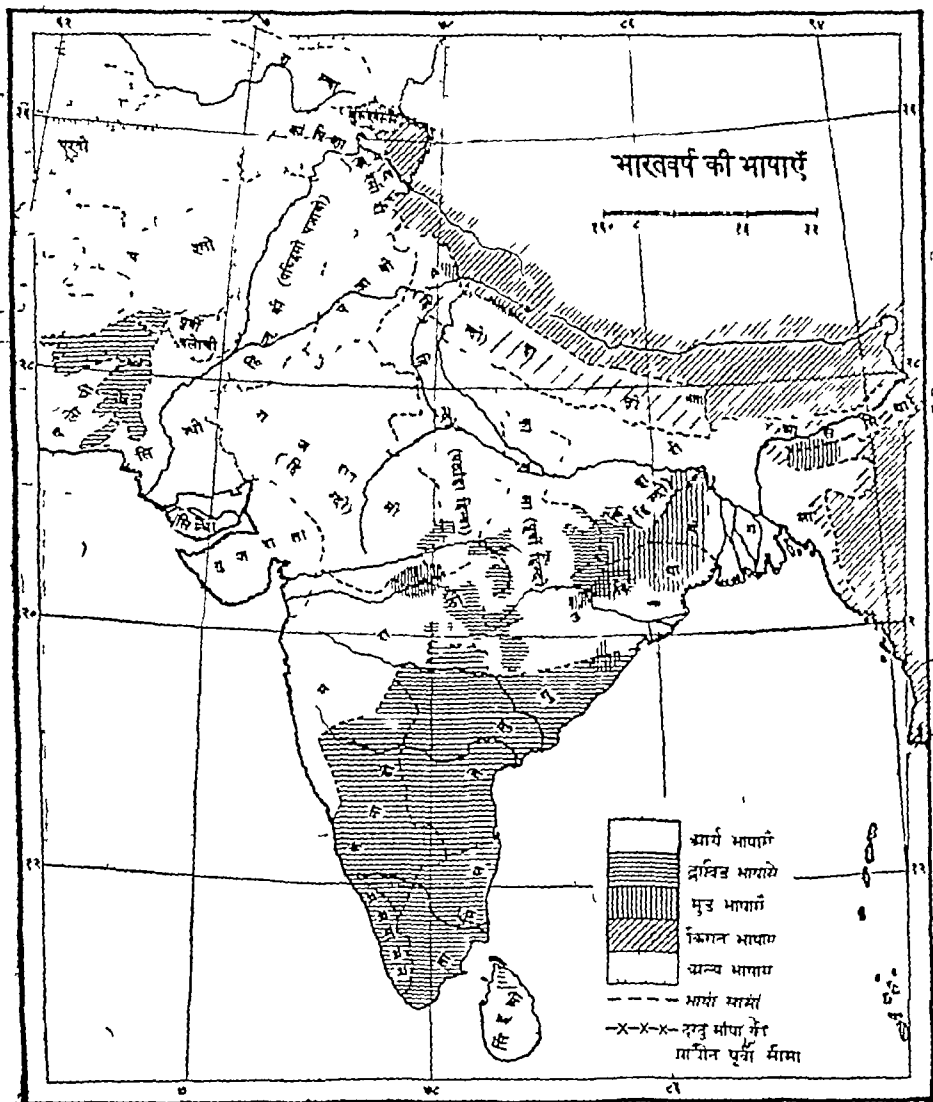
[ 'भारतभूमि और उसके निवासी" के आधार पर ]

टिप्पणी—दक्खिन की द्राविड़ भाषाओं के अतिरिक्त कलात में ब्राहूई नामक एक द्राविड बोली है, तथा गंगा और गोदावरी के बीच कई जगह एक द्राविड बोली—गोंडी—है। पामीर की गल्चा बोलियाँ आर्य है।

है। दोनो की भाषाओं का भी एक दूसरे पर बड़ा प्रभाव पड़ा है। बहुत लोगों ने अपनी असल भाषा छोड़कर जहाँ बस गये वहाँ की प्रधान भाषा अपना ली। आज भारतवर्ष में ७६·५ फी सदी आर्यभाषी, और २०·५ फी सदी द्राविड भाषी हैं। बाक़ी ३ फी सदी और जातियाँ हैं।

द्राविड भाषाओं का भारतवर्ष के बाहर और किसी भाषा से रिश्ता-नाता नहीं दिखायी देता। किन्तु आर्य भाषाओं का परिवार बहुत बड़ा है। ईरान और युरोप की सब मुख्य-मुख्य भाषाएँ इसी वंश की हैं। इन सब भाषाओं को बोलने वाली जातियों के पुरखा शुरू में कहीं एक जगह रहते होंगे। आर्य जाति का वह आदिम घर कहाँ था, इसपर अनेक अटकलें लगायी गयी हैं। मध्य-एशिया, पच्छिमोत्तर युरोप, उत्तरी ध्रुव, गंगा-काँठा, आर्मीनिया, उराल, दान्यूब-काँठा या सिबिरिया में—विभिन्न विद्वानों ने आर्यों का मूल अभिजन होने का अन्दाज लगाया है। फिलहाल इस विषय का निपटारा नहीं हो सकता।

आर्यावर्त्ती आर्य

[ श्री देवेन्द्र सत्यार्थी के सौजन्य से ]

§३ किरात जाति—भारतवर्ष की जनसंख्या की तीन फी सदी गौण जातियों के विषय में भी हमको कुछ जानना आवश्यक है। इन में से आधे से अधिक एक ऐसी जाति के लोग हैं, जो हिमालय के उत्तरी अञ्चल में और आसाम के कुछ हिस्सों में पाये जाते हैं। इनकी भाषाएँ तिब्बत और बरमा की भाषाओं से मिलती हैं, उन भाषाओं और उनके बोलने वालों को आजकल के विद्वान् तिब्बती-बरमी कहते हैं। उनका पुराना नाम किरात है। किरात और चीनी जाति मिला कर मनुष्य जाति का एक बड़ा वंश बनता

द्राविड

[ श्री आ० अय्यप्पन के सौजन्य से ]

है, जिसे चीन-किरात (Tibeto-Chinese) कहते हैं। चीन-किरात वश की मुख्य पहचान यह है कि उनकी नाक की जड कुछ चपटी, गालों की हड्डियाँ उभरी हुई, दाढी-मूँछ न के बराबर तथा चेहरा चपटा होता है। हमने भारतीय किरातों की जो सख्या बतलायी है उसमे केवल उनकी गिनती की है जो अब भी किरात भाषाएँ बोलते हैं किन्तु आसाम और बगाल और पहाड की जनता में बहुत से आर्य-भाषी भी हैं जिनकी नसो मे अशत चीन-किरात खून बहता है।

भारतीय किरात
[ रिस्ली के आधार पर ]

§४ मुड या कोल जाति—दूसरी गौण जाति का नाम मुड है। मुड भाषाएँ बोलने वाले विशेष कर उडीसा के पास झाडखड मे रहते हैं। सन्याल, मुडा, शबर आदि उनमे मे मुख्य हैं। उन्हे बहुत लोग कोल भी कहते हैं। शकल-सूरत मे वे लोग द्राविडा के से हैं, पर उनकी बोली बिलकुल अलग है। भारतवर्ष मे वे थोडे हैं, किन्तु बाहर उन की नस्ल बहुत दूर-दूर तक फैली है। आज भी हिन्द चीन मे उनका बडा अश मौजूद है, पर किसी जमाने मे तो वहाँ वही लोग बसते थे। प्रशान्त महासागर के द्वीपो मे भी उसी वश के लोग हैं। वे जातियाँ ससार के आग्नेय अर्थात् दक्खिन-पूर्वी कोण मे रहती हैं, इसलिए आजकल के विद्वानों ने उन का नाम आग्नेय (Austric) वश रक्खा है*। मुड जाति इसी वश की एक शाखा है। भारतवर्ष मे उस के बहुत से लोग आर्य और द्राविड भाषाएँ बोलने वालो मे मिल गये हैं। भारतवर्ष के सब से पुराने निवासी शायद वही हैं।
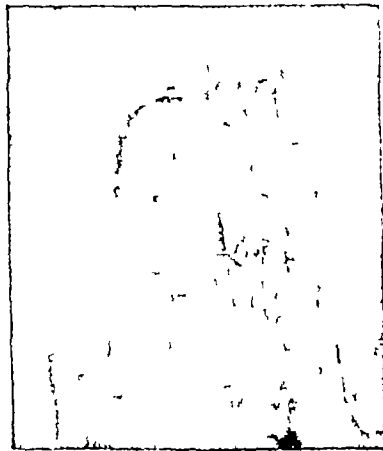
मूर्ति [ पटना म्यूज़ि० ]

*यह विषय अब कुछ विवाद-ग्रस्त है।

§५. **भारतवर्ष की लिपियाँ और भारतीय वर्णमाला**—हमने अभी तक अपने देश की भाषाओं पर ध्यान दिया है। वे भाषाएँ किन लिपियों में लिखी जाती हैं, यदि हम इस ओर ध्यान दें तो हमें कई काम की बातें मालूम होंगी।

हिन्दी, मराठी, पर्वतिया और कश्मीरी की लिखावट बिलकुल एक सी है। वे चारों अब नागरी लिपि में लिखी जाती हैं। नागरी, बंगला और गुजराती में थोड़ा-थोड़ा अन्तर दिखायी देता है, पर तीनों के अक्षर बिलकुल एक हैं। नागरी में जैसे अ, आ, इ, ई, क, ख, ग, .. हैं, ठीक वैसे ही गुजराती में और वैसे ही बंगला में। दक्खिन की भाषाओं की लिखावट तो नागरी से बहुत भिन्न दिखायी देती है, पर वर्णमाला उनकी भी वही है। बात यह है कि पहले सारे भारत में एक ही लिपि थी और विद्यमान सब लिपियाँ उसी से निकली हैं। वर्णमाला उन सब की अब भी वही एक है। वह वर्णमाला पहले आर्य भाषाओं की थी, पीछे द्राविड भाषाओं ने भी उसे अपना लिया। आर्य और द्राविड जातियों में एक दूसरे से किस प्रकार मेल-जोल हुआ है उसका यह भी एक नमूना है। भारत के बाहर बरमा, तिब्बत, स्याम और कम्बुज (कम्बोदिया) आदि की भाषाओं ने भी हमारी वर्णमाला को अपना रक्खा है। यह कैसे हुआ, सो हम आगे चल कर देखेंगे।

| | | | | | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|
| नागरी | अ | इ | उ | ए | क | का | कि | कु | के |
| गुजराती | અ | ઇ | ઉ | એ | ક | કા | કિ | કુ | કે |
| गुरमुखी | ਅ | ਇ | ਉ | ਏ | ਕ | ਕਾ | ਕਿ | ਕੁ | ਕੇ |
| बंगला | অ | ই | উ | এ | ক | কা | কি | কু | কে |
| उड़िया | ଅ | ଇ | ଉ | ଏ | କ | କା | କି | କୁ | କେ |
| तेलुगु | అ | ఇ | ఉ | ఎ | క | కా | కి | కు | కె |
| कन्नड | ಅ | ಇ | ಉ | ಎ | ಕ | ಕಾ | ಕಿ | ಕು | ಕೆ |
| तामिल | அ | இ | உ | எ | க | கா | கி | கு | கெ |
| मलयालम | അ | ഇ | ഉ | എ | ക | കാ | കി | കു | കെ |
| सिंहली | අ | ඉ | උ | එ | ක | කා | කි | කු | කෙ |
| तिब्बती | ཨ | ཨི | ཨུ | ཨེ | ཀ | | ཀི | ཀུ | ཀེ |
| म्यम्म (बरमी) | အ | ဣ | ဥ | ဧ | က | ကာ | ကိ | ကု | ကေ |
| स्यामी | อ | อิ | อุ | เอ | ก | กา | กิ | กุ | เก |

# परिशिष्ट १

| | | |
|---|---|---|
| संस्कृत | अहम् अद्य आत्मनो [ मम ] ग्रह गच्छामि [ व्रजामि, यामि ] | एकस्य पितुर् द्वौ पुत्राव् आस्ताम् |
| पाली | अह अज्ज मम घर गच्छामि | एकस्स पितुनो द्वे वाला अहेसु |
| हिन्दी | मैं आज अपने घर जाता हूँ | एक बाप [पिता] के दो बेटे [पुत्र] थे |
| गुजराती | हुँ आजे मारे घर जाउँछु | एक बापना बे बेटा हता |
| पहाड़ी | आज म आफ्नो घर जान्छु | यौटा बाबु को दुइटा छोरा थिये |
| बंगला | आमि आज आमार बाड़ी जाइतेछि | एक पितार दुइ पुत्र छिल |
| असमिया | मैं आजि मोर घरलै जाम | एजन पितकर दुजन पुतक आछिल |
| उड़िया | मु आजि आपणा घरकु जाउछि | एक पिताकर दुइटि पुत्र थिले |
| मराठी | मी आज आपल्या घरी जात आहे | एका पित्यास दोन पुत्र होते |
| सिंहली | मम अद मगे गेदर यमि | एक पियेकुट पुत्रयो देदेनेक वूह |
| पंजाबी | मैं अज आपणे घर जादा हा | इक प्योदे दो पुत्तर सन |
| हिन्दकी | मैं आज आपणे घर वैंदाँ | हिक पिउदे द्रु पुत्र हन |
| सिन्धी | मा अजु पहिंजे घरि वञाथो | हिक पीउजा ब पुट हुआ |
| कश्मीरी | ब छुस अज पनुन गर गछान [मैं हूँ आज अपने घर जाता] | अकिस मालिस आस्त ज न्यचिव्य [ एक बाप के थे दो बेटे ] |
| पश्तो | ज़ें निन अखपुला कोर ते [ला] ज़ेम | यवो पिलार द्वा जमन अव्. |
| कन्नड | इवत्तु नानु [नन्न] मनेगे होगुत्तेने [ आज मैं मेरे घर जाता हूँ ] | ओब्ब तन्देगे इब्बरु मक्कलु इद्दरु |
| तेलुगु | नेनु ईरोजना माइटिकि वेल्लु चुन्नानु | वोक तड्रिकी इद्दरुकोडुकुलु उडिरि |
| तामिल | नान इनूरु एन्नुडैय वीट्टिर्कु पोकिरेन | ओरु तकप्पनारुक्कु इरंडु कुमारर्कल इरुन्दनर |
| मलयालम | आन् इन्नु स्वगृहत्तिल् पोकुन्नु | ओरु पिताविन्नु रंडु पुत्रन्मार उटायिरुन्नु |

# अध्याय ३

## सभ्यता का विकास और उसका इतिहास जानने के साधन

§१ हमारे पुरखों की विरासत—हमारा देश कैसा है, और उसमे रहने वाले लोग कौन-कौन हैं, यह हमने देखा। हमारे पुरखा अधिकतर दो जातियों के थे—एक आर्य, दूसरे द्राविड। हमारे पुरखों का ब्यौरेवार वृत्तान्त ही हमारे देश का इतिहास है। जरा विचार कर देखे, हमारे पुरखों का हम पर कितना एहसान है। आज जिन खेतों से हमे खाने को अनाज मिलता है, उन्हे दो चार बरस खाली छोड़ दे तो उनकी क्या हालत हो? जगली झाड उन्हे घेर लें और जगली जानवर उनमे मॅडराने लगें। भारतवर्ष के सब उपजाऊ प्रदेश शुरू मे वैसे ही डरावने जगल थे और हमारे पुरखों ने बडी मेहनत कर उन्हे आबाद किया था। अनेक बार अपना खून बहा कर उन्होंने उनकी रक्षा की थी। जिन कुओं, तालाबो, झीलो और नहरो से आज हमारे खेतों और बगीचो की सिंचाई होती है, वे सब उन्हीं की मेहनत का फल हैं। जिन रास्तो से हमारा आना-जाना और वाणिज्य-व्यापार होता है, जिन किलो और गढो से देश की रक्षा होती है और जिन बस्तियो मे हम आराम से रहते हैं, वे सब उन्हीं की रचनाएँ हैं। इन बाहरी चीजों का क्या कहना, हमारी जो बोल-चाल, रहन-सहन और रीति-रिवाज हैं, वे सब भी हमे अपने पुरखो से प्राप्त हुए हैं। जो ज्ञान पा कर हम शिक्षित कहलाते हैं, वह भी अधिकाश हमारे पुरखों की खोज और मेहनत से सञ्चित हुआ था। आज हमारी जो मानसिक निधि है वह भी बहुत-कुछ उन्हीं की विरासत है।

हमारे देश की चप्पा-चप्पा भूमि हमारे पुरखों के महान् कार्यों की याद दिलाती है। उनके उन कार्यों का वृत्तान्त हमें अपने इतिहास मे मिल सकता है। सच्चे इतिहास से हमे न केवल उनकी खूबियाँ प्रत्युत उनकी गलतियाँ भी मालूम होंगी। और यदि हममें बुद्धि है तो हम उनके अनुभव से लाभ उठा कर उनकी गलतियो से बचेंगे और उनके गुणों का अनुसरण करेंगे। मनुष्य का मनुष्यत्व इसी मे है कि वह अपने पुरखों के ज्ञान से लाभ उठाता और उसे आगे बढाता है। इसी प्रकार मनुष्य की सभ्यता मे उन्नति होती चली आती है।

§२. **मानव सभ्यता की सीढ़ियाँ**—मनुष्य सब प्राणियो मे श्रेष्ठ कहा जाता है। उसकी श्रेष्ठता इस बात में है कि उसमें सोचने विचारने की शक्ति है। इसके अलावा दूसरे बहुत से जानवरों से उसमें एक और भी विशेषता है। वह यह कि वह दोपाया है। मनुष्य सामूहिक प्राणी है, और बडा अनुकरणशील है। एक मनुष्य जो काम करता है उसे दूसरा भी जल्द सीख लेता है। सामूहिक प्राणी होने के कारण मनुष्य अकेले-अकेले नहीं रहते। उनके झुड या गिरोह शुरू से रहे हैं जो बाद में जातियाँ बन गये। ससार के सब जन्तुओं में और जन्तुओ के झुडो मे लगातार
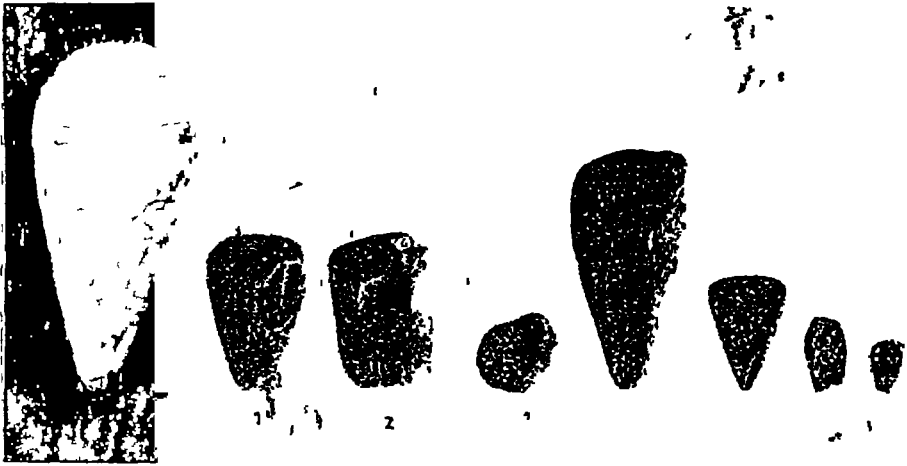
पत्थर के हथियार—बाँदा जिले से [ लखनऊ म्यूजियम ]

जीवन का सग्राम चल रहा है, जिसमे प्रबल और योग्य की विजय होती है और कमजोर और निकम्मे मारे जाते हैं।

मनुष्य जिन बातों के कारण जीवन की कशमकश में दूसरे प्राणियो से आगे बढा, वे हैं उसका दिमाग, उसकी सामूहिक शक्ति और उसके हाथ। मनुष्य-जातियाँ आपस की कशमकश में भी अपने ज्ञान, अपने सामूहिक सगठन और अपने हाथों के हथियारों और उपकरणों को लगातार उन्नत कर रही हैं। हाथ होने के कारण मनुष्य हथियार बना और चला सकता तथा अस्त्र फेंक सकता है। दुनिया की लड़ाई में इससे उसे बडी शक्ति मिली।

शुरू में उसने लकड़ी, पत्थर और हड्डी के हथियार बनाये। बाद में जब धीरे-धीरे उसें धातों का ज्ञान हुआ तो उसने खानें खोदना और धाते साफ करना सीखा। तब वह काँसे, ताँबे और लोहे के हथियार बनाने लगा।

किन्तु हथियार किस लिए थे? अपनी रक्षा और अपनी जीविका के लिए। मनुष्य अपनी जीविका में भी लगातार उन्नति करता गया है। पहले मनुष्यों के झुंड

ताँबे के हथियार—बिठूर, सरथौली ( जि० शाहजहाँपुर ) तथा राजपुर ( जि० बिजनौर ) से [ लखनऊ म्यू० ]

दूसरे जानवरों की तरह शिकारी थे—अर्थात् वे प्रकृति से अपना भोजन सीधे ले लेते

थे, जगल में फल-मूल जमा कर या शिकार कर गुजारा करते थे। जानवरों का आखेट करते-करते धीरे-धीरे उन्होंने जानवर पालना सीखा। यह एक बड़ा भारी आविष्कार हुआ। इसने मनुष्य का तमाम जीवन बदल दिया। एक जानवर मार कर खाने से जितने दिन गुजारा हो सकता था उसके दूध से उससे कहीं अधिक दिन काम चलने लगा। इस प्रकार एक वर्गमील जगल के शिकार से जितने मनुष्यों का गुजारा हो सकता था, एक वर्गमील चरागाह में चरने वाले जानवरों से उससे कहीं अधिक मनुष्यों का काम चलने लगा। फिर पैदल और घुडसवार की लडाई मे क्या कोई मुकाबला है? इस प्रकार पशुपालक मनुष्य कोरे शिकारियो से आगे बढ गये और जीवन के क्षेत्र में फूलने फलने लगे।

शिकारी मनुष्य भी जब फल बीन कर लाता था तो अपने अस्थायी डेरे के पड़ोस में कई बार गुठलियों या बीजों से पौदे उगते देखता था। इस प्रकार पौदे उगाने का ज्ञान शायद उसे शिकारी दशा में ही हो गया था। किन्तु असल खेती तब शुरू हुई जब उसने जानवरों को पाल कर उनसे हल जोतना शुरू किया। कृषि सीख जाने से मनुष्यो की जीविका में बडी उन्नति हुई और उनके समाज और भी बढने लगे।

शिकारी और पशुपालक खानाबदोश होते हैं। कृषकों ने जहाँ खेत बोया वहाँ कमसे कम फसल काटने तक उन्हें रहना चाहिए। फिर जहाँ सिंचाई का सामान किया गया, बगीचे लगाये गये, वहाँ तो हमेशा के लिए बस जाना होता है। इस प्रकार कृषि शुरू होने पर मनुष्यों के समूह टिक कर रहने लगे, और उनमें असली सभ्यता का उदय हुआ। तब उनके बाकायदा राज्य और समाज स्थापित तथा सगठित होने लगे और लिखने की कला का आविष्कार हुआ। खानाबदोश दशा में भी कुछ ज्ञान-विचार और शिक्षा थी, पर लिखने की कला का आविष्कार होने पर शिक्षा देने और पाने की परिपाटी चली जिससे ज्ञान और साहित्य चमका।

कृषि के बाद मनुष्य ने अनेक प्रकार के शिल्प निकाले। कई शिल्प—जैसे ऊन कातने-बुनने का—शायद खानाबदोशों में भी थे। किन्तु टिक कर बस जाने के बाद शिल्पों की बहुत उन्नति हुई, यहाँ तक कि आजकल का युग तो शिल्प-युग ही कहलाता है; क्योंकि कल-कारखानों के ज्ञान के बिना आज कोई जाति जिन्दा नहीं रह सकती।

**§३. सभ्यता के चिन्ह—इतिहास के उपकरण**—सभ्यता अपने चिन्ह पीछे छोड़ती जाती है। पुराने लोगों के बनाये हुए पत्थर और हड्डी के हथियार अब तक

मोहनजो दड़ो की खुदाई में पायी गयी मुहरें, मूर्त्तियाँ आदि

( दूसरी पंक्ति में एक आधुनिक शिवलिंग तुलना के लिए रक्खा है ।)

दबे हुए निकल आते हैं। ताँबे, काँसे और लोहे के पुराने किस्म के हथियार भी पुरानी बस्तियों की खुदाई में पाये जाते हैं। सभ्य मनुष्यों के अनेक प्रकार के उपकरणों और उनकी बनायी हुई इमारतों से उनका हाल जाना जाता है। मकान बनाने का शिल्प चलने पर भी, लकड़ी की बहुतायत के कारण, बड़े अरसे तक हमारे देश में लकडी की इमारते बनती रही। ये सुरक्षित न रह सकती थीं। किन्तु बाद की पत्थर की इमारतों से हमे उन युगों की हालत का बहुत कुछ पता मिलता है। फिर हमारे पूर्वज अपने पीछे जो साहित्य और लेख छोड गये हैं—वे लेख चाहे पत्थर पर हों, चाहे सिक्कों पर, चाहे पुस्तकों मे—उनसे तो उनका वृत्तान्त जानने मे बड़ी सहायता मिलती है। सभ्यता के वे सभी चिह्न हमारे इतिहास के उपकरण हैं।

§४. **भारत और संसार की पहली सभ्यताएँ**—हमारे देश मे जो पत्थर के पुराने हथियार पाये गये हैं, वे आर्यों के नहीं हैं, क्योंकि आर्य लोग जब पहले-पहल इस देश मे प्रकट हुए, तो उनमे एक साहित्य का उदय हो चुका था, और उस साहित्य से हम जानते हैं कि वे तब कृषि और धातो का प्रयोग जानते थे। पुराने पत्थर के हथियार बरतने वाले जो लोग उत्तर भारत के जगलो मे रहते थे, वे प्राचीन द्राविड हों, मुड हों, या उन सब से भी भिन्न कोई जाति हो। आर्यों ने जब उनके जगल काट कर साफ किये, तो वे झाडखड जैसे दूर प्रदेशों मे भाग गये, नष्ट हो गये, या कुछ अश में आर्यों में मिल गये।

शव दफ़नाने का मटका—हड़पा से [ भा० पु० वि० ]

कृषक जातियाँ पहले-पहल नदियों के उपजाऊ काँठो में बसी। संसार भर में नदियों के चार काँठे, जिनमें सबसे पहले सभ्यता का विकास हुआ,

बहुत ही प्रसिद्ध हैं। एक चीन की याङचेक्याङ और होआङहो नदियों का काँठा, दूसरे हमारे गंगा-जमना और सिन्ध-सतलज के काँठे, तीसरे ईरान की खाड़ी में गिरने वाली दजला और फरात नदियों का काँठा, और चौथे मिस्र की नील नदी का काँठा। नील के काँठे में पहले-पहल मिस्र के पुराने निवासी हामी या हैमेटिक लोगों की सभ्यता का उदय हुआ, दजला-फरात के तटों पर पहले अक्काद और सुमेर नाम की और फिर बाबुल (Babylon) और खल्द (Chaldae) नाम की बस्तियाँ थीं। अक्काद और सुमेर के लोग न जाने कौन थे। उनके द्राविड या तूरानी (तुर्कों-तातारों के सजातीय) होने की अटकल लगायी गयी है, पर वे किसी और जाति के भी हो सकते हैं। बाबुली लोग सामी या सैमेटिक जाति के थे, जिसमें अब अरब और यहूदी हैं। हमारे उत्तर भारत में आर्य जाति थी और चीन में चीनी। प्राचीन जगत् में यही सभ्य जातियाँ थीं और यही सभ्यता के केन्द्र थे।

हमारे सिन्ध प्रान्त के लारकाना जिले में मोहनजो दडो नामक स्थान की खुदाई से एक बडी पुरानी सभ्यता के अवशेष मिले हैं। उस स्थान पर एक सुन्दर नगरी थी जिसकी इमारतें ईंट और पत्थर की थीं, और जिसके मकान, नालियाँ, गलियाँ और बाजार बडे सिलसिले से बने थे। उस नगरी के सभी मकान प्राय एक सी हैसियत के हैं—ऐसा नहीं कि प्रजा के छोटे-छोटे मकानों के बीच कोई एक बडा राजमहल हो। इससे जान पडता है कि वहाँ प्रजातन्त्र राज्य था। वहाँ के लोग गेहूँ की खेती, कपास के कपडे बनाना और लिखना भी जानते थे। उस नगरी के खंडहरों में बाट भी पाये गये हैं, जिससे सिद्ध होता है कि वहाँ व्यापार-विनिमय भी चलता था। वहाँ से जो हथियार निकले हैं वे सब पत्थर और ताँबे के हैं, लोहे का पता वहाँ के लोगों को न था। अन्य कई जानवरों से परिचित होते हुए भी वे घोडे को न जानते थे। कला की रुचि उनमें थी। वह बस्ती अन्दाजन पाँच हजार बरस पुरानी है। उसी तरह के अवशेष हडपा (जिला मन्टगुमरी), नाल (बिलोचिस्तान) आदि स्थानों में भी पाये गये हैं; और उनमें तथा सुमेर अक्काद के अवशेषों में बड़ी समानता है। ऐसा प्रतीत होता है कि पाँच हजार बरस पहले पच्छिम एशिया से सिन्ध काँठे तक एक ही सभ्यता फैली थी। वह सभ्यता किस जाति की थी सो अभी कुछ ठीक नहीं कहा जा सकता। मोहनजो दडो की मुहरों के लेख अभी तक पढे नहीं जा सके, उनके पढ़े जाने पर इस प्रश्न का फैसला हो सकेगा।

---

# दूसरा प्रकरण

## आरम्भिक आर्यों का ज़माना

### अध्याय १

### राजनीतिक वृत्तान्त

§१. पौराणिक ख्यातें—आर्य लोग भारतवर्ष मे कब, कैसे और किधर से आये, इन प्रश्नों पर बडा विवाद है। वे समूचे उत्तर भारत और महाराष्ट्र में कैसे फैल गये इसका व्यौरेवार वृत्तान्त हमारे पुराण नाम के ग्रन्थों से मिलता है। पुराण का अर्थ है पुराना वृत्तान्त या पुरानी ख्यात। शुरू मे उन ग्रन्थों में उन ख्यातों के सिवा और कुछ न था। किन्तु बाद के लोगों ने पुराणो में धर्मोपदेश की और अन्य अनेक विषयों की भी बाते मिला दी, और उन ख्यातों को भी अनेक कल्पित कहानियों में उलझा दिया, जिससे आज उनमें से सच को बीनना कठिन हो गया है। तो भी पिछले चालीस वर्ष में कुछ विद्वानों ने उनकी छानबीन कर उनमे से सच्चे अश को उभारने की कोशिश की है।

हमारे पुराणों में आर्य राज्यो के आरम्भ से ले कर गुप्त राजाओं—जिनकी आगे चर्चा की जायगी—तक की ख्याते हैं। उन ख्यातों में महाभारत का युद्ध बहुत प्रसिद्ध है। उस युद्ध पर आर्य इतिहास का पहला प्रकरण समाप्त होता है। हमारे देश मे बहुत लोगों का विश्वास है कि वह युद्ध आज से पॉच हजार बरस पहले हुआ था, जब कि कलियुग का सवत् चला। किन्तु वह विक्रम-सवत् से ३०४४ बरस पहले चला, यह बात पीछे की बनी हुई है। पुरानी ख्यातों के अनुसार महाभारत का युद्ध विक्रम-सवत् से प्रायः १४ शती पहले हुआ था।

हममें से बहुत से लोग यह माने हुए हैं कि महाभारत युद्ध से भी लाखों बरस पहले हमारा इतिहास शुरू होता है। किन्तु पुराणों की ख्यातों में राजा इक्ष्वाकु के समय से उस युद्ध के समय तक राजाओं की कुल ९४-९५ पीढियॉ लिखी हैं। एक पीढ़ी का समय औसतन १६ बरस मानने से उस इतिहास का आरम्भ महाभारत-युद्ध से प्रायः १५०० बरस पहले होता है। शायद किसी का यह ख्याल हो कि एक पीढ़ी

के लिए १६ वरस बहुत कम समय है, हमारे पुरखा बहुत वरसों तक जिया करते थे। यदि हम मान भी ले कि हमारे पुरखा औसतन १५० वरस जीते थे, तो भी एक राजा जब मरा, उसके बेटे की आयु १२५ या १३० वरस की हुई, फिर वह तो केवल २५ या २० वरस ही राज्य कर सकेगा और उसके मरने पर उसका बेटा भी बूढ़ा हो चुकेगा। इस तरह औसत प्राय. वही निकल आयगा।

§२. मानव और ऐल वश—पुरानी ख्यातो के अनुसार हमारे देश में पहले दो वशों के राजा थे—एक मानव या सूर्य वश के, दूसरे ऐल या चन्द्र वश के। हमारे इतिहास का आरम्भ वे मानव वश के राजा इक्ष्वाकु और ऐल वश के राजा पुरूरवा से करते हैं। राजा पुरूरवा के वश मे चौथी पीढी पर राजा ययाति हुआ। उसके पाँच वेटे थे—यदु, तुर्वसु, द्रुह्यु, अनु और पुरु। इन भाइयो के नाम से अलग-अलग वश चले, यदु के वशज यादव कहलाये, पुरु के पौरव, आदि।

मालिनी नदी और उसका पास-पड़ोस

राजा इक्ष्वाकु के वश में २०वीं पीढी पर राजा मान्धाता और ३२वीं पीढी पर राजा हरिश्चन्द्र हुए। मान्धाता आर्यावर्त्त यानी आर्यों के देश का सब से पहला सम्राट् था। उसके बाद की पुरानी ख्यातों में तीन उपाख्यान या वृत्तान्त सब से अधिक प्रसिद्ध हैं—एक पौरव वश के राजा दुष्यन्त के पुत्र भरत का, दूसरा इक्ष्वाकु वश के राजा दशरथ के पुत्र रामचन्द्र का, और तीसरा महाभारत युद्ध का। भरत का समय पुरूरवा से ४२वीं पीढी पर और रामचन्द्र का इक्ष्वाकु मे ६४वीं पर है।
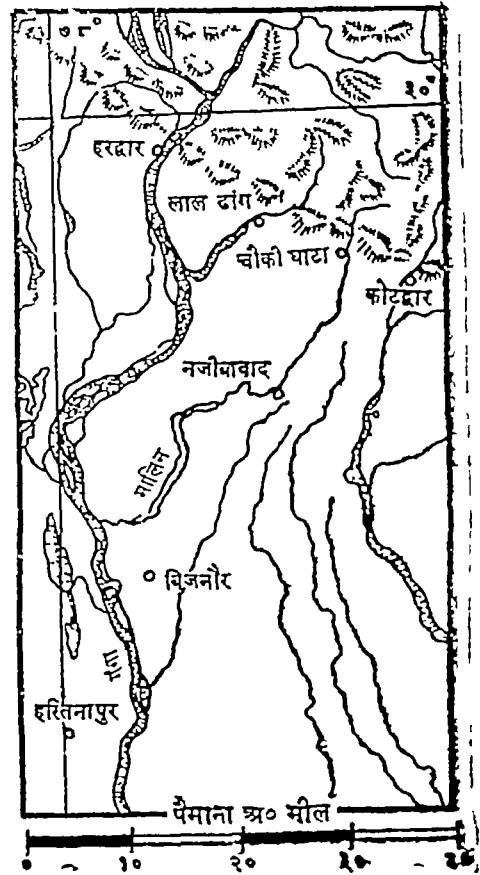
इस हिसाब से भरत हुए अन्दाजन २२५० ई० पू० मे और रामचन्द्र अन्दाजन १९०० ई० पू० मे।

§३ **राजा भरत का वृत्तान्त**—पौरव वश मे राजा दुष्यन्त के पुरखा अपना राज खो चुके थे। दुष्यन्त ने फिर से एक नया राज्य स्थापित किया। वह राज्य गगा-जमना दोआब के उत्तरी हिस्से में प्राय आजकल के मेरठ-बिजनौर जिलो मे था। दुष्यन्त अपनी जवानी के दिनों मे एक बार हिमालय की तराई मे शिकार खेलने गया। दो बीहड़ जगल पार कर उसकी सेना खुले सुनसान मैदान मे जा निकली, जिसके आगे एक मनोरम वन दिखायी दिया। उस वन के परले छोर को मालिनी नदी धोती थी, जिसके किनारे एक ऋषि का आश्रम बसा जान पडता था। मालिनी आजकल मालिन कहलाती है, और गढवाल मे तराई के पहाड़ों से निकल कर नजीबाबाद के पच्छिम बहती हुई गगा मे जा मिलती है। उसके तट पर का आश्रम कण्व ऋषि का था। गढवाल मे चौकीघाटा नामक स्थान के उत्तर आज भी लोग किन्नसोत नाम का एक कुज दिखलाते, और उसे कण्व के आश्रम का स्थान कहते हैं। आश्रम को देख राजा ने सेना वहीं छोड दी और कुछ एक साथियों के साथ आगे बढा। ऋषि के स्थान की तरफ जाते हुए वह अकेला रह गया। वहाँ उसे "सूखे पत्तों मे खिली कली के समान" तापसी वेष मे एक युवती दिखायी पड़ी। कण्व फ़ल लाने को बाहर गये हुए थे और दो दिन बाहर ही रहे। उनकी अनुपस्थिति में

कण्व के आश्रम में दुष्यन्त का आगमन। भीटा (जिला इलाहाबाद) की खुदाई से पाये गये शुग-युग के एक मिट्टी के टिकरे पर अंकित इस सुन्दर चित्र मे शकुन्तला की कहानी अंकित जान पडती है।

[ भा० पु० वि० ]

उनकी पुत्री शकुन्तला ने ही राजा का आतिथ्य किया। दुष्यन्त और शकुन्तला का परस्पर प्रेम और विवाह भी हो गया। कण्व के लौट आने पर शकुन्तला सङ्कोच में बैठी थी, उनका बोझा उतारने को आगे नहीं बढ़ी। सब हाल जान लेने पर पिता ने उसे आशीर्वाद दिया।

शकुन्तला की कोख से एक बड़ा पराक्रमी बालक पैदा हुआ। वही प्रतापी भरत था। बडा होने पर उसने थानेसर के पास की सरस्वती नदी से गगा तक और गगा से अवध की सीमा तक अन्तर्वेद ( ठेठ हिन्दुस्तान ) का समूचा पच्छिमी भाग जीत लिया। वह 'चक्रवर्त्ती' ( यानी जिसके रथ का चक्र समूचे आर्यावर्त्त मे चले ) और 'सम्राट्' कहलाया। भरत के वशज भारत कहलाये, और उन भारतो मे बडे-बडे राजा और ऋषि हुए। हमारे देश का नाम भारत भी शायद भरत के नाम से ही पडा। भरत के वश मे उससे छठी पीढी पर राजा हस्ती हुआ, जिसने हस्तिनापुर नाम की बस्ती बसा कर उसे अपनी राजधानी बनाया। मेरठ जिले के उत्तर-पूरबी कोने में अब भी, गगा के पाँच मील पच्छिम, हस्नापुर नाम के कस्बे मे उस बस्ती के अवशेष हैं।

भरत के राज्य में अवध के पच्छिम का ठेठ हिन्दुस्तान का समूचा इलाका था। किन्तु पीछे हस्तिनापुर के राज्य से उसका पूरबी हिस्सा अलग हो गया। वह पचाल देश कहलाने लगा। उसके भी दो टुकडे हुए। गंगा-जमना दोआब का निचला हिस्सा दक्षिण पञ्चाल कहलाया। उसकी राजधानी काम्पिल्य थी, जिसका नाम आज तक फर्रुखाबाद जिले के काम्पिल गाँव के नाम में जिन्दा है। उसके उत्तर गगा पार उत्तर पचाल देश था। उसकी राजधानी अहिच्छत्रा थी, जिसकी जगह पर आज बरेली जिले का रामनगर क़स्बा है।

§४. **राम दाशरथि**—अयोध्या नगरी में इक्ष्वाकु के वशजों का राज्य चला आता था। अयोध्या के ही नाम से वह इलाका अब अवध कहलाता है। उसका पुराना नाम कोशल था। इक्ष्वाकु के वश में ६१वीं पीढी पर रघु हुआ, रघु के पोते राजा दशरथ हुए। राजा दशरथ के तीन रानियाँ थीं—कौशल्या, कैकेयी और सुमित्रा। "कौशल्या" का अर्थ है कि वह कोशल देश की थीं और "कैकेयी" केकय देश की,—उनके असली नाम हम नहीं जानते। केकय देश उत्तर-पच्छिमी पजाब में चिनाब नदी के पच्छिम नमक की पहाडियों तक था। आज-कल के गुजरात, शाहपुर और जेहलम जिले उसे सूचित करते हैं। उन जिलों के

वीर और सुन्दर स्त्री-पुरुष आज भी प्रसिद्ध हैं। कैकेयी वैसी ही वीर और सुन्दर स्त्री थी। एक बार युद्ध में राजा दशरथ के रथ का पहिया धुरी से निकल गया, तब कैकेयी ने अपना हाथ लगा कर उसे सँभाला। उस आपत्ति मे उनको बचाने के कारण दशरथ ने कैकेयी को मुँह-माँगे दो वर देने का वचन दिया।

राजा दशरथ की रानियों से चार बेटे हुए—कौशल्या से राम, कैकेयी से भरत, सुमित्रा से लक्ष्मण और शत्रुघ्न। कोशल देश की पूरबी सीमा सदानीरा यानी गडक नदी थी। उसके पूरब विदेह देश था, जिसे आजकल तिरहुत कहते हैं। वहाँ भी इक्ष्वाकुओ के सम्बन्धियो की एक शाखा का राज्य बहुत पहले से स्थापित हो चुका था, और उसके सब राजा 'जनक' कहलाते थे। राजा सीरध्वज जनक की बेटी सीता जब युवती हो गयीं, तब उन्होंने उनके लिए स्वयम्वर रचा। एक भारी कड़ा धनुष उन्होंने स्वयम्वर-मडप मे रखवा दिया, और जो कोई राजकुमार उसे उठा कर चढा ले और उसमे बाण तान ले, उसके साथ सीता का विवाह करने की प्रतिज्ञा की। राम उस परीक्षा मे सफल हुए, तब सीता ने उन्हे अपना पति चुना।

राजा दशरथ ने रामचन्द्र को युवराज-तिलक दे बुढापे मे राज-काज से छुट्टी पाने का विचार किया। उनकी प्रजा ने राम का अभिषेक करने की स्वीकृति दे दी। उस समय के आर्यावर्त्त मे नये राजा को जब राज्य मिलता, तब उसका एक बाका-यदा सस्कार होता था, और उसे प्रजा के साथ कई प्रतिज्ञाएँ करनी पड़ती थीं। उसी समय उसका 'अभिषेक' यानी सींचने या शुद्ध करने की रस्म होती थी, जिसके लिए गगा सरस्वती आदि पवित्र नदियों का पानी लाया जाता, और जिस देश का वह राजा होता, उसके एक तालाब का पानी भी उन पानियों मे मिलाया जाता। राम के अभिषेक की सब तैयारी हो चुकी, तो कैकेयी रूठ बैठी। उन्होंने राजा से ये वर माँगे कि भरत को गद्दी दे जाय, और रामचन्द्र को चौदह बरस का बनवास मिले! दशरथ लाचार हो गये।

राम वन को चले गये, सीता और लक्ष्मण भी उनके साथ गये। उधर भरत अपनी ननिहाल केकय देश में थे। उन्हे बुलाया गया तो वे अपनी माता के काम पर बहुत लज्जित हुए। दशरथ भरत के पहुँचने से पहले चल बसे थे। अयोध्या में पहुँच कर भरत अपने भाई के पास वन मे गये, और भाई की आज्ञानुसार उनके प्रतिनिधि की हैसियत से कोशल का राज्य करने लगे।

राम प्रयाग पर गंगा पार कर (आधुनिक बुन्देलखंड में) चित्रकूट पहुँचे। वहाँ से वन ही वन वे गोदावरी के किनारे दंडक वन में पंचवटी नामक स्थान पर गये,

रामचन्द्र अहिल्या का उद्धार करते हुए (?)

देवगढ़ (ज़ि० झाँसी) के गुप्तकालीन मन्दिर का एक मूर्त्त दृश्य

[भा० पु० वि०]

और वहाँ कुछ समय काटा। पंचवटी का स्थान आजकल के नासिक तीर्थ में माना

जाता है। पंचवटी से वे गोदावरी के निचले काँठे मे गये, जहाँ जनस्थान नाम की राक्षसों की एक बस्ती थी। उन्हीं राक्षसों का एक राज्य लका में भी था। रामचन्द्र अपने वनवास के दस बरस बिता चुके थे, जब कि उनकी जनस्थान मे राक्षसों के साथ छेडछाड़ हो गयी, और राक्षसों का राजा दशग्रीव रावण सीता को लका ले भागा। राम सीता की तलाश में दक्खिन-पच्छिम तरफ पम्पा सरोवर पर पहुँचे, जहाँ उनकी सुग्रीव और उसके मन्त्री हनुमान से भेंट हुई। वहाँ किष्किन्धा नाम की वानरों की बस्ती थी, और सुग्रीव उसी के राजा वाली का निर्वासित भाई था। हैदराबाद रियासत मे अनगुडी नामक बस्ती को पुरानी किष्किन्धा की जगह पर माना जाता है। राम ने वाली को मार कर सुग्रीव को वानरों का राजा बनाया। उसकी तथा हनुमान की सहायता से वानरो और ऋक्षो की एक बडी सेना के साथ 'लका' मे प्रवेश किया, और रावण को मार कर सीता को वापिस लिया। 'लका' से सिंहल द्वीप समझा जाता है और वहाँ आजकल की पोलननारुव (पौलस्त्य-नगर) नाम की बस्ती को लका की पुरानी राजधानी बताया जाता है।

काव्य-कल्पना ने रामचन्द्र के वृत्तान्त पर रग चढा दिया है। हमको उसे इतिहास की दृष्टि से देखना चाहिए। प्रामाणिक विद्वानों का कहना है कि 'लका' विन्ध्यमेखला मे अमरकटक की चोटी पर थी, किष्किन्धा, जनस्थान और पचवटी बस्तियाँ उसके उत्तर थीं, तथा 'गोदावरी' भी चित्रकूट और अमरकटक के बीच कोई छोटी नदी थी। किन्तु यदि लका को प्रचलित विश्वास के अनुसार सिंहल द्वीप मे भी मानें तो भी यह स्पष्ट है कि विन्ध्यमेखला मे और उसके दक्खिन रामचन्द्र के समय तक आर्यों की कोई बडी बस्ती न थी। वहाँ राक्षस और वानर लोग रहते थे। कल्पना ने राक्षसों और वानरो के भी विचित्र रग-रूप बना दिये हैं। असल में वे दक्खिन की दो पुरानी मनुष्यजातियाँ थीं। आर्यों के साथ राक्षसों के विवाह-सम्बन्ध भी हो जाया करते थे।

वानर और ऋक्ष भी दक्खिन की कोई पुरानी जातियाँ थीं। जगली जातियाँ प्राय पशुओं, पेड़ों आदि की पूजा किया करती है, और जिस चीज को पूजती हैं, उसके चित्र से अपने देह को आँकतीं है और उसी के नाम से उनका नाम पड़ जाता है। वानर और नाग प्राचीन भारत की ऐसी ही जातियाँ थीं। एक मत यह है कि वानर शब्द ओरॉव नामक द्राविड जाति के नाम का सस्कृत रूपान्तर है। रामचन्द्र की ख्यात से यह सार निकलता है कि उस

समय तक आर्य लोग दक्खिन में न पहुँचे थे, और रामचन्द्र ने पहलेपहल दक्खिन का रास्ता खोला।

चौदह बरस बाद घर लौट कर राम ने कोशल का राज्य सँभाला। उनका शासन इतना समृद्ध और न्यायपूर्ण था कि अब भी जिस शासन में प्रजा बड़ी सुखी हो उसे रामराज्य कहा जाता है। उनके भाई भरत को अपने ननिहाल का केकय देश का राज्य मिला था। केकय देश के साथ लगा हुआ सिन्धु देश था जिस में आजकल के सिन्धसागर दोआब का नमक-पहाड़ियों के दक्खिन का अंश और डेराजात (अर्थात् सिन्ध काँठे के डेरा-इस्माइलखाँ, डेरा-गाजीखाँ जिले) शामिल थे। वह भी भरत के राज्य में था। पच्छिम के ईरानी लोग इसी सिन्धु देश को 'हिन्दु' बोलते थे। बाद में इसी के नाम से उन्होंने हमारे सारे देश का नाम 'हिन्द' डाल दिया। यूनानी और युरोपियन लोग इसी को 'इन्दू' बोलने लगे।

भरत के पुत्र तक्ष और पुष्कर थे। कहते हैं उन्होंने गान्धार देश जीत कर तक्षशिला और पुष्करावती बस्तियाँ बसायी थीं। गान्धार देश केकय के उत्तर-पच्छिम और सिन्धु देश के उत्तर सटा हुआ था। तक्षशिला* रावलपिंडी से २० मील उत्तर-पच्छिम थी, और पुष्करावती काबुल (कुभा) और स्वात (सुवास्तु) नदियों के संगम पर। तक्षशिला का इलाका पूरबी गान्धार था, और पुष्करावती का पच्छिमी गान्धार। आगे चल कर हमको इन प्रदेशों और नगरियों से बहुत वास्ता पड़ेगा।

§५ यादव और कौरव वंश—महाभारत-युद्ध—महाराज राम से पहले यादव वंश की बड़ी वृद्धि हुई थी, और पीछे और भी हुई। यादवों के कई राज्य थे जो *मथुरा से गुजरात तक फैले हुए थे। मथुरा के चौगिर्द का प्रदेश शूरसेन कहलाता* था। जमना के दक्खिन का प्रदेश जिसे आजकल बुन्देलखंड कहते हैं चेदि कहलाता था, वहाँ भी यादव बसे हुए थे। आजकल के मालवा के पच्छिम भाग को अवन्ति और पूरब को दशार्ण देश कहते थे। दशार्ण देश में दशार्णा नदी बहती थी, जो अब भी धसान कहलाती है। अवन्ति और दशार्ण में तथा आजकल के गुजरात-काठियावाड़ में भी यादव लोग बसे थे। अवन्ति की राजधानी उज्जयिनी (उज्जैन) के दक्खिन, नर्मदा नदी में एक टापू है जिसे आजकल मान्धाता कहते हैं। वहाँ

---

* तक्षशिला के खँडहर बहुत दूर-दूर तक फैले हैं। उसकी सबसे पुरानी बस्ती वहाँ थी जहाँ आजकल भीर गाँव है, तथा पुरातत्व-संग्रहालय (आर्कियोलोजिकल म्यूजियम) बना है।

माहिष्मती नाम की यादवों की एक प्रसद्ध नगरी थी। मालवा से दक्खिन जाने वाले रास्ते को वह सब से बडे नाके पर काबू करती थी। उसके दक्खिन विदर्भ देश था जिसे आजकल बराड कहते हैं। वह भी एक यादव राज्य था।

इधर भारत वश में भरत से प्रायः २८ वीं पीढी पर, कुरु नाम का एक राजा हुआ। उसी के नाम से सरस्वती का कॉठा कुरुक्षेत्र कहलाने लगा। कुरु के वशज कौरव कहलाये। उस वश की एक छोटी शाखा मे आगे चल कर वसु नाम का राजा हुआ। वसु ने चेदि, कौशाम्बी और मगध को जीत लिया। आजकल के प्रयाग का इलाका तब वत्स देश कहलाता था। उसकी राजधानी कौशाम्बी प्रयाग से ३२ मील ऊपर जमना किनारे थी, जहॉ अब कोसम का ढहा हुआ शहर और गढ है। मगध दक्खिनी विहार का नाम था, जिसमें अब पटना और गया जिले हैं। वसु के समय से पहले वह निरा जगल था, और उसमे आर्यों की बस्ती नाम को ही थी; किन्तु वसु के पीछे उसके जो वशज मगध में रहे, उन्होने उसे एक बडा राज्य बना दिया। मगध का राजा जरासन्ध और चेदि का राजा शिशुपाल वसु के वशज थे।

कौरव वश की बडी शाखा हस्तिनापुर मे राज्य करती रही। उस वश मे धृतराष्ट्र और पाडु दो भाई हुए। धृतराष्ट्र अन्धा था। उसकी रानी गान्धारी अर्थात् गान्धार देश की राजकुमारी से उसके बहुत से बेटे हुए, जिनमे दुर्योधन, दु.शासन आदि मुख्य थे। पाडु की दो रानियॉ थीं—कुन्ती और 'माद्री'। पजाब मे रावी और चिनाब के बीच मद्र देश था जिसकी राजधानी शाकल (आजकल का स्यालकोट) थी। मद्र की स्त्रियॉ हमारे प्राचीन इतिहास मे अद्वितीय सुन्दरियॉ प्रसिद्ध थीं। पाडु की छोटी रानी मद्र की होने से माद्री कहलायी। विवाह होने से पहले कुन्ती के एक बेटा हो चुका था जिसे उसने शर्म के मारे बहा दिया। एक सूत ने उसे उठा कर पाल लिया था। उसका नाम कर्ण था। कर्ण को दुर्योधन ने शरण दी। पाडु के पॉच बेटे हुए। कुन्ती से युधिष्ठिर, भीम, अर्जुन, और माद्री से नकुल, सहदेव। वे पॉच पाडव कहलाये। धृतराष्ट्र के बेटे कौरव ही कहलाते रहे। कौरवों और पाडवों मे बचपन से बडी डाह थी।

जरासन्ध ने मगध के राज्य को एक साम्राज्य बना लिया। सब पड़ोसी राजा उसे अपना बड़ा मानते थे। चेदि का शिशुपाल उसका मित्र था। मथुरा के अन्धक-यादवों का राजा कस भी, जो जरासन्ध का दामाद था, उसे अपना अधिपति मानता और उसके सहारे प्रजा पर जुल्म करता था। अन्धको ने उसके विरुद्ध अपने पड़ोसी

वृष्णि-यादवों से मदद माँगी। वृष्णियों के नेता वासुदेव कृष्ण थे। कृष्ण ने कंस को मार डाला। किन्तु जरासन्ध का मुकाबला वे लोग न कर सकते थे। अन्धक और वृष्णि द्वारका की तरफ चले गये, जहाँ उनका एक 'संघ' अर्थात् पंचायती राज्य स्थापित हुआ। इस संघ के दो 'संघ-मुख्य' अर्थात् मुखिया (प्रेसिडेंट) एक साथ चुने जाते थे। उग्रसेन एक मुखिया थे और वासुदेव कृष्ण दूसरे।

इधर कौरव-पाडवों की डाह बढ़ती गयी। पाडवों ने दक्खिन पंचाल के राजा द्रुपद यज्ञसेन की लडकी कृष्णा को स्वयम्वर में प्राप्त कर उससे विवाह किया। उन्होंने राज्य में अपना हिस्सा माँगा, पर कौरव उन्हें कुछ न देना चाहते थे। अन्त में यह ठहरा कि जमना पार कुरुक्षेत्र के दक्खिन के जंगल को वे बसा लें। वह जंगल तब खाडव वन कहलाता था। उसे जला कर पाडवों ने वहाँ इन्द्रप्रस्थ नगर बसाया जिसके नाम की याद अब दिल्ली के पुराने किले के पास इन्दरपत बस्ती में है। इन्द्रप्रस्थ की समृद्धि जल्द बढने लगी। पाडव महत्वाकाक्षी थे, चुपचाप न बैठ सके। उनके नये राज्य के दक्खिन सटा हुआ शूरसेन देश था, जहाँ जरासन्ध की तूती बोलती थी। इसी कारण जरासन्ध से उनका वैर और वासुदेव कृष्ण से मैत्री हो गयी। कृष्ण की सहायता से भीम और अर्जुन ने जरासन्ध को मार डाला। उसका साम्राज्य टूट गया। मगध के ठीक पूरब सटा हुआ अंग देश (मुगेर-भागलपुर) पहले उसके अधीन था। अब दुर्योधन की सहायता से कर्ण वहाँ का राजा बना। इधर चेदि का राजा शिशुपाल अपने पडोसियों में प्रबल हो गया।

आर्यों के महत्वाकाक्षी राजा दिग्विजय करके राजसूय या अश्वमेध यज्ञ किया करते थे। पाडवों ने भी राजसूय किया। कई पडोसी राजाओं ने खुशी से, कई एक ने डर और दबाव से, उनकी सत्ता मानी और उनके यज्ञ में भाग लिया। धृतराष्ट्र के बेटों को अपने भाइयों के विजयोत्सव में आना पडा, पर उनका दिल जला जाता था। जरासन्ध के मित्र शिशुपाल को कृष्ण से विशेष चिढ थी। उनकी स्पर्धा यहाँ तक बढी कि उसी यज्ञ में कृष्ण ने उसे मार डाला। यों पाडवों के एक और पडोसी प्रतिद्वन्द्वी का अन्त हुआ।

कौरवों के मामा गान्धार देश के शकुनि ने उन्हें पाडवों के पराभव का एक उपाय सुझाया। उस युग के आर्यों में जुआ खेलने का बडा व्यसन था। जुए की चिनौती से मुँह मोड़ना वैसा ही लज्जास्पद समझा जाता था जैसा युद्ध से। शकुनि और दुर्योधन ने पांडवों को जुए का निमन्त्रण दिया। उसमें वे अपना राज्य तक हार

बैठे, और उन्हें बारह बरस बनवास और एक बरस के अज्ञात वास का

दंड मिला।
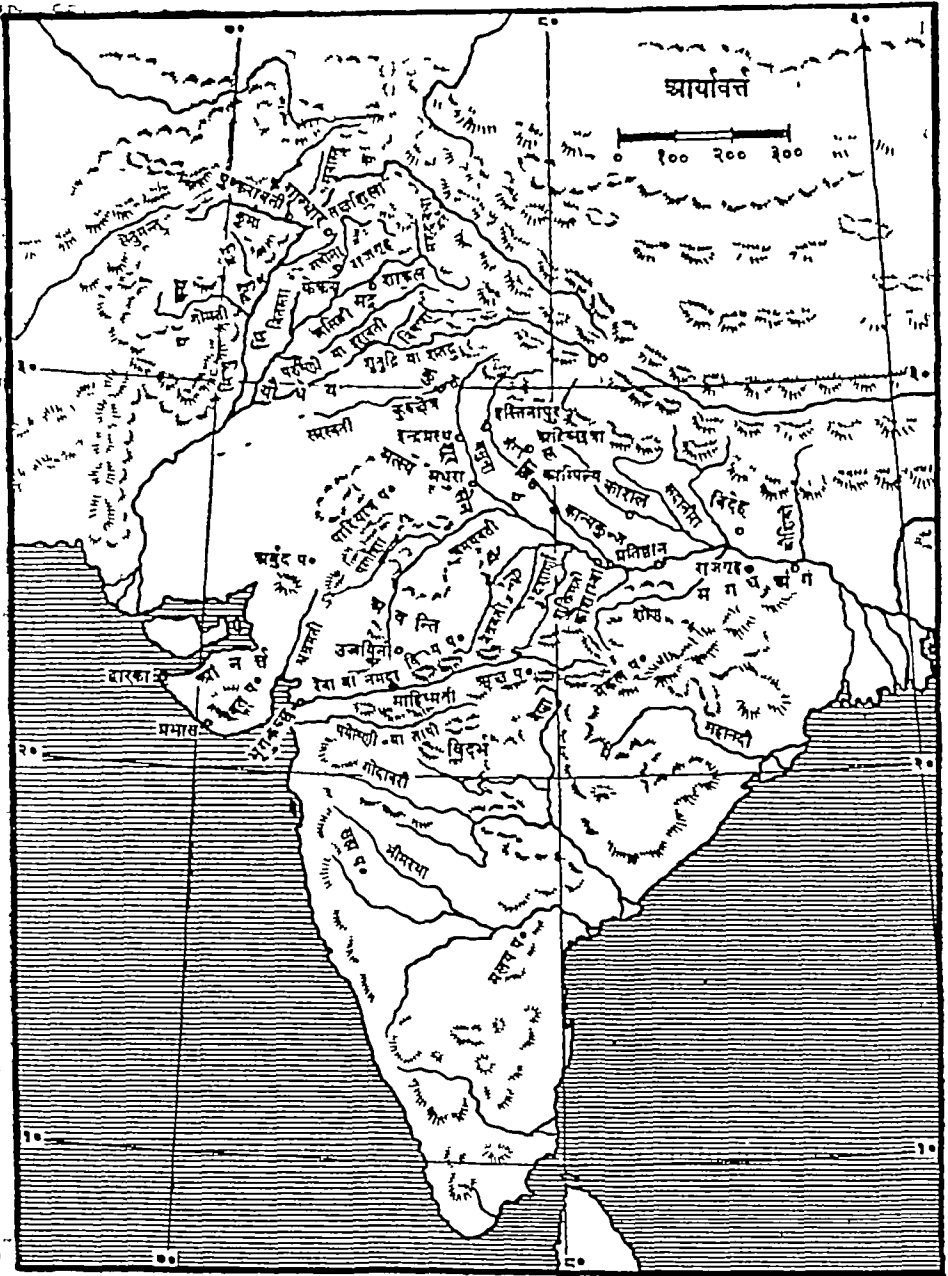
उनके पीछे दुर्योधन ने अपना पक्ष दृढ किया । पाडव तेरहवें वरस अपने राज्य के पड़ोस मे मत्स्य देश ( आजकल के अलवर ) के राजा विराट् के यहाँ आ गये। उनका तेरहवाँ वरस बीतने को था कि कौरवों ने अपने पडोसी त्रिगर्त्त देश ( जलन्धर-हुशियारपुर-कागडा जिलों )के राजा के साथ मिल कर मत्स्यों पर धावा किया और उनके डगर लूट ले चले। पाडवों की सहायता से विराट् ने उन्हे हराया।

उसके बाद पाडवो ने अपना राज्य वापिस मॉगा, पर दुर्योधन ने कहा—मैं युद्ध के बिना सुई की नोक बराबर भूमि भी न दूँगा। दोनो पक्षों में युद्ध ठन गया और वह घरेलू आग भभक कर भारत के सब राज्यों मे फैल गयी। त्रिगर्त्त देश का राजा दुर्योधन का मित्र था, और गान्धार का शकुनि उसका मामा था। इनके अतिरिक्त सिन्धु देश का राजा जयद्रथ भी उसका बहनोई था। इन तीनों के दबाव से पजाब के प्राय सभी राज्य कौरवों की तरफ हो गये। इसी तरह कर्ण के दबाव से पूरब के राज्य भी उनमे आ मिले। ठेठ हिन्दुस्तान और गुजरात के राज्य दोनों तरफ बँटे थे। पाडवो की सेनाऍ मत्स्य की राजधानी उपप्लव्य पर जुटने लगी, कौरवों की सेनाऍ पजाब के पूरबी छोर और हस्तिनापुर पर जमा होने लगी। सन्धि की बातचीत विफल होने पर पाडव सेना उनके बीच उत्तर को बढी, और कुरुक्षेत्र पर दोनों तरफ के प्रवाह आ टकराये। अठारह दिन के घमासान युद्ध के बाद पाडवों की जीत हुई। वे कुरु देश के राजा और आर्यावर्त्त के सम्राट् हुए।

रामायण की ख्यात से यदि हम महाभारत की ख्यात की तुलना करे तो यह स्पष्ट होता है कि इस बीच आर्यों की बस्तियाँ काफी फैल गयी थीं। वे पूरब की तरफ मगध और अग तक, और दक्खिन की तरफ माहिष्मती और विदर्भ तक जा पहुँची थीं। यो तो महाभारत मे और आगे पूरब और दक्खिन के राजाओं के भी नाम दिये हैं, पर छानबीन से पाया जाता है कि वे पीछे जोडे गये हैं। विदर्भ और अग इस युद्ध के समय तक आर्यावर्त्त की अन्तिम सीमाऍ थीं।

# अध्याय २

## वैदिक आर्यों का जीवन

§१ वेद—आर्यावर्त्त के आर्यों में वेद नाम का साहित्य प्रचलित था। वेद का अर्थ है ज्ञान। हमारे आर्य्य पुरखों का वह वेद संसार भर में सब से पुराना साहित्य है। वेद का बड़ा अंश कविता में है। उसमें जो एक-एक साधारण पद्य होता है उसे ऋच् या ऋचा कहते हैं। जो ऋचाएँ गाने लायक हैं, अर्थात् जो गीतियाँ हैं, उन्हें साम कहते हैं। वेद का कुछ अंश गद्य भी है, और उस गद्य के एक-एक सन्दर्भ को यजुष् कहते हैं। ऋचाओं, सामों और यजुषों को मन्त्र भी कहते हैं।

प्रत्येक वेदमन्त्र अर्थात् प्रत्येक ऋचा साम और यजुष् के साथ किसी न किसी ऋषि का नाम जुड़ा हुआ है। अधिकांश हिन्दू वेदों को अपौरुषेय मानते हैं। उनका कहना है कि वेद अनादि हैं, और ऋषियो के द्वारा परब्रह्म की प्रेरणा से प्रकट हुए हैं। ऋषियों ने वेदों का दर्शन पाया था, वे 'मन्त्रद्रष्टा' थे। आधुनिक और कुछ प्राचीन विवेचक वेद-मन्त्रों को बनाने का श्रेय ऋषियों को ही देते हैं। उनका कहना है कि ऋषि वे प्रतिभाशाली कवि थे, जिन्होंने ऋचाएँ ( और साम तथा यजुष् भी ) रचीं।

विश्वामित्र ऋषि—दूसरी शती ई० पू० के औदुम्बर गण के एक सिक्के पर से

आर्य्य लोग निरे योद्धा ही नहीं थे। उनमें अपने चारों तरफ की वस्तुओं को ध्यान से देखने और उनके विषय में सोचने-विचारने की उत्कट प्रवृत्ति थी। अपने विचारों को उन्होंने सुन्दर भाषा में प्रकट किया है। सब से पहले प्रसिद्ध ऋषि विश्वामित्र थे जो इक्ष्वाकु से २६ वीं पीढ़ी के समय अर्थात् अन्दाजन २४७५ ई० पू० में थे। ऋषियों का सिलसिला तभी शुरू हुआ और प्राय. सात सौ बरस चला।

ऋचाएँ, साम और यजुष् पहले फुटकर रूप में थे। भिन्न-भिन्न ऋषियों के परिवारों या शिष्य-परम्पराओं में धीरे-धीरे उनका संग्रह होता गया। इस प्रकार उनकी संहिताएँ बनने लगीं। संहिता का अर्थ है संकलन या संग्रह। महाभारत युद्ध के समय कृष्ण द्वैपायन मुनि हुए। उन्होंने अन्तिम बार अपने समय तक के समूचे 'वेद' की अर्थात् समूचे ज्ञान की बाकायदा संहिताएँ बना दीं, जो आज तक चली

आती हैं। उन्होंने कुल ऋचाओं की एक सहिता बनायी जिसमें उन ऋचाओं को छाँट कर ऋषि-वार और विषय-वार विभाग कर दिया। इसी तरह सामो और यजुषों की अलग-अलग सहिताएँ कर दीं।

ऋक्सहिता, सामसहिता और यजु.सहिता मिल कर "त्रयी" कहलायी। त्रयी हमारे साहित्य का सब से पुराना और पवित्र सग्रह है। ऋक्-सहिता मे कुल १०१७ सूक्त या कविताएँ हैं जो दस मडलों में बँटी हैं। 'सूक्त' का अर्थ है अच्छी उक्ति, सुभाषित। प्रत्येक सूक्त में ३-४ से ले कर ५०-१०० तक ऋचाएँ हैं। साम-सहिता, ऋक्सहिता की करीब तिहाई है, और उसमें बहुत से साम ऐसे हैं जो ऋक्सहिता मे आ चुके हैं। यजु सहिता और भी छोटी है, और वह कुल ४० अध्यायों मे बँटी है। दूसरे प्रकार के कुछ विविध मन्त्रों को कृष्ण द्वैपायन ने त्रयी से अलग अथर्वसहिता में सगृहीत किया, और फिर उसी तरह सूतों की ख्यातों की भी एक सहिता बनायी, जिसका नाम हुआ पुराणसहिता। त्रयी के साथ अथर्ववेद और पुराणवेद (अथवा इतिहासवेद) को मिला कर पाँच वेद कहा गया। वेद अर्थात् ज्ञानकोश का इस प्रकार बँटवारा करने के कारण कृष्ण द्वैपायन वेदव्यास अर्थात् वेद-विभाजक कहलाये।

आजकल जिसे हम उर्दू-हिन्दी की खड़ी बोली कहते हैं, वह उसी इलाके की ठेठ बोली है, जहाँ हस्तिनापुर और उत्तर पचाल के प्राचीन राज्य थे। ऋग्वेद भी उसी इलाके की पुरानी भाषा में है। अधिकतर ऋषि भरत वश के और उत्तर पचाल तथा हस्तिनापुर राज्यो के ही थे।

§२ **वैदिक समाज की बनावट**—आर्य लोग खास कर पशुपालक, कृषक और योद्धा थे। वे ऐसे छोटे-छोटे समूहों में रहते थे जो परिवार के नमूने पर बने हुए थे। उन समूहों को वे 'जन' कहते थे, और जन के सब आदमी 'सजात' यानी एक ही वश के कहे जाते थे। एक जन के सब सजात मिला कर 'विश.' अर्थात् प्रजा कहलाते। कृषक होने के कारण प्रत्येक जन की विशः किसी न किसी इलाके में प्राय' बस चुकी थीं, किन्तु कोई-कोई विश. 'अनवस्थित' अर्थात् खानाबदोश भी थीं। प्रत्येक जन की कई खाँपें या टुकड़ियाँ होतीं जो 'ग्राम' कहलाती थीं। ग्राम शब्द का असल अर्थ है जत्था या समुदाय। बाद में एक-एक ग्राम जहाँ बस गया, वह जमीन भी ग्राम कहलाने लगी। कई घूमते-फिरते ग्रामों का हाल भी मिलता है। ग्राम का नेता 'ग्रामणी' कहलाता था। लड़ाई के लिए जन के सब लोग ग्रामवार जमा होते थे, उनका वह ग्रामवार जमाव 'सग्राम'

कहलाता था। उसी से 'सग्राम' का अर्थ युद्ध हो गया। सग्राम में प्रत्येक जवान अपने शस्त्रास्त्र ले कर और कवच पहन कर आता था। साधारण लोग पैदल और नेता लोग रथों में आते थे। रथ प्रायः बैल के चमडे से मढे होते थे। सग्राम में घुडसवारों का उल्लेख नहीं मिलता। धनुष, भाला, बर्छा, कृपाण और फरसा मुख्य शस्त्र थे। वाण या शर प्रायः सरकडे के होते थे और उनकी अनी, सींग हड्डी या धातु की।

युद्ध आर्यों के जनों मे परस्पर भी होते थे और 'दासों' अर्थात् पुराने निवासियों के साथ भी। 'दास' आर्य्यों से भिन्न रग के, काले, होते थे और उनकी नाक नुकीली और उभरी न होती थी। इस कारण आर्य्य लोग उन्हे 'अनासः' अर्थात् विना नाक के कहते थे।

एक-एक ग्राम का मुखिया जैसे ग्रामणी कहलाता था, वैसे ही सारे जन का राजा। वह जन या विशः का राजा होता था न कि भूमि का। उसका राज्य 'जान-राज्य' अर्थात् जन का मुखियापन कहलाता था और वह एक किस्म का "ज्यैष्ठ्य" यानी जेठापन या नेतृत्त्व था, न कि मिलकियत।

§३. **वैदिक आर्यों का आर्थिक जीवन**—पशुपालन और कृषि आर्यों की मुख्य जीविकाएँ थी। कृषि के लिए सिंचाई भी होती थी। खादों का प्रयोग शायद न होता था, उस समय बागवानी भी शुरू न हुई थी। खेती की उपज मुख्य कर अनाज थे। आर्य लोग कपास को न जानते थे। उस समय ससार की दूसरी जातियों को भी प्राय. उसका पता न था। लोगों का धन मुख्यतः उनके पशुओं के रेवड और दास-दासियाँ होती थीं। भूमि भी पारिवारिक सम्पत्ति मे शामिल होती थी, पर उसके खरीदने-बेचने का रिवाज नही के बराबर था। दाय-भाग से, जगल साफ करने से या नये देश खोजने या जीतने से नयी भूमि पायी जा सकती थी। युद्ध मे जीती भूमि राजा की न होती, वह सारे जन मे बँट जाती थी। जगम सम्पत्ति का क्रय-विक्रय काफी था। गाय तो प्रायः सिक्के का काम देती थी, चीजों के दाम गौवौ मे गिने जाते थे।

निष्क नाम का एक सोने का सिक्का भी चलता था, पर शुरू मे तो वह भूषण था और बाद मे प्रायः दान या खडनी ( ransom ) देने में उसका अधिक जिक्र आता है, व्यापार मे नहीं। ऋण देने-लेने की प्रथा थी, और प्रायः जुए मे हारना ऋण लेने का कारण होता था। ऋण न चुकाने से दास बनना पडता था। दास-दासियाँ जरूर थीं, पर लोग उनपर निर्भर न थे। बढई या रथकार का काम बहुत ऊँचा माना जाता था क्योंकि युद्ध और खेती के लिए रथ, हल

और गाड़ियाँ वही बनाता था। उसी तरह लोहार (कर्म्मार) की बड़ी हैसियत थी, पर कई विद्वानों का कहना है कि वह ताँबे के ही हथियार बनाता था, अर्थात् आर्य लोग तब लोहे को न जानते थे। चमडा रगने और ऊन, सन, क्षौम (अलसी के रेशे) आदि का कपड़ा बुनने के काम भी ऊँचे गिने जाते थे। स्त्रियाँ चटाइयाँ भी बुनतीं थीं। प्रत्येक ग्राम में कृषकों के साथ सूत, रथकार, कर्म्मार (लोहार) आदि भी होते थे, जिनकी हैसियत साधारण लोगो से ऊँची—प्राय. ग्रामणी के बराबर—मानी जाती थी। थोडा व्यापार भी था। नदियो में तो नावे खूब चलती ही थीं, शायद वे ईरान की खाडी में भी किनारे के साथ-साथ जाती थीं।

§४ **राज्य-संस्था**—राजनीतिक रूप से सगठित जन को "राष्ट्र" कहते थे। राजा राष्ट्र का मुखिया होता था। वह मनमानी न कर सकता था। विश. अर्थात् प्रजा राजा का "वरण" करती थी। वरण का यह अर्थ था कि या तो वे उसे चुनती थीं, या यदि वह पिछले राजा का बेटा हो तो उसके राजा बनने की स्वीकृति देती थीं। वरण होने पर राज्याभिषेक होता था, जिसमे राजा विश. के साथ 'प्रतिज्ञा' अर्थात् इकरार करता था, उसे राज्य की थाली सौंपी जाती और किरीट (मुकुट) पहनाया जाता था। वरण उसकी आयु भर के लिए होता था, पर यदि वह 'प्रतिज्ञा' तोड दे, तो उसे निकाला जा सकता था। निर्वासित राजा का कभी-कभी फिर भी वरण हो जाता था।

राजा एक 'समिति' की सहायता से राज्य करता था। राज्य की असल बागडोर उसी समिति के हाथ में रहती थी। समिति समूची विश की सस्था थी। उसमे कौन-कौन जाते थे सो कहना कठिन है। ग्रामणी, सूत, रथकार और कर्म्मार उसमें अवश्य शामिल होते थे। राजा का वरण, निर्वासन, पुनर्वरण सब समिति करती थी। उसका एक 'पति' या 'ईशान' होता था। राजा भी समिति में जाता था। समिति के अतिरिक्त 'सभा' नाम की एक सस्था भी थी, जो शायद समिति से छोटी थी। सभा ही राष्ट्र का मुख्य न्यायालय थी। प्रत्येक ग्राम में भी अपनी-अपनी सभा होती थी। उन सभाओं में जवान लोग भी भाग लेते थे। आवश्यक कार्य्यों के बाद सभा में विनोद की बातें भी होती थीं और तब वह गोष्ठी का काम देती थी। समिति के सदस्य 'राजकृत' अर्थात् राजा के कर्ता-धर्ता होते थे। वे राजा भी कहलाते थे। कई राष्ट्र ऐसे भी थे जिनमें एक राजा न होता था, समिति के सदस्य मिल कर ही राज्य करते थे।

§५.धर्म-कर्म—आर्य्यों का धर्म-कर्म आरम्भ में बहुत सरल था। पीछे पुरोहितों की चेष्टाओं से कुछ पेचीदा हो गया। देव-पूजा और पितृ-पूजा उसके मुख्य चिन्ह थे। वह पूजा यज्ञ मे आहुति देने से होती थी। यज्ञों के लिए प्रत्येक गृहस्थ के घर में सदा अग्नि उपस्थित रहता था। नित्य की पूजा मे देवताओ की मूर्त्तियाँ तब नहीं थीं। इन्द्र मुख्य देवता था। प्रकृति की बडी-बडी शक्तियो मे आर्य्य लोग दैवी अभिव्यक्ति देखते थे, और उन्ही शक्तियो की उन्होंने भिन्न-भिन्न देवताओ के रूप मे कल्पना की थी। उदाहरण के लिए द्यौ अर्थात् आकाश एक देवता है; उसी तरह पृथिवी भी, और 'द्यावापृथिवी' का जोडा प्राय इकट्ठा गिना जाता है। वरुण भी द्यौ का एक रूप है, उसकी ज्योति का सूचक। वह धर्मपति है; लोगों के अन्तरात्मा की बात जानता है। उसके हाथ मे पाश रहता है। वही नदियों और समुद्र का भी देवता है। द्यावापृथिवी और वरुण की अपेक्षा इन्द्र की महिमा बहुत बडी है। वैदिक देवताओं मे वही मुख्य है। वह वृष्टि का अधिष्ठाता है, और उसके हाथ मे बिजली का वज्र है जिससे वह वृत्र अर्थात् अनावृष्टि के दैत्य को मारता है।

सूर्य के भिन्न-भिन्न गुणों से कई देवताओं की कल्पना हुई है। प्रभात समय 'उषा' एक सुन्दरी के रूप मे प्रकट होती है, उसका प्रेमी सूर्य उसके पीछे-पीछे आता है। उदय होता हुआ सूर्य्य ही 'मित्र' है, वह मैत्रीपूर्ण देवता मनुष्यों को नींद से उठाता और काम मे जुटाता है। सूर्य पूरा उदय हो कर अपनी किरणों से जब जगत् को जीवन देता है, तब वही 'सविता' है। जैसे मित्र उसके तेज का सूचक है और सविता जीवन-शक्ति का, वैसे ही पूषा उसकी उत्पादक शक्ति का और विष्णु उसकी क्षिप्र गति का, इत्यादि। अग्नि और सोम की महिमा केवल इन्द्र से कम है। अग्नि के तीन रूप हैं, सूर्य्य, विद्युत् और अग्नि। 'सोम' वनस्पति भी है, और चन्द्रमा भी। प्रकृति में जो कुछ भयकर और घातक है, उस सब की जड़ मे 'रुद्र' है। किन्तु रुद्र भी शान्त होने पर शिव अर्थात् मगल रूप धारण कर लेता है। आर्य्यों की देव-कल्पना मधुर और सौम्य थी, घिनौने, डरावने या अश्लील देवताओं को उसमें जगह न थी। उसमे कवि के स्निग्ध हृदय और अन्तर्दृष्टि की झलक है।

देवताओं की तृप्ति यज्ञ में आहुति या बलि देने से होती थी। दूध, घी, अनाज, मास और सोमरस (एक लता का रस) इन सभी वस्तुओं की आहुति दी जाती थी। आहुतियों के साथ ऋचाएँ पढी जाती थीं और साम गाये जाते थे। ऐसी ख्यात है कि राजा वसु के समय ऋषियों का एक सम्प्रदाय उठा,

जिसका यह मत था कि यज्ञ मे मास के वजाय अन्न की ही आहुति दी जाय। वह सम्प्रदाय भक्ति पर भी जोर देता था। वाद में यज्ञों का आडम्बर वहुत वढ गया, और धनी लोग वडे-वडे यज्ञ पुरोहितों से कराने लगे। किन्तु साधारण आर्य अग्नि में अपनी दैनिक आहुति स्वयम् दे लेता था। देवों के अतिरिक्त वह पितरों का तर्पण भी स्वयम् करता था।

§६ **सामाजिक जीवन, खान-पान; वेष भूषा, विनोद आदि**—आर्यों का सामाजिक जीवन भी उनके जीवन की अन्य बातों की तरह सरल था। राजा भरत के समय दीर्घतमा नाम का एक ऋषि था। कहते हैं उससे पहले विवाह-सस्था प्राय नहीं थी, उसने उसे स्थापित किया। तब से विवाह एक पवित्र और स्थायी सम्बन्ध माना जाने लगा। युवक-युवती को अपना साथी या सगिनी चुनने की पूरी स्वतन्त्रता रहती थी। विनोद के कार्यों और स्थानों में उन्हें परस्पर 'अभ्ययन' और 'अभिमनन' करने (मिलने, पीछे लगने, मनाने, रिझाने) के यथेष्ट अवसर मिलते थे। राजपुत्रियों के स्वयम्वर होते थे। विधवाएँ फिर विवाह कर लेती थीं। स्त्रियाँ हर काम में पुरुषों का साथ देती थीं। वेद के ऋषियों में भी लोपामुद्रा आदि अनेक स्त्रियों की गिनती है।

समाज में ऊँचनीच कुछ ज़रूर थी, पर विशेष भेद न थे। रथी और महारथी की हैसियत साधारण योद्धा से कुछ ऊँची थी। तो भी रथियों के वे 'क्षत्रिय' परिवार साधारण विश का ही अश थे। आर्य और दास का बड़ा भेद था, पर आर्यों और दासों में भी परस्पर सम्बन्ध हो ही जाते थे।

खान-पान वहुत सादा था। दूध, दही, घी, अनाज, मास मुख्य भोजन थे। वेष भी वहुत सादा था। ऊपर नीचे के लिए उत्तरीय और अधोवस्त्र होता था। उष्णीष अर्थात् पगडी का रिवाज था, जिसे स्त्रियाँ भी पहनती थीं। पुरुष स्त्री दोनों सोने के हार, कुडल, केयूर आदि पहनते थे। पुरुष प्राय. केशों का जूडा वनाते या काकपक्ष (कानो पर लटकते केश) रखते थे। स्त्रियाँ वेणी वनाती थी। मिलजुल कर विनोद और व्यायाम खूब होते थे। रथों और वाजि यानी घोडे की दौड़ का विशेष प्रचार था। उस पर वाजी भी लगाते थे। जुआ खेलने का व्यसन काफी था। सगीत, वाद्य और नृत्य का शौक भी वहुत था। आर्य लोग सत्य का वहुत मान करते थे और झूठ से उन्हें वड़ी चिढ थी। जब छोटा वडे के सामने जाता तो अपना नाम ले कर प्रणाम करता था। वडों के नाम का जिक्र उनके गोत्र से किया जाता और वोलने में अदव-कायदे की वडी पावन्दी रक्खी जाती थी।

# तीसरा प्रकरण

# महाजनपदों का युग

[ लगभग १४२५—३६६ ई० पू० ]

## अध्याय १

### राजनीतिक वृत्तान्त

§१ जनपदों का उदय—महाभारत युद्ध के बाद हस्तिनापुर का भारत राजवंश वहाँ से उठ कर वत्सदेश की राजधानी कौशाम्बी मे चला गया। आर्य लोग अब गोदावरी के काँठे में विदर्भ ( बराड ) से और आगे बढ़ने लगे। वहाँ उनके दो नये राज्य मूलक और अश्मक स्थापित हुए। मूलक की राजधानी प्रतिष्ठान (आधुनिक पैठन ) उपरले गोदावरी काठे मे थी, अश्मक और नीचे था। उसके पूरब कलिंग ( उड़ीसा ) था। विदर्भ, मूलक और अश्मक मिल कर बाद का महाराष्ट्र बना। मूलक और अश्मक के परे आन्ध्र, शबर और मूचिक ( मूषिक ) नाम की अनार्य जातियाँ रहती थीं, जिनसे आर्यों का सम्पर्क था। आन्ध्र लोग तब आजकल के आन्ध्र देश ( तेलगाना ) के उत्तरी छोर पर तेल नदी पर रहते थे। बस्तर की शबरी और हैदराबाद की मूसी नदी शबरों और मूचिकों की याद दिलाती हैं।

इसी समय आर्य राज्यों के अन्दर ही अन्दर एक भारी परिवर्तन हुआ। पहले जो राज्य जनों के थे, अब वे जनपदों के हो गये। जिन प्रदेशों पर जन बस गये थे, वही उनके जनपद कहलाये। जैसे कुरु जन जहाँ बसा वह कुरु जनपद और मद्र जन जहाँ बसा वह मद्र जनपद हुआ। अब 'जान-राज्य' के बजाय 'जानपद राज्य' होने लगे। मद्र जनपद मे अब जो कोई बस जाता वह मद्रक कहलाता और मद्र राज्य की प्रजा हो सकता था। यही बात और जनपदों मे भी थी। उन जनपदों में अब शिल्प-व्यापार भी बढने लगा, जिससे नगरियाँ स्थापित होने लगीं।

§२. सोलह महाजनपद—कुछ समय बाद कुछ जनपदों ने दूसरों का प्रदेश जीत कर और कुछ ने आपस में मिल कर अपनी भूमि बहुत बढा ली। वे

महाजनपद कहलाये। इन महाजनपदों का आरम्भ-काल आठवीं-सातवीं शती ईसा पूर्व का है, वे पाँचवीं शती ईसा पूर्व तक जारी रहे। इनका हाल हम विशेष कर बौद्ध और जैन ग्रन्थों से जानते हैं। भगवान् बुद्ध और महावीर स्वामी ने छठी शती ई० पू० में प्रकट हो कर धार्मिक सुधार की एक प्रबल लहर चला दी। उस लहर की प्रेरणा से बहुत से नये ग्रन्थ भी रचे गये, जिनकी चर्चा हम आगे करेंगे। इन ग्रन्थों में सोलह महाजनपदों के नाम बहुत प्रसिद्ध हैं, यहाँ तक कि सोलह महाजनपद उस समय में एक मुहावरा सा बन गया था। उन सोलह में आठ जोड़ियाँ यों थीं—(१) अंग-मगध, (२) काशी-कोशल, (३) वृजि-मल्ल, (४) चेदि-वत्स, (५) कुरु-पंचाल, (६) मत्स्य-शूरसेन, (७) अश्मक-अवन्ति, (८) गान्धार-काम्बोज।

यह गिनती पूरब से शुरू होती है। अंग की राजधानी चम्पा या मालिनी उस समय भारत की बड़ी समृद्ध नगरियों में से थी। भागलपुर शहर का पच्छिमी हिस्सा चम्पानगर, जो चम्पा नाला या चम्पा नदी के किनारे बसा है, ठीक उसी जगह है। मगध की राजधानी राजगृह थी। वहाँ उस समय काशी से निकले शिशुनाक वंश के राजा राज्य करते थे।

काशी राष्ट्र की राजधानी वाराणसी भारतवर्ष भर में सब से समृद्ध और शिल्प व्यापार का सबसे बढ़ा-चढ़ा केन्द्र था। कोशल का साकेत (अयोध्या) नगर भी प्रसिद्ध था, पर इस युग में कोशल की राजधानी अचिरावती (राप्ती) नदी के तट पर श्रावस्ती थी। उसके खँडहर अब गोंडा-बहराइच जिलों की सीमा पर सहेठ-महेठ गाँवों में है।

कोशल महाजनपद का एक आहत सिक्का (दुर्गाप्रसाद-संग्रह में)

मल्ल और वृजि-राष्ट्र क्रमशः कोशल के पूरब थे। ये दोनों संघ-राष्ट्र अर्थात् पंचायती राज्य थे। मल्लों का संघ आधुनिक गोरखपुर जिले में था। पावा और कुशिनार उनके नगर थे। कुशिनार (कुशिनगर) का अवशेष अब कसिया है।

वृजि-संघ में दो जातियाँ शामिल थीं—विदेह और लिच्छवि। विदेह राष्ट्र में जनकों का पुराना राजवंश खतम हो कर पंचायती राज्य स्थापित हो चुका था। वृजि-संघ की राजधानी वैशाली थी, जिसके खँडहर अब मुज़फ्फरपुर ज़िले के

देवताओं की सभा 'सुधर्मा'—भारहुत स्तूप ( शुंग-युग ) का एक मूर्त्त दृश्य
[ इंडियन म्यू०, कलकत्ता, भा० पु०-वि० ]

वसाढ नामक बडे गाँव मे है। उसके चोगिर्द तिहरा परकोटा था, जिसमें जगह-जगह द्वार और गोपुर ( पहरा देने के मीनार ) बने थे। वह बडी सुन्दर नगरी थी। कहते हैं वृजियों के ७७०७ राजा होते थे जो सब एक परिषद् मे राजकीय मामलों पर विचार करते थे। भगवान् बुद्ध वैशाली नगरी के और वृजि-सघ के सगठन को बहुत पसन्द करते थे। एक बार उन्होंने अपने शिष्यों को वृजियों की परिषद् दिखा कर कहा था, "तुम मे से जिन्होंने देवताओं की परिषद् न देखी हो वे इस परिषद् को देखें!" वैशाली नगरी के बीच एक पोखरनी थी, जिसमे उन ७७०७ राजाओं और उनकी रानियों का अभिषेक होता था। इसपर लोहे का जॅगला और जाली इसलिए लगी रहती थी कि दूसरा कोई न नहा सके।

वत्स देश काशी के पच्छिम था, और चेदि ( आजकल का बुन्देलखड ) उसके पच्छिम और जमना के दक्खिन था। वत्स की राजधानी कौशाम्बी मे बुद्ध के समय राजा उदयन राज करता था। भारत वश का होने के कारण उसका बडा आदर था। महाकवि भास ने अपने एक नाटक मे कहलाया है—'यह वह भारत वश है जिसका नाम आम्नाय ( वेदों ) मे प्रविष्ट है।'

कुरु और पचाल पुराने राष्ट्र थे, जिनकी अब कोई विशेष राजनीतिक शक्ति न रही थी। पर इस युग मे भी "कुरुधर्म" यानी कुरु देश के लोगों का चरित्र सारे भारतवर्ष के लिए आदर्श माना जाता था। मत्स्य और शूरसेन का भी विशेष राजनीतिक महत्त्व न रह गया था।

अवन्ति बडा राज्य था, उसकी राजधानी उज्जयिनी व्यापार की बडी मडी थी। दक्खिनी रास्ते का नाका माहिष्मती भी उसी के अधीन था। भरुकच्छ ( भरुच ) आदि पच्छिमी बन्दरगाहों और दक्खिन से आने वाले व्यापार-पथ उज्जयिनी पर मिलते थे, वहाँ से एक रास्ता विदिशा ( भेलसा ), कौशाम्बी हो कर काशी और श्रावस्ती की तरफ, और दूसरा मथुरा हो कर कुरु और गान्धार की तरफ, चला जाता था। अश्मक की सीमा अवन्ति से लगती थी, क्योंकि बीच का मूलक राष्ट्र अब उसी में शामिल था।

गान्धार देश की राजधानी तक्षशिला इस युग मे विद्या का सब से बड़ा केन्द्र था। वहाँ बडे-बडे "दिशाप्रमुख" अर्थात् जगत्प्रसिद्ध आचार्य रहते थे, और "तीन वेद तथा अठारह विद्याएँ" पढायी जाती थीं। आयुर्वेद के प्रसिद्ध आचार्य आत्रेयों का गुरुकुल तक्षशिला में ही था। काशी, कोशल, मगध आदि देशों के

भारतवर्ष
महाजनपद युग में
० १०० २०० ३००
पुष्करावती
तक्षशिला
शाकल
शिविपुर
रोरुक
इन्द्रप्रस्थ
मथुरा
मत्स्य
श्रावस्ती
कपिलवस्तु
कुशिनार
वैशाली
काशी
कौशाम्बी
पाटलिपुत्र
चम्पा
उज्जयिनी
विदिशा
भरुकच्छ
माहिष्मती
ताम्रलिप्ति
दन्तपुर
शूर्पारक
प्रतिष्ठान
ताम्रपर्णी
राजपथ
जलपथ

राजकुमार, सेठों के लडके और गरीब किसानों के बेटे—सभी तक्षशिला पढ़ने पहुँचते थे। वहाँ के आचार्यों के चरणों में बैठे बिना उस समय भारतवर्ष में कोई आदमी पडित न कहला पाता था। कश्मीर भी गान्धार के अधीन था। पामीर और बदख्शाँ का नाम कम्बोज था, वह भी तब भारतवर्ष में शामिल था।

इन महाजनपदों के अलावा कुछ छोटे जनपद भी थे। कोशल के उत्तर शाक्यों का सघ था जिसकी राजधानी कपिलवास्तु थी। पच्छिम-दक्खिनी पजाब में शिवि और सिन्धु राष्ट्र प्रसिद्ध थे। आधुनिक सिन्ध का नाम तब सौवीर राष्ट्र था। उसकी राजधानी रोरुक ( आजकल की रोरी ) उस युग की सुन्दर नगरियो मे गिनी जाती थी।

दक्खिन की तरफ आन्ध्र राष्ट्र, द्रामिल ( तामिल ) राष्ट्र और ताम्रपर्णी द्वीप ( लका ) से अब आर्यों का सम्पर्क बढा हुआ था। उनमें आर्य मुनि और दूसरे आर्य लोग जा-जा कर अपने आश्रम और उपनिवेश बसाते थे, और भरुकच्छ और वाराणसी के व्यापारी जहाज ले कर पहुँचते थे। दूर के नये देशों के विषय में कहानियाँ बन जाती हैं। ताम्रपर्णी के विषय मे यह प्रसिद्ध था कि वहाँ यक्षिणियाँ रहती थीं, जो वहाँ भटक कर पहुँचने वाले व्यापारियों को लुभा ले जाती थीं। चम्पा के व्यापारी, पूरब तरफ, बरमा के तट से व्यापार करते थे और उसे वे सुवर्णभूमि कहते थे, क्योंकि उधर से सोना आता था और उसके व्यापार मे बडा नफा था। भरुकच्छ से बावेरु अर्थात् बाबुल को भी लोग व्यापार करने जाते थे। वहाँ मोर न होता था, और भारत के व्यापारियों ने पहले-पहल मोर ले जा कर एक-एक हजार कार्षापण* में बेचा था। भारतवासियों की पहुँच की इस युग मे प्राय. यही सीमाएँ थीं।

इन जनपदों और महाजनपदो की चढा-उतरी का वृत्तान्त भी मनोरंजक है। सब से पहले, सातवी शती ई० पू० के शुरू में, काशी राष्ट्र ने एक बडा साम्राज्य बना लिया। काशी के बाद कोशल के बढने की बारी आयी। दोनों मे खूब लड़ाई चलती रही। अन्त मे कोशल के एक राजा ने काशी को जीत लिया ( अन्दाजन ६२५ ई० पू० )†। उस राजा को महाकोशल कह कर याद किया जाता है। उसका

* एक सिक्का जो आजकल के १२ आने के बराबर था।

† इस प्रसग में जितनी तिथियाँ दी गयी हैं सब बुद्ध के निर्वाण का प्रचलित तिथि ५४४ ई० पू० मान कर हैं।

बेटा प्रसेनजित् बुद्ध का समकालीन था। उसने तक्षशिला में शिक्षा पायी थी। प्रसेनजित् का बहनोई मगध का राजा बिम्बिसार था। मगध भी इस समय तक अग को जीत चुका था। वत्स का राजा उदयन और अवन्ति का राजा प्रद्योत भी बुद्ध के समय में थे। प्रद्योत को उसके सब पडोसी "चड" ( डरावना ) कहते थे। मगध, कोशल, वत्स और अवन्ति ये चार बडे राज्य बुद्ध के समय 'मध्यदेश' यानी भारत के बीच के हिस्से मे थे। पॉचवॉ वडा राज्य गान्धार का था।

वासवदत्ता-हरण

कौशाम्बी से पाया गया शुग-युग का पकाई मिट्टी का ठिकरा

[ भारत कलाभवन, काशी ]

मगध की गद्दी पर राजा बिम्बिसार के बाद उसका बेटा अजातशत्रु बैठा ( ५५२ ई० पू० )। उसके बैठते ही मगध और कोशल में युद्ध ठन गया। तीन युद्धों में अजातशत्रु ने प्रसेनजित् को हराया, पर चौथी बार बूढे प्रसेनजित् ने उसे कैद कर लिया और उसे अपनी लडकी व्याह में दे कर छोड़ दिया।

इधर चंड प्रद्योत भी आर्यावर्त्त का चक्रवर्ती होना चाहता था। उसका राज्य मथुरा तक फैला था। उसके और मगध के बीच वत्स का राज्य पड़ता था। राजा उदयन को हाथी पकडने का शौक था। वह संगीत में अत्यन्त निपुण था और 'हस्ति-कान्त वीणा' बजा कर हाथियों को काबू में कर लेता था।

एक बार प्रद्योत ने सीमा पर के जंगल में चिथडे लपेट कर रँगा हुआ काठ का एक हाथी छोडवा दिया। उदयन उसे पकडने पहुँचा। वीणा बजाने पर हाथी उल्टी तरफ दौडा। उदयन ने घोड़े पर पीछा किया। उसके साथी पिछड गये। प्रद्योत के कुछ सैनिक हाथी के पेट मे और कुछ जगल मे छिपे हुए थे। उन्होंने उदयन को पकड लिया। प्रद्योत ने अपने कैदी से अपनी लडकी वासवदत्ता को संगीत सिखाने का काम लिया। कुछ दिन बाद युवक और युवती षड्यन्त्र कर भाग निकले। पर कैदी उदयन की अपेक्षा दामाद उदयन प्रद्योत के लिए अधिक उपयोगी हुआ और इसी कारण मगध को अब अवन्ति के लिए अधिक सतर्क होना पडा ( ५५० ई० पू० )। किन्तु पाँच बरस बाद प्रद्योत की मृत्यु हो जाने पर मगध को अवन्ति का डर जाता रहा ( ५४५ ई० पू० )।

कोशल में प्रसेनजित् के बाद उसका बेटा विरूढक राजा हुआ। जब वह युवराज था तो उसके रिश्तेदार और पडोसी शाक्यों ने उसका अपमान किया था, और विरूढक ने उन्हें जड से मिटा देने की ठान ली थी। शाक्य वे लोग थे जिनमें बुद्ध ने जन्म लिया था। विरूढक तीन बार उनपर चढाई करते-करते बुद्ध के समझाने से रुक गया, पर अन्त में बुद्ध ने भी दखल देना व्यर्थ समझा। विरूढक ने कपिलवास्तु पर चढाई कर उसे घेरा और शाक्यों का संहार किया।

उसी तरह अजातशत्रु भी अपना राज्य बढाने के लिए वृजि-संघ पर घात लगाये हुए था। जब बुद्ध अपने जीवन में अन्तिम बार राजगृह आये, तो उसने अपने मन्त्री वर्षकार को उनके पास भेज कर जानना चाहा कि बुद्ध इस बारे में क्या कहते हैं। बुद्ध ने वृजियो की बाबत सात प्रश्न पूछे और तब अपनी सम्मति दी।

उनके कहने का सार यह था कि जब तक वृजि लोग अपनी परिषदों में नियम से इकट्ठे होते हैं, जब तक वे एक साथ बैठते, एक साथ उद्यम करते, और एक साथ वृजि-कार्यों ( राष्ट्रीय कार्यों ) को निबाहते हैं, जब तक वे बाकायदा कानून बनाये बिना कोई आज्ञा जारी नहीं करते और बने हुए नियम का उल्लंघन नहीं

करते, जब तक वे अपने 'वृजि-धर्म' ( राष्ट्रीय नियम और संस्थाओं ) के अनुसार मिल कर आचरण करते हैं, जब तक वे अपने वृद्धों ( मुखियों ) का आदर करते और उनकी सुनने लायक बातें सुनते हैं, जब तक वे अपनी कुल-स्त्रियों और कुल-कुमारियों पर किसी किस्म की जोर-जबरदस्ती नहीं करते, जब तक वे अपने वृजि-चैत्यों ( राष्ट्रीय मन्दिरों ) का आदर करते और अपने अरहतों ( त्यागी विद्वानों ) की रक्षा करते हैं, तब तक उनका अभ्युदय और बढ़ती ही होगी, उनकी हानि नहीं हो सकती।

अजातशत्रु ने समझ लिया कि वह अपनी सैनिक शक्ति से वृजि-संघ को नहीं तोड़ सकता। तो भी उसने निश्चय किया, "मैं इन्हें अनीति-मार्ग में फँसा दूँगा"। उसने अपने गुप्तचरों के षड्यन्त्रों और रिशवत द्वारा उनमें फूट डालना शुरू किया और बुद्ध के निर्वाण के चार बरस पीछे वैशाली को जीत लिया ( ५४० ई० पू० )।

§३ **पारसी साम्राज्य में गान्धार का सम्मिलित होना**—भारतवर्ष के पच्छिम में भी आर्यों की कई शाखाएँ रहती थीं। जैसे हमारे पुरखा अपने देश को आर्यावर्त कहते थे, वैसे ही अफगानिस्तान के पच्छिम में जो आर्य रहते थे, वे अपने देश को ऐर्यान अर्थात् ऐर्यों या आर्यों का देश कहते थे। उसी से ईरान शब्द बना है। और आगे पच्छिमी एशिया और यूनान में भी आर्य लोग थे। किन्तु इन सभी देशों में अभी तक आर्यों की शक्ति चमक न पायी थी, अभी तक वहाँ बाबेरु, मिस्र आदि के सामी ( सैमिटिक ) और हामी ( हैमिटिक ) राज्यों की तूती बोलती थी। छठी शती ई० पू० में उन सभी देशों में एक आर्य साम्राज्य स्थापित हो गया। ईरानी आर्यों में पार्स नाम की एक जाति ईरान की खाडी पर रहती थी, उसके कारण उस देश का नाम पारस पड गया था।

हमारे यहाँ, इस युग में, जैसे बुद्ध भगवान् हुए, वैसे ही ईरान में जरथुस्त्र नाम के धर्मसुधारक हुए थे। पारस में हखामनि नाम के एक पुरुष ने सातवीं शती ई० पू० में एक राजवंश स्थापित किया था। उस वंश में दिग्विजयी सम्राट् कुरु (Cyrus)* हुआ ( ५५९-५२९ ई० पू० )। उसके अधीन समूचा ईरान था। बाबेरु और मिस्र आदि के सैमिटिक और हैमिटिक राज्यों को भी उसने जीत लिया।

* कुरु का नाम यूनानी लोग जैसे लिखते थे उसका अंगरेजी रूप साइरस है। उसका मूल उच्चारण कुरुष् है। "कुरुष्" का अन्तिम ष् प्रथमा एकवचन का सूचक है, जैसा संस्कृत में भी होता है।

पारसी और मकदूनी साम्राज्य
SCYTHIA
SPARTA
IONIA
युन
CAPPADOCIA
कतपथुक
ARMENIA
अरमइन
DAHÆ
दाह
CHORASMIA
उवरज्मिय
SOGDIANA
सुग्द
HYRCANIA
ASSYRIA
अथुरा
MEDIA माद
पार्थव
वर्कान PARTHIA
MARGIANA
मर्गु
BACTRIANA
बाख्त्री
हरैव
ARIA
ARCHOSIA
हरउवती
DRANGIANA
ARIANA
BABYLONIA
बाबिरु
SUSIANA
उवज
ÆGYPTUS
मुद्राय
अरबाय
ARABIA
PERSIS
पार्स
GEDROSIA
मक
पारसी साम्राज्य ५२५ ई० पू० में ——
सिकन्दर का साम्राज्य ३२५ ई० पू० में ----
देशों के ईरानी नाम नागरी अक्षरों में।
उन्हीं के यूनानी रूप रोमन अक्षरों में।

अरब और समूचा पच्छिमी एशिया भी उसके साम्राज्य में आ गया। यूनान देश पर भी उसका आधिपत्य हुआ। पूरब की तरफ उसने आमू दरिया के काँठे में बलख के इलाके को तथा शकों और मकों के देश को जीत लिया। बलख को हमारे पुरखा वाह्लीक तथा ईरानी लोग बाख्त्री कहते थे। वह भारत और ईरान के साझे का प्रदेश था। शकों की तब तीन बस्तियाँ थीं—एक कास्पियन के तट पर, दूसरी सीर दरिया के काँठे में, और तीसरी शकस्थान में, जिसे अब सीस्तान कहते हैं। मकों का देश मकरान था। शकस्थान और मकरान भारत और ईरान की सीमा के देश थे। इन्हें जीतने के बाद कुरु ने हिन्दूकुश के दक्खिन उतर कर भारत पर चढ़ाई की। आजकल जो इलाका काफिरिस्तान कहलाता है, उसकी राजधानी तब कापिशी थी। कुरु ने कापिशी नगरी उजाड़ दी। उसने पक्थों का देश भी जीत लिया। कापिशी और पक्थ-देश तब भारत के अन्दर गिने जाते थे। पक्थ लोग आजकल के पख्तो या पश्तो बोलने वाले पठानों के पुरखा थे और क्रोव नदी की दून उनका खास देश था। मकरान के रास्ते कुरु ने सिन्ध पर भी चढ़ाई करनी चाही, पर उधर से हार कर वह केवल सात साथियों के साथ जान बचा कर भागा।

कुरु के बाद इस वंश में विश्तास्प† का बेटा दारयवहु ( Darius ) प्रसिद्ध हुआ ( ५२१--४८५ ई० पू० )। उसने भारत के कम्बोज, गान्धार और सिन्धु ( यानी डेराजात और सिन्धसागर दोआब ) प्रदेश भी जीत लिये। तक्षशिला की तब से अवनति हुई। दारयवहु ने अपना वृत्तान्त पत्थर की चट्टानों पर खुदवाया है। वह बड़े अभिमान से अपने को "ऐर्य ऐर्यपुत्र" (आर्य आर्यपुत्र ) कहता है। उसके अधीन २१ प्रान्त थे, जिनमें से प्रत्येक का शासक क्षथ्पावन् या क्षथ्प ( क्षत्रप ) कहलाता था। सिन्धु प्रान्त से उसे सबसे अधिक आमदनी होती थी, जो उसके यहाँ सोने के रूप में पहुँचती थी।

पारसी साम्राज्य के बराबर बड़ा कोई साम्राज्य इससे पहले संसार में स्थापित न हुआ था। भारत के जो इलाके उसके अधीन हुए, वे लगभग ४२५ ई० पू० तक स्वतन्त्र हो गये। बाकी साम्राज्य प्रायः सौ बरस और बना रहा।

---

† विश्त = विंशत्, बीस, अस्प = अश्व, घोड़ा। पुराने ईरानी शब्द संस्कृत से कितने मिलते-जुलते हैं!

§४ **मगध का पहला साम्राज्य** ( ५५०-३६६ ई० पू० )—जिस हिस्से में आजकल पढ़ने-लिखने की भाषा हिन्दी है, प्राय उसी को प्राचीन लोग 'मध्यदेश' कहते थे। छठी शती ई० पू० के उत्तरार्ध में उसमें मगध की तूती बोलने लगी।

मगध का एक रथी योद्धा

सन् १९३४ में पटना को नाला की खुदाई मे जिस गहराई पर काली मिट्टी का यह ठिकरा पाया गया है, उनसे सिद्ध होता है कि यह मगध के पहले साम्राज्य के समय का है। असल माप। [ पटना म्यूज़ियम ]

अजातशत्रु के समय तक मगध, अंग को हज़म कर चुका, कोशल को नीचा दिखा चुका और वृजि-संघ का राज्य छीन चुका था। उसके मुकाबले में अब केवल अवन्ति बाकी था। अजातशत्रु का पोता राजा अज उदयी था ( अन्दाजन४८६--४६७ ई० पू० )। मगध के राज्य में मिथिला भी शामिल हो जाने से उसकी पुरानी राजधानी राजगृह एक कोने में पड गयी थी। इसलिए उदयी ने गंगा और सोन के

सगम पर पाटलिपुत्र नगरी की स्थापना की, जो आगे चल कर ससार भर मे प्रसिद्ध हुई। पाँडर ( पाटलि ) के पेड़ वहाँ अधिक होने से उसका यह नाम पडा। वही आजकल का पटना है। उदयी ने अवन्ति का भी पराभव किया और उसे अपने अधीन कर लिया। मध्यदेश के और सब जनपद इससे पहले या पीछे मगध की छत्रछाया मे आ गये। उदयी के बेटे नन्दिवर्धन ( अन्दाजन ४५८-४१८ ई० पू० ) और पोते महानन्दी ( अन्दाजन ४०६-३७४ ई० पू० ) के समय यह साम्राज्य और भी बढ गया। नन्दिवर्धन ने कलिग ( उड़ीसा ) को भी जीत लिया।

§५.पाड्य, चोल, केरल और सिहल राष्ट्रों की स्थापना—इधर एक और बडी प्रक्रिया इस समय जारी थी। दक्खिन मे अश्मक के और आगे, भारत के अन्तिम छोर तक, आर्य बस्तियाँ और राज्य स्थापित हो गये। पाडु नाम की जाति पजाब या मधुरा ( मथुरा ) मे रहती थी। उसकी एक शाखा ने भारत के अन्तिम दक्खिनी कोने मे जा कर एक नयी मधुरा नगरी बसायी जो अब मदुरा कहलाती है। वह नया राज्य पाड्य कहलाया। पाड्य के पच्छिम, समुद्र-तट पर, चेर राज्य था, और पाड्य के उत्तर चोल। चेर का ही दूसरा रूप केरल है। चेर और चोल राज्य आर्य प्रवासियों ने स्थापित किये या द्राविडों ने सो नहीं कहा जा सकता।

लका या ताम्रपर्णी द्वीप मे भी उत्तर से आर्यों ने जा कर एक नया उपनिवेश बसाया था। उसका वृत्तान्त एक मनोरजक कहानी मे गुँथ गया है। वह कहानी यों है। कलिंग देश की एक राजकुमारी वग ( पूरबी बगाल ) के राजा को ब्याही थी। उनके एक अत्यन्त रूपवती कन्या हुई जो बडी निडर भी थी। वह एक बार घर से अकेली भाग कर व्यापारियो के एक सार्थ ( काफिले ) के साथ वग से मगध को चल दी। रास्ते में लाड देश ( राढ अर्थात् पच्छिमी बगाल ) के जगल मे एक सिह उसे उठा ले गया। उस युवती से उस सिंह के सिंहबाहु नाम का पुत्र और सिहवल्ली नाम की कन्या हुई। सिंहबाहु ने बडे हो कर सिंहपुर बसा कर उसे अपनी राजधानी बनाया। उसका बेटा विजय बडा क्रूर था। प्रजा के कहने से पिता ने उसे देसनिकाला दे दिया। सात सौ साथियो के साथ नाव पर बैठा कर उन्हे छोड़ दिया गया। "दिशामूढ" हो कर उनकी नाव कोकण मे शूर्पारक पट्टन ( बम्बई के उत्तर आजकल के सोपारा ) पर जा लगी। वहाँ के लोगों ने उनका स्वागत किया, पर वे भी विजय के साथियों से ऊब गये। उसी नाव पर वह मडली फिर रवाना की गयी और लका पहुँची। वहाँ तब यक्ष लोग राज्य करते थे। विजय ने यक्ष राजकुमारी कुवेणी

से विवाह किया, पर पीछे उसे त्याग दिया। तब उसने मधुरा के पाड्य राजा की कन्या को ब्याहा और ताम्रपर्णी नगरी बसा कर अड़तीस बरस धर्म से राज्य किया। उसके साथियो ने वहीं अनुराधपुर, उज्जयिनी आदि नगरियाँ बसायीं। ये लोग सिंहपुर से आये थे, इस कारण इस द्वीप का नाम सिंहल पड़ा, जो अब तक चला आता है।

इस कहानी मे चाहे जितना अश सच का हो, परन्तु इसमे सन्देह नहीं कि पाड्य आदि बस्तियो की अपेक्षा सिंहल मे आर्यों की बहुत बडी सख्या पहुँची, क्योंकि पुराने पाड्य, चेर और चोल राष्ट्रों मे जहाँ अब द्राविड भाषाएँ बोली जाती हैं, वहाँ सिहल की भाषा आर्य है। इस प्रकार ४०० ई० पू० के करीब तक आर्य सत्ता भारतवर्ष के अन्तिम छोरों तक पहुँच गयी और दूसरी जातियाँ पूरी तरह उसके प्रभाव मे आ गयीं।

# अध्याय २

## बुद्ध, महावीर और उनके समय का भारतीय जीवन

§१. बुद्ध से ठीक पहले का समाज और धर्म—वेद-संहिताएँ बनने के बाद यज्ञों में उनके मन्त्रों का प्रयोग करने के लिए 'ब्राह्मण' नाम के गद्य-ग्रन्थ बने। उनके जमाने को उत्तर वैदिक काल अर्थात् पिछला वैदिक जमाना कहते हैं। आर्यों का समाज और धर्म तब पहले से अधिक जटिल हो चला था। उस समाज में भिन्न-भिन्न दर्जों का थोड़ा-थोड़ा भेद प्रकट होने लगा था। जो रथ में बैठने वाले क्षत्रिय सरदार थे, वे पहले ही साधारण लोगों से कुछ ऊँचे गिने जाते थे। उन्हीं के नमूने पर ब्राह्मणों की भी (जो मन्त्र पढ़ने वाले थे) अब एक अलग सी श्रेणी दिखायी देने लगी। बाकी जो साधारण 'विश' बचे, वे वैश्य अर्थात् जनसाधारण कहलाने लगे। बहुत से दास लोग भी आर्यों के समाज में मिल गये थे, वे शूद्र कहलाये। दासों के प्रति जो घृणा का भाव था वह शूद्रों के प्रति भी (परन्तु कुछ दर्जे कम) बना रहा। वे आर्यों से भिन्न वर्ण—यानी रंग—के थे।

वर्ण शब्द आर्यों की विभिन्न श्रेणियों के लिए भी बरता जाने लगा था। किन्तु उस समय के वर्णों के बीच कोई बाँध न बँधा था। तीन वर्णों के आदमी आसानी से एक से दूसरे वर्ण में चले जाते थे। चार आश्रमों अर्थात् मनुष्य-जीवन के चार विभागों का विचार पहले-पहल उत्तर वैदिक काल में ही परिपक्व हुआ। चौथा आश्रम—सन्यास—केवल ब्राह्मणों अर्थात् विद्वानों के लिए था। यज्ञों के कर्मकाड का आडम्बर इस युग में बहुत बढ़ गया था। किन्तु आरण्यकों अथवा वानप्रस्थों अर्थात् जंगल में रहने वाले मुनियों के आश्रमों में, जो दार्शनिक विचार के केन्द्र थे, उस कर्मकाड के विरुद्ध एक लहर उठी। उन्हीं आश्रमों में अब उपनिषद्-ग्रन्थों की रचना हुई। उपनिषदों ने सीधे शब्दों में कहा कि "ये यज्ञ फूटी नाव की तरह हैं।" आदर्श को खोजने वाले लोग उनसे ऊब कर विचार और दार्शनिक चिन्तन की तरफ झुकने लगे। किन्तु वे दार्शनिक विचार भी केवल विद्वानों की प्यास बुझा सकते थे। जनसाधारण के लिए या तो यज्ञों का कर्मकाड था, या जड़-जन्तु-पूजा। उनसे लोगों का मन नहीं भरता था। लोग मानो किसी सरल मार्ग

के लिए तरस रहे थे। समय की ज़रूरत से वैसा मार्ग दिखाने वाले कई महात्मा प्रकट हुए। महावीर और बुद्ध उनमें से मुख्य थे।

§२. **महावीर और बुद्ध के जीवन और उपदेश**—श्रावस्ती से ६० मील पर, रोहिणी नदी के पच्छिम, कपिलवास्तु नगरी शाक्यों के संघराष्ट्र की राजधानी थी। रोहिणी के पूरब कोलिय "राजाओं" का देवदह नगर था। शुद्धोदन शाक्य कुछ समय के लिए कपिलवास्तु के राजा अर्थात् राष्ट्रपति थे। उन्होंने देवदह की दो शाक्य कन्याओं, माया और प्रजावती, से ब्याह किया था।

बरसों की प्रतीक्षा के बाद महामाया को पुत्र होने की आशा हुई। दोनों बहनें मायके रवाना हुई। रास्ते में लुम्बिनी के वन में माया ने उस पुत्र को जन्म दिया जिसका नाम आज संसार के आधे के करीब स्त्री-पुरुष प्रतिदिन जपते हैं। सात दिन बाद उसे प्रजावती के हाथ सौंप वह परलोक सिधार गयी। लुम्बिनी को आजकल रुम्मिनदेइ कहते हैं, और वह बस्ती जिले की सीमा पर नेपाल की तराई में है।

बालक सिद्धार्थ गौतम की बचपन से ही चिन्ताशील प्रवृत्ति देख कर पिता ने १८ वर्ष की आयु में उसका विवाह कर दिया, पर तो भी उसकी प्रवृत्ति न बदली। छोटी-छोटी घटनाएँ उसके दिल पर असर कर जाती थीं। एक दिन रथ में सैर करते समय उसने एक बूढ़े को कमर झुकाये देखा। इसकी यह दशा क्यों है? बुढ़ापे के कारण। बुढ़ापा क्या चीज है? क्या वह इसी आदमी को सताता है या सब को? इत्यादि प्रश्न उसके जी में उठे। इसी तरह सिद्धार्थ ने एक रोगी और एक लाश को देखा। और अन्त में एक शान्त प्रसन्नमुख सन्यासी को देख कर उसके विचार एक निश्चित इरादे की ओर बढ़ने लगे।

वह तब अट्ठाइस बरस का था। नदी-तट पर एक बगीचे में बैठे उसे अपने पुत्र होने की खबर मिली। चारों तरफ उत्सव-गीत गाये जाने लगे। पर सिद्धार्थ के मन में कुछ और ही समा चुका था। उसी धुन को ले कर वह उस रात अन्तिम बार अपनी स्त्री के पास गया। दिये के उजाले में उसने उस युवती को सोते देखा। उसका एक हाथ बच्चे के सिर पर था। जी में आया एक बार बच्चे को गोदी ले ले, पर अन्दर की एक आवाज़ ने सावधान किया। हृदय को कड़ा करके वह उसी रात गृहस्थ के सब सुखों को त्याग सन्यास के लिए निकल पड़ा। इसे गौतम का 'महाभिनिष्क्रमण' कहते हैं।

गौतम डील के लम्बे थे, उनकी आँखे नीली, रग गोरा, कान लटकते हुए और हाथ लम्बे थे जिनकी अँगुलियाँ घुटनो तक पहुँचती थीं। केश घूँघर वाले और छाती चौड़ी थी।

भगवान बुद्ध — गुप्त युग की एक मूर्त्ति
[ मथुरा म्यूजियम, भा० पु० वि० ]

मल्लों के देश को जल्द लाँघ सिद्धार्थ वैशाली पहुँचे और वहाँ से राजगृह। उन दोनों स्थानो मे उन्होने दो बडे दार्शनिकों के पास उस समय की विद्याएँ पढी। गृहस्थो के हिंसापूर्ण कर्मकाड से ऊब कर वे दर्शन की ओर झुके थे। पर उस सूखी दिमागी कसरत मे भी उन्हे वह शान्ति न मिली जिसे वे अपने और ससार के लिए खोज रहे थे। तब उन्होने एक और कठिन मार्ग पकड़ा। उसी आश्रम के पाँच विद्यार्थियो को साथी बना, वे गया के पहाडी जगलो मे उस समय के नियम के अनुसार तपस्या करने गये। वहाँ निरजना नदी के किनारे छ बरस तक घोर तप करते-करते उनका केवल हाड़-चाम बाकी रह गया।

कहानी है कि एक बार कुछ नाचने वाली स्त्रियाँ गाती हुई उस जगली राह से गुजरी। उनके गीत की ध्वनि गौतम के कान में पड़ी। वे गाती थीं, 'अपनी वीणा के तार को ढीला न करो, नहीं तो वह बजेगा नहीं, और उसे इतना कसो भी नहीं कि वह टूट ही जाय!' पथिकों के उस गीत से गौतम को बड़ी शिक्षा मिली। उन्होंने देखा,
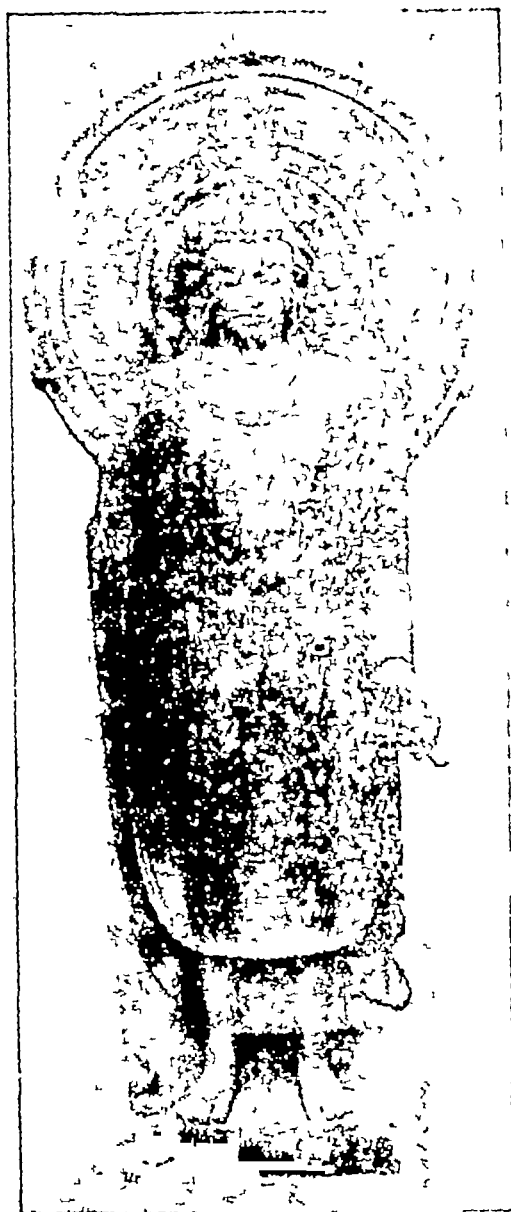
वे अपने जीवन के तार को बहुत कसे जा रहे हैं। तब से वे अपने देह की सुधि लेने लगे। उनके साथी उन्हें तप से डरा समझ, साथ छोड़ कर बनारस चले गये। वे अकेले देहाती स्त्रियों से भिक्षा पा-पा कर धीरे-धीरे स्वास्थ्य प्राप्त करने लगे। सुजाता नाम की एक युवती ने वहाँ गौतम को बड़ी श्रद्धा से पायस खिलाया।

स्वस्थ होने के बाद, एक दिन गौतम एक पीपल के पेड़ के नीचे बैठे विचार करते थे। पर ध्यान लगाते ही "मार" ( यानी मनुष्य की अपनी वासनाओं ) ने उन-पर हमला किया। जल्द ही गौतम ने मार को जीत लिया, अर्थात् उनके चित्त के सब विक्षेप शान्त हो गये। तब उन्हें वह "बोध" ( ज्ञान ) हुआ जिसके लिए वे भटकते फिरते थे। उसी दिन से गौतम "बुद्ध" हुए, और वह पीपल भी बोधि वृक्ष कहलाया। गौतम की बोधि या बूझ क्या थी? वह केवल यह थी कि सरल सच्चा जीवन ही धर्म का सार है, वह सब यज्ञों, शास्त्रार्थों और तपों से बढ़ कर है। सयम-सहित सच्चा आचरण ही असल धर्म है।

गौतम अपने बोध से स्वयम् सन्तुष्ट हो कर बैठने वाले न थे। 'उत्थान' ( उठना, उद्यम करना ) और 'अप्रमाद' (कभी ढील न करना ) उनके जीवन और उनकी शिक्षा का मूल मन्त्र था। बनारस पहुँच कर ( जहाँ आजकल सारनाथ है ) वे अपने पुराने साथिया से मिले और उन्हें समझाया। "भिक्खुओ, सन्यासी को दो अन्तों ( सीमाओं ) का सेवन न करना चाहिए। वे दो अन्त कौन से हैं? एक तो काम और विषय-सुख में फँसना जो अत्यन्त हीन, ग्राम्य और अनार्य है, और दूसरा शरीर को व्यर्थ कष्ट देना जो अनार्य और अनर्थक है। इन दोनों अन्तों को त्याग कर तथागत ( ठीक समझ वाले, बुद्ध ) ने मध्यमा प्रतिपदा ( मध्यम मार्ग ) को पकड़ा है, जो आँख खोलने वाली और ज्ञान देने वाली है।" यह मध्यम मार्ग ही बौद्ध धर्म का निचोड़ है।

बुद्ध का यह पहला उपदेश "धर्मचक्र-प्रवर्त्तन" कहलाता है। जिस प्रकार राजा लोग चक्रवर्त्ती बनने के लिए अपने रथ का चक्र चलाते थे, वैसे ही बुद्ध ने धर्म का चक्र चलाया। चौमासे मे सन्यासी यात्रा नहीं करते, इसलिए उस चौमासे में वे वहीं रहे। धीरे-धीरे उनके चेलों में साठ भिक्खु और बहुत से उपासक ( गृहस्थ अनुयायी ) हो गये। बुद्ध ने उन भिक्खुओं को एक "सघ" अर्थात् प्रजा-तन्त्र के रूप में संगठित कर दिया। बौद्ध धर्म मे किसी एक आदमी की हुकूमत न थी, सघ ही सब कुछ था। तब बुद्ध ने कहा—"भिक्खुओ, अब तुम जाओ, जनता के हित के लिए घूमो। कोई भी दो भिक्खु एक तरफ न जाओ।"

स्वयम् बुद्ध भी भ्रमण को निकले। सबसे पहले वे गया की तरफ गये। वहाँ तीन काश्यप भाई रहते थे, जो बड़े विद्वान् कर्मकांडी थे और जिनके पास सैकड़ों विद्यार्थी पढ़ते थे। बुद्ध का उपदेश सुन कर उन्होंने यज्ञों की सब सामग्री निरंजना में बहा दी, और उनके साथ चल दिये। इस बात का मगध की जनता और राजा बिम्बिसार पर बड़ा प्रभाव पड़ा। वे भी बुद्ध के उपासक हो गये। राजगृह के पास सारिपुत्र और मोग्गलान (मौद्गलायन) नाम के दो बड़े विद्वान् ब्राह्मण बुद्ध के चेले बने। बौद्ध संघ में वे उनके "अग्र श्रावक" अर्थात् प्रमुख शिष्य कहलाये।

बुद्ध का यश अब कपिलवास्तु तक पहुँच गया और उन्हें वहाँ का निमन्त्रण स्वीकार करना पड़ा। वे भिक्खुओं के साथ भिक्षापात्र हाथ में लिये उन्हीं घरों के सामने भिक्षा के लिए मौन खड़े हुए, जिनके वे राजा हो सकते थे! शुद्धोदन शाक्य उन्हें भिक्खुओं सहित अपने महल में ले गये, जहाँ सब स्त्री-पुरुषों ने उनका उपदेश सुना। किन्तु राहुल की माता (गौतम की पत्नी) उन श्रोताओं में न थी। बुद्धदेव सारिपुत्र और मोग्गलान के साथ स्वयम् उसके मकान पर गये। वह उन्हें देख कर एकाएक गिर पड़ी और पैर पकड़ कर रोने लगी। जल्द ही उसने अपने को सँभाला और बुद्ध का उपदेश सुना। सात दिन बाद जब फिर बुद्ध शुद्धोदन के घर आये तो उसने राहुल को बतलाया, 'ये तुम्हारे पिता हैं, इनसे अपनी पितृ-दाय (बपौती) माँगो।' कुमार राहुल ने बुद्ध के पास जा कर कहा 'भिक्खु, मुझे मेरा पितृ-दाय दो।' बुद्ध ने सारिपुत्र से कहा 'राहुल को प्रव्रज्या (सन्यास) दान करो।' तब से वह कुमार भिक्खु हो गया।

कपिलवास्तु का पंचायती राजा इस बार भद्रक शाक्य था। बुद्ध के वापिस चले जाने पर अनुरुद्ध शाक्य अपनी माँ के पास गया और भिक्खु बनने की आज्ञा माँगने लगा। माँ ने कहा, 'बेटा यदि राजा भद्रक घर छोड़ दे तो तू भी भिक्खु हो जा।' अनुरुद्ध के कहने से भद्रक भी तैयार हो गया। आनन्द आदि कई और शाक्य भी साथ हो गये और मल्ल राष्ट्र की तरफ, जहाँ बुद्ध ठहरे हुए थे, चले। कुछ दूर जा कर उन्होंने अपने गहने और कीमती कपड़े उतार दिये और दुपट्टे में लपेट कर अपने नौकर उपालि नाई को देते हुए कहा, 'जाओ, तुम्हारी जीविका के लिए यह काफी होगा।' पर उपालि के दिल में कुछ और था। वह भी उनके साथ-साथ गया। बाद में ये लोग बड़े

प्रसिद्ध हुए। आनन्द तो बुद्ध का दिन-रात का साथी, उनका "उपस्थापक" (प्राइवेट सेक्रेटरी) बन गया। उपालि बुद्ध के पीछे सघ का प्रमुख चुना गया।

एक बरस के इस भ्रमण के बाद बुद्ध राजगृह लौट आये। वहाँ उन्हें श्रावस्ती का करोडपति सेट सुदत्त अनाथपिंडक निमन्त्रण देने आया। सुदत्त

जेतवन की खरीद और दान

सुदत्त जलपात्र लिये दान करने खड़े हैं, गाड़ी पर सिक्के हैं जो बगीचे में बिछाये जा रहे हैं।

शुंग-युग के भारहुत स्तूप का मूर्त्त दृश्य [ इ० म्यू०, कलकत्ता ]

ने बौद्ध सघ को दान करने के लिए श्रावस्ती के राजकुमार जेत से एक बगीचा खरीदना चाहा। जेत ने कहा, 'जितने सोने के सिक्के उस बाग में बिछ जाँय, वह उसकी कीमत है।' सुदत्त ने कहा, 'मैंने बाग ले लिया।' जेत ने कहा, 'मैंने

नहीं बेचा।' तब यह विवाद अदालत में गया। अदालत ने सुदत्त के पक्ष में फैसला दिया, क्योंकि जेत ने अधिक से अधिक मूल्य कहा था और सुदत्त उतना भी देने को तैयार था। सुदत्त ने तब वह बाग जेतवन खरीद लिया और उसमें बौद्ध संघ के लिए विहार यानी मठ बनवाया।

प्रायः तीन बरस पीछे शुद्धोदन शाक्य का देहान्त हुआ। तब प्रजावती और राहुलमाता देवी ने भिक्खुनी बनने का संकल्प किया। अनेक शाक्य स्त्रियों के साथ वे बुद्ध के पास वैशाली पहुँचीं। कुछ अरसे तक बुद्ध हिचकिचाये, क्योंकि उस समय तक स्त्रियों के लिए सन्यास मार्ग खुला न था। अन्त में आनन्द के कहने से बुद्ध ने स्त्रियों के लिए वह मार्ग खोल दिया। भिक्खुनी संघ की अलग स्थापना हुई। उस संघ ने भी बड़ा काम किया। वृद्ध भिक्खु थेर (स्थविर) कहलाते थे। उसी प्रकार बूढ़ी भिक्खुनियाँ थेरी कहलाती थीं। थेरों की वाणियाँ थेरगाथा नाम की पुस्तक में है। वैसे ही थेरियों की थेरी-गाथा में।

४५ बरस तक ठेठ हिन्दुस्तान के सब जनपदों में बुद्ध बराबर घूमते रहे। उनके अन्तिम समय में उनके पुराने साथी प्राय. उठ गये थे। अपने भ्रमण के ४५वें बरस उन्हें विरूढक की करतूत से कपिलवास्तु के खँडहर देखने पड़े और वे राजगृह पहुँचे तो अजातशत्रु वैशाली को ढहा देने की घात में था। वैशाली जा कर वे शहर के बाहर ठहरे। अम्बपाली गणिका को खबर मिली कि बुद्धदेव उसकी आम की बगिया में पधारे हैं। उसने उनके पास जा कर भिक्खु-संघ को भोजन कराने की प्रार्थना की, जो बुद्ध ने चुप रह कर स्वीकार की। लिच्छवि लोग सुन्दर रथों पर सवार हो जब बुद्ध के दर्शन को चले तो उन्होंने देखा कि अम्बपाली उनके पहियों से पहिया टकराते हुए अपना रथ हाँकती लौट रही है। लिच्छवियों ने पूछा, 'यह क्या बात है कि तू लिच्छवियों के बराबर अपना रथ हाँक रही है?' अम्बपाली ने उत्तर दिया, 'आर्यपुत्रो, मैंने भगवान् को भिक्खु-संघ के साथ कल के भोजन के लिए न्यौता जो दिया है।' उन्होंने कहा, 'अम्बपाली, हमसे एक लाख मुद्रा ले कर यह भोजन हमें कराने दे।' उत्तर मिला, 'आर्यपुत्रो, आप मुझे वैशाली का समूचा राज्य दें तब भी यह जेवनार नहीं दूँगी।' निराश हो कर लिच्छवियों ने कहा, 'अम्बका ने हमें हरा दिया।' वे उसकी बगिया की ओर बढ़े। बुद्ध ने उन्हें आते देखा और भिक्खुओं से कहा, "जिन भिक्खुओं ने तावतिंश देवताओं को नहीं देखा है, वे लिच्छवियों की इस परिषद को देखें और इससे देवताओं की परिषद का अनुमान करें।' उपदेश

सुन चुकने पर लिच्छवियों ने बुद्ध से दूसरे दिन का भोजन करने की प्रार्थना की। "लिच्छवियो, मैंने कल के दिन अम्बपाली गणिका का न्योता मान लिया है।" तब उन्होंने निराश हो कर अपने हाथ पटके और कहा—'हमे अम्बका ने हरा दिया!' दूसरे दिन उपदेश सुनने और भोजन कराने के बाद अम्बपाली ने कहा, 'भगवन्, मैं यह आराम (बगीचा) भिक्खुओं के सघ के लिए, जिसके मुखिया बुद्ध हैं, देती हूँ।' वह दान स्वीकार किया गया। अम्बपाली पीछे थेरी हो गयी, उसके गीत भी थेरीगाथा मे हैं।

वैशाली से बुद्ध एक गाँव गये। वहाँ उनके बड़ा दर्द उठा और मृत्यु निकट दिखायी दी। आनन्द ने कहा, 'भगवन्, जब तक आप भिक्खु-सघ को ठीक राह पर नहीं डाल देते, आशा है तब तक देह न त्यागेंगे।' उत्तर मिला, "आनन्द, भिक्खु-सघ मुझसे क्या आशा करता है? मैंने धर्म का साफ-साफ उपदेश कर दिया। तथागत (बुद्ध) के धर्म मे कोई गाँठ या पहेली तो नहीं है। अब तुम अपनी ही ज्योति मे चलो, अपनी शरण जाओ धर्म की ज्योति में, धर्म की शरण मे चलो।"

मल्लों के अनेक गाँवों में होते हुए बुद्ध पावा पहुँचे। वहाँ चुन्द लोहार ने उन्हे भोजन कराया और उसमे सुअर का मास भी परस दिया। गृहस्थों से यह कहने की कि म अमुक चीज खाता हूँ अमुक नहीं खाता हूँ, बुद्ध की आदत न थी। उस भोजन से उनका दर्द बढ गया, रक्तातिसार हो गया। अन्तिम समय तक बड़ी पीड़ा रही। पावा मे वे कुशिनगर को गये जो मल्लों की राजधानी थी। गोरखपुर के पास कसिया गाँव उसकी याद कराता है। रास्ते में उन्होंने आनन्द से कहा, "चुन्द के मन मे कहीं कोई यह शका न डाले कि उसके भोजन से बुद्ध का निर्वाण हो गया। आयुष्मान् चुन्द से कहना, मेरे लिए उसका भोजन और सुजाता का भोजन एक समान है।"

नदी मे स्नान कर बुद्ध एक शाल-वन में आसन बिछवा कर लेट गये। शाल के पेड अपने फूल उनपर बरसाने लगे। तब भी बुद्ध भिक्खुओं की शकाएँ दूर करते रहे। इसी बीच सुभद्र नाम का पडित बाहर से उनसे कुछ पूछने आया। आनन्द ने उसे रोक दिया, पर पता लगने पर बुद्ध ने पास बुला कर उसे उपदेश दिया। तब उन्होंने कहा, "भिक्खुओ, मैं तुम्हे अन्तिम बार बुलाता हूँ। ससार की सब सत्ताओं की अपनी-अपनी आयु है। अप्रमाद से काम करते जाओ। यही तथागत की अन्तिम वाणी है।" ऐसा कहते हुए, अस्सी बरस की आयु में उन्होंने आँखे मूँद लीं (५४५ ई० पू०)। यही उनका "महापरिनिर्वाण" (बुझना) था।

कुशिनगर के मल्लों ने उनका दाह-कर्म करके उनके धातुओं ( फूलों ) को भालों-धनुषों से घेर आठ दिन तक नाच-गान किया। निर्वाण का समाचार सुन कर चारों तरफ के राष्ट्रों के दूत आ जुटे। उन फूलों के आठ भाग कर वे अपने-अपने राष्ट्र मे ले गये, जहाँ उनपर स्तूप बनवाये गये। स्तूप उस इमारत को कहते हैं जो किसी पवित्र अवशेष के ऊपर या किसी घटना की यादगार में बनायी जाय। उसके अन्दर नींव मे अवशेष रक्खा जाता था। यह वैदिक रीति थी।

निर्वाण के बाद ५०० भिक्खु राजगृह मे इकट्ठे हुए और उन्होंने बुद्ध के वचनों को मिल कर गाया। वह बौद्धों की पहली "संगीति" थी। सौ बरस बाद दूसरी संगीति वैशाली मे हुई, और फिर तीसरी राजा अशोक के समय पटना मे। इन संगीतियों मे बौद्धों का धार्मिक साहित्य तैयार हुआ। शुरू में उसके दो अंश थे—धम्म और विनय। धम्म मे बुद्ध के उपदेश बातचीत रूप मे थे विनय मे भिक्खुओं के आचरण के नियम। अशोक के समय तक "त्रिपिटक" अर्थात् तीन पेटियाँ बन गयीं। विनय का विनयपिटक बना, धम्म का संग्रह सुत्त-( सूक्त- ) पिटक में हो गया। सुत्त-पिटक में बुद्ध की सूक्तियाँ हैं। और अभिधम्म-पिटक नाम से एक तीसरा पिटक बन गया जिसमें बौद्धों के दार्शनिक सिद्धान्त हैं। जिस प्रकार आजकल हिन्दी की खडी बोली के सिवाय बोलचाल की कई बोलियाँ हैं, वैसे ही तब संस्कृत के सिवाय बोलचाल की कई बोलियाँ थीं जो प्राकृत कहलाती थीं। त्रिपिटक पहले-पहल पालि नाम की प्राकृत मे लिखा गया।

भगवान् महावीर बुद्धदेव के समकालीन थे। वे वैशाली के पास कुंडग्राम मे वृजिगण के ज्ञात्रिक नाम के एक कुल मे 'राजा' सिद्धार्थ के घर पैदा हुए थे। उनकी माता का नाम त्रिशला था, और उनका अपना नाम वर्धमान। सिद्धार्थ और त्रिशला तीर्थंकर पार्श्व नाम के एक धर्म-सुधारक के अनुयायी थे, जो प्रायः दो शती पहले बनारस में हुए थे। वर्धमान भी उन्हीं की शिक्षा पर चले। बड़े होने पर यशोदा नाम की देवी से उनका विवाह हुआ, जिससे एक लडकी हुई। माता पिता के मरने पर तीस बरस की आयु मे बडे भाई से आज्ञा ले उन्होंने घर छोड़ा। बारह बरस के भ्रमण और तप के बाद उन्होंने "कैवल्य" ( ज्ञान ) पाया। तब से वे अर्हत् ( पूज्य ), जिन ( विजेता ), निर्ग्रन्थ ( बन्धनहीन ) और महावीर कहलाने लगे। उनके अनुयायियों को अब हम जैन कहते हैं।

निर्ग्रन्थ ज्ञातिपुत्र अथवा महावीर अर्हत् होने के बाद निर्वाण-काल तक लगातार मिथिला, कोशल आदि मे भ्रमण करते रहे। बुद्ध-निर्वाण के एक बरस पहले पावापुरी मे उनका निर्वाण हुआ*। बुद्ध और उनकी शिक्षा मे मुख्य भेद यह है कि बुद्ध जहाँ मध्यम मार्ग का उपदेश देते थे, वहाँ महावीर तप और कृच्छ्र तप को जीवन-सुधार का एक मुख्य उपाय मानते थे। महावीर का अहिंसावाद भी अन्तिम सीमा तक पहुँचा था, बुद्ध उस बारे मे भी मध्यम-मार्गी थे। दोनों वेद और ईश्वर को न मानते थे। मगध आदि देशों मे महावीर की शिक्षा जल्द फैल गयी, कलिंग उनके जीते जी उनका अनुयायी हो गया। राजपूताने में उनके निर्वाण के एक शताब्दी बाद ही उनके मत की जड जम गयी। जैनो का पवित्र साहित्य भी काफी बडा है, और वह अवध या कोशल की पुरानी प्राकृत अर्धमागधी मे है।

§३ **बुद्ध-युग का आर्थिक जीवन**—वैदिक काल से अब तक भारतवासियो के जीवन मे बड़ा परिवर्तन हो गया था। उस काल मे आर्यों की मुख्य जीविका पशुपालन और कृषि थी, अब शिल्प और व्यापार भी उनके बराबर बढ गये थे। कृषि में भी उन्नति हो चुकी थी। अब आराम और उद्यान (बगीचे) प्राय. हर बस्ती में लग चुके थे। कपास के पौधे का ज्ञान भी आर्यों को इसी युग मे हुआ। उससे पहले ससार की अधिकाश जातियाँ कपास की खेती न जानती थीं†। उसकी खेती दूसरे सब देशों ने पहले-पहल भारतवर्ष से ही सीखी। यूनान के लोग जब यहाँ पहले-पहल आये, तो कपास देख कर बडे चकित हुए, और उसे ऊन का पौधा कहने लगे। शिल्प की उन्नति के साथ हर बस्ती मे शिल्प से जीविका चलाने वाले शिल्पियों के अलग-अलग सगठन बन गये। उन्हे श्रेणियाँ कहते थे। एक नगर के सब बढइयो की मिल कर एक "श्रेणि" होती थी। इसी तरह लोहारों, कुम्हारों, मालियों, मल्लाहों, सुनारों आदि की अलग-अलग श्रेणियाँ थीं। श्रेणि का एक मुखिया चुना जाता था जिसे प्रमुख या जेट्ठक (ज्येष्ठक) कहते थे। बनारस जैसी बडी नगरिया मे एक-एक शिल्प के गली-मुहल्ले ही अलग हो गये थे, जैसे दन्तकार-वीथी में खाली हाथी-दाँत का काम करने वाले ही रहते थे।

* १४वीं शती से आधुनिक जैन लोग इस पावापुरी को राजगृह के पास मानते आये हैं। एक पावापुरी मल्लों के देश (गोरखपुर) में भी थी।

† मोहनजो दड़ो में कपास का कपडा पाया गया है। किन्तु आर्यों के साहित्य में उत्तर वैदिक काल से पहले कपास का कहीं पता नहीं मिलता।

शिल्प के साथ-साथ स्थल और जल का व्यापार भी खूब चलने लगा। व्यापारी लोग सार्थों यानी काफिलों में चलते थे। नगरों में व्यापारियों के भी संगठन बन गये थे जिन्हें निगम कहते थे। निगम का मुखिया भी चुना जाता था और सेट्ठी (श्रेष्ठी) कहलाता था। वाराणसी, चम्पा, भरुकच्छ, शूर्पारक आदि के व्यापारी अपने जहाज ले कर सुवर्णभूमि, ताम्रपर्णी और बावेरु (बाबुल) तक जाते थे। सात-सात सौ आदमी जिनसे लम्बी यात्रा कर सकें, इतने बड़े जहाज बनने लगे थे। जहाँ पहले गाँव ही गाँव थे, वहाँ अब शिल्प और व्यापार बढ़ने के कारण बहुत सी नगरियाँ स्थापित हो गयीं थीं।

'भीटा' (जि० इलाहाबाद) की खुदाई में पायी गयी "सहजातिये निगमस" (सहजात-निगम की) मोहर*। [भा० पु० वि०]

§४ राज-काज की संस्थाएँ—ग्राम भी जहाँ पहले एक तरह के जत्थे थे, वहाँ अब वे कृषकों के संघ हो गये। जनों के राज्य जनपदों के राज्य बन गये थे, सो हम बतला चुके हैं। वैदिक काल में राष्ट्र के सामूहिक जीवन में सब से छोटी इकाइयाँ ग्राम थे। अब श्रेणि और निगम भी उसी नमूने की इकाइयाँ बन गये। श्रेणियाँ न केवल अपना आर्थिक प्रबन्ध खुद करती थीं, प्रत्युत अपने नियम-कानून बनाना, अपने सदस्यों को नियम पर चलाना और अपने मामलों का फैसला करना—सब उन्हीं के हाथ में था। यही हालत निगमों की भी थी। नगरियों का प्रबन्ध भी मुख्यतया निगमों के ही हाथ में था। इसलिए नगर की सभा भी पहले-पहल निगम ही कहलाने लगी।

*पुरानी बस्ती के दबे हुए खँडहरों से बने टीले को इलाहाबाद इलाके में भीटा कहते हैं। वह जातिवाचक संज्ञा है। उसी को पच्छिमी पंजाब में भिड़ या ढेरी, पूरबी पंजाब में थेह और भोजपुरी में भीठ कहते हैं। इलाहाबाद के पास जो भीटा है उसका पुराना नाम सहजाति था। वह चेदि जनपद में था। इस मोहर के अक्षरों की लिखावट से और खुदाई में जिस सतह से यह पायी गयी है उससे सिद्ध होता है कि यह मौर्य-युग से कुछ पहले की है।

राज-सभा में भी श्रेणियों और निगमों का बड़ा प्रभाव था। रामायण-महाभारत की ख्यातें तो पुरानी हैं, पर अब जो रामायण हमें मिलती है उसका बहुत सा हिस्सा और वैसे ही महाभारत का कुछ अंश भी लगभग ५०० ई० पू० का लिखा हुआ है। रामायण में जहाँ रामचन्द्र को युवराज बनाने के लिए राजा दशरथ की सभा का चित्र खींचा गया है, उसमें श्रेणियों के मुखियों और निगमों के श्रेष्ठियों का ऊँचा स्थान दिया है। इसी तरह महाभारत मे गन्धर्वों से हारने पर दुर्योधन कहता है कि मैं श्रेणि-मुख्यों को कैसे मुँह दिखाऊँगा। वैदिक जमाने की समिति अब न रही थी, पर इस युग के छोटे-छोटे जनपदों की अपनी परिषदें थीं, जिनमे ग्रामों, श्रेणियों आदि के लोग जमा हो कर ठहराव करते और राजा को सलाह देते थे। कई संघ-राष्ट्रों में राजा न होता था और परिषदें ही सब कुछ करती थीं। परिषदों में प्रस्ताव रखने, भाषण देने, सम्मति लेने आदि के बाकायदा नियम थे। शाक्यों की परिषद् जिस भवन में जुटती थी उसे सन्थागार कहते थे।

इस प्रकार आर्थिक और राजनीतिक जीवन में उन्नति हो जाने के कारण कानूनों की भी ज़रूरत पडी और कानून इसी युग में इकट्ठे किये गये। कानून के दो पहलू थे—धर्म और व्यवहार। धार्मिक सामाजिक जीवन का कानून 'धर्म' कहलाता था, और दीवानी और फौजदारी कानून 'व्यवहार'। मुकद्दमों का फैसला करने वाले न्यायाधीश 'वोहारिक' ('व्यावहारिक')कहलाते थे। श्रेणियों के परस्पर झगडो के फैसला करने को एक खास वोहारिक होता था।

§५. **सामाजिक जीवन**—वर्ण और आश्रम का विचार पहले-पहल किस रूप में प्रकट हुआ था, यह बतलाया जा चुका है। पर वर्ण जाति न थे। आर्यों के समाज की निचली सतह में अब कुछ अनार्य शूद्र जातियाँ भी शामिल हो गयी थीं। वे जातियाँ—निषाद, चंडाल, पुक्कस आदि—नीची गिनी जाती थीं। महाजनपदों के जमाने में क्षत्रिय लोग भी अपने को एक 'जाति' कहने लगे थे और सब से ऊँचा मानते थे। मगध के पहले साम्राज्य के अन्तिम समय में ब्राह्मण भी कहीं-कहीं अपने को 'जाति' कहने लगे थे। क्षत्रिय और ब्राह्मण कल्पित जातियाँ थी, क्योंकि वास्तव में सब क्षत्रिय और ब्राह्मण एक ही आर्य जाति के थे। बाकी सब प्रजा में कई काम और कई शिल्प ऊँचे और कई नीचे गिने जाते थे। किन्तु जात-पाँत का भेद तब तक न था। ऊँचे-नीचे लोगो में मिल कर खाना-पीना, ब्याह-शादी सब कुछ जारी था। कुछ ब्राह्मण पिछले समय में अपने को जाति ज़रूर कहने लगे, पर वे

साधारण प्रजा से अपने को अलग न कर पाये थे। क्षत्रियों में कुलीनता का विचार सब से अधिक था, पर जरूरत पड़ने पर वे भी सब धन्धे करते और सब से ब्याह-शादी कर लेते थे। ये सब बातें पालि की पुस्तकों से मालूम हुई हैं। तब दास-प्रथा भी थी, पर दास थोड़े थे और उनके साथ अच्छा बर्त्ताव होता था। वे घरेलू सेवा करते थे, खेती आदि का काम उनसे न लिया जाता था।

§६.बुद्ध-युग का साहित्य—पालि त्रिपिटक का परिचय ऊपर दिया गया है। सातवीं-छठी शती ई० पू० में भारत में बहुत सी मनोरंजक कहानियाँ प्रसिद्ध थीं। उन सब को बुद्ध के पूर्व-जन्म की कहानियों की शकल दे कर और उनका नाम 'जातक' रख कर उन्हें सुत्तपिटक के एक हिस्से में शामिल किया गया है। ५५० के करीब वे कहानियाँ संसार भर में सब से पुरानी और अत्यन्त रुचिकर हैं।

बौद्ध साहित्य के साथ-साथ वैदिक साहित्य का अन्तिम अंश भी बन रहा था। उसमें ब्राह्मणों-उपनिषदों के बाद वेदांग बने। वेदांग छः थे। उनमें से एक व्याकरण था। दूसरा निरुक्त, जिसमें यह देखा जाता था कि शब्दों का विकास और परिवर्तन कैसे हुआ। तीसरा शिक्षा, अर्थात् वर्णों या अक्षरों के उच्चारण की शिक्षा। चौथा छन्द। पाँचवाँ था ज्योतिष और छठा कल्प। ज्योतिष में गणित सम्मिलित था। कल्प के तीन हिस्से हैं—एक श्रौत, जिसमें यज्ञों की विधि कही गयी है, दूसरा गृह्य, जिसमें घरेलू संस्कारों का विधान है, और तीसरा धर्म अर्थात् धार्मिक-सामाजिक रीतियाँ और कानून।

इस प्रकार आर्यों के व्यक्तिगत, पारिवारिक और सामाजिक रहन-सहन और संस्कारों के सब नियम कल्प में हैं। वेदांगों का समय ८वीं से ५वीं शती ई० पू० तक है। व्याकरण, छन्द, ज्योतिष आदि विषय पहले तो वेद के अंग रूप में पैदा हुए, पर पीछे ये स्वतन्त्र विज्ञान बन गये। वेदांग प्रायः सब 'सूत्रों' में हैं। किसी बात को कहने के लिए जो छोटे से छोटा वाक्य बनाया जा सके, उसे सूत्र कहते हैं। ब्राह्मणों, उपनिषदों की तरह वेदांग भी आश्रमों में तैयार हुए थे।

पीछे जब वेदों से स्वतन्त्र फुटकर विद्याएँ भी चल पड़ीं, तब कई बड़े मार्के के ग्रन्थ तैयार हुए। भारतवर्ष का पहला दार्शनिक कपिल इसी युग में हुआ। तक्षशिला के आत्रेय भारतीय आयुर्वेद के पहले प्रसिद्ध आचार्य थे। कपिल और आत्रेयों के ग्रन्थ अब मूल रूप में नहीं मिलते। पच्छिमी गान्धार में पुष्करावती के पास सुवास्तु ( स्वात ) नदी के काँठे में शालातुर नामी गाँव में, जो आजकल

के यूसुफजई इलाके मे पडता है, ४०० ई० पू० के करीब व्याकरण के एक बहुत बडे विद्वान् हुए जिनका नाम पाणिनि था। पाणिनि के जोड का वैयाकरण शायद आज तक पैदा नही हुआ। पाणिनि ने सस्कृत का एक बडा पूर्ण व्याकरण सूत्रो मे लिखा जिसका नाम अष्टाध्यायी है। पाटलिपुत्र के राजा ने पाणिनि को वहाँ बुला कर उनका बडा आदर किया।

रामायण का मुख्य अश और महाभारत का कुछ अश भी इसी युग के हैं। भगवद्गीता बुद्ध के बाद लिखी गयी। वह महाभारत में और पीछे मिलायी गयी। उसका लेखक जो उपदेश देना चाहता था उसने बडे अच्छे ढग से उसे कृष्ण के मुँह से युद्ध-क्षेत्र मे कहलवा दिया है। पाणिनि की अष्टाध्यायी से पता लगता है कि उससे पहले नाटक-कला शुरू हो चुकी थी और उसपर भी सूत्र लिखे गये थे। सूद जैसे विषय पर भी सूत्र बन गये थे। जिस प्रकार धर्मों का विचार धर्म-सूत्रों मे हुआ उसी प्रकार व्यवहारों का विचार अर्थशास्त्रो मे किया गया। जातकों की कहानियो से पहले कई अर्थशास्त्र भी तैयार हो चुके थे। उपनिषदों और कपिल के सम्प्रदाय मे दार्शनिक विचार पहले-पहल शुरू हुआ था।

# चौथा प्रकरण

# नन्द-मौर्य साम्राज्य

( ३६६–२११ ई० पू० )

## अध्याय १

### नन्द साम्राज्य और अलक्सान्दर की चढाई

( ३६६–३२५ ई० पू० )

§ १. **नन्द वश**—शिशुनाक वश के राजा महानन्दी के दो बेटो ( ३७४–३६६ ई० पू० ) का अभिभावक महापद्म नन्द था। उन दोनो को मार कर वह खुद मगध की गद्दी पर बैठ गया। उसके वश मे केवल दो पीढी राज्य रहा। महापद्म एक दृढ और चतुर शासक था। मगध के साम्राज्य की शक्ति उसने पहले से अधिक बढा दी। उस साम्राज्य के अधीन जितने छोटे-छोटे जनपदो के राजा थे, उन सब की सफाई करके उसने सब जनपदों को सीधे अपने शासन मे ले लिया। इसी कारण उसे 'सर्वक्षत्रान्तक' अर्थात् सब क्षत्रियों का काल कहते थे। वह उग्रसेन भी कहलाता था। 'महापद्म' और 'उग्रसेन' दोनों असल मे उसके विरुद थे। महापद्म इस कारण कि उसके कोष मे पद्मों धन था, और उग्रसेन इस कारण कि उस की भयकर सेना थी। किन्तु वह प्रजापीडक था। उसके बेटो मे धन नन्द मुख्य हुआ। उसके समय मे मकदूनिया के राजा अलक्सान्दर ( सिकन्दर ) ने पजाब पर हमला किया, जिसके वृत्तान्त पर अब हमे ध्यान देना होगा।

§ २. **अलक्सान्दर को चढ़ाई**—यूनानी लोग भी आर्य थे, और ९वीं-८वीं शती ई० पू० से वे सभ्य होने लगे थे। प्राचीन भारतवासी उन्हे यवन कहते थे। उनके देश मे बहुत से छोटे-छोटे राष्ट्र थे। उनमे से अधिकाश सघ-राष्ट्र थे। छठी शती ई० पू० से उन्होंने बडी उन्नति की। उनके उत्तर तरफ मकदूनिया का पहाडी देश था। उसे वे बर्बर अर्थात् जगली कहते थे। किन्तु चौथी शती ई० पू० के मध्य में उसी मकदूनिया के राजा फिलिप ने सभ्य यूनान के सब छोटे-छोटे राष्ट्रों को, जो आपस मे लड़ा करते थे, जीत कर कुचल दिया।

फिलिप का बेटा अलक्सान्दर बचपन से दुनिया जीतने के सपने देखा करता था। उसके सामने कौन सी दुनिया थी? यूनान के उत्तर और पच्छिम के आधुनिक युरोप के देश तो तब निरे जगली थे। यूनानियों का उनसे बहुत कम सम्पर्क था। उन जगलियों को वे "उत्तरी हवा के लोग" कहा करते थे। किन्तु पूरब तरफ ईरान का विशाल साम्राज्य था। उसके पूरब हिन्द का नाम भी अलक्सान्दर ने सुन रक्खा था, पर उसे वह एक छोटा सा देश समझता था। उसके आगे चीन का पता उसे न था।

अलक्सान्दर
भारत में पाये जाने वाले सिक्कों पर का चित्र [दुर्गाप्रसाद-सग्रह से]

राज पाते ही अलक्सान्दर दिग्विजय को निकला। विशाल पारसी साम्राज्य अन्दर से वोदा हो चुका था। उसे उसने दो-चार ठोकरों मे ही गिरा दिया, और चार बरस (३३०–३२६ ई० पू०) में समूचा जीत लिया। ईरान का सम्राट् दारयवहु (२य) वाख्त्री की ओर भाग निकला। आमू और सीर नदी के बीच के दोआब को, जिसमें अब बुखारा-समरकन्द की बस्तियाँ हैं, ईरानी लोग सुग्ध या सुग्द कहते थे। वहाँ ईरानियों का अन्तिम पराभव हुआ। उस युद्ध में उनकी तरफ से हिन्दूकुश के उत्तर तरफ का एक पहाडी हिन्दू राजा शशिगुप्त भी लडा था। हारने के बाद वह उस समय के कायदे के अनुसार अलक्सान्दर के अधीन हो कर उसकी तरफ से लडने लगा। अलक्सान्दर जब सुग्ध में ही था, तभी उसके पास तक्षशिला के राजा आम्भि के दूत भी अधीनता का सँदेसा ले कर गये थे।

जिन यूनानी लेखकों ने अलक्सान्दर की यात्रा का हाल लिखा है, वे हिन्दूकुश के ठीक दक्खिन से उसकी भारत की चढाई शुरू करते हैं। काबुल नदी मे मिलने वाली कुनार, पजकोरा और स्वात नदियों की दूनों में जो वीर जातियाँ तब रहती थीं, उन्होंने चप्पा-चप्पा जमीन छोडने से पहले सख्त मुकाबला किया। पजकोरा को तब गौरी कहते थे। उसके पूरब 'मसग' नाम के एक किले में ६ हजार पजाबी सैनिक थे, जो अपनी स्त्रियों सहित एक-एक करके बडी वीरता से लड मरे।

सिन्ध नदी पार करने मे अलक्सान्दर को कुछ कठिनाई न हुई, क्योंकि आम्भि उसके पक्ष में था। पर गान्धार के पूरब, केकय देश का वीर राजा पुरु, सेना के साथ, वितस्ता (जेहलम) पर उसकी प्रतीक्षा कर रहा था। केकय के ठीक

उत्तर अभिसार देश* था। काबुल के उत्तरी पहाड़ों के अनेक योद्धा भाग कर वहाँ आ जुटे थे। अभिसार का राजा पुरु से मिलने की तैयारी कर रहा था। इससे पहले

उत्तर-पश्चिमी भारत सिकन्दर की चढ़ाई के समय
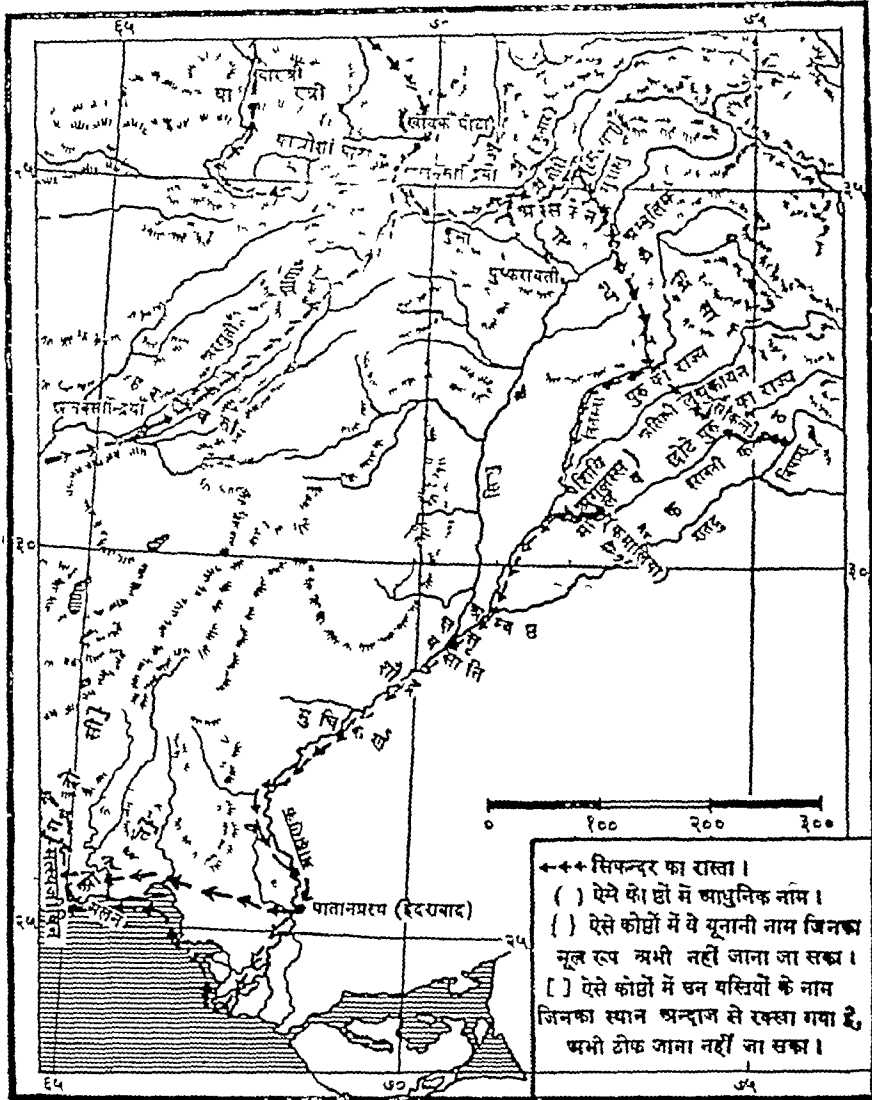
कि वे दोनों मिल पायें, सख्त गरमी की परवा न कर, अलक्सान्दर तुरन्त वितस्ता के

* आजकल की राजौरी, भिम्भर और पुंच रियासतें।

किनारे पहुँच गया। किन्तु पुरु सब घाट रोके हुए था। अलक्सान्दर ने पहले तो सेना मे ऐसी चहल-पहल रक्खी कि पुरु को रोज़ मालूम हो कि आज हमला होगा, फिर ऐसी रसद जुटानी शुरू की कि मानो अब वह महीनो वहीं टिकेगा। इस तरह पुरु जब कुछ असावधान हुआ, तब एक रात वर्षा मे चुपके-चुपके अलक्सान्दर ने अपनी फौज के बडे अश को २० मील हटा कर नदी पार कर ली। पता लगते ही पुरु भी जल्दी उधर बढा।

जम कर लडने मे अलक्सान्दर भी उसका मुकाबला न कर सकता, पर अलक्सान्दर की असल शक्ति उसके फुर्तीले सवारो मे थी। पारसी सम्राट् की तरह पुरु भागा नहीं। जब तक उसकी सेना मे जरा भी व्यवस्था रही, वह ऊँचे हाथी पर चढा लडता रहा। उसके नगे कन्धे पर शत्रु का एक बर्छा लगा। जब अन्त मे उसे पीछे हटना पडा तो आम्भि ने घोडा कुदाते हुए उसका पीछा किया, और पुकार
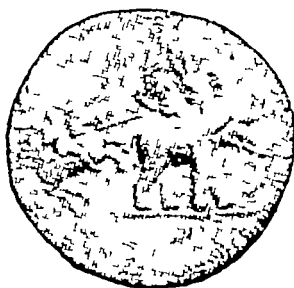
सिकन्दर-पुरु-युद्ध का स्मारक पदक—आम्भि ने घोडा कुदाते हुए उसका पीछा किया
[ दुर्गाप्रसाद सग्रह मे ]

कर उसे अलक्सान्दर का सँदेसा दिया। घायल हाथ से पुरु ने घृणित देश-द्रोही पर बर्छा चलाया, पर आम्भि बच निकला। पुरु को फिर सवारो ने घेर लिया, उनमें से एक उसका मित्र भी था। जब घायल और थका माँदा वह अलक्सान्दर के सामने लाया गया तो अलक्सान्दर ने आगे बढ कर उसका स्वागत किया, और दुभाषिये द्वारा उससे पूछा कि उनके साथ कैसा बर्ताव किया जाय। "जैसा राजा राजाओ के साथ करते हैं"—पुरु नें अभिमान से उत्तर दिया। सिकन्दर ने उसे शशिगुप्त की तरह अपनी सेना में ऊँचा पद दिया।

आगे पूरब की ओर बढते हुए अलक्सान्दर को कई छोटे-छोटे सघ-राष्ट्रों से लडना पडा। रावी और व्यास के बीच कठ नाम का राष्ट्र था, जिसकी राजधानी

साकल थी। साकल के चौगिर्द रथो के तीन घेरे बना कर कठ लोग जी-जान से लडे। बडी परेशानी के बाद, पीछे से पुरु की कुमुक आने पर, अलक्सान्दर उन्हे जीत सका, पर वह इतना खीझ गया था कि साकल नगर को उसने जीतने के बाद मट्टी मे मिलवा दिया। व्यास के तट पर पहुँचने के बाद अभी पजाब का एक बडा सघ-राष्ट्र सामने था, और उससे आगे नन्द सम्राट् भी अपनी सेना के साथ सतर्क था। अलक्सान्दर की फौज यह जान कर घबडा उठी कि अभी हिन्दुस्तान की असल शक्ति से तो मुकाबला बाकी ही है। वह बगावत कर बैठी। लाचार अलक्सान्दर को लौटने का निश्चय करना पड़ा।

वितस्ता पर वापिस आ कर भारी तैयारी की गयी। २ हजार नावो का बेडा बनाया गया। यात्रा के शकुन देख कर, नदी के बीच खडे हो, सुनहले बरतन से सिकन्दर ने भारत की नदियो और अन्य देवताओ को अर्घ्य दिया और तब जल और स्थल से उसकी सेना ने कूच किया। रास्ते मे फिर कई छोटे राष्ट्रो से मुकाबला करना पडा।

वितस्ता और रावी के सगम के नीचे रावी के दोनों तटो पर मालव-सघ का राज्य था और उसके पूरब तरफ मिला हुआ क्षुद्रको का सघ-राष्ट्र था। मालव और क्षुद्रक मिल कर लडने की तैयारी कर रहे थे। वे दोनो जातियाँ समूचे पजाब मे अत्यन्त स्वतन्त्रता-प्रेमी और लडाकू प्रसिद्ध थी। अलक्सान्दर की सेना यह जान कर कि भारत की एक सब से वीर जाति से लडना अभी बाकी है, फिर बगावत करने लगी। बडी मुश्किल से अलक्सान्दर ने उन्हे सँभाला और इससे पहले कि क्षुद्रक लोग आ पाते या मालव कृषक सेना के रूप मे जुट पाते, वह मालवो के गाँवों और नगरो पर टूट पडा। तो भी मुलतान के करीब ४० मील उत्तर-पूरब (अन्दाज़न आजकल के कोट कमालिया की जगह पर) मालवो के एक नगर ने उसका सख्त मुकाबला किया। वहाँ अलक्सान्दर की छाती मे एक बर्छा लगा जिससे वह बेहोश हो कर गिर पडा। उस समय तो वह बच गया, पर आगे चल कर वही घाव उसके जल्द मरने का कारण हुआ।

उत्तरी सिन्ध में भी कई छोटे राष्ट्रों का मुकाबला करते हुए, अन्त मे मकदूनी सेना पातन या पातानप्रस्थ नामक नगर मे पहुँची, जो आजकल के हैदराबाद की जगह पर था। वहाँ से अलक्सान्दर की कुछ सेना जलमार्ग से और बाकी स्थल-मार्ग से पच्छिम मुडी। उसके मुँह फेरते ही भारत में बलवे होने लगे।

उधर घर पहुँचने से पहले ही बाबुल में अलक्सान्दर का देहान्त हो गया ( ३२३ ई० पू० )।

विशाल ईरानी साम्राज्य को जहाँ उसने चार साल में जीत लिया था, वहाँ भारत के केवल उत्तर-पच्छिमी अंचल में उसे साढ़े तीन बरस लग गये, और यहाँ पग-पग पर सख्त मुकाबला झेलना पड़ा। वह भारत के इस अंचल पर आँधी की तरह आया और बगूले की तरह चला गया। तो भी उसने प्राचीन जातियों के बीच जो रास्ता खोल दिया वह फिर खुला ही रहा। उसके कारण प्राचीन सभ्य जातियों की कूप-मण्डूकता बहुत कुछ दूर हुई। उसने यूनानी, ईरानी और भारतीय आर्यों में बहुत से परस्पर विवाह कराके इन जातियों को मिलाने का यत्न भी किया।

---

## अध्याय २

### मौर्य साम्राज्य का दिग्विजय युग

( ३२५-२६२ ई० पू० )

§१ **चन्द्रगुप्त मौर्य और चाणक्य**—अलक्सान्दर जब तक्षशिला में था, उसके पास एक भारतीय युवक आया था, जो नन्दों के विशाल साम्राज्य को जीत लेना चाहता था। उसकी अलक्सान्दर से कुछ खरी-खरी बातें हुईं, और उसे वहाँ से भागना पड़ा। उस युवक का नाम चन्द्रगुप्त मौर्य था।

बुद्ध के समय मोरिय नाम की एक जाति का एक छोटा संघ-राज्य हिमालय की तराई में था। उसी 'मोरिय' का संस्कृत रूप मौर्य है, और इस 'मौर्य' नाम पर से यह कहानी पीछे बना ली गयी कि चन्द्रगुप्त मुरा नाम की एक दासी का बेटा था। कोई घटना ऐसी हुई जिससे मोरिय संघ के उस युवक ने प्रजा-पीडक नन्दों के वंश को उखाड फेंकने का इरादा कर लिया। नन्द राजा ने उसे मार डालने का हुक्म निकाल रक्खा था, और फाँसी का परवाना सिर पर लिये वह मारा-मारा फिरता था। उसी समय तक्षशिला में उसे एक अपने जैसा धुन का पक्का ब्राह्मण मिल गया। उस ब्राह्मण का नाम विष्णुगुप्त चाणक्य या कौटल्य था।

चाणक्य और चन्द्रगुप्त दोनों असाधारण कर्तृत्ववान्, दृढव्रती और प्रतिभाशाली थे। वे दोनो एक साथ एक ही धन्दे मे लग गये। अलक्सान्दर के मरने के बाद एक बरस के अन्दर ही चन्द्रगुप्त ने पंजाब और सिन्ध के राष्ट्रों को यूनानियों के खिलाफ उभाड दिया और अलक्सान्दर जो सेना वहाँ छोड गया था उसे मार भगाया। तब उसने उन्हीं पंजाबी राष्ट्रों से एक बडी सेना खडी करके नन्द साम्राज्य पर हमला किया* और पाटलिपुत्र को जा घेरा। नन्द सम्राट् को मार कर उसने मगध का शासन अपने हाथ मे कर लिया (३२२ ई० पू०)। चाणक्य उसका प्रधान अमात्य बना। नन्द राजा का एक मन्त्री राक्षस नाम का था, उसने उसके बाद भी चन्द्रगुप्त के विरुद्ध विद्रोह कराने के कई जतन किये, किन्तु चाणक्य की चतुराई से वे सब निष्फल हुए।

उसी समय एक और बडा शत्रु चन्द्रगुप्त पर चढाई करने आ रहा था। अलक्सान्दर के पीछे यूनानी साम्राज्य के कई टुकडे हो गये। उनमें से समूचा पच्छिमी और मध्य एशिया सेलेउक† नामक सेनापति के हिस्से मे पड़ा। उसने भारतीय प्रान्तों को वापिस लेने के ख्याल से चढाई की। पर उसे लेने के देने पड गये। चन्द्रगुप्त ने उसे हरा दिया और सेलेउक को उलटा चार प्रान्त देने पडे। वे चार प्रान्त ये थे—(१) हिन्दूकुश और काबुल का प्रदेश, (२) हरात, (३) हरहुती या अरखुती (कन्दहार)‡ और (४) गदरोसिया (कलात, लासबेला, मकरान)। हिन्दूकुश के उत्तर तरफ कम्बोज देश अर्थात् बदख्शाँ और पामीर भी मौर्य साम्राज्य के अधीन हो गया। सेलेउक ने चन्द्रगुप्त को अपनी लडकी भी व्याह दी और अपने दूत मेगास्थेने को उसके दरबार में रक्खा। चन्द्रगुप्त और चाणक्य ने मिल कर अपने साम्राज्य की सेना और शासन का प्रबन्ध भी बहुत अच्छा और मज़बूत किया।

---

* श्रीयुत काशीप्रसाद जायसवाल तथा अन्य अनेक विद्वानों का मत है कि उसने पहले मगध जीता, बाद पंजाब लिया।

† सेलेउकस् (Seleucus) में अन्तिम स् प्रथमा एकवचन का सूचक है।

‡ कन्दहार नगर जिस नदी के किनारे बसा है उसका नाम अब भी अरगन्दाब है। वह हेलमन्द (सेतुमन्त) की एक शाखा है। अरगन्द नदी का पुराना नाम अरखुता था। "अरखुता" शब्द "हरहुती" या "हरक्वती" का रूपान्तर था और वह "सरस्वती" का। जिस प्रकार "सिन्धु" से "हिन्दु" हो गया, उसी प्रकार 'सरस्वती' से 'हरहुती' हुआ। असल में उस नदी और उसकी दून का नाम तब हरहुती या हरउअती था, जिसे यूनानी अरखुता (Arachotia) बोलते थे।

§२ बिन्दुसार—चन्द्रगुप्त के बाद उसका बेटा बिन्दुसार अमित्रघात राजा हुआ ( २९८ या ३०२ ई० पू० )। उसने प्राय: २५ बरस तक अपने पिता की तरह योग्यता से शासन किया। बौद्ध साहित्य में लिखा है कि चाणक्य उसके समय
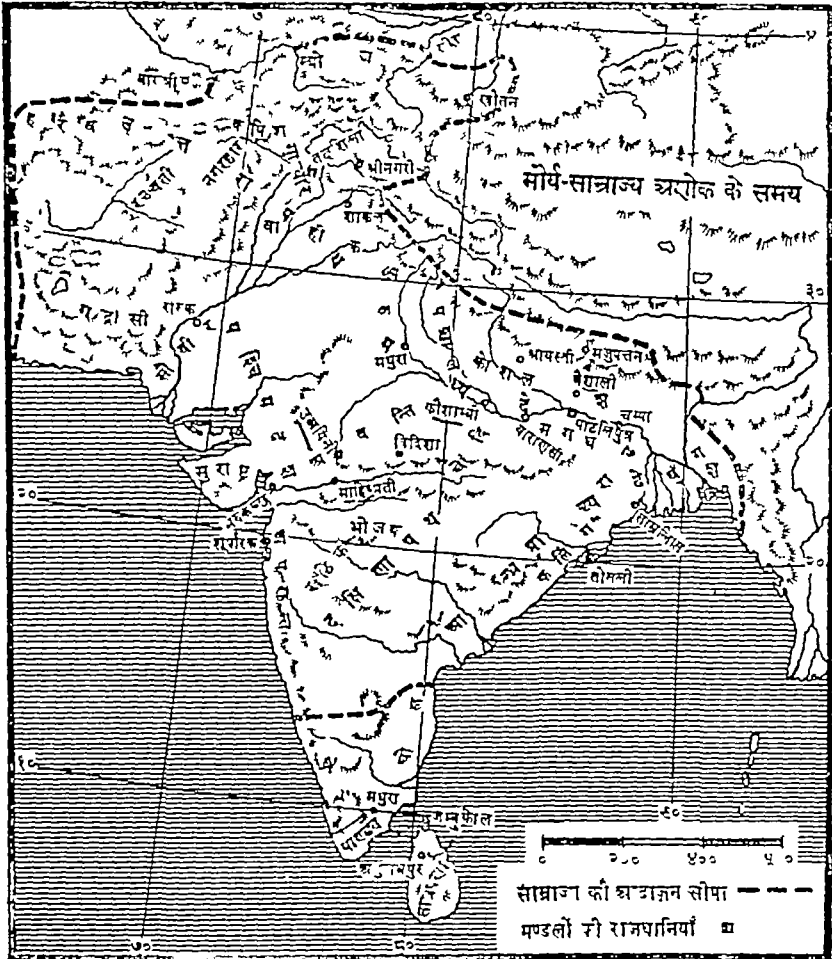
में भी प्रधान अमात्य रहा और उसने १६ राजधानियाँ जीत कर पूरब से पच्छिम समुद्र तक की भूमि बिन्दुसार के अधीन कर दी। वे १६ राजधानियाँ दक्खिनी राष्ट्रों की थीं। उनमें से आन्ध्र राष्ट्र बहुत प्रबल माना जाता था। मौर्य साम्राज्य की सीमा

तब आधुनिक कर्णाटक के दक्खिनी छोर तक पहुँच गयी थी। केवल चोल, पाड्य, चेर ( केरल ) और ताम्रपर्णी अर्थात् तामिल प्रदेश, मलबार और सिंहल—दक्खिन तरफ उसके बाहर बचे रहे।

§३. अशोक—बिन्दुसार के बाद उसका बेटा अशोक गद्दी पर बैठा। वह बचपन ही से बडे प्रखर स्वभाव का था। पिता के अधीन वह उज्जैन और तक्षशिला का शासक रह चुका था। कम्बोज से कर्णाटक तक समूचा भारत अब

राजा अशोक जुलूस में

अशोक हाथी से उतर कर खड़े हैं, उनके आगे एक कुब्जक ( बौना ) और दोनों तरफ़ चँवरधारिणियाँ हैं। उनके बायें तरफ चँवरधारिणी के पीछे रानी दीख पड़ती हैं।

[ साँची स्तूप के पूरबी तोरण की सबसे निचली बॅटेरी पर बाहर की तरफ़ के मूर्त्त दृश्य में से। ]

मौर्य साम्राज्य में समा चुका था, तो भी बंगाल, मगध और आन्ध्र के बीच तीन तरफ से घिरा कलिंग ( उड़ीसा ) राष्ट्र स्वतन्त्र ही था। वह बडा शक्ति-शाली था। उसकी हाथियों की सेना खूब सधी हुई थी।

अपने राज्य के बारहवें बरस अशोक ने उसपर चढाई की। कलिंग लोग बडी वीरता से लडे। एक लाख मारे गये, डेढ लाख कैद हुए और कई गुने पीछे बीमारी आदि से मरे। कलिंग देश मौर्यों के अधीन हो गया, पर युद्ध की घटनाओं ने अशोक के हृदय को बदल दिया। अशोक ने तब दिग्विजय के बजाय धर्म-विजय की राह पकडी। उसका वर्णन आगे किया जायगा।

सीता ( यारकन्द ) नदी के काँठे में खोतन प्रदेश में अशोक के समय एक भारतीय बस्ती बसायी गयी। खोतन कम्बोज के ठीक पूरब था। उसके विषय में हम आगे बहुत कुछ सुनेंगे।

§४ मौर्य्य साम्राज्य का शासन-प्रबन्ध—मौर्य्य साम्राज्य का शासन-प्रबन्ध बहुत ही व्यवस्थित था। उसका हाल हमें मेगास्थेने के लिखे हुए वर्णन से, कौटल्य के लिखे अर्थशास्त्र नाम के ग्रन्थ से और अशोक के खुदवाये हुए लेखों से मिलता है।

मौर्य्य सम्राट् अपने को केवल 'राजा' कहते थे और अपने साम्राज्य को 'विजित'। राजा 'विजित' का शासन मन्त्रियों और परिषद् की सहायता से करता था। समूचा विजित इन पाँच मडलों में बँटा था जो शायद 'चक्र' कहलाते थे—( १ ) मध्यदेश या मध्य-मडल, ( २ ) प्राची, ( ३ ) दक्षिणापथ, ( ४ ) अपर जनपद या पच्छिम-देश और ( ५ ) उत्तरापथ। आजकल हिन्दी भाषा का जो क्षेत्र है, करीब-करीब उसी को प्राचीन लोग मध्यदेश या मध्यमडल कहते थे। उसके पूरब कलिंग, बगाल आदि 'प्राची' अर्थात् पूरबी देश कहलाते थे। नर्मदा के दक्खिन 'दक्षिणापथ' था। मारवाड, सिन्ध, गुजरात और कभी-कभी उनके साथ मालवा तथा कोंकण भी मिला कर 'अपर-जनपद' या 'पश्चिम देश' कहलाता था। पजाब, कश्मीर, काबुल आदि 'उत्तरापथ' में गिने जाते थे।

मध्यदेश का शासन पटना से होता था, उत्तरापथ का तक्षशिला से और पच्छिमी चक्र का उज्जैन से। दक्षिणापथ की राजधानी सुवर्णगिरि थी। वह ठीक कहाँ थी सो अभी तक मालूम नहीं हो सका। कलिंग ही पूरब प्रान्त था, उसकी राजधानी तोसली थी, जिसकी जगह पर अब पुरी जिले का धौली कस्बा है। इन राजधानियों में राजा की तरफ से कुमार ( राजकुमार ), महामात्य ( सचिव ) या "राजुक' शासन का निरीक्षण करते थे।

प्रत्येक चक्र के निरीक्षण मे कई-कई जनपद थे। जनपद वही थे जो पुराने चले आते थे। उन जनपदों की अपनी-अपनी राजधानियाँ थीं, जिनमे राजकीय महामात्य प्रजा की परिषद् की सहायता से शासन करते थे। उदाहरण के लिए पाटलिपुत्र-मडल के निरीक्षण मे कौशाम्बी एक जनपद की राजधानी थी। कई जनपदो का सीधा शासन राजा के अधीन था, अर्थात् उनके निरीक्षण के लिए राजकीय महामात्य नियुक्त थे, कई और अपने अन्दर के प्रबन्ध मे सर्वथा स्वतन्त्र थे। आन्ध्र, विदर्भ और कम्बोज आदि साम्राज्यान्तर्गत स्वतन्त्र राष्ट्र थे।

चन्द्रगुप्त मौर्य की जनपद शासन-शैली का नमूना—सहगौरा (जि० गोरखपुर) से पाये गये इस ताम्रपत्र पर यह लेख है, "श्रावस्ती के महामात्यों का मानवसाति शिविर से हुक्म—अमुक गाँवों के ये अनाज के कोष्ठागार केवल सूखा पडने पर किसानों को बाँटने के लिए हैं, अकाल के समय ये रोके न जायँ।" इस ताम्रपत्र के ऊपर वही चिन्ह हैं, जो चन्द्रगुप्त मौर्य के सिक्कों पर पाये गये हैं। [भा० पु० वि०]

प्रत्येक जनपद का अपना-अपना 'धर्म' और 'व्यवहार' अर्थात् कानून था। ग्रामों, श्रेणियों, नगरों के निगमों तथा जनपदों की परिषदे जो नया कानून बनातीं, वह 'चरित्र' कहलाता था। विशेष दशा मे राजा अपने 'शासन' से उन धर्मों, व्यवहारों और चरित्रों मे रद्दोबदल कर सकता था। जनपदों के अपने-अपने "शील, वेश, भाषा और आचार" थे, तथा प्रत्येक जनपद का एक अपना देवता, अपने

उत्सव और अपने "समाज" ( खेलों की प्रतियोगिताएँ या टूर्नामेन्ट ) होते थे। प्रजा में अपने-अपने जनपद के लिए भक्ति और अभिमान का भाव उत्कट रूप से था।

जनपदों के अन्दर फिर दो तरह के इलाके थे। एक तो वे जिन का ठीक-ठीक बन्दोबस्त हो चुका था। वे आहारों यानी जिलों में बँटे थे। दूसरे जंगली इलाके थे, जो कोट्ट-विषय अर्थात् किलों के क्षेत्र कहलाते थे। एक-एक कोट या किले के चौगिर्द जो जंगली इलाका था उसका शासन उसी किले से चलता था।

ग्रामों और श्रेणियों के राजनीतिक अधिकारों को मौर्य साम्राज्य ने बहुत कुछ दबाने का जतन किया। पुराने बन्दोबस्त हुए जनपदों के गाँवों तक में कर की वसूली, रक्षा, न्याय आदि का काम राजकीय 'पुरुष' यानी अफसर करते थे। गाँवों के शासक 'गोप' कहलाते थे। कस्बों और शहरों में दो किस्म के सरकारी न्यायालय थे। एक कंटक-शोधन यानी फौजदारी, दूसरे धर्मस्थ यानी दीवानी। प्रत्येक जनपद के शासन में और बहुत से महकमे भी थे। वसूली, न्याय आदि के सिवाय सिंचाई, जंगल, खानों आदि के महकमे प्रजा की भलाई और राज्य की आमदनी बढ़ाने को थे। कुछ सामाजिक महकमे भी थे, जैसे शराब-खानों की देख रेख का महकमा।

सुराष्ट्र ( काठियावाड़ ) में गिरनार के पास पहाड़ी नदियों को बाँधों से रोक कर चन्द्रगुप्त ने सिंचाई के लिए एक बड़ा ताल बनवाया था। पटना और भिन्न-भिन्न जनपदों के बीच सड़कों का एक जाल सा बिछा दिया गया था। मनुष्यों और पशुओं के लिए सरकारी चिकित्सालय थे। मनुष्य-गणना होती थी और वर्षा का माप रक्खा जाता था। हत्या आदि के मामलों में 'आशु-मृतक-परीक्षा' यानी शव-परीक्षा करने की रीति जारी थी। ये बातें उस जमाने में संसार का और कोई राज्य न जानता था। मौर्यों का गुप्तचर और सेना विभाग बहुत मजबूत था। सेना के छः महकमे—पैदल, सवार, हाथी, रथ, जलसेना और रसद के—थे। वे एक-एक छोटे वर्ग के अधीन होते थे।

पाटलिपुत्र नगर के प्रबन्ध के लिए प्रजा स्वयम् ३० आदमियों की एक सभा नियुक्त करती थी। उस सभा के पाँच-पाँच आदमी बँट कर छः छोटे वर्ग बन जाते थे, जो एक-एक महकमे की देख-रेख करते थे। उनमें एक महकमा विदेशियों की और एक शिल्प की देख-रेख के लिए भी था। पाटलिपुत्र उस समय संसार में सब से बड़ा नगर था। उसमें बहुत से विदेशी आ कर रहते थे। विजित की दूसरी नगरियों का प्रबन्ध भी उसी तरह चलता होगा।

दंड-विधान कठोर था, पर मौर्यों ने अपने से पहले दंड-विधान को बहुत कुछ नरम करने का जतन किया था। कारीगर का हाथ या आँख

मौर्ययुगीन पाटलिपुत्र की लकड़ी की इमारतों के खंडहर [ फोटो पटना म्यूज़ियम ]

बेकार कर देने वाले को फाँसी मिलती थी। सिंचाई के तालाब का बाँध तोड़ने वाले को वहीं डुबा दिया जाता था। मेगास्थेने लिखता है, 'भारतवर्ष

के लोग कभी झूठ नहीं बोलते, मकानों में ताले नहीं लगाते और अदालतों में बहुत कम जाते हैं।'

यूनान आदि में दास-प्रथा इतनी अधिक थी कि खेती-बारी और मेहनत-मज़दूरी सब दासों से कराई जाती थी। एक-एक स्वतन्त्र गृहस्थ के पाँच पाँच सौ तक दास होते थे, जिनके साथ पशुओं का सा बर्ताव होता था। पर भारत में यह बात न थी। इसी कारण मेगास्थेने लिखता है कि भारत में दासता न थी। कौटल्य भी लिखता है, "म्लेच्छों को अपनी सन्तान बेचने या धरोहर रखने से दोष नहीं लगता, पर आर्य कभी दास नहीं हो सकता।" घरेलू सेवा के लिए जो थोड़ी-बहुत दासता थी, उसे भी कौटल्य ने बिलकुल उठाने की चेष्टा की। उसने "आर्य-प्राण" शूद्रों की—अर्थात् उन शूद्रों की जिनमें आर्य रक्त मिला हुआ था—बिक्री आदि पर सख्त बन्धन लगा दिये और ऐसे नियम बनाये कि दास लोग बहुत आसानी से "आर्य" यानी स्वतन्त्र भारतवासी बन सकें। प्रत्येक भारतवासी को स्वतन्त्र बनाने के कौटल्य के ये जतन ऐसे थे जिनके लिए आज भी हम आदर के साथ उसका नाम लेते हैं।

---

## अध्याय ३

## अशोक की धर्म-विजय और पिछले मौर्य-सम्राट्

### ( २६५-२११ ई० पू० )

§ १ अशोक के सुधार—कलिंग-विजय के बाद अशोक के मन में भारी 'अनुशोचन' हुआ। उसने अनुभव किया कि "जहाँ लोगों का इस प्रकार वध, मरण और देशनिकाला हो, वहाँ जीतना न जीतने के बराबर है।" उसने निश्चय किया कि अब वह ऐसी विजय न करेगा। अपने बेटों-पोतों के लिए भी उसने यह शिक्षा दर्ज की कि वे "नयी विजय न करें और जो विजय बाण खींच कर ही हो सके, उसमें भी क्षमा और लघुदण्डता से काम लें। धर्म के द्वारा जो विजय हो उसी को असल विजय मानें।" दक्खिनी सीमा के राज्यों के विषय में उसने

अपने अधिकारियो को लिखा, "शायद आप लोग जानना चाहे कि सीमा पर के जो राज्य अभी तक जीते नहीं गये हैं, उनके विषय मे राजा क्या चाहता है। मेरी · · यही इच्छा है कि वे मुझसे डरें नहीं, मुझपर भरोसा रक्खें · वे यह माने कि जहाँ तक क्षमा का वर्ताव हो सकेगा राजा हमसे क्षमा का वर्ताव करेगा।"

अपने राज्य के अन्दर भी उसने बहुत सुधार किये। प्राचीन भारत मे जानवर लडा कर तमाशा देखने का व्यसन बहुत प्रचलित था। उसे 'समाज' यानी इकट्ठा हाँकना कहते थे। अशोक ने अपने यहाँ वह बन्द कर दिया और प्रजा को भी वैसा करने का उपदेश दिया। जो पशु-पक्षी केवल विनोद के लिए मारे जाते थे, उनकी हत्या भी उसने रोक दी। राजा लोग विहार-यात्राएँ करते थे। अशोक ने उसके बजाय धर्म-यात्रा शुरू की, जिसमे वह प्रजा की भलाई के उपाय करता था। अपने राजपुरुषो पर उसने कडी निगरानी की कि वे प्रजा को पीडित न कर पावे। उसने उनसे ताकीद की कि एक भी निरपराध आदमी को उनकी बेपरवाही से कष्ट न हो। जगह-जगह मनुष्यो और पशुओं के लिए चिकित्सालय बनवाये और कुएँ खुदवाये। सडकों पर पेड लगवाये। सब पन्थों के लोग आपस मे सहिष्णुता और प्रेम से रहे, ऐसी शिक्षा देने के लिए उसने "धर्म-महामात्य" नियुक्त किये। उसने लिखा, "प्रियदर्शी राजा ( अशोक ) चाहता है कि सब पन्थ वाले सब जगह आबाद हो। वे सभी सयम और भाव-शुद्धि चाहते हैं। सब पन्थों की सार-वृद्धि हो इसका मूल वचोगुप्ति ( वाणी का सयम ) है जिसमे अपने पन्थ वालों का अति आदर और दूसरों की निन्दा न की जाय।"

§२. धर्म-विजय की नयी नीति—किन्तु अशोक ने विजय की नीति न छोड दी थी। दिग्विजय के बजाय उसने अब "धर्म-विजय" शुरू की। वह एक नयी और विचित्र नीति थी। उसने न केवल अपने विजित मे, प्रत्युत चोल, चेर, पाड्य और सिंहल मे, तथा दूसरी तरफ पडोस और दूर के सब यूनानी राज्यो मे भी, चिकित्सालय बनवाये और रास्तो पर पेड लगवाये। इन यूनानी राज्यों के नाम अशोक ने अपने लेखों मे दिये हैं। इनसे प्रतीत होता है कि समूचे मध्य और पच्छिमी एशिया, मिस्र, उत्तरी आफ्रिका और यूनान तक अशोक के ये धर्म-विजय के कार्य फैले हुए थे।
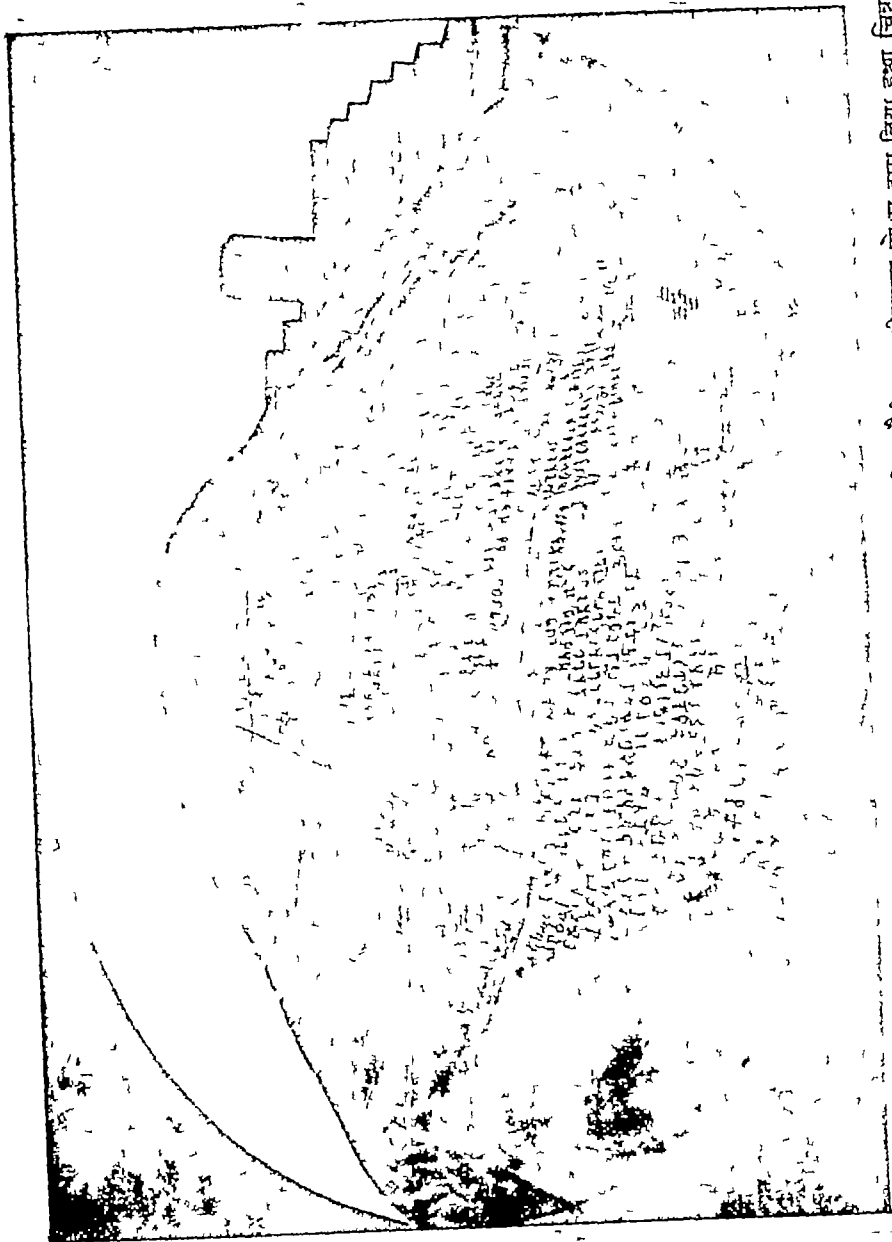
गिरनार की चट्टान पर अशोक के खुदवाये हुए लेख—सन् १८९० में म० म० पंडित गौरीशंकर हीराचन्द ओझा द्वारा लिया हुआ चित्र

इसके अलावा अशोक ने बौद्धों की तीसरी 'संगीति' बुलवायी। उसकी तरफ से उसने इन सब देशों में भिक्षु प्रचारक भेजवाये। उन प्रचारकों के कार्य-क्षेत्रों को चार हिस्सों में बाँटा जा सकता है—

( १ ) सब से पहले दक्खिन भारत और सिंहल। सिंहल में अशोक का बेटा महेन्द्र और उसकी बहन संघमित्रा, जो भिक्षु और भिक्षुणी हो गये थे, गये। वहाँ उन्होंने विजय के वंशज राजा तिष्य को उसके साथियों सहित बौद्ध बनाया। उन लोगों ने बोधि-वृक्ष की एक शाखा सिंहल के लिए मँगवायी। अशोक ने उसे स्वयम् काट कर बंगाल के ताम्रलिप्ति ( तामलूक ) बन्दरगाह से जहाज में भेजा

और अनुराधपुर मे वह शाखा लगायी गयी। महेन्द्र और सघमित्रा ने सिंहल मे जो बौद्ध धर्म का पौधा लगाया, वह भी बोधि-वृक्ष की उस शाखा की तरह धीरे-धीरे एक विशाल वृक्ष बन गया।
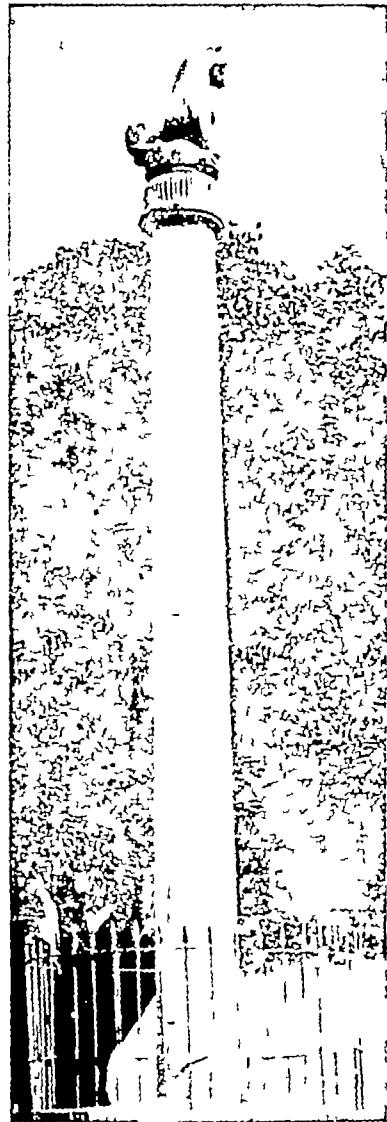
अशोक का एक स्तम्भ—लौड़िया नन्दनगढ (जि० चम्पारन) में [भा० पु० वि०]

(२) उत्तर तरफ गान्धार, कश्मीर, कम्बोज आदि देशो मे भिक्षु भेजे गये।

(३) इसी प्रकार पूरबी हिमालय के किरात लोगो मे और सुवर्णभूमि के असभ्य आग्नेय लोगो मे भी धर्म-प्रचार के लिए भिक्षु गये।

(४) भिक्षुओ का एक दल पच्छिम के यवन राज्यो मे गया। उन्होने पच्छिम एशिया मे बुद्ध का सन्देश पहुँचाया। अशोक के अढाई सौ बरस पीछे उसी पच्छिम एशिया के फिलिस्तीन देश मे महात्मा ईसा प्रकट हुए, जिनकी शिक्षाएँ भगवान् बुद्ध की शिक्षाओ से बहुत मिलती-जुलती हैं। ईसा की मातृभूमि मे बुद्ध की शिक्षाएँ अशोक ने ही पहुँचायी थी।

यह समझ लेना चाहिए कि अशोक ने अपने जमाने के सारे सभ्य ससार की 'धर्म-विजय' करने की चेष्टा की थी। उस समय ससार मे यूनानी, भारतीय और चीनी—इन तीन ही सभ्य जातियो के राज्य थे। यूनान के पच्छिम रोम के लोग अभी सभ्यता सीखने ही लगे थे। अशोक ने चीन मे अपने भिक्षु न भेजे, इसका कारण शायद यह था कि भारतवर्ष और पच्छिम के लोग उस समय तक चीन को न जानते

थे। चीन और भारत के बीच सुवर्णभूमि ( हिन्द-चीन प्रायद्वीप ), तिब्बत और तारीम काँठे के विशाल देश हैं। वे तीनों उस समय तक इतने जंगली थे कि उनके आरपार लाँघ कर चीन और भारत का परस्पर सीधा परिचय न हुआ था। सुवर्णभूमि, पूरबी हिमालय और कम्बोज देश के लोग भारत-वासियों की दृष्टि में सभ्य जगत् के अन्तिम छोरों पर रहते थे। इसलिए जितने संसार को भारतीय जानते थे, उसके अन्तिम किनारों तक अशोक ने अपने धर्म-विजय की चढ़ाइयाँ की थीं।

§३ अशोक की इमारतें—अशोक का नाम उसकी इमारतों और उसके लेखों के कारण भी प्रसिद्ध है। उसने पहाड़ी चट्टानों पर और पत्थर के खम्भों पर लेख खुदवाये जिनमें से बहुत से अब तक मौजूद हैं। चट्टानों पर के लेख पेशावर और हजारा जिले में, काठियावाड़ और उड़ीसा में और देहरादून से मैसूर और हैदराबाद तक मिले हैं। लेखों वाले मुख्य खम्भे छः हैं जो दिल्ली, प्रयाग और चम्पारन जिले में हैं। कुछ गौण खम्भे भी हैं जिनमें से एक लुम्बिनी में है। ये खम्भे कारीगरी के अनोखे नमूने हैं। प्रत्येक ४०-५० फुट ऊँचा और एक ही पत्थर में से कटा हुआ है। उनकी पालिश की चिकनाई और चमक भी ज्यों की त्यों बनी है। वे सब मिर्जापुर-चुनार के पत्थर के हैं और वहीं से सब जगह भेजे गये थे। दिल्ली में फीरोजशाह के कोटले पर अशोक का जो खम्भा लगा है, उसे फीरोजशाह
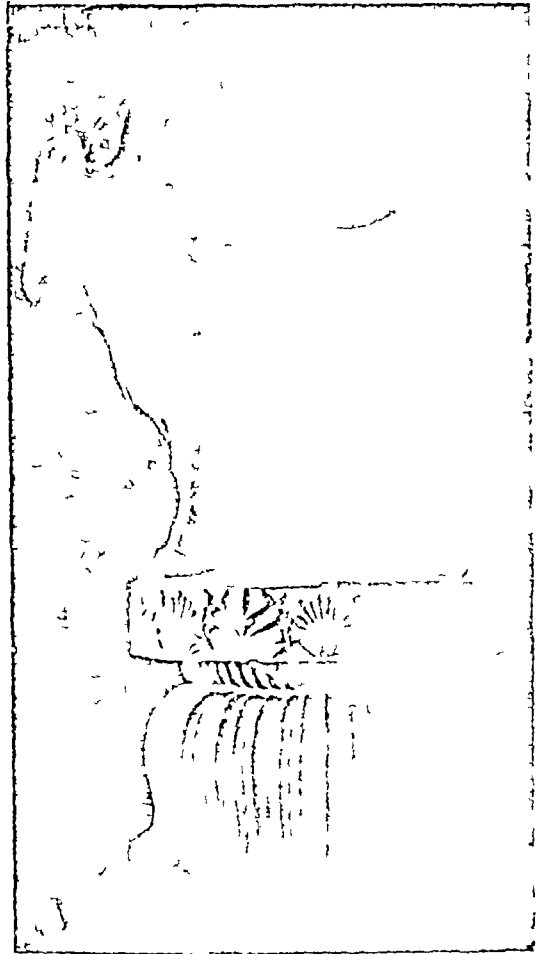
रामपुरवा ( जि० चम्पारन ) के अशोक स्तम्भ पर की वृष-मूर्त्ति [ भा० पु० वि० ]

तुगलक अम्बाला के पास से वहाँ उठवा लाया था। उस एक खम्भे को रस्सों से खींचने के लिए ८,४०० आदमी लगे थे, और सिर्फ डेढ सौ मील ले जाने के लिए बडा इन्तजाम करना पडा था। अशोक के इञ्जीनियरों ने उन्हें चुनार से इतनी दूर
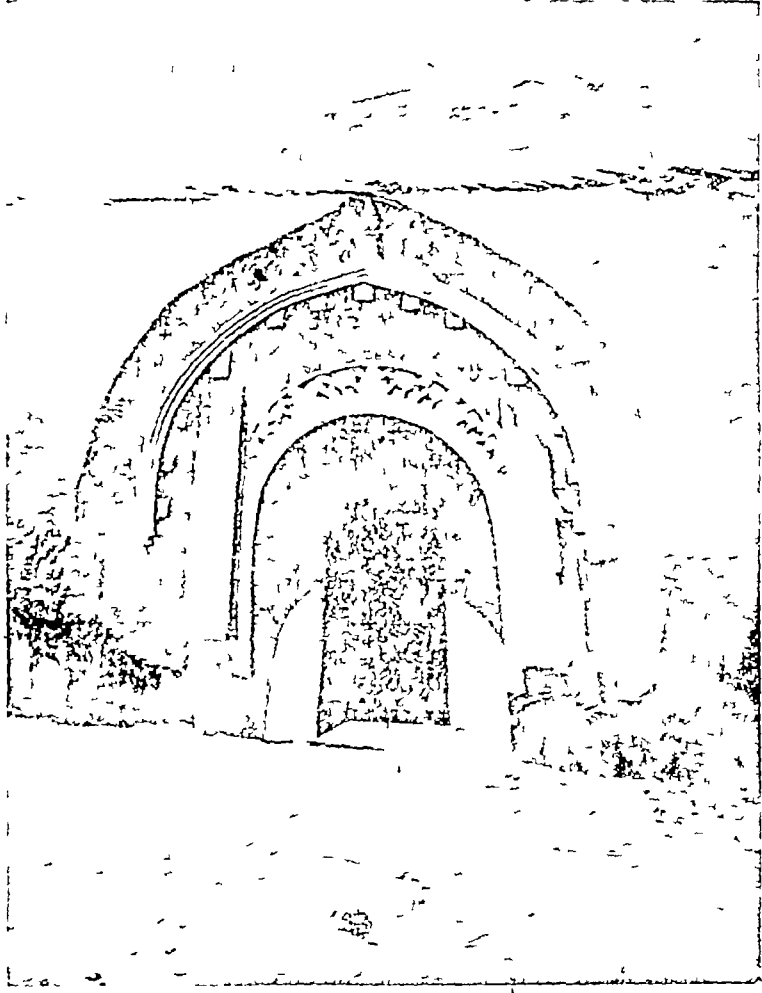
बराबर पहाडा (जि० गया) की चट्टान में राजा दशरथ द्वारा कटवायी गयी गुहा, जो लोमश ऋषि की गुफा के नाम से प्रसिद्ध है। [ भा० पु० वि० ]

कैसे भेज दिया सो कुछ कम अचरज की बात नहीं है। उन खम्भों के ऊपर जो सिंह आदि की मूर्तियाँ हैं, वे भी बहुत बढिया कारीगरी की हैं।

अशोक ने कितने ही स्तूप बनवाये, और बुद्ध की धातुओं ( फूलों ) को आठ मूल स्तूपों में से निकलवा कर उन सब में बाँट दिया। आजकल के काफिरिस्तान का पुराना नाम कपिश है। कपिश की राजधानी कापिशी में अशोक का बनवाया हुआ एक सौ फुट ऊँचा स्तूप छठी शती ई० तक मौजूद था। काबुल और पेशावर के बीच जलालाबाद शहर है, जिसका इलाका अब निग्रहार कहलाता है। उसका पुराना नाम नगरहार था। वहाँ भी अशोक का बनवाया हुआ तीन सौ फुट ऊँचा एक स्तूप था। कश्मीर की राजधानी श्रीनगरी और नेपाल की पुरानी राजधानी पाटन या मंजुपत्तन भी अशोक ने स्थापित की थीं। नेपाल में अशोक की बेटी चारुमती और उसका पति देवपाल जा बसे थे।
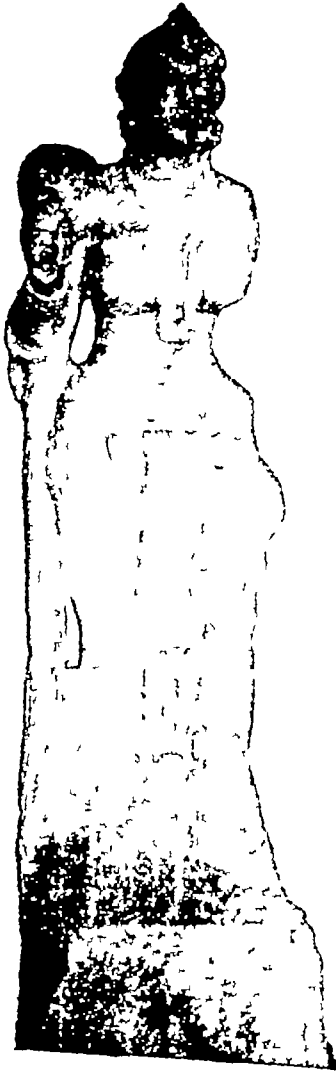
चँवर-धारिणी
पिछले मौर्य युग की कारीगरी का नमूना—दीदारगंज (जि० पटना) में पायी गयी मूर्त्ति। [पटना म्यूजियम]

§४. पिछले मौर्य्य सम्राट्—अशोक के बाद उसके बेटे कुनाल ने राज्य किया, फिर क्रम से कुनाल के दो बेटों दशरथ और सम्प्रति ने। वे तीनों योग्य राजा थे। उनका शासन २५ बरस रहा और २११ ई० पू० में समाप्त हुआ। सम्प्रति ने जैन धर्म के लिए वही काम किया जो अशोक ने बौद्ध धर्म के लिए किया था।

§५. मौर्य्य भारत की सभ्यता—मौर्य्यों के समय में भारतवर्ष की समृद्धि और सभ्यता पहले मगध-साम्राज्य के समय से और आगे बढ़ गयी। शिल्प की उन्नति के कारण देश का धन खूब बढ़ा। पाटलिपुत्र उस समय संसार में सब से बड़ा नगर था। उसी समय क्या, सारे प्राचीन काल में उतना बड़ा कोई और नगर नहीं हुआ। उसका घेरा २१½ मील का था।

चारों तरफ लकडी का परकोटा था, जिसमें ६४ दरवाजे और ५७० गोपुर थे। दूर-दूर के देशों के लोग वहाँ आते थे।

मौर्य युग का साहित्य प्राय पिछले युग की तरह था। सूत्र-शैली में ग्रन्थ लिखना जारी था। बौद्ध धर्म के प्रचार की कहानी हम कह चुके हैं। मेगास्थेने के लेख से जान पडता है कि शूरसेन ( मथुरा ) के लोग अब कृष्ण वासुदेव को देवता की तरह पूजने लगे थे। मौर्य्य युग का समाज भी पिछले हिन्दू समाज की अपेक्षा वैदिक समाज से अधिक मिलता-जुलता था। स्त्रियों को पूरी स्वतन्त्रता थी। आवश्यकता होने पर, धर्मस्थ की इजाज़त ले कर, वे विवाह का 'मोक्ष' ( तलाक ) करवा सकती थीं। उन्हें दायभाग भी मिलता था।

पृथिवी माता ?

नन्दनगढ की खुदाई से पायी गया सोने की पत्री पर अंकित मूर्त्ति, असल साइज़।
नन्द-युग की कारीगरी का नमूना।
[ भा० पु० वि० ]

# पाँचवाँ प्रकरण

# सातवाहन-युग

( लगभग २१० ई० पू० से १७६ ई० )

## अध्याय १

### यवन और शुंग राजा

( लगभग २१०—१०० ई० पू० )

§१. दक्खिन और कलिंग मे सातवाहन और चेदि-वंश—सम्प्रति के बाद के मौर्य राजा निकम्मे और कर्त्तव्यविमुख निकले। उन्होंने अपनी कमजोरी को अशोक वाली क्षमानीति का ढोंग करके छिपाना चाहा। २१० ई० पू० मे उनका साम्राज्य टूटने लगा, और भारतवर्ष के चार मडलों—मध्यदेश, पूरब, दक्खिन और उत्तरापथ—मे नये राज्य उठ खडे हुए।

सबसे पहले दक्खिन और पूरब के मडल स्वतन्त्र हुए। दक्खिन मे सिमुक नाम के एक ब्राह्मण ने अपना राज्य स्थापित किया। उसके वश का नाम सातवाहन* था। सातवाहनो का राज्य शुरू मे महाराष्ट्र मे था, पीछे आन्ध्र में भी हो गया। तब वह वश आन्ध्र वश भी कहलाने लगा। इस वश का राज्य अनेक उतार-चढावों के बीच करीब ४५० बरस तक बना रहा, और इस अरसे में प्राय. वह भारतवर्ष का प्रमुख राज्य रहा। इसी कारण हम इस युग को सातवाहन-युग कहते हैं।

कलिंग मे भी चेदि वश के एक क्षत्रिय ने, लगभग २१० ई० पू० में, स्वतन्त्र राज्य स्थापित किया।

§२. पार्थव और बाख्त्री राज्य—उधर उत्तरापथ मे एक नयी शक्ति खड़ी हो गयी। सेलेउक वश का जो साम्राज्य पच्छिम एशिया से मध्य एशिया तक

---

* 'सातवाहन' का एक प्राकृत रूप 'सालवाहन' है, जिसका सस्कृत रूपान्तर फिर 'शालिवाहन' किया गया है।

फैला हुआ था, वह अशोक के समय में ही टूटने लगा था। २४८ ई० पू० में ईरान उससे स्वतन्त्र हो गया। ईरान के उत्तरी पहाडी हिस्से को आजकल खुरासान कहते हैं। वहाँ पार्थव नाम की एक ईरानी जाति रहती थी, जिससे उस प्रदेश का नाम भी तब पार्थव था। पार्थव जाति के मुखिया अरसक ने ईरान को स्वतन्त्र कर अपने वंश का राज्य स्थापित किया। सातवाहनों की तरह उसके वंशजों ने भी प्राय ४५० बरस राज्य किया। पार्थवों की प्रधानता होने के कारण इस युग में सारे ईरान का नाम पार्थव ( Parthia ) ही रहा।

पार्थव देश के उत्तर-पूरब बाख्त्री ( बाह्लीक या बलख ) और सुग्द ( आमू-सीर-दोआब ) प्रदेश थे। आजकल हम उन्हें तुर्किस्तान* में गिनते हैं, पर हखामनी साम्राज्य के समय और उसके पहले से सुग्द में शक लोग रहते थे। उनकी एक शाखा अफगानिस्तान के दक्खिन-पच्छिम आ बसी थी, जिससे उस प्रदेश का नाम शकस्थान हुआ, जो अब भी सीस्तान कहलाता है। अलक्सान्दर ने बाख्त्री और सुग्द दोनों को जीता था। २५० ई० पू० के करीब वहाँ का यूनानी शासक सेलेउकी साम्राज्य से स्वतन्त्र हो बैठा। प्राय सौ बरस तक बाख्त्री ( Bactria ) में इन यूनानियों का स्वतन्त्र राज्य रहा। इनका भारतवर्ष से भी घनिष्ठ सम्बन्ध था। सेलेउकी साम्राज्य अब केवल पच्छिमी एशिया में, सीरिया के चौगिर्द, रह गया।

§३ डिमित, खारवेल शातकर्णि ( १म ) और पुष्यमित्र—२०५ ई० पू० तक काबुल दून में राजा सुभागसेन राज्य करता था। वह मौर्यों का उत्तराधिकारी था। उसके मरने पर बाख्त्री के यूनानियों ने काबुल, हरउअती और गदरोसिया को जीत लिया। फिर उन्होंने पंजाब-सिन्ध पर भी चढाई की। जब मध्यदेश में मौर्य साम्राज्य समाप्त हो रहा था उस समय बाख्त्री के राजा देमेत्रिय ( Demetrius ) ने उसपर चढाई की। मथुरा और साकेत ( अयोध्या ) को ले कर उसने पाटलिपुत्र को भी घेर लिया।

उस समय दक्खिन में सिमुक का भतीजा शातकर्णि ( १म ) राज्य कर रहा था, और कलिंग में चेदि राजा खारवेल। खारवेल शातकर्णि को दो बार

* प्राचीन इतिहास में तुर्किस्तान शब्द से खास तौर से परहेज करना चाहिए, क्योंकि उस देश में तब तुर्क थे ही नहीं, वे वहाँ बहुत पीछे आये हैं।

हरा कर, उससे वेणगंगा-वर्धा का प्रदेश छीन कर, विदर्भ पर अपनी प्रभुता जमा चुका था। देमेत्रिय या डिमित के हमले की खबर पा कर खारवेल मगध की तरफ बढ़ा, परन्तु डिमित उसके आने की ख़बर सुन कर उलटे पाँव भाग गया। खारवेल ने उसके बाद "उत्तरापथ" पर भी चढ़ाई की। वह मगध के रास्ते लौटा। उधर सुदूर दक्खिन पर भी खारवेल ने चढ़ाई की। पाड्य

रानीगुम्फा
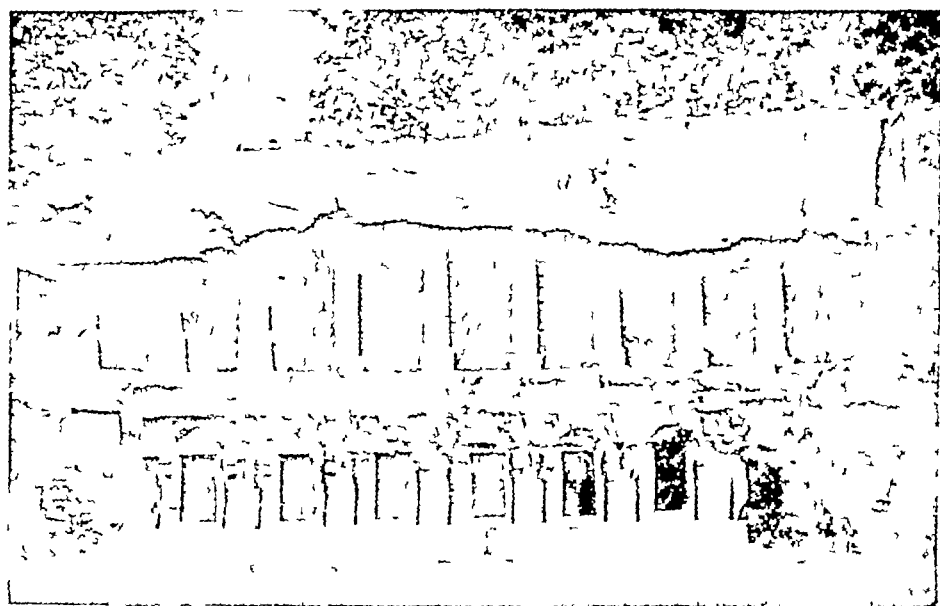
खटगिरि ( जि० पुरी ) की चट्टान में खारवेल की रानी का कटवाया हुआ गुहा-विहार

[ भा० पु० वि० ]

देश के समुद्र में मोती निकाले जाते थे। उस व्यापार के कारण पाड्य बहुत धनी थे। अब मोतियों के जहाज कलिंग के राजा के पास भेंट में आने लगे। खारवेल जैन धर्म का अनुयायी था। उसके कारनामों का वृत्तान्त पुरी जिले में भुवनेश्वर के पास हातीगुम्फा नाम की एक गुफा की चट्टान पर खुदा है।

मौर्य राज्य की निष्क्रियता से ऊब कर प्रजा और सेना बिगड उठी। सेनापति पुष्यमित्र शुंग ने समूची सेना के सामने राजा को मार कर शासन अपने हाथ में कर लिया। पुष्यमित्र ने समूचे मध्यदेश पर अधिकार करके यूनानियों से भी लड़ाइयाँ लड़ीं। मद्र देश की राजधानी शाकल (स्यालकोट) तक उसने विजय की। उसने बौद्धों का बहुत दमन किया। उसका बेटा अग्निमित्र और पोता वसुमित्र था।

वसुमित्र के हाथ एक घोडा छोड बाद मे उसने अश्वमेध भी किया। महाकवि
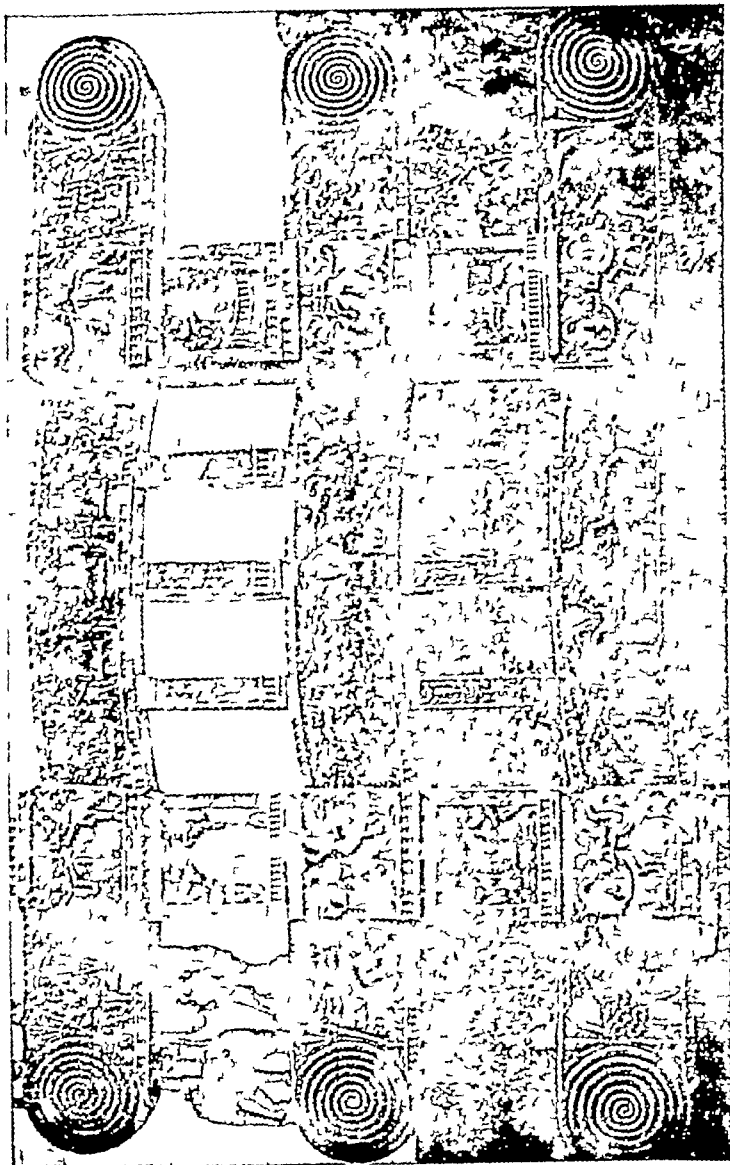
साँची स्तूप का जँगला, पूरबी तोरण की बँडेरियाँ

कालिदास ने वही वृत्तान्त मालविकाग्निमित्र नाटक मे लिखा है।

पुष्यमित्र के पीछे शुंग वंश का आधिपत्य मथुरा तक जरूर बना रहा। शुंगों के सामन्त मथुरा में, उत्तर पंचाल की राजधानी अहिच्छत्रा में, कोशाम्बी में तथा भारहुत ( बघेलखंड की नागोद रियासत में, सतना के पास ) में राज्य करते थे। शुंग राजा पाटलिपुत्र के बजाय अयोध्या में और कभी-कभी आकर-देश (पूरबी मालवा)

'कापिशिए नगरदेवता'

चित राजा एवुक्रतिद (Eucratides) का चेहरा, पट, कापिशी की नगरदेवा।

मेनन्द्र का सिक्का

चित यूनानी लेख, पट, प्राकृत लेख

[ श्रीनाथ साह संग्रह ]

की राजधानी विदिशा ( भेलसा ) में भी रहते थे। पुष्यमित्र असल में विदिशा का ही रहने वाला था। उसी विदिशा के पास साँची का प्रसिद्ध स्तूप है जिसके चारों तरफ पत्थर की सुन्दर वेदिका ( जँगला ) शुंगों के समय की या उनके कुछ पहले की बनी हुई है।

§४ यवन राज्य—उत्तर की तरफ भी अनेक उतार-चढ़ावों के बाद अफगानिस्तान और पच्छिमी पंजाब में चार छोटे-छोटे यूनानी राज्य स्थापित हो गये। एक कापिशी में, दूसरा पुष्करावती में, तीसरा तक्षशिला में और चौथा शाकल में था। इन सब राज्यों के बहुत से सिक्के अब तक मिलते हैं। उन सिक्कों के एक तरफ प्रायः यूनानी और दूसरी तरफ प्राकृत लेख होता है। कापिशी के कई सिक्कों पर "कापिशी की नगर-देवता" की मूर्त्ति रहती है और पुष्करावती के सिक्कों पर नन्दी और

भेलसा में हेलिउदोर का गरुडध्वज, जो खाम-बाबा नाम से प्रसिद्ध है।

[ फोटो, रा० सांकृत्यायन ]

"पुष्करावती देवी" की। तक्षशिला और शाकल के सिक्कों पर यूनानी और भारतीय देवताओं की मूर्तियाँ तथा बुद्ध के धर्म-चक्र आदि के निशान होते हैं। शाकल में मेनन्द्र ( Menander ) नाम का यूनानी राजा बड़ा विजेता हुआ। वह बौद्ध हो गया और उसने बौद्ध धर्म के प्रचार के लिए भी बहुत काम किया। तक्षशिला के एक यूनानी राजा अन्तलिखित का दूत शुंग राजा के पास विदिशा में गया था। वह यूनानी दूत हेलिउदोर वासुदेव ( विष्णु ) का उपासक था। वासुदेव की पूजा के लिए उसने वहाँ एक गरुड़ध्वज बनवाया, जो गरुड़ की मूर्ति के बिना अब तक मौजूद है।
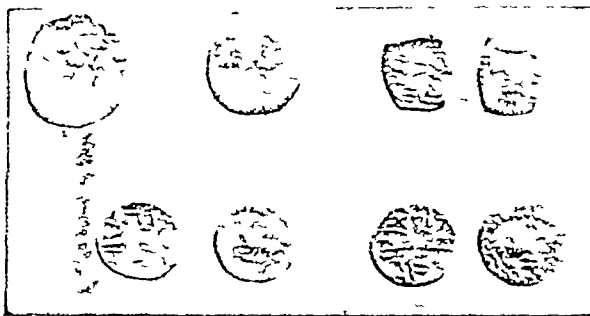
मालव गण के सिक्के
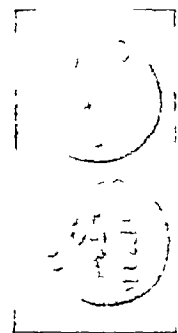
इनपर लिखा है—मालवाना जय अर्थात् मालवों का जय। बाईं तरफ से दूसरे सिक्के पर जो दो अक्षर हैं वे ज और य हैं। तीसरे सिक्के का पट तरफ मंगल-घट और निचली पांत के दोनों सिक्कों की पट तरफ नन्दा की मूर्ति है। [ इ० म्यू०, कलकत्ता ]

'पखलावदि देवदा'

चित, नन्दा की मूर्ति, लेख—उषभे (वृषभ.), पट, पुष्करावती देवी।

§५ गण-राज्यों का पुनरुत्थान—यूनानी राज्यों और शुंग साम्राज्य के बीच पूरबी पंजाब, राजपूताना और सुराष्ट्र ( काठियावाड़ ) में बहुत से संघ-राष्ट्र फिर उठ खड़े हुए। उनके सिक्के अब तक पाये जाते हैं। अब संघ के बजाय गण शब्द चल पड़ा था, क्योंकि संघ से अब बौद्ध संघ समझा जाने लगा था। सतलज के निचले काँठे पर यौधेय नाम का एक मजबूत गणराज्य था। यौधेयों के वंशज आज भी उसी इलाके में रहते और जोहिये कहलाते हैं। कुणिन्द नाम का एक शक्तिशाली गण-राज्य हिमालय की तराई में व्यास से जमना तक था। प्रसिद्ध मालव

गण यूनानियों के दबाव के कारण पंजाब छोड़ कर चम्बल के काँठे में आ बसा। दक्खिन में सातवाहन वंश का राज्य बना रहा।

मौर्यों के बाद भारतवर्ष के चार मंडलों में चार राज-शक्तियाँ उठ खड़ी हुईं, पर पच्छिमी मंडल में ऐसी कोई शक्ति न उठी। इसी कारण उसकी राजधानी उज्जैन के लिए चारों तरफ की शक्तियाँ आपस में छीन-झपट करती रहीं। प्रत्येक विजेता की उसी पर निगाह थी। कई शताब्दियों तक भारतवर्ष के इतिहास की मुख्य रंग-स्थली उज्जैन बनी रही। १०० ई० पू० में वहाँ एक नयी शक्ति प्रकट हुई जिसका वृत्तान्त आगे दिया जाता है।

कुणिन्द गण का सिक्का

[ पटना म्यूज़ियम ]

---

## अध्याय २

### शक और सातवाहन

( लगभग १०० ई० पू०—७८ ई० )

§१ मध्य एशिया में जातियों की उथलपुथल, कम्बोज वाह्लीक में 'युचि'-तुखारों का आना—हमारे देश में जिस समय अशोक राज कर रहा था, लगभग उसी समय चीन में एक बड़ा राजा हुआ, जिसने वहाँ की नौ छोटी-छोटी रियासतों को जीत कर सारे चीन* को एक कर दिया। चीन के उत्तर इर्तिश और आमूर नदियों के बीच हूण लोग रहते थे। वे प्रायः सभ्य चीनी राज्यों पर हमले करके उन्हें सताया करते थे। चीन के उस सम्राट् ने अपने देश की समूची उत्तरी सीमा पर एक मजबूत दीवार बनवा दी जिससे हूण लोग चीन के अन्दर न घुस पायँ। तब हूणों ने पच्छिम तरफ रुख किया।

* हमारा मतलब ठेठ चीन से है, न कि आजकल के चीन-साम्राज्य से जिसमें तिब्बत, मंगोलिया और चीनी तुर्किस्तान भी शामिल हैं।

तिब्बत और मगोलिया के बीच चीन का जो भाग गर्दन की तरह निकला हुआ है वह कानसू प्रान्त है। उसके पच्छिम अब चीनी तुर्किस्तान या सिमकियाङ शुरू होता है। तुर्क और हूण एक ही जाति के दो नाम हैं। कह चुके हैं कि उस समय तक उनका घर इर्तिश के पूरब था और मध्य एशिया में वे न पहुँच पाये थे। कानसू से ले कर यूनान की सीमा तक (मध्य एशिया से कास्पियन और काले सागर के उत्तर होते हुए) जो जातियाँ तब रहती थीं वे सब शक परिवार की थीं। शक लोग भी आर्य थे, किन्तु तब तक वे जगली और खानाबदोश थे। कानसू की ठीक सीमा पर शकों से मिलती-जुलती एक जाति रहती थी, जिसे चीनी लोग "युचि" कहते थे। नयी खोज से मालूम हुआ है कि सस्कृत की पुस्तकों मे उसी का नाम ऋषिक है। युचि या ऋषिकों के पडोस में, तारीम नदी के उत्तर तरफ, तुखार लोग रहते थे।

हूणों ने पच्छिम हट कर ऋषिकों पर हमले किये (१७६, १६५ ई० पू०) और उन्हे मार भगाया। ऋषिक लोग तुखारों के देश मे जा कर उनके राजा बन बैठे। फिर जब उन्हें वहाँ से भी भागना पडा, तब तुखारों को अपने साथ खदेडते हुए वे पच्छिम की ओर बढे, और थियानशान पर्वत को पार कर गये। वहा से उनकी एक शाखा दक्खिन झुक कर कम्बोज देश अर्थात् पामीर-बदख्शाँ की तरफ बढी और दूसरी शाखा ने सुग्ध दोआब मे शकों की खास बस्ती पर हमला किया। तब खानाबदोश जातियों का यह प्रवाह बाख्त्री के यूनानी राज्य पर टूट पडा, और वह राज्य समाप्त हो गया (लगभग १४० ई० पू०)। ऋषिकों की अपेक्षा तुखारों की सख्या अधिक होने से तुखारों का नाम इतिहास मे अधिक प्रसिद्ध है। प्राचीन कम्बोज देश मे ऋषिक-तुखारों के बस जाने से वह तुखारदेश या तुखारिस्तान कह-लाने लगा। यह नाम प्राय एक हजार बरस तक चलता रहा।

**§२ शकों का भारत-प्रवास**—सुग्ध से खदेडे जा कर शकों ने हिन्दूकुश पार नहीं किया। वे हरात से घूम कर, रास्ते में लूट-मार करते हुए, शकस्थान की पुरानी बस्ती मे अपने भाईबन्दों के पास जाने लगे। हरात और शकस्थान तब पार्थव राज्य मे थे, इसलिए सब से पहले पार्थवों को उनसे वास्ता पडा। दो पार्थव राजा उनसे लडते हुए मारे गये (१२८ और १२३ ई० पू०)। किन्तु उसके बाद पार्थव राजा मिथ्रदात (२य) ने उनका बुरी तरह दमन किया (१२३—८८ ई० पू०)। उसके दमन से घबडा कर उन्होंने
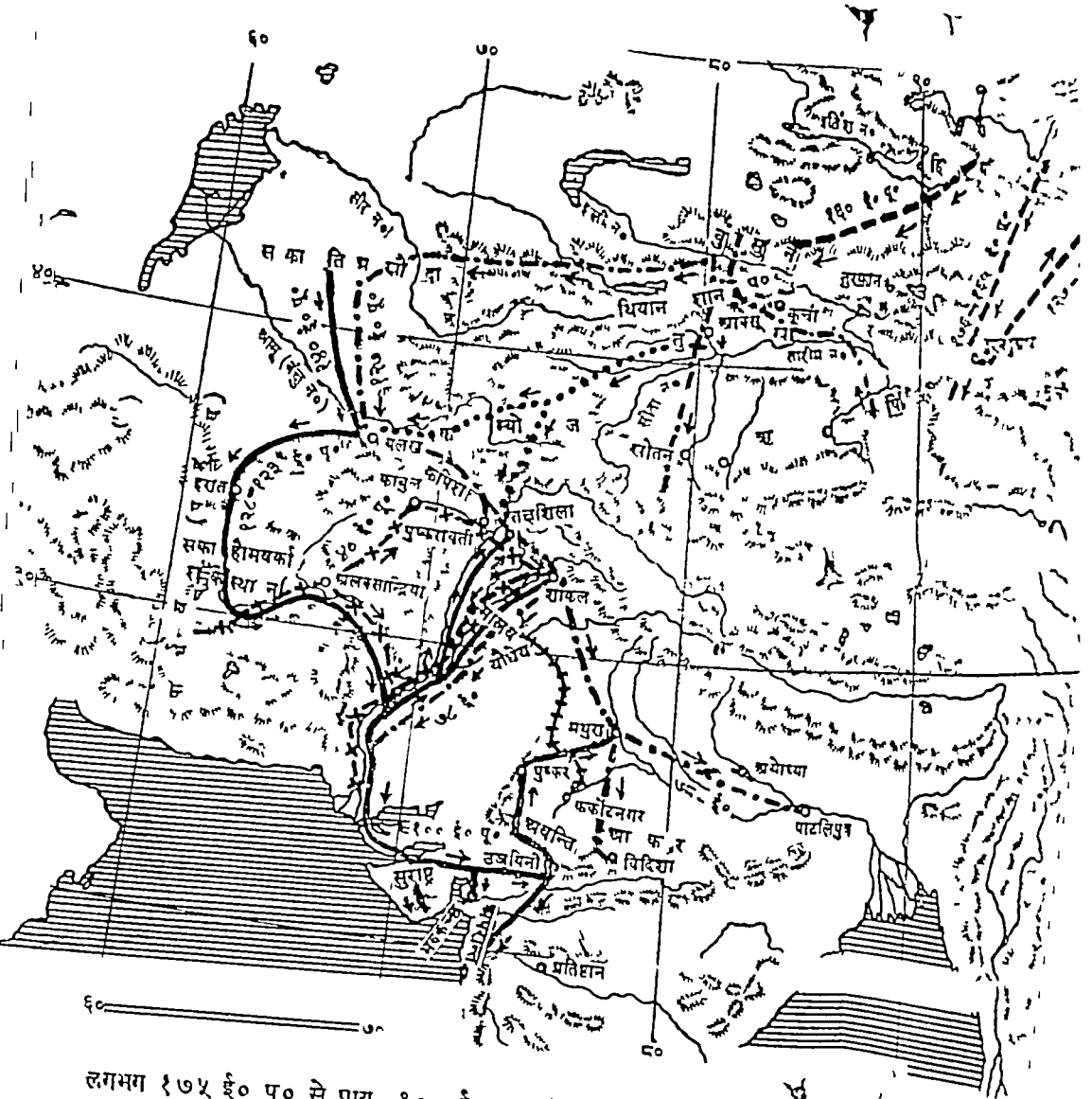
लगभग १७५ ई० पू० से प्राय १०० ई० तक ( १ ) हूणों की चढ़ाइयाँ और वापिसी, ( २ ) ऋषिकों ( तु...
का सम्मलित प्रवास, ( ४ ) शकों का प्रवास, ( ५ ) पह्लवों का राज्य विस्तार और
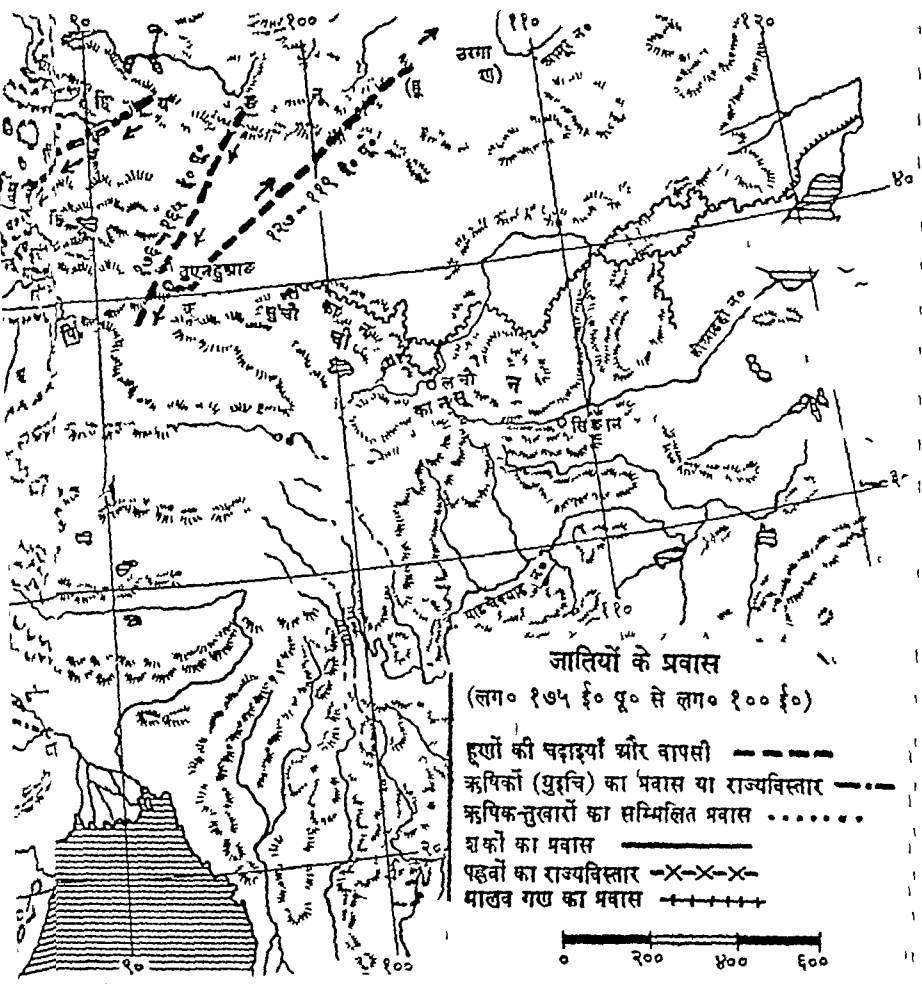
...पसी, ( २ ) ऋषिकों ( युइचि ) का प्रवास या राज्य-विस्तार, ( ३ ) ऋषिक-तुखारों
(५) ...वों का राज्य विस्तार और ( ६ ) मालव गण का प्रवास

हमारे सिन्ध प्रान्त पर अधिकार कर लिया (लगभग १२०-११५ ई० पू०)। सिन्ध मे उनकी ऐसी सत्ता जम गयी कि वह हमारे देश मे शकद्वीप* कहलाने लगा, और पच्छिमी लोग उसे हिन्दी शकस्थान (Indo-Skythia) कहने लगे। भारत मे वह शको का केन्द्र था, और वही से वे दूसरे प्रान्तो की तरफ बढे।

गौतमापुत्र के सिक्के

नहपान-वश से राज्य छीनने के बाद गौतमापुत्र ने उसके सिक्कों को अपना छाप लगा कर चलाया। इन सिक्कों पर चेहरा नहपान का है, उसके ऊपर के चिन्ह गौतमापुत्र के हैं। (दुर्गाप्रसाद सग्रह)

**§३ उज्जैन, मथुरा और पजाब मे शक**—शकों का सब से पहला धावा सुराष्ट्र (काठियावाड) और उज्जैन पर हुआ। उस घटना के विषय मे बहुत सी ख्याते प्रसिद्ध हैं। इनके अनुसार शकों ने १०० ई० पू० मे उज्जैन जीता, और ५८ ई० पू० तक वहाँ राज्य किया, तब प्रतिष्ठान से राजा विक्रमादित्य ने आ कर उन्हे निकाल दिया। इसी समय के नहपान नामक शक सरदार के सिक्के और उसके दामाद उषवदात के लेख इस इलाके मे मिलते हैं। उषवदात ने पुष्कर के पास मालव गण को हराया। दक्खिन की तरफ नहपान का अधिकार उत्तरी महाराष्ट्र और कोकण तक था। उसकी राजधानी भरुकच्छ (भरुच) थी। वह सिक्कों पर अपने को "महाक्षत्रप" कहता है, क्योकि वह सिन्ध के महाराजा का क्षत्रप अर्थात् सूबेदार था। उषवदात जैन था। नासिक और जुन्नर मे उसने बौद्ध भिक्षुओ के लिए पहाड कटवा कर कई विहार बनवाये। वैदिक ब्राह्मणों के यज्ञों के लिए भी उसने बहुत दान किये।

उज्जैन से पुष्कर होता हुआ शक राज्य मथुरा तक पहुँच गया। मथुरा से तब शुगों की सत्ता मिट गयी और इससे शुग राज्य को ऐसा धक्का लगा कि कुछ समय बाद वह मगध से भी उठ गया। अन्तिम शुग राजा से काण्व वश के एक ब्राह्मण अमात्य ने राज्य छीन लिया (७३ ई० पू०)। काण्व वश ने मगध मे चार पीढी राज्य किया। उधर सिन्ध से शक विजेता सीधे गान्धार की तरफ

* द्वीप शब्द का अर्थ सदा टापू ही न होता था। प्राय वह दोआब के अर्थ में और कभी कभी देश के अर्थ में भी आता था।

बढते हुए स्वात की दून तक पहुँच गये (लगभग ६५ ई० पू०)। शकों के हमलों की इस बाढ में पंजाब के यवन राज्य बह गये। तो भी काबुल में एक छोटा सा यूनानी राज्य तुखारों और शकों के बीच घिरा हुआ कुछ समय के लिए बचा रहा।
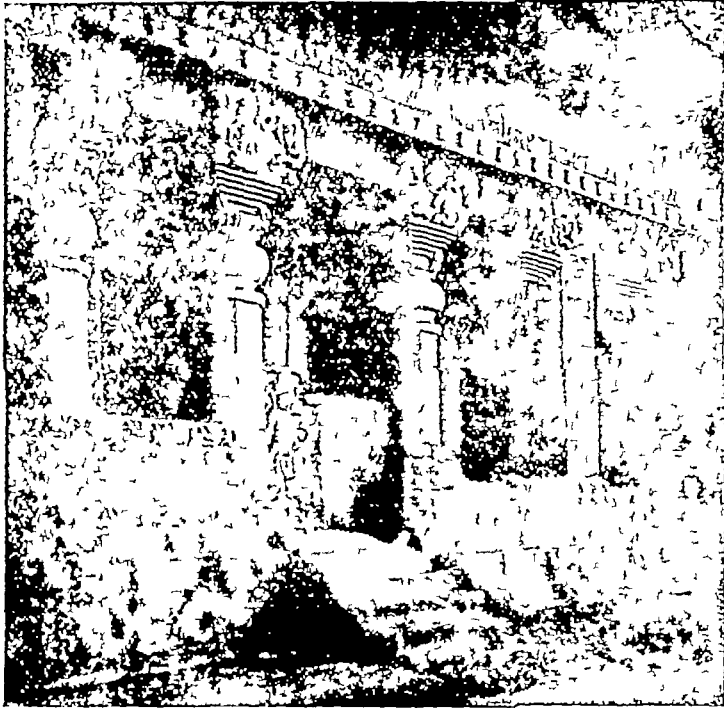
नासिक में राजा गौतमीपुत्र का कटवाया हुआ गुहा-विहार [ भा० पु० वि० ]

§४. राजा गौतमीपुत्र शातकर्णि—पुष्करावती से पूना तक शकों का वह साम्राज्य बहुत थोडे ही अरसे तक टिका। प्रसिद्ध है कि राजा विक्रमादित्य ने प्रतिष्ठान से आ कर उज्जैन जीता और शकों का संहार कर विक्रम-संवत् चलाया। विक्रमादित्य उस राजा का विरुद था। उसका असल नाम गौतमीपुत्र शातकर्णि था। उसकी माता गौतमी बालश्री के लेख अब तक मौजूद हैं। गौतमीपुत्र ने नहपान के वंश को "जड से उखाड" कर सारे सातवाहन राज्य पर फिर अधिकार किया, और बहुत से नये प्रदेश भी जीत लिये। उज्जैन के साथ-साथ मथुरा से भी शकों की सफाई हो गयी।

§९. मालव संवत् या विक्रम संवत्—राजा विक्रमादित्य ने संवत् चलाया यह बात पूरी तरह ठीक नहीं है। पुराने लेखों में उस संवत् को मालव गण का संवत् कहते हैं। उसका नाम विक्रम-संवत् बहुत पीछे पड़ा। ऐसा जान पड़ता है कि मालव गण और राजा गौतमीपुत्र शातकर्णि ने इकट्ठे मिल कर उज्जैन में शकों को हराया और तब से वह संवत् चला।

§१० कन्दहार के पह्लव— उधर मिथ्रदात (२य) के बाद पार्थव साम्राज्य के कमजोर हो जाने पर पूरबी ईरान या शकस्थान में एक छोटा पार्थव राज्य अलग हो गया। पार्थव जाति को पुरानी फारसी और संस्कृत में पह्लव कहते थे। इन पह्लवों ने अपना राज्य शकस्थान से हरउवती की तरफ बढ़ाया, वहाँ से बढ़ कर काबुल के यूनानी राज्य को जीता और गान्धार तथा सिन्ध को भी शकों से छीन लिया (लगभग ४५ ई० पू०)। तब शकों का राज्य कहीं भी न रह गया। हरउवती के पह्लवों ने लगभग ईसवी सन् के शुरू तक अफगानिस्तान, पंजाब और सिन्ध पर राज्य किया।

अय या अज का सिक्का—घोड़े पर सवार राजा की मूर्त्ति। [ श्रीनाथ साह संग्रह ]

गुदफर का सिक्का, चित, राजा का चेहरा, पट, देवी के चौगिर्द प्राकृत लेख—'महाराज-गुदफरनस त्रातारस'।

इन पह्लव राजाओं में स्पलिरिष, उसके बेटे अय या अज और अय के बेटे गुदफर का विस्तृत राज्य रहा। स्पलिरिष ने काबुल जीता। अज और गुदफर समूचे उत्तर-पच्छिमी भारत के राजा थे।

पह्लव राजा प्रायः बौद्ध थे। हिन्दूकुश के दक्खिन के यूनानी सिक्कों की तरह शकस्थान के इन राजाओं के हरउवती में चलने वाले सिक्कों पर भी प्राकृत ज़रूर लिखी रहती थी। इसका यह अर्थ है कि काबुल और कन्दहार के प्रदेश तब स्पष्ट रूप से भारत में गिने जाते थे।

§७ सातवाहनों की चरम उन्नति—दूसरी शती ई० पू० में भारत में चार बड़ी शक्तियाँ थीं। शक लोग पाँचवीं शक्ति के रूप में पहलेपहल पच्छिम-मंडल में प्रकट हुए। कलिंग का राज्य शकों से पहले ही समाप्त हो गया था। मध्य-देश के शुंग राज्य और उत्तरापथ के यूनानी राज्यों को शकों ने मिटा दिया। तब केवल दो शक्तियाँ बचीं, एक शक, दूसरे सातवाहन। पहले सातवाहनों को कुछ दबना पड़ा, पर पीछे उन्होंने शकों को "जड़ से उखाड़ दिया।" उसके बाद ५७ ई० पू० से सातवाहनों की शक्ति बढ़ती ही गयी। गोतमीपुत्र का बेटा वासिष्ठी-पुत्र पुलुमावी भी बड़ा योग्य राजा था। उसने अन्दाजन ४४ से ८ ई० पू० तक राज किया। २८ ई० पू० में सातवाहनों ने काण्व राजा से मगध भी जीत लिया। प्रायः तभी रोम में भी साम्राज्य स्थापित हुआ। पुलुमावी ने रोम-सम्राट् के पास दूत भेजे। प्रायः सौ बरस तक सातवाहन भारत के सम्राट् रहे। उनकी दक्खिनी सीमा तामिल राष्ट्रों तक थी, और वे राष्ट्र भी उनके प्रभाव में रहते थे। सातवाहनों का दरबार विद्या का केन्द्र बन गया।

शुंग सातवाहन युग—युद्ध का दृश्य; साँची स्तूप, पच्छिमी तोरण, पिछली तरफ, बिचली ढेरी पर से

सातवाहन युग की समृद्धि अद्वितीय थी। भारतवर्ष के सुदूर कोनो मे जो छोटे-मोटे राष्ट्र उनके साम्राज्य के बाहर बचे हुए थे, वे भी प्रत्येक बात मे सातवाहन साम्राज्य का अनुकरण करते थे। इस युग के सातवाहनों मे से राजा हाल का नाम बहुत प्रसिद्ध है।

---

## अध्याय ३
### पैठन और पेशावर के साम्राज्य
### ( ७८ ई०—१७६ ई० )

**§१. तारीम कॉठे मे चीन और भारत का मिलना**—हम ऋषिक-तुखारो को पामीर, बदख्शॉ और बलख मे छोड आये हैं। हूणा ने चीन का ठीक पच्छिमी दरवाजा घेर लिया, यह बात चीन के सम्राटो को गवारा न हुई। उन्होंने अपने पुराने पडोसी ऋषिकों से हूणो के विरुद्ध सहायता लेनी चाही, और इस विचार से चाङ-किएन नामक एक दूत को ऋषिको के पास भेजा ( १३८ ई० पू० )। रास्ते में दस बरस हूणों की कैद काटने के बाद १२७ ई० पू० मे वह वक्षु (आमू दरिया) के किनारे ऋषिक डेरे मे पहुँचा। बलख के बाजार मे उसने चीन का रेशम और बॉस बिकता देखा, और पूछा कि वह कहाँ मे आया है। तब उसे मालूम हुआ कि हिन्दूकुश के दक्खिन तरफ 'शिन्तु' ( सिन्धु, हिन्द ) नाम का विशाल और सभ्य देश है, जिसके आरपार हो कर वह माल आता है। जगली किरात लोग आसाम के रास्ते चीन और भारत की चीजों का विनिमय करते थे, पर दोनो देशो के शिक्षित लोग तब तक न जानते थे कि वे ठीक कहाँ से वह माल लाते हैं। इधर उत्तर की तरफ चीन के कानसू और भारत के कम्बोज देश के बीच केवल तारीम नदी का लम्बा कॉठा था, जो ऋषिको और तुखारो का मूल निवासस्थान था। चाङ-किएन उसके इस पार निकल आया था, जहाँ से आगे 'शिन्तु' और पार्थव देशो को रास्ते जाते थे। इस प्रकार सभ्य जगत् के पूरबी और पच्छिमी हिस्से, जो अढाई हजार बरस से एक दूसरे के लिए अन्धेरे मे पडे थे, प्रकाश मे आ गये।

चाङ-किएन के वापिस पहुँचने पर चीन के सम्राट् ने अपने इस पच्छिमी रास्ते को खुला और सुरक्षित रखने का पक्का निश्चय कर लिया। १२७ से ११६ ई० पू० तक चीनी सेनाओ ने हूणो को मगोलिया के उत्तर तक मार भगाया। ऋषिक-तुखारों को अपना पुराना देश भी वापिस मिला। १०२ ई० पू० मे एक चीनी सेना सीर की उपरली दून मे फरगाना (खोकन्द) तक समूचे मध्य एशिया को जीतती चली आयी।

शुङ्ग सातवाहन युग—किले पर चढ़ाई का दृश्य, साँची स्तूप, दक्खिनी तोरण, पिछली तरफ़ सब से निचली मँडेरी पर से

कानसू और कम्बोज के बीच के अँधियारे देश को, जहाँ एक तरफ से चीन वाले यो साफ कर रहे थे, वहाँ दूसरी तरफ से भारत के आर्य उसे रोशन करने मे लगे थे। भारतीय बस्ती की नींव वहाँ अशोक के समय से—अर्थात् चीनियों के आने से पहले—पड चुकी थी। सीता ( यारकन्द ) नदी के भारतीय नाम को अपना कर चीनी लोग उसे अब तक सीतो कहते हैं। वहाँ के बाकी सब नाम भी उन्होने प्राय भारतवासियो से ही लिये। खोतन की पुरानी ख्यात है कि वहाँ एक राजा विजयसम्भव हुआ, जिसके समय मे वहाँ के पशुपालको को आर्य वैरोचन ने पहले-पहल लिखना सिखाया। यह बात अन्दाजन १०० ई० पू० मे हुई। इसके बाद से तारीम के काँठे मे भारतवर्ष की जनता और सभ्यता इस प्रकार जम गयी कि विद्वान् लोग उसे प्राचीन इतिहास मे 'चीन-हिन्द' ( Ser-india ) कहते हैं। 'चीन-हिन्द' या ऋषिक-तुखारों के देश में ऋषिको के हूणों से भगाये जाने के बाद एक शती के अन्दर ( १६०-६० ई० पू० ) दो बड़ी बातें हो गयीं। एक तो यह कि ऋषिक-तुखार लोग इस अरसे मे बहुत कुछ सभ्य हो गये, और दूसरे उनके द्वारा चीन और भारत का परस्पर सम्बन्ध स्थापित हो गया।

§२. राजा कुषाण—अब धीरे-धीरे ऋषिक लोग हिन्दूकुश के इस पार भी उतरने लगे। खास कर कम्बोज देश में पूरबी हिन्दूकुश के घाटों को पार कर स्वात और सिन्ध की दूनों में हो कर वे सीधे गान्धार की तरफ आ निकले। हिन्दूकुश के दक्खिन उनकी पाँच छोटी-छोटी रियासतें बन गयीं। कुछ समय बाद कुषाण* नाम का एक शक्तिशाली व्यक्ति उनमें से एक का सरदार हुआ। उसने बाकी चारों रियासतों को भी जीत कर अपने राज्य में मिला लिया। यह घटना उस समय की है जब हरउवती के पह्लव राजा काबुल को जीत रहे थे। कुषाण उस समय तो चुप रहा, किन्तु पह्लव राज्य के कमजोर होने पर उसने समूचे अफगानिस्तान, कपिश और पच्छिमी-पूरबी गान्धार ( पुष्करावती, तक्षशिला ) को जीत लिया। बलख और कम्बोज तथा चीन-हिन्द के कुछ हिस्से पर तो उसका अधिकार पहले ही से था। उसके राज्य की पच्छिमी सीमा अब पार्थव राज्य से लगने लगी। यह राज्य स्थापित हो जाने पर उसने अपने दूत चीन भेजे, और उनके हाथ बौद्ध धर्म की एक पोथी पहले-पहल चीन पहुँची ( २ ई० पू० )। कुषाण को इतिहास में कुषाण कफ्स कहते हैं। दीर्घ शासन के बाद अस्सी बरस की आयु में उसकी मृत्यु हुई ( अन्दाजन ३० ई० )।

§३ युचि और सातवाहनों का युद्ध—कुषाण कफ्स का बेटा विम कफ्स था†। उसका राज्यकाल अन्दाजन ३०--७७ ई० है। कुषाण बौद्ध था, पर विम शैव। उसने समूचा पंजाब, सिन्ध और मथुरा प्रान्त जीत लिये। उसके साम्राज्य की सीमाएँ दो तरफ पार्थव और चीन साम्राज्य से लगती थीं, अब तीसरी तरफ सातवाहन साम्राज्य से लगने लगी। उस की राजधानी बदख्शाँ में ही रही।

पंजाब में 'सिरकप' और शालिवाहन की लड़ाई की कहानी लोग अब तक सुनाते हैं। प्रसिद्ध है कि विक्रमादित्य के १३५ वर्ष पीछे शक और शालिवाहन राजाओं की मुलतान के पास करोड़ नामक जगह पर लड़ाई हुई, जिसमें शक

---

* पहले यह समझा जाता था कि कुषाण उसके वंश का नाम है। असल में उस राजा का वही नाम था। उसके वंशज कुषाण-वंशज कहला सकते हैं।

† पंजाब की कहानियों में उसका नाम 'सिरकप' प्रसिद्ध है। 'सिरकप' का अर्थ अब कहानी सुनाने वाले करते हैं—सिर काटने वाला, पर असल में वह 'सिरि कप' अर्थात् 'श्री कफ्स' है।

राजा मारा गया। भारतवर्ष में ऋषिक लोग शक ही कहलाते थे, क्योंकि वे शक परिवार के थे। और जब उन्हाने गान्धार से आगे बढना शुरू किया तब सवा सौ बरस पुराना शकों और सातवाहनों का युद्ध फिर से छिड गया। सातवाहनों के साथ कुछ गणराज्य भी थे। करोड यौधेयों के राज्य में पडता था। करोड की लडाई के बाद भी वह लम्बी कश-मकश बन्द न हुई।

विम कफ्स का सिक्का

चित, राजा विम अग्नि में आहुति देते हुए, पट नन्दी के सहारे खडे शिव। [ श्री० मा० म० ]

§४ देवपुत्र कनिष्क—विम कफ्स का उत्तराधिकारी सुप्रसिद्ध राजा कनिष्क हुआ। उसने खोतन के राजा विजयकीर्त्ति के साथ मिल कर फिर मध्यदेश पर चढाई की। विजयकीर्त्ति विजयसम्भव के वंश का था। उन्होंने साकेत ( अयोध्या ) को घेर लिया, और उसके बाद पाटलिपुत्र को भी जीता। वहाँ से कनिष्क प्रसिद्ध बौद्ध विद्वान् अश्वघोष को अपने साथ ले गया। मध्यदेश और मगध पूरी तरह कनिष्क के हाथ में आ गये और वहाँ उसके क्षत्रप राज करने लगे। प्रसिद्ध शक सम्वत् जो ७८ ई० में शुरू होता है, कनिष्क का चलाया माना जाता है*।

यौधेय गण का सिक्का [ पटना म्यूजियम ]

कनिष्क ने प्राय: बीस बरस राज्य किया। इसी समय ( ७३—१०२ ई० ) चीन के एक सेनापति ने सारे मध्य एशिया को जीत कर कास्पियन सागर तक चीन का आधिपत्य पहुँचा दिया। कनिष्क को भी चीन-हिन्द में उस सेनापति

* कुछ विद्वानों के मत में कनिष्क १२८ ई० में राज करने लगा। इस तथा अन्य कई कारणों से कनिष्क के वंशजों और पूर्वजों का, हरउवता के पह्लवों तथा नहपान आदि पहले शकों और उनके समकालीन सातवाहनों का समय निर्विवाद नहीं है। इन तिथियों में २० से ५० वर्ष तक फेरफार की गुंजाइश है।

से हारना पडा। उसने पुष्करावती से कुछ हट कर पुरुषपुर ( पेशावर ) बसाया और बदख्शाँ से अपनी राजधानी वहीं उठा लाया। पेशावर और अन्य स्थानों मे उसने अनेक स्तूप और विहार आदि बनवाये। अपनी राजधानी को उसने सातवाहनों की तरह विद्या का केन्द्र बनाया। महाकवि अश्वघोष के अतिरिक्त आयुर्वेद का प्रसिद्ध आचार्य चरक भी उसकी सभा मे था। कनिष्क की प्रेरणा से बौद्धो की चौथी संगीति कश्मीर मे श्रीनगर के पास हुई। अशोक की तरह कनिष्क ने भी दूर-दूर तक बौद्ध धर्म का प्रचार करवाया। इस कारण उसका नाम आज तिब्बत, खोतन और मगोलिया तक बडे आदर से याद किया जाता है। उसके सिक्को पर उसका नाम 'कनिष्क शाहानुशाह' अर्थात् 'शाहों का शाह' लिखा होता है। शको के सरदार शाहि कहलाते थे। 'शाह' उसी 'शाहि' का रूपान्तर है। चीनी सम्राटों की नकल कर कनिष्क अपने को 'देवपुत्र' भी कहता था।
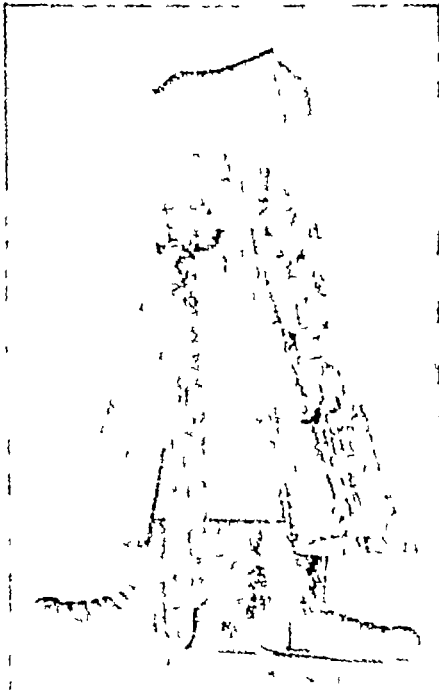
मथुरा के पास माट गाँव से पायी गयी
कनिष्क की खंडित मूर्त्ति
[ मथुरा म्यू०, भा० पु० वि० ]

§५ **कनिष्क के वंशज, शक रुद्रदामा और पिछले सातवाहन**—कनिष्क के बाद उसके वंश मे सम्राट् हुविष्क ( लगभग १०६–१४० ई० ) और वासुदेव ( लगभग १४१–१७६ ई० ) प्रसिद्ध हुए। चीन-हिन्द में चीन की शक्ति १०२ ई० के बाद कुछ न रही, तब हुविष्क ने वहाँ फिर अपना अधिकार जमा लिया। चीन-हिन्द की राजकाज की भाषा इस समय से भारतवर्ष की एक प्राकृत रही। इधर मध्यदेश और मगध इन ऋषिक राजाओ के हाथ आ जाने के बाद जब पैठन का सातवाहन साम्राज्य दक्खिन तक ही सीमित रह गया, तब फिर उसी उज्जैन प्रदेश के लिए पेशावर और पैठन के साम्राज्यों मे छीन-झपट शुरू हो गयी।

हुविष्क का सिक्का
[ श्रीनाथ साह संग्रह ]

लगभग ११० ई० में ऋषिक सम्राट् की तरफ से चष्टन नाम का एक शक महाक्षत्रप उज्जैन में स्थापित हो गया। किन्तु पीछे उसका प्राय सारा राज्य सातवाहन राजा ने छीन लिया।

चष्टन के बेटे ने राज्य नहीं किया। उसके पोते रुद्रदामा को अपनी बेटी सातवाहन राजकुमार को व्याह मे देनी पडी। परन्तु पीछे रुद्रदामा ने अपने समधी को दो बार हराया, और सन् १५० ई० तक उसने सारे सिन्ध, मारवाड, कच्छ, सुराष्ट्र, गुजरात, मालवा और उत्तरी महाराष्ट्र पर अधिकार कर लिया। सिन्ध-मारवाड की उत्तरी सीमा पर यौधेय गण था। रुद्रदामा गर्व से लिखता है कि "सब क्षत्रियों मे वीर प्रसिद्ध हो जाने से जिनका दिमाग फिर गया था, और जो किसी के अधीन न होते थे, उन यौधेयों को" उसने "जबरदस्ती उखाड डाला।" यूनानियो, शको और पह्लवो की चढाइयो के बीच अब तक यौधेयों ने अपनी स्वतन्त्रता बराबर बनाये रखी थी; अपने सिक्कों पर वे युद्ध के देवता स्कन्द की मूर्त्ति बनाते थे।

चष्टन
एक सिक्के पर से बड़ा किया हुआ चित्र

रुद्रदामा
सिक्के पर से बढ़ाया हुआ चित्र

रुद्रदामा के पीछे शक क्षत्रपों से सातवाहनों ने फिर कई प्रदेश ले लिये। दूसरी शती ई० के पिछले भाग मे यज्ञश्री शातकर्णि नामक सातवाहन राजा बडा शक्तिशाली हुआ।

**§६. तामिल और सिंहल राष्ट्र**—जब उत्तरी और पच्छिमी भारत मे पेशावर और पैठन साम्राज्यों की यह कशमकश जारी थी, तब सातवाहन साम्राज्य के दक्खिन

छोर पर तामिल और सिंहल राष्ट्रों मे भी एक दूसरे से बढने के लिए स्पर्धा चल रही थी। अन्दाजन ७०-१००ई० मे प्रसिद्ध चोल राजा करिकाल हुआ, जिसने सब तामिल राष्ट्रों और सिंहल पर भी अपनी प्रभुता जमायी। उसकी राजधानी कावेरी नदी पर उरगपुर या उरैपुर ( आधुनिक त्रिचनापल्ली ) थी। कावेरी के मुहाने पर उसने एक बड़ा बन्दरगाह कावेरीपट्टनम् बसाया। उस पट्टन मे एक मन्दिर सातवाहन का
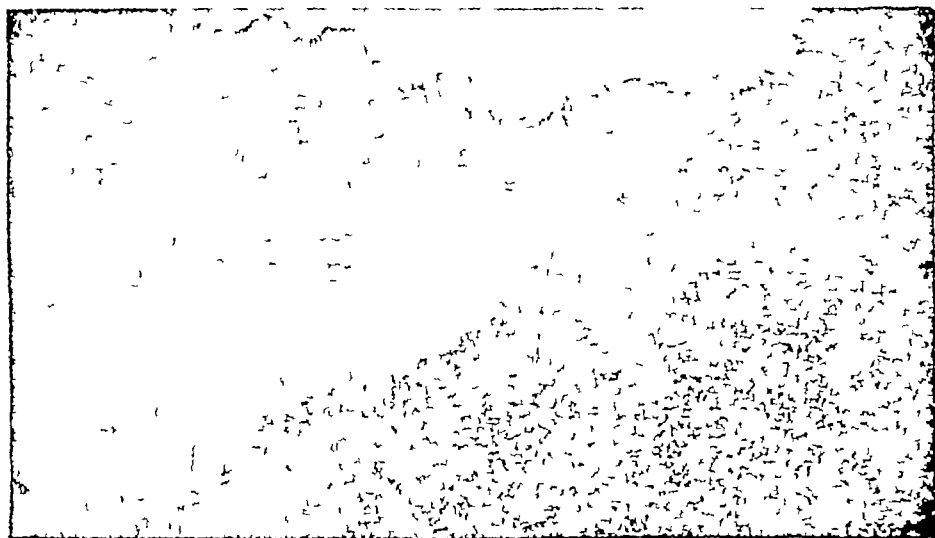
एक आणीकट — वेलमुडि, जिला कोयम्बटूर, से [ भा० पु० वि० ]

भी था, जिसमे सातवाहन की पूजा होती थी। इससे प्रतीत होता है कि सातवाहन राजाओं का भारतवर्ष के सुदूर कोनों तक भी कितना प्रभाव था।

करिकाल के बाद कुछ समय तक चेर राज्य सब तामिल राष्ट्रों में प्रमुख रहा। फिर लगातार पाड्यों की प्रधानता रही। किन्तु चोल देश का उत्तरी आधा हिस्सा जिसकी राजधानी काञ्ची ( काञ्जीवरम् ) थी, सातवाहनो के अधीन रहा। यज्ञश्री के काञ्ची वाले सिक्कों पर दो मस्तूलों का जहाज बना रहता है, जो उसकी समुद्री शक्ति को सूचित करता है। इन सब तामिल और सातवाहन राजाओं ने समुद्री डाकुओ का दमन कर विदेशी व्यापार को खूब बढाया। नदी के मुहाने में आणीकट-बाँध बनवा कर सिंचाई के लिए पानी काटने का तरीका इन्हीं तामिल राजाओं ने चलाया, जो इन्हीं से ससार के सब देशों ने सीखा।

## अध्याय ४

### बृहत्तर भारत

§ १ चीन-हिन्द, सुवर्णभूमि और सुवर्णद्वीप—ऋषिक-तुखारों का देश किस तरह चीन-हिन्द बन गया, और उसके द्वारा चीन और भारत का सम्बन्ध कैसे हो गया सो हमने देखा। उसी प्रकार इस युग मे एक और हिन्द पैदा हो गया था, जिसे पच्छिमी लोग तब 'गगा पार का हिन्द' (Trans Gangetic India) कहते थे और अब भी परला हिन्द (Further India) कहते हैं। बहुत पुराने समय से वहाँ आग्नेय वश की जातियाँ रहती थीं, जो अशोक के समय तक पत्थर के हथियार काम मे लाती थीं। महाजनपदो के जमाने से भारत के सामुद्रिक व्यापारी उधर जाने लगे, और उन्हे वहाँ सोने की खानें मिलीं, इसलिए उन्होंने उस देश का नाम सुवर्णभूमि रक्खा। धीरे-धीरे वहाँ भारतीय बस्तियाँ बसीं और भारतीयो ने आग्नेय लोगो को भी सभ्य बनाया। सातवाहनों के चरम उत्कर्ष के जमाने मे वहाँ भारतीय बस्तियाँ खूब बढीं, और कई भारतीय राज्य स्थापित हो गये (५८ ई० पू०–७८ ई०)। ईसवी सन् के शुरू मे आजकल के फ्रान्सीसी हिन्दचीन में कौठार और पाडुरग नाम के दो छोटे-छोटे भारतीय राज्य स्थापित हो चुके थे। मेकाङ नदी के तट पर एक तीसरे बडे राज्य की राजधानी थी, जिसे चीन वाले फूनान कहते थे। उसका असली नाम अभी तक नहीं जाना जा सका। उस राज्य की सीमा बरमा तक थी। उसकी स्थापना एक कौण्डिन्य ब्राह्मण ने की थी। कौण्डिन्य ने वहाँ जा कर सोमा नाम की "नागी" (अर्थात् नागों को पूजने वाली किसी आग्नेय जाति की लडकी) से व्याह किया था, जिससे उसके वशज सोमवश के कहलाये।

मलक्का प्रायद्वीप और सुमात्रा का उत्तरी हिस्सा सुवर्णद्वीप और बाकी सुमात्रा जावा मिला कर यवद्वीप कहलाता था। यवद्वीप मे शिशिर पर्वत था, और उसके पूरबी हिस्से में सरयू नदी अब तक है। इन बस्तियों और राज्यों के हिन्दू सस्थापक प्राय शैव थे। सन् ईसवी की पहली शती मे मदगास्कर द्वीप में भी भारतीय बस्तियाँ स्थापित हुई।

पहली सदी ई० पू० से तेरहवीं सदी ई० तक
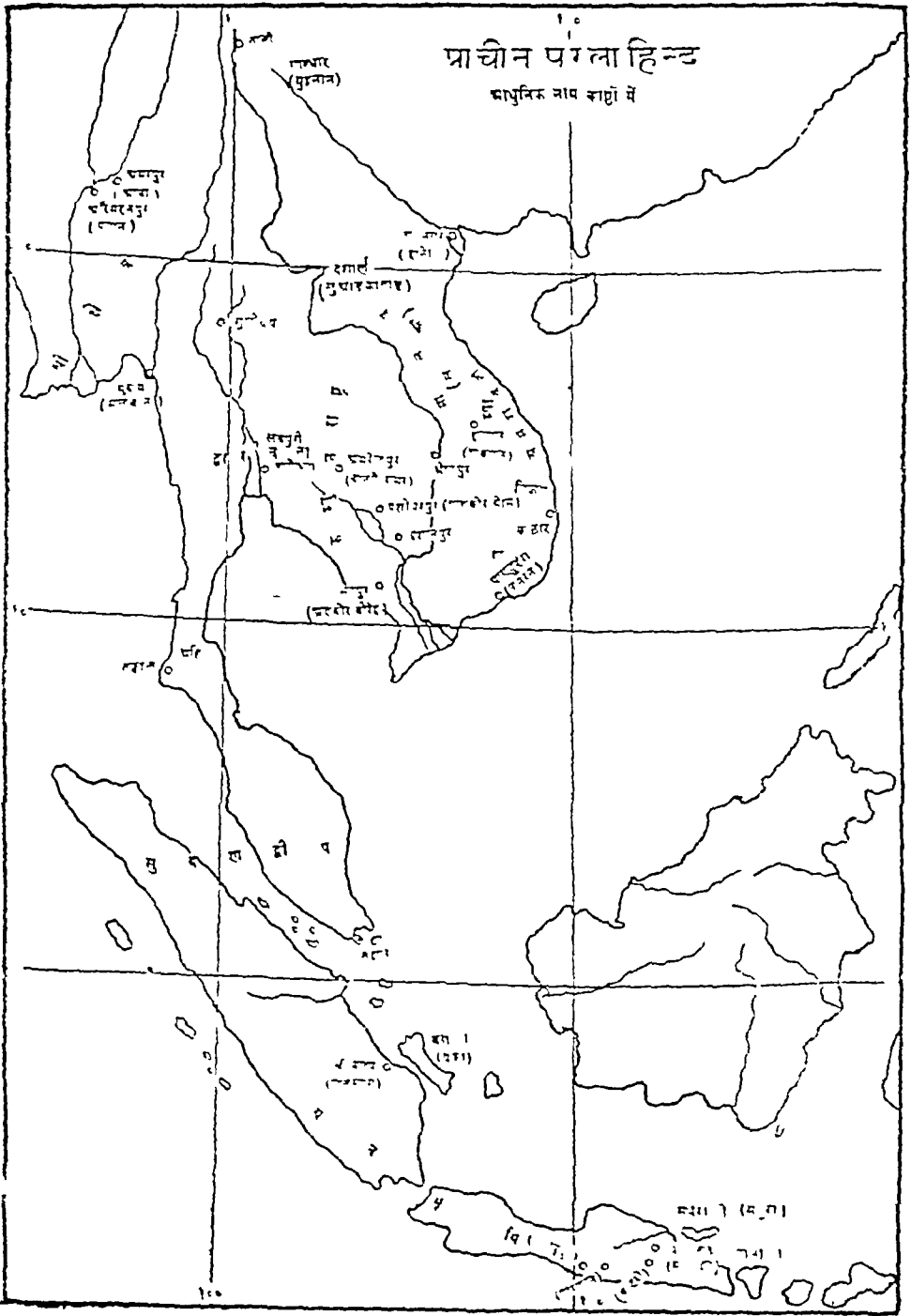
ठ चुका

सुवर्णभूमि के साथ सबसे अधिक और पुराना सम्बन्ध चम्पा (भागलपु, के लोगों का था। १९२ ई० में उन्होंने सुवर्णभूमि के पूरबी छोर पर एक चम्पा राज्य स्थापित किया, जिसने कोटार और पाडुरंग तथा और पडोसी प्रदेशों को जीत लिया। तब से १२०० बरस तक चम्पा की बडी शक्ति और समृद्धि बनी रही। उसके बाद भी गिरते पडते आज से एक शती पहले तक चम्पा राज्य किसी न किसी प्रकार बना रहा।

भारत-लक्ष्मी

भारत के रोमन व्यापार का स्मारक एक तश्तरी पर का चित्र जो रोम-साम्राज्य में अंकित किया गया था। वह तश्तरी अब इस्ताम्बूल म्यूजियम में है।

§२ चीन और रोम से सम्बन्ध—चीन-हिन्द और सुवर्णभूमि में सभ्य राज्य स्थापित हो जाने से चीन के साथ भारत का सम्बन्ध स्थल और जल दोनों रास्तों से हो गया। दोनों देशों में व्यापार तो बढा ही, साथ-साथ एक दूसरे की सभ्यता भी वे सीखने लगे। ६८ ई० में गान्धार, अफगानिस्तान या खोतन से धर्मरत्न और कश्यपमातङ्ग नाम के दो भिक्षु पहले-पहल चीन में बौद्ध धर्म का प्रचार करने पहुँचे। उसके बाद वह सिलसिला लगातार जारी रहा। चीन वालों का पच्छिमी रास्ता खुल जाने से चीन का रेशम उन सब देशों में जाने लगा।

पच्छिमी एशिया और मिस्र जब तक यूनानी राज्य रहे उनके साथ भारत का अच्छा व्यापार रहा। जब बलख के यूनानी राज्य को तुखारो ने मिटाया, प्राय. उसी समय रोम वालों ने पच्छिम के सारे यूनानी राज्यों को जीत लिया। रोम का साम्राज्य "भूमध्य-सागर" के चौगिर्द था। वह सागर असल मे रोम की भूमि के ही मध्य मे था। भारतीय नाविक व्यापारी रोम-साम्राज्य के सब देशों मे पहुँचते थे। प्राचीन काल मे लाल सागर को नील नदी से मिलाने वाली एक नहर थी, जिसके द्वारा पूरबी देशों के जहाज अलक्सान्दरिया हो कर रोम सागर (भूमध्य-सागर) तक जा निकले थे। लगभग १०० ई० पू० मे एक बार कुछ भारतवासी अपने जहाज के साथ दिशामूढ हो कर जर्मनी के तट पर जा भटके और वहाँ से रोम पहुँचाये गये थे।

भारतीय माल रोम-साम्राज्य मे खूब पहुँचता और बदले मे सोना आता था। यहाँ से हाथीदाँत का सामान, सुगन्धि-द्रव्य, मसाले, मोती और कपडे आदि जाते थे। कनिष्क के समय के करीब एक रोमन लेखक ने शिकायत की है कि भारतवर्ष रोम से हर साल साढ़े पाँच करोड का सोना खींच लेता है, और "यह कीमत हमे अपनी ऐयाशी और अपनी स्त्रियों की खातिर देनी पडती है।" एक दूसरे रोमन लेखक ने रोमन स्त्रियो की शिकायत करते हुए लिखा है कि वे भारतवर्ष से आने वाले "बुनी हुई हवा के जाले" ( मलमल ) पहन कर अपना सौन्दर्य दिखाती थीं। एक तरफ रोम और पार्थव तथा दूसरी तरफ चीन और सुवर्णभूमि के ठीक बीच होने से भारतवर्ष इस समय सारे सभ्य जगत् का मध्यस्थ था।

---

## अध्याय ५

### सातवाहन युग की समृद्धि और सभ्यता

९१. **पौराणिक धर्म और महायान**—भगवान् बुद्ध ने निरर्थक कर्मकाड का स्थान आचारप्रधान-धर्म को दे कर आर्यावर्त्त मे एक नया जीवन फूँक दिया था। साढ़े तीन सौ बरस बाद उस नवजीवन की लहर मे कुछ मन्दता आने लगी। अन्तिम मौर्यों ने जब उस धर्म की आड मे अपनी कायरता को छिपाना चाहा, तब उसके विरुद्ध प्रतिक्रिया हुई। पुराने वैदिक धर्म को फिर से जगाने की पुकार उठी। सिमुक और पुष्यमित्र दोनो ब्राह्मण थे, जिन्होंने निर्बल मौर्यों के विरुद्ध विद्रोह किया। बौद्धों ने यज्ञों की हिंसा का विरोध किया था, पर पुष्यमित्र ने और सिमुक

के भतीजे शातकर्णि ने पुराना अश्वमेध यज्ञ, जिसका रिवाज सदियों से उठ चुका था, दो-दो बार किया।
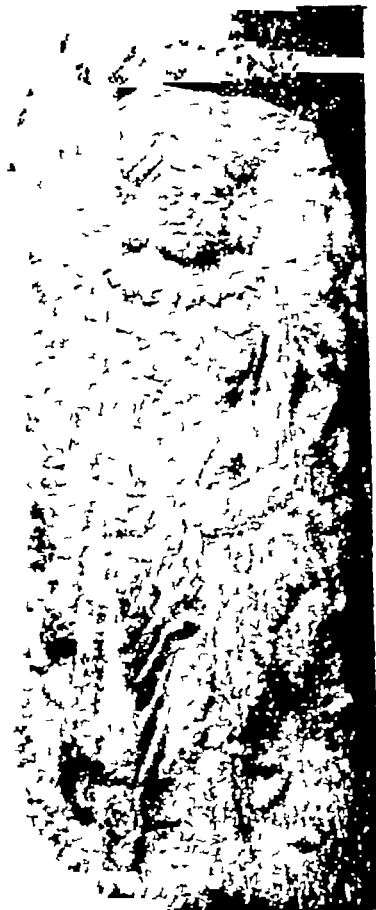
भद्र महिला—शुंग-युग का वेषभूषा भद्र पुरुष—पिछले सातवाहन युग को वेषभूषा
कौशाम्बी से पाये गये मिट्टी के खिलौने [ प्रयाग म्यू० ]

किन्तु वैदिक धर्म वैदिक समाज के साथ था और इस युग का समाज अब बहुत आगे बढ चुका था। न वैदिक समाज वापिस आ सकता था, और न वैदिक

धर्म अपने पुराने रूप में लौट सकता था। बौद्ध धर्म ने जनता के विचारों में जो परिवर्तन कर दिया था, उसे मिटाया न जा सकता था। वैदिक कर्मकाण्ड, दार्शनिक विवाद और कृच्छ्र तप का पुराना धर्म जब केवल ऊँचे लोगों की चीज बन गया था, उस समय बुद्ध ने जनसाधारण को जगाया और उठाया था। जनता की उस जागृति की उपेक्षा न की जा सकती थी। इसलिए वैदिक धर्म को फिर से जगाने की जो लहर उठी, वह बौद्ध सुधार की सब मुख्य प्रवृत्तियों को अपनाये हुए थी। बौद्ध धर्म यदि जनता के लिए था, तो वैदिक धर्म का यह नया रूप उससे बढ़ कर जनता को जगाने वाला था।

बौद्ध धर्म आचार-प्रधान था, ईश्वर और देवताओं की पूजा के लिए उसमें जगह न थी। जनसाधारण ने बुद्ध की शिक्षा को सुना, पर देवताओं की पूजा के बिना उनका काम न चला। आर्यों के निचले दर्जों और अनार्य जातियों में अनेक किस्म की जड़-पूजाएँ प्रचलित थीं। बहुत से स्थानीय देवताओं की गद्दियाँ जगह-जगह स्थापित थीं। कई स्थानों में जनता के ऊँचे दर्जों में भी अपने पुरखों के सम्मान ने ही पूजा का रूप धारण कर लिया था। कह चुके हैं कि शूरसेन देश में वासुदेव कृष्ण की पूजा होती थी और उसके सम्बन्ध में उत्सव होते थे। राजा वसु के समय में जो अहिंसा और भक्ति-प्रधान धर्म की लहर उठी थी, कृष्ण ने उसे अपनाया और पुष्ट किया था। शूरसेन लोगों ने कृष्ण को पहले उस धर्म के प्रवक्ता और अपने महान् पूर्वज के रूप में आदरपूर्वक याद करना शुरू किया, और उसी ने धीरे-धीरे पूजा का रूप धारण कर लिया। वैदिक धर्म को फिर से जगाने की लहर ने प्रत्येक प्रचलित जड-देवता और मनुष्य-देवता में किसी न किसी वैदिक देवता की प्राण-प्रतिष्ठा कर दी। भारत में जितने देवता पूजे जाते थे, उन्हें उसने शिव, विष्णु, सूर्य, स्कन्द आदि की भिन्न-भिन्न शक्तियों के सूचक भिन्न-भिन्न रूप मान लिया। जहाँ किसी पुराने पुरखा की पूजा होती थी, उसे भी उसने किसी अवतार रूप में भगवान् की पूजा बना दिया।

यह लहर चली तो वैदिक धर्म को जगाने का नाम ले कर, पर इससे एक नया धर्म पैदा हो गया, जिसे हम पौराणिक धर्म कहते हैं। देवता वैदिक धर्म में भी थे, और इसमें भी रहे। पर पहले उनकी पूजा यज्ञों द्वारा होती थी और अब उनके मन्दिर और मूर्त्तियाँ बनने लगीं। वे मन्दिर और मूर्त्तियाँ और उनकी पूजा अभी तक बहुत सादी थी। मूर्त्तियाँ देवताओं की शक्तियों का केवल "प्रतीक" अर्थात्

संकेत थी। दिव्य शक्तियों के आवाहन से जड़-पूजाओं मे जान पड गयी, और उन सरल पूजाओ के धर्म ने जनता मे एक नया जीवन फूँक दिया।

वैदिक देवताओं में इन्द्र मुख्य था, अब विष्णु और शिव की प्रधानता हो गयी। ऐतिहासिक पूर्वज कृष्ण की पूजा मे अब वैदिक प्रकृति-देवता विष्णु की पूजा मिल गयी। कृष्ण विष्णु का अवतार माने गये। यही सातवाहन-युग का भागवत धर्म था। किन्तु आजकल के पौराणिक धर्म की बहुत सी बातें उस शुरू के पौराणिक धर्म मे न थी। भागवत धर्म मे उस समय तक कृष्ण की गोपी-लीलाओं की कहानियाँ न मिल पायी थीं। विष्णु के अतिरिक्त शिव और स्कन्द की पूजा उस समय के पौराणिक धर्म में बहुत प्रचलित थी। स्कन्द युद्ध का देवता था। शिवलिंग की पूजा आर्यों मे पहले-पहल सातवाहन युग के अन्तिम हिस्से मे आ कर सुनी जाती है। हम देख चुके हैं कि भागवत और शैव धर्म को तब अनेक विदेशी भी अपना लेते थे। पौराणिक धर्म तब सब के लिए खुला था। पुराने यूनानी भी वैदिक देवताओं से मिलते-जुलते प्रकृति-देवताओं को पूजते थे। उस पुरानी पूजा के आडम्बरमय और निर्जीव हो जाने पर भारतवर्ष के इस नये भक्तिप्रधान धर्म ने उन्हे आकर्षित किया। अन्दाजन कनिष्क के समय मे ईरान के मग ("शाकद्वीपी") ब्राह्मणों ने भारत मे आ कर सूर्य को एक विशेष पूजा चलायी। सूर्य की पूजा यहाँ वैदिक काल से थी, पर उसकी मूर्त्ति और मन्दिर बनाने की चाल ईरानी मगों ने चलायी। पंजाब, सिन्ध, राजपूताना, सुराष्ट्र, मगध आदि मे उन्होंने बहुत से मन्दिर स्थापित किये, जिनमे से मूलस्थानपुर ( मुलतान ) का मन्दिर सबसे पुराना और प्रसिद्ध था। वह ईरानी सूर्य-पूजा भी पौराणिक धर्म मे मिल गयी।

पौराणिक धर्म का प्रभाव फिर बौद्ध और जैन धर्मों पर पडा। उनमे बुद्ध और महावीर अब ऐतिहासिक महापुरुष के बजाय प्रमुख देवता बन गये। बौद्धों का कहना है कि बुद्ध पिछले कई जन्मों से साधना कर रहे थे, और तब वे बोधिसत्त्व थे। इसी प्रकार जैन लोग मानते हैं कि महावीर से पहले कई तीर्थंकर हुए थे। इन सब ने गौण देवताओं और अवतारों का स्थान ले लिया। बौद्ध धर्म का यह नया रूप महायान अर्थात् बडा पन्थ कहलाने लगा। इसके मुकाबले मे पुराना बौद्ध धर्म (थेरवाद) हीन-यान ( छोटा पन्थ ) कहलाने लगा। नागार्जुन (लगभग १५० ई०) महायान के प्रमुख आचार्य थे। थेरवाद की पुस्तकें पाली मे हैं और महायान की संस्कृत मे। थेरवाद अब सिंहल, स्याम और बरमा में है, महायान चीन, जापान और कोरिया मे।

**९२. नवीन संस्कृत, प्राकृत और तामिल साहित्य**—पौराणिक धर्म की तरह नये संस्कृत साहित्य का विकास पहले-पहल शुंग-सातवाहन-युग में हुआ। वह पुराने वैदिक साहित्य से भिन्न और स्वतन्त्र है। पुष्यमित्र शुंग के समय पतंजलि मुनि थे, जिन्होंने अष्टाध्यायी पर महाभाष्य लिखा। शुंगों के ही समय (अन्दाजन १५० ई० पू०) में मनुस्मृति लिखी गयी। इसी कारण उसमें बौद्ध-विरोधी भाव बहुत हैं। उसका लेखक एक भृगुवंशी ब्राह्मण था, पर उसने मनु के नाम से अपनी शिक्षाओं को चलाया। उसके प्राय: अढ़ाई तीन शती पीछे याज्ञवल्क्य-स्मृति लिखी गयी। महाभारत के कोई-कोई अंश ५०० ई० पू० तक के हैं। किन्तु उसका अधिकांश २०० ई० पू० से २०० ई० के बीच लिखा गया। सुप्रसिद्ध भास कवि, जिसके नाटकों के नमूने पर बाद में कालिदास ने नाटक लिखे, इसी युग का है। अश्वघोष न केवल एक बौद्ध दार्शनिक, प्रत्युत कवि और नाटककार भी था। नागार्जुन अश्वघोष का प्रशिष्य था। वह दर्शन के साथ-साथ विज्ञान का भी बड़ा पंडित था। उसने एक 'लोहशास्त्र' लिखा और पारे के योग बनाने की विधि निकाल कर रसायन के ज्ञान को आगे बढ़ाया। उसने सुश्रुत के ग्रन्थ का सम्पादन भी किया।

भारतवर्ष के प्रसिद्ध वैद्य चरक और सुश्रुत दोनों इसी युग में हुए। मीमांसा-दर्शन के प्रवर्त्तक जैमिनि, वैशेषिक-दर्शनकार कणाद, न्याय-दर्शन के संस्थापक अक्षपाद गौतम तथा वेदान्त के प्रवर्त्तक बादरायण भी इसी युग में हुए। प्रसिद्ध अमरकोश भी इसी युग में लिखा गया। उसका लेखक अमरसिंह बौद्ध था। पिछले शुंगों के समय से बौद्धों के सब ग्रन्थ संस्कृत में ही लिखे जाने लगे थे। महायान के उदय का जो कारण था, वही बौद्ध ग्रन्थों के संस्कृत में लिखे जाने का भी कारण हुआ। दूर-दूर के जनपदों में जब उस धर्म का प्रचार किया गया, तब जैसे उसे अपना आन्तरिक रूप बदलना पड़ा, वैसे ही अपनी भाषा भी बदलनी पड़ी, क्योंकि अब प्रान्तीय प्राकृत पाली से उसका काम न चल सकता था।

संस्कृत के साथ-साथ कई प्राकृतों में उत्तम रचनाएँ हुईं। राजा हाल स्वयम् प्राकृत का कवि था। एक सातवाहन राजा के दरबार में गुणाढ्य नाम का प्रसिद्ध कश्मीरी लेखक था। कश्मीर के उत्तर-पच्छिम, कृष्णगंगा की दून से पामीर की जड़ तक दरदिस्तान का इलाका है, वहाँ की पुरानी प्राकृत में गुणाढ्य ने बृहत्कथा नाम का कहानियों का एक बहुत सुन्दर ग्रन्थ लिखा। वह ग्रन्थ अब नहीं मिलता, पर उसके तीन अनुवाद संस्कृत में हैं और एक तामिल में। तामिल भाषा का साहित्य

भी पहले-पहल पहली शती ई० से ही प्रकट होने लगा। तामिल राज्यों में इस समय "सघम्" नाम की एक साहित्य-परिषद् थी।

§३ **सातवाहन शिल्प-कला**—साहित्य की तरह शिल्प और कला भी सातवाहन-युग मे खूब फूली-फली। इस युग की तीन प्रकार की इमारते और शिल्प बहुत प्रसिद्ध हैं। उनमे से पहले हैं पहाडो मे काटे हुए गुहामन्दिर जो महाराष्ट्र और उडीसा मे पाये जाते हैं। वे खारवेल और शातकर्णि (१म) के समय शुरू हुए, और फिर शकों और पिछले सातवाहनों के समय तक बनते रहे। महाराष्ट्र में उन्हें 'लेण' कहते हैं और उडीसा में 'गुम्फा'। महाराष्ट्र की लेणें सब बौद्ध चैत्य हैं, और उडीसा की गुम्फाएँ जैन मन्दिर। एक-एक मन्दिर केवल एक-एक चट्टान को काट कर बना है। उनकी कारीगरी अद्भुत है।

कार्ले लेण का सिंहद्वार, एक किनारे का दृश्य [फ़ोटो पटना म्यू०]
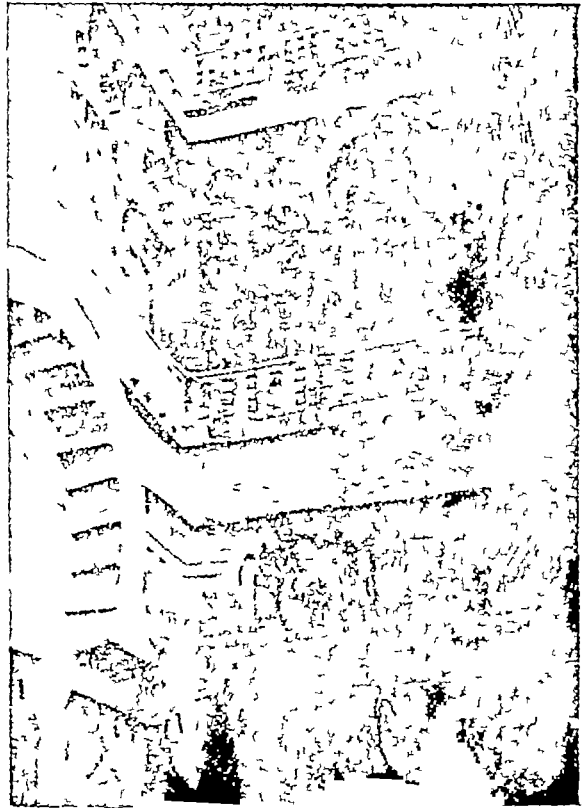
दूसरा शिल्प, जिसके कारण इस युग की प्रसिद्धि है, भारहुत और साँची के स्तूपों और उनके चारों तरफ की पत्थर की वेदिकाओं (जँगलों) और तोरणों का है। स्तूप तो पुराने हैं, पर पत्थर का काम सब इस युग का है। वेदिकाओं और तोरणों के प्रत्येक खम्भे में और खम्भों के बीच की प्रत्येक बँडेरी में सुन्दर मूर्त्तियाँ तराशी गयी हैं, या कहानियों और घटनाओं के पूरे दृश्य काटे गये हैं। इन दोनों शिल्पों की एक विशेषता यह है कि ये हैं तो

पत्थर के, किन्तु ठीक काठ के नमूने पर बनाये गये हैं। काठ के शिल्प की बारीक नक्काशी और छँटाई पत्थर में की गयी है।
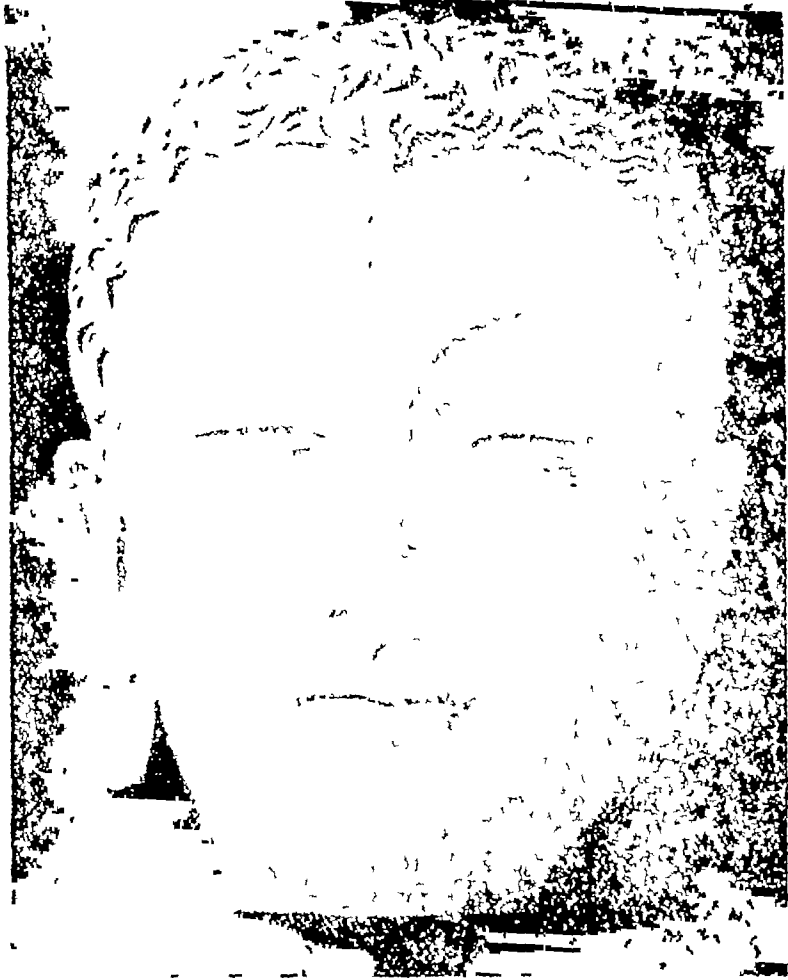
गान्धारी शैली की बुद्ध-मूर्त्ति—हड्डा, अफगानिस्तान से [ काबुल म्यूजियम ]

लगभग कनिष्क के समय से गान्धार देश की इमारतों और मूर्त्ति-कला में एक और शैली का विकास हुआ, जिसे अब हम गान्धारी शैली कहते हैं। वह शैली यूनानी और भारतीय शैली के समागम से पैदा हुई। अब तक बुद्ध की सबसे पुरानी मूर्त्तियाँ उसी शैली की पायी गयी हैं।

§४ आर्थिक जीवन—साहित्य, सिक्कों और पत्थर मे खुदे हुए लेखों आदि से इस युग के आर्थिक, राजनीतिक और सामाजिक जीवन का भी पता मिलता है। इस युग मे शिल्प और व्यापार की वडी उन्नति हुई। कारीगरों की श्रेणियाँ अब ऐसे काम भी करने लगीं जो आजकल के वडे-वडे बैंक करते हैं। सेनापति उपवदात ने नासिक के बौद्ध भिक्षुओं के सघ के लिए कई हजार का दान किया, उस रकम को उसने कोरियों (जुलाहो) की दो श्रेणियों के पास "अक्षयनीवी" (कभी न लौटने वाली धरोहर) के रूप मे रख दिया कि उसके सूद से उन भिक्षुओं को हर साल चीवर (कपडे) मिलते रहे। एक राजा अपना दान जुलाहों की श्रेणि के पास हमेशा के लिए जमा करा दे, इससे उस श्रेणि की हैसियत का अन्दाज होता है। इस तरह के और अनेक उदाहरण हैं। जहाजो के किराये और विदेशी व्यापार तथा व्यापारी दस्तावेजो के नियम भी इस युग की स्मृतियों मे विस्तार से दिये गये हैं।

गान्धारी शैली की खंडित स्त्री मूर्ति, शहर-ए-बहलोल (जि० पेशावर) की खुदाई से प्राप्त [ भा० पु० वि० ]

§५ राज्य-सस्था—राज-काज में ग्रामों, श्रेणियों और नगर-सस्थाओं की वडी हैसियत थी। नगर-सस्था को अब 'पूग' या 'पौर' भी कहते थे। सेनापति उपवदात ने अपने उक्त दान के सम्बन्ध मे लिखा है कि यह " 'निगमसभा' में सुनाया गया, और 'फलकवार' (रिकार्ड आफिस, लेखा दफ्तर) मे 'चरित्र' के

अनुसार 'निबद्ध' ( रजिस्टरी ) किया गया।"* इससे प्रकट है कि इस युग में राजा भी अपने दस्तावेजों को नगर-परिषदों के दफ्तरों में उन परिषदों के कानून के अनुसार रजिस्टरी कराते थे।

एक सेट्ठी अर्थात् निगम सभा का प्रमुख—शुंग-युग की वेषभूषा, भारहुत स्तूप की वेदिका से [ इं० म्यू० कलकत्ता ]

जनपदों की परिषदें तो देश की मुख्य शासक-शक्ति थीं। जब कोई जनपद एक राजा के हाथ से दूसरे राजा के हाथ में जाता, तब इस बात

---

* निगम-सभा का अर्थ, नगर की परिषद् और चरित्र का अर्थ परिषदों का बनाया हुआ कानून होता था सो पीछे कह चुके हैं। फलक माने अलमारी, और फलकवार का अर्थ हुआ अलमारियों वाली जगह यानी लेखा रखने का दफ्तर।

का बडा आग्रह रहता कि नये जीते हुए जनपद में राजा वहीं के "धर्म, व्यवहार और चरित्र" के अनुसार चले। राजा परिषद् की सहायता से राज्य करते थे।

उद्यान-क्रीड़ा—साँची स्तूप की वेदिका पर खुदा एक दृश्य [ श्री हरिहरलाल मेढ कृत प्रतिलिपि, डा० मोतीचन्द के सौजन्य से ]
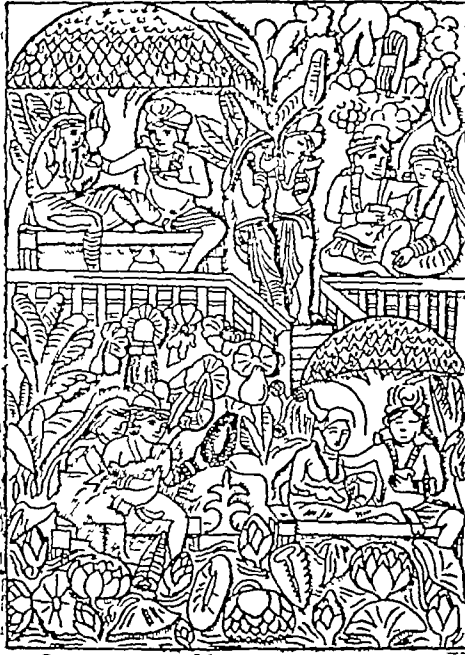
§६. सामाजिक जीवन— सामाजिक जीवन में भी यह युग वैदिक युग से दूर हट रहा था। स्मृतिकारों की यह कोशिश रही कि समाज चार वर्णों या 'जातियों' में बँटा रहे, जिनमें से प्रत्येक अपना खास धन्धा करे और अपने अन्दर ही विवाह करे, पर बर्ताव में यह बात न चली। ऐसे बहुत से समूह थे, जिन्हें वे किसी 'जाति' में न गिन पाते थे। उन्हें उन्होंने "सकर जाति" मान लिया। भिन्न-भिन्न जातियों का खानपान अलग करने की बात तो स्मृतिकार भी नहीं कहते। विवाह-बन्धन की शिथिलता को हटाने तथा तलाक और पुनर्विवाह की रोकथाम करने की मनुस्मृति और याज्ञवल्क्य-स्मृति ने कोशिश की। तो भी उनके समय तक वे बातें जारी थीं। बौद्धों का विरोधी होते हुए भी मनुस्मृति-कार ने "व्यर्थ हत्या" की निन्दा की। जुआ और 'समाह्वय' (जानवरों के मुकाबले पर बाजी लगाना) इस युग में भी जारी ही रहे, पर "उद्यान-क्रीडाएँ", गोष्ठियाँ और नाटक आदि विनोद उनसे अधिक चल पडे।

पिछले सातवाहन-युग की नारी-शिरोभूषा। कौशाम्बी से प्राप्त मिट्टी का खिलौना [ प्रयाग म्यू० ]

# छठा प्रकरण

# नाग, वाकाटक और गुप्त साम्राज्य

( लगभग १७६—५४० ई० )

## अध्याय १

### भारशिव और वाकाटक साम्राज्य

( लगभग १७६—३४० ई० )

§१ सातवाहनो के उत्तराधिकारी—दूसरी शती के अन्त मे सातवाहन-साम्राज्य टूटने लगा। उसके उत्तराधिकारियो मे तीन राज्य प्रमुख हुए। दक्खिन-पूरबी गुजरात मे आभीरो का गणराज्य स्थापित हुआ, जिसने चष्टन-वंशी राजाओ से उनके पूरबी प्रदेश छीन लिये। १८८-१९० ई० मे ईश्वरसेन आभीर ने समूचे शक राज्य पर दखल कर लिया, किन्तु उसके पीछे काठियावाड और उत्तरी गुजरात मे वह राज्य फिर उठ खडा हुआ। महाराष्ट्र और कर्णाटक मे सातवाहन वंश की एक शाखा चुटु-सातवाहनो ने प्राय एक शती तक राज्य किया। उनकी राजधानी वैजयन्ती ( उत्तर कनाडा जिले मे आधुनिक बनवासी ) थी। आन्ध्र देश मे प्राय उसी समय इक्ष्वाकु क्षत्रियो के एक वंश ने राज्य किया। उनकी राजधानी श्रीपर्वत ( कृष्णा के दक्खिन नालमलै पर्वत, गुन्टूर जिले मे ) थी।

§२. भारशिव-नागो का उदय, तुखार-साम्राज्य का अन्त—दूसरी शती ई० पू० के अन्त मे शुंग-साम्राज्य के पतन पर विदिशा ( भेलसा ) मे नाग क्षत्रियो का राज्य था। नहपान शक ने जब विदिशा जीती, तब वे लोग सिन्ध और पार्वती के संगम पर पद्मावती ( आधुनिक पदमपवायाँ ) मे चले गये। ७८ ई० के बाद उत्तर भारत मे ऋषिक-तुखारों का साम्राज्य स्थापित होने पर वे अपनी स्वतन्त्रता की रक्षा के लिए नर्मदा के दक्खिन जगलों मे जा बसे। इन्ही नाग क्षत्रियो के नाम से नागपुर का नाम पडा। वहाँ दूसरी शती के मध्य ( लगभग १४०—१७० ई० ) मे राजा नव नाग हुआ। उसने अपने उस जगल के आसरे से

आधुनिक बघेलखंड के रास्ते गंगा-काँठे की तरफ बढ़ कर तुखार-साम्राज्य के पूरबी छोर पर चोट की, कौशाम्बी को जीत लिया, और कान्तिपुरी ( मिर्जापुर के

एक शक द्वारपाल

इक्ष्वाकु राजाओं के समय की नागार्जुनीकोंडा स्तूप की वेदिका में से [ भा० पु० वि० ]

पास आधुनिक कन्तित ) में अपना नया राज्य स्थापित किया। कान्तिपुरी के नाग राजा शिव के उपासक थे, उन्होंने अपने वंश का नाम भारशिव रक्खा। नव नाग

के उत्तराधिकारी वीरसेन ( लगभग १७०--२१० ई० ) ने मथुरा से भी तुखार सत्ता उठा दी। पद्मावती और मथुरा में नाग राजवंश की शाखाएँ स्थापित हो गयीं।

उनकी मुख्य राजधानी कान्तिपुरी ही रही। भारशिवों ने गंगा और यमुना के प्रदेशों को फिर स्वतन्त्र किया और उन नदियों की मूर्त्तियाँ अपने सिक्कों और अपनी रचनाओं पर अंकित कीं। उन्होंने दस बार अश्वमेध किया।

§३ मालव और यौधेय गण—भारशिवों द्वारा तुखार साम्राज्य तोड़ा जाने पर अनेक गणराज्य भी स्वतन्त्र हो गये। मालव-गण की राजधानी चम्बल के काँठे में कर्कोटनगर थी, जिसके खँडहर अब जयपुर राज्य के उणियारा ठिकाने में हैं। तीसरी शती के उत्तरार्द्ध में उनका राज्य और फैल गया। धीरे-धीरे पुराना अवन्ति और आकर-देश भी मालवा बन गया। यौधेयों का गण-राज्य भी शक्तिशाली हो उठा। सतलज के निचले काँठे से होशियारपुर तक, वहाँ से सहारनपुर तक, और वहाँ से दक्खिन भरतपुर रियासत तक उनके राज्य के चिन्ह पाये गये हैं। मालवों और यौधेयों के बीच तथा उनके अड़ोस-पड़ोस में अन्य कई छोटे-छोटे गण-राज्य थे।

तीसरी शती में तुखार राज्य मध्य एशिया, काबुल और पच्छिमी पंजाब में बचा रह गया। ईरान का पार्थव राजवंश भी तभी समाप्त हुआ, और उसका स्थान सासानी राजवंश ने ले लिया ( २२४ ई० )। सासानी राजाओं की यह चेष्टा रही कि ईरान के गौरव को फिर वैसा ही स्थापित कर दें जैसा वह हखामनी वंश के समय था।

§४. वाकाटक और पल्लव वंश—आजकल के पन्ना शहर के पास किलकिला नामक छोटी सी नदी है, जो आगे केन में जा मिलती है। उसके नाम से पन्ना का समूचा पठार तीसरी शती में किलकिला कहलाता था। वहाँ भारशिवों का एक सामन्त और सेनापति रहता था, जो 'विन्ध्यशक्ति' नाम से प्रसिद्ध था। वह वाकाटक या विन्ध्यक वंश का था।

भारशिव साम्राज्य की सब शक्ति धीरे-धीरे वाकाटकों के हाथ में चली गयी। विन्ध्यशक्ति ने २४८ ई० से अन्दाजन २८४ ई० तक राज किया। उसके शासन के आरम्भ से वाकाटक वंश के राज्य का और एक नये सम्वत् का आरम्भ माना गया। वह सम्वत् चेदि देश में प्रचलित रहने के कारण बाद में चेदि-सम्वत् कहलाया।

भारशिव साम्राज्य तब गंगा-काँठे से नागपुर-बस्तर तक फैला हुआ था। विन्ध्यमेखला में उसके तीन खंड-राज्य थे—( १ ) माहिष्मती अर्थात् मालवा का

प्रान्त, जिसके अन्दर पुष्यमित्र नामक एक गणराज्य भी सम्मिलित था, ( २ ) मेकला, जिसमे बघेलखड से बस्तर तक के प्रदेश थे, तथा ( ३ ) कोशला अर्थात् दक्खिन कोशल या छत्तीसगढ। वाकाटकों के नेतृत्व मे अब दक्खिन के प्रान्त भी जीते गये। इस प्रकार महाराष्ट्र और कर्णाटक मे चुटु-सातवाहन और आन्ध्र मे इक्ष्वाकु राजवश का अन्त हुआ। वीरकूर्च्च उर्फ कुमारविष्णु नामक एक सरदार ने, जो नाग सम्राट् का दामाद था, इस समय आन्ध्र-देश जीता और तामिल देश पर चढाई कर काची को भी अधीन किया ( लगभग २५५-६५ ई० )। वीरकूर्च का वश पल्लव वश कहलाया। वाकाटक वश और पल्लव वश मे घनिष्ठ सम्बन्ध दिखायी पडता है।
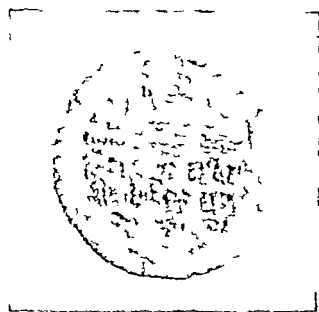
सहजाति के भीटे से पायी गयी गौतमीपुत्र वाकाटक की मुहर [भा० पु० वि० ]

§५ **सम्राट् प्रवरसेन** ( लगभग २८४-३४४ ई० )—विन्ध्यशक्ति के बेटे प्रवरसेन के ६० बरस के शासन मे वाकाटक साम्राज्य उन्नति के शिखर पर पहुँच गया। भारशिव सम्राट् भव नाग ने अपनी इकलौती बेटी प्रवरसेन के बेटे गौतमीपुत्र वाकाटक को व्याह दी, और अपने दोहते को अपना उत्तराधिकारी माना। इस प्रकार भारशिव और वाकाटक वश मिल कर एक हो गये। प्रवरसेन ने चारो दिशाओ की विजय कर चार अश्वमेध किये और 'सम्राट्' पद धारण किया। इतिहासलेखकों ने उसे "प्रवीर" कहा।

तीसरी शती के अन्त के करीब ( २९५ ई० ) गुजरात-काठियावाड के चष्टन-वशी राजाओं को अपना महाक्षत्रप पद छोडना पडा। अब से वे अपने को केवल क्षत्रप कहने लगे, अर्थात् उन्होंने भारतवर्ष के सम्राट् की अधीनता मान ली। उत्तर-पच्छिम की तरफ प्रवरसेन ने तुखारो को और आगे ढकेला। अब केकय देश की राजधानी सिंहपुर ( आजकल के कटासराज ) मे यादव क्षत्रियों का एक वश राज करने लगा, और मद्रदेश में मद्रक गण स्वतन्त्र हो गया। तुखार राज्य केवल काबुल और मध्य-एशिया में रह गया। काबुल के कुषाण-वशी राजा ने सासानी राजा होर्मिज़्द ( २य ) ( ३०२-३०९ ई० ) की शरण ली और उसे अपनी बेटी व्याह दी। परस्पर मैत्री प्रकट करने के लिए काबुल के

राजा ने अपने सिक्कों पर ईरानी चिह्न छपवाये और होर्मिज्द ने कुषाण-वंशियों की तरह शिव और नन्दी की छाप वाले सिक्के निकाले।
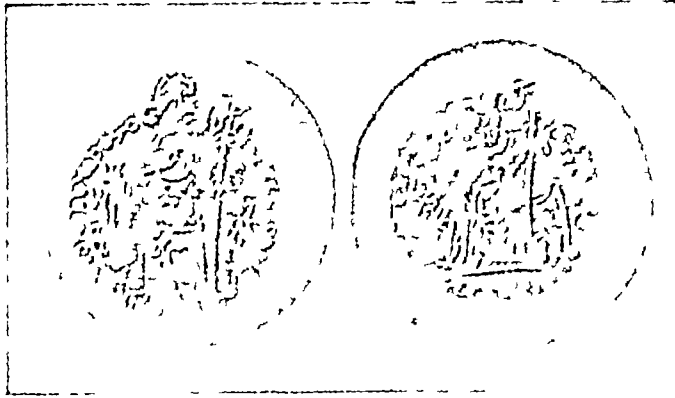
होर्मिज्द के बेटे बहराम ( ५ म ) ( ४२२–४४० ई० ) का [illegible] सिक्का
चित, राजा आहुति देते हुए, पट, शिव और नन्दी।
विम कफस के सिक्के ( पृष्ठ १११ ) से तुलना कीजिये।

उधर वीरकूर्च के बेटे शिवस्कन्दवर्मा ने कांची पर अपना अधिकार हट रक्खा ( लगभग २८० २९५ ई० )। तो भी तामिल राज्यों से पल्लवों का मुकाबला जारी रहा। शिवस्कन्दवर्मा के पोते विजयस्कन्दवर्मा ( लगभग २९७-३३२ ई० ) को कांची फिर से जीतनी पड़ी। दक्खिन-पूरबी कर्णाटक में इस समय काण्व ब्राह्मणों का एक राजवंश पल्लवों के सामन्त रूप में गंग वंश नाम से स्थापित हुआ।
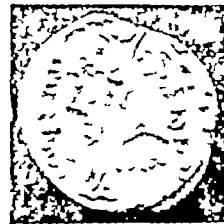
चन्द्र-गुप्त ( १ म ) का सोने का सिक्का
चित—राजा-रानी, लेख-चन्द्रगुप्त, श्रीकुमार देवी,
पट सिंह पर दाहिने मुख बैठी देवी,
लेख—लिच्छवय।
[ श्रीनाथ साह संग्रह ]

§६. कादम्ब और गुप्त राज्यों का उदय—खास कर्णाटक में मयूर शर्मा नामक व्यक्ति ने 'पल्लवों और' वाकाटकों से स्वतन्त्र हो कर अपना राज्य स्थापित किया ( लगभग ३२५ ई० )। मयूरशर्मा कादम्ब वंश का था, और अपने को चुटु-सात-वाहनों का

उत्तराधिकारी मानता था। उसने अपरान्त (कोंकण) तक जीतना चाहा, पर वाकाटकों ने महाराष्ट्र और अपरान्त पर अपना अधिकार दृढ रक्खा और कादम्ब राज्य कर्णाटक या कुन्तल में ही सीमित रहा।

कर्णाटक के साथ-साथ मगध में भी एक नयी शक्ति उठ खडी हुई। २७५ ई० के करीब साकेत-प्रयाग प्रदेश में गुप्त नामक एक राजा था। गुप्त का वेटा घटोत्कच हुआ, और उसके वेटे चन्द्र ने अपने को चन्द्र-गुप्त कहा। चन्द्र-गुप्त ने ३१९-२० ई० में राज पाया। उसके वंशजों ने तब से गुप्त सम्वत् का आरम्भ माना। चन्द्र-गुप्त ने वैशाली के लिच्छवि सरदारों की एक कन्या कुमारदेवी से विवाह किया, और लिच्छवियों की मदद से पाटलिपुत्र पर चढाई कर उसे जीत लिया। किन्तु कुछ समय वाद उसे मगध से निकलना पडा। उसका वेटा समुद्र-गुप्त उसका उत्तराधिकारी हुआ (लगभग ३४० ई०)

---

# अध्याय २

## गुप्त साम्राज्य का उदय और उत्कर्ष

(लगभग ३४०-४५५ ई०)

§१ दिग्विजयी समुद्र-गुप्त (लगभग ३४४-३८० ई०)—सम्राट् प्रवरसेन के मरते ही समुद्र-गुप्त ने वाकाटक साम्राज्य पर हमला किया। उसका रणकौशल अद्वितीय था। तीन या चार युद्धों मे वाकाटक साम्राज्य को जीत कर तथा एक चढाई मे गुजरात-काठियावाड के राज्य का दमन कर वह समूचे भारत का 'महाराजाधिराज' वन गया। उसकी विजयों का वृत्तान्त अशोक की कौशाम्बी वाली लाट पर, जो अब इलाहाबाद के किले में है, खुदा है। उससे तथा काठियावाड के सिक्कों से उसका इतिहास इस प्रकार प्रकट हुआ है—

समुद्र-गुप्त ने पहले मगध पर चढाई कर पाटलिपुत्र को घेर लिया। पद्मावती और गंगा-यमुना-काँठे के नाग सरदार पाटलिपुत्र को बचाने दौड़े, समुद्र-गुप्त ने उन्हें रास्ते में—सम्भवतः कौशाम्बी पर—रोक कर हराया और "जड़ से उखाड़ डाला।" उधर उसकी सेना ने पटना ले कर वहाँ के राजा को कैद कर लिया। इस प्रकार एक ही युद्ध में मगध और अन्तर्वेद समुद्र-गुप्त के हाथ आ गये।

तब उसने वाकाटक साम्राज्य के दक्खिन-पूरबी पहलू पर चढाई की। मगध और झाड़खड से कोशल ( छत्तीसगढ ) और महाकान्तार ( बस्तर ) जीतता हुआ वह आन्ध्र देश की तरफ बढ़ा। कुराल ( कोल्लेरु ) झील पर कलिग और आन्ध्र के सरदारों ने तथा काञ्ची के पल्लव राजा सिंहवर्मा के छोटे भाई विष्णुगोप ने, उसका मुकाबला किया। युद्ध मे ये सब राजा कैदी हुए और अधीनता मानने पर छोडे गये।

इस प्रकार वाकाटक साम्राज्य के दो पहलू तोड कर समुद्र-गुप्त ने उसके केन्द्र पर चढाई की। बीना नदी के तट पर अरिकिण ( एरन ) नाम की प्राचीन बस्ती पर लडाई हुई, जिसमे प्रवरसेन का बेटा रुद्रसेन या रुद्रदेव अपने सरदारों सहित मारा गया।
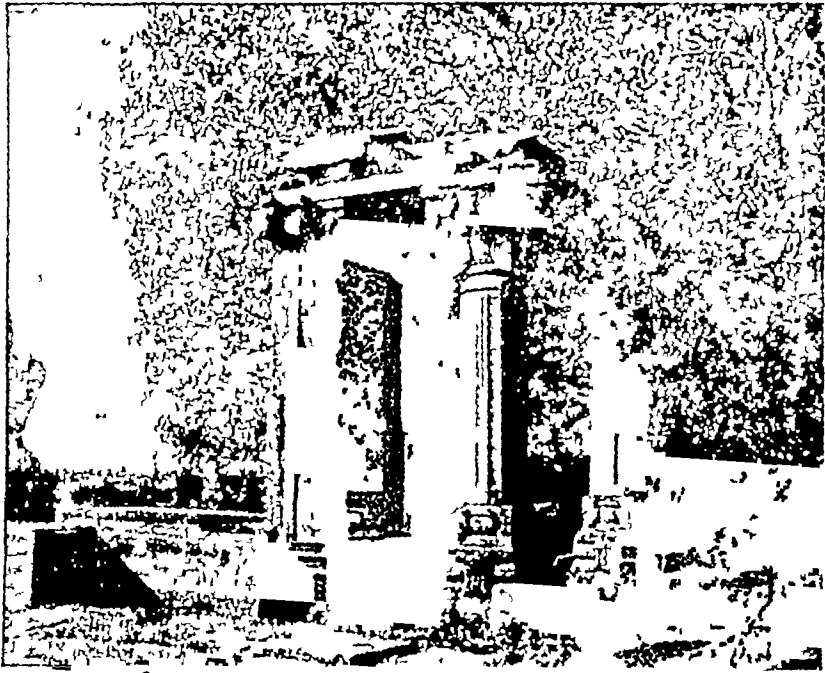
एरण ( जि० सागर ) में समुद्र-गुप्त की रानी के स्थापित किये विष्णु-मन्दिर के अवशेष [ भा० पु० वि० ]

इन एकबारगी विजयों से समुद्र-गुप्त की धाक जम गयी। सब "प्रत्यन्तों" अर्थात् सीमान्तों के राज्यों ने आप से आप उसे कर देना और पूरी तरह उसकी आज्ञा में रहना मान लिया। इन "प्रत्यन्त" राज्यों में ( १ ) समतट ( गगा का मुहाना ), ( २ ) डवाक ( चटगाँव-त्रिपुरा ), ( ३ ) कामरूप, ( ४ ) नेपाल तथा

(५) कर्तृपुर (कुमाऊँ) के राज्य और (६) मालव, (७) आर्जुनायन, (८) यौधेय, (९) माद्रक, (१०) आभीर और (११) मालवा के अनेक छोटे-छोटे गणराज्य शामिल थे। नेपाल में तो गुप्तों के सम्बन्धी लिच्छवियों का ही राज्य था।

सन् ३४५ ई० के करीब जब प्रवरसेन की मृत्यु के पीछे समुद्र-गुप्त ने पाटलिपुत्र पर एकाएक चढाई की तो गुजरात-काठियावाड के राजा स्वामी रुद्रदामा (२य) ने मौका देख कर महाक्षत्रप पद धारण कर लिया। किन्तु वाकाटक साम्राज्य से छुट्टी पाते ही समुद्रगुप्त गुजरात पर बिजली की तरह टूट पडा (३५१ ई०)। स्वामी रुद्रदामा के बेटे रुद्रसेन (३य) के समूचे राज्य में एकाएक क्रान्ति हो गयी, और उस राज्य का अन्त हो गया। १३ वर्ष पीछे रुद्रसेन सामन्त रूप से फिर अपना सिक्का चला सका। समुद्र-गुप्त ने इस प्रकार "अनेक गिराये हुए राज्यों की फिर से स्थापना की।" भारतवर्ष मे उसका साम्राज्य स्थापित होने पर "देवपुत्र शाहि शाहानुशाहि" अर्थात् काबुल और तुखारिस्तान के कुषाणवशी राजा ने और सिंहल आदि सब भारतीय द्वीपो के राजाओं ने उसे अपना आधिपति स्वीकार किया।

समुद्र-गुप्त का अश्वमेध-स्मारक दीनार (सोने का सिक्का) चित, घोड़े के चौगिर्द लेख—राजाधिराजः पृथिवीं विजित्य दिवं जयत्यप्रतिवार्यवीर्यं। पट, देवी, लेख—अश्वमेधपराक्रम। [श्रीनाथ साह सग्रह]

रुद्रसेन वाकाटक से उसका साम्राज्य छीन लेने के बाद उसके बेटे पृथिवीषेण (लगभग ३४८--३७५ ई०) के पास समुद्र-गुप्त ने दक्खिनी चेदि और महाराष्ट्र का राज्य रहने दिया। कादम्ब मयूरशर्मा के बेटे कंग ने पल्लवो के समुद्र-गुप्त से हारने पर दक्खिन में अपना राज्य फैलाना चाहा, पर पृथिवीषेण ने उसे कुन्तल अर्थात् कर्णाटक की सीमाओं से आगे न बढने दिया।

भारतवर्ष की दिग्विजय कर समुद्र-गुप्त ने अश्वमेध किया। वह जैसा अद्वितीय विजेता था, वैसा ही आदर्श राजा और सुशासक भी था। वह स्वयम् विद्वान् था तथा काव्य और सगीत में विशेष निपुण था। वह और उसके वशज विष्णु के उपासक थे। भगवान् विष्णु की तरह दुष्टों का दलन कर, प्रजा का पालन और मगल करना तथा राष्ट्र को सब प्रकार समृद्ध बनाना उन्होंने अपना कर्तव्य समझा।

**§२. चन्द्र गुप्त विक्रमादित्य**—समुद्र-गुप्त ने अपने छोटे बेटे चन्द्र-गुप्त को अपना उत्तराधिकारी बनाना चाहा था, पर मन्त्रियों ने जेठे बेटे राम गुप्त को राज्य दिया। उसके राज पाते ही कुषाण-वंशी राजा ने गुप्त साम्राज्य पर चढ़ाई की। व्यास नदी के किनारे हिमालय की बाहरी शृंखला में निरगुरद नाम के पहाड़ी गढ़ में राम-गुप्त घिर गया, और अपनी रानी ध्रुवस्वामिनी को सौंप देने

समुद्रगुप्त के सोने के सिक्के

वीणावादक नमूना

धनुर्धर नमूना

[ पटना म्यू० ]

की शर्त पर उसने शत्रु से छुटकारा पाने की सन्धि की। नौजवान चन्द्र-गुप्त से यह अपमान न सहा गया। उसने अपने भाई के सामने एक योजना रक्खी। स्वयम् ध्रुवस्वामिनी का और अपने बहुत से नौजवान साथियों से उसकी सहेलियों का भेस बनवा वह शत्रु की छावनी में घुसा और ज्यों ही उसने कुषाण-वंशी राजा का तथा उसके सरदारों का काम तमाम कर शंख बजाया त्यों ही गढ़ के भीतर वाली सेना ने शत्रु की सेना पर टूट कर उसे तहस नहस कर दिया। चन्द्र-गुप्त ने इसके बाद "सिन्धु की सातों धाराएँ" ( पंजाब और काबुल की नदियाँ ) "युद्ध में पार कर" बलख पर चढ़ाई की और कुषाण-वंशजों को उनके ही गढ़ में परास्त किया।

इसके बाद कायर राम-गुप्त का शीघ्र ही अन्त हो गया और भारतवर्ष का साम्राज्य चन्द्र-गुप्त को मिला। देवी ध्रुवस्वामिनी ने अपने उस उद्धारक को अपना पति वरण किया। भेलसा के पास उदयगिरि में चन्द्रगुप्त के बनवाये हुए गुहा-मन्दिरों के बाहर, पृथिवी का उद्धार करती हुई वराह की एक विशाल मूर्ति बनी है, जिसमें ध्रुवस्वामिनी के उद्धारक चन्द्र-गुप्त के तेज और वीर्य की स्पष्ट झलक दिखायी देती है।

वलख की लड़ाई से पहले कुमार चन्द्र-गुप्त बंगाल में कई सम्मिलित शत्रुओं के एक दल को हरा चुका था। राम-गुप्त के समय की साम्राज्य की कमजोरी से लाभ उठा कर, पच्छिमी क्षत्रपों ने फिर स्वतन्त्र महाक्षत्रप पद धारण कर लिया
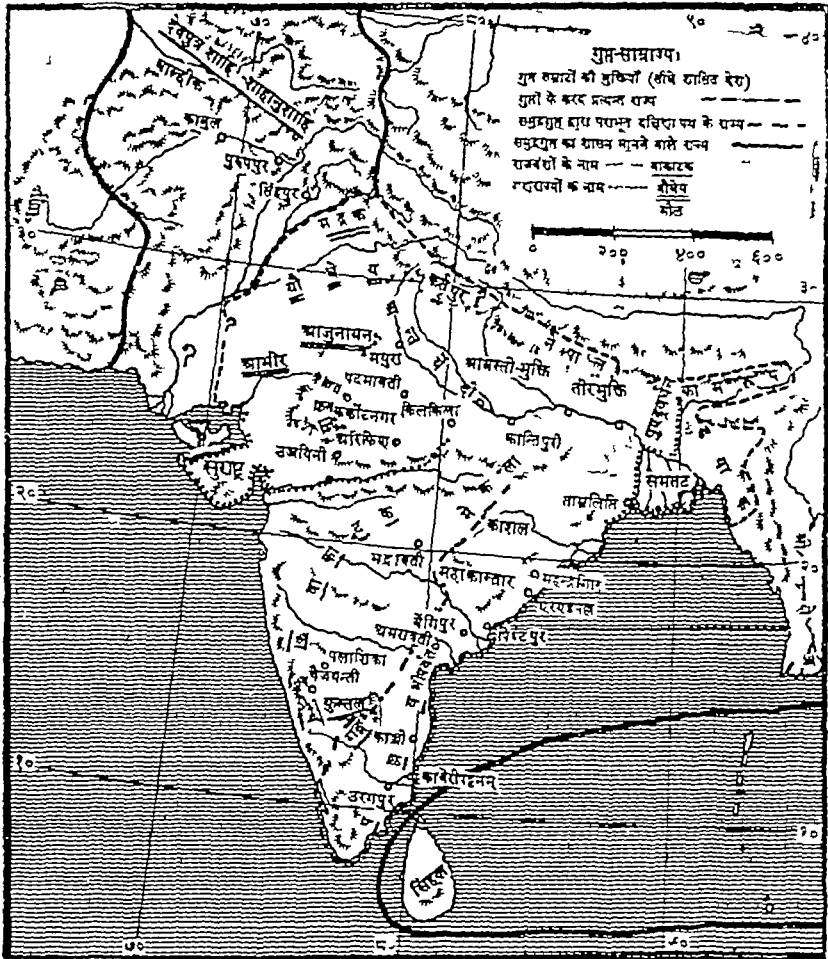
( ३८२ ई० )। उत्तरापथ से लौट कर चन्द्र-गुप्त ने दक्खिन पर चढ़ाई की और, उनके राजवंश को सदा के लिए मिटा दिया ( ३६०, ई० )। विष्णुपद पहाड़ पर उसकी इन विजयों की याद में एक लोहे का स्तम्भ खड़ा किया गया जिसे ११वीं,

शती में राजा अनगपाल दिल्ली उठवा ले गया। वहाँ महरौली में उस "लोहे की कीली" पर उसकी कीर्ति अब तक खुदी है। अपनी विजयों के कारण चन्द्र-गुप्त ने विक्रमादित्य पद धारण किया।

उदयगिरि की चन्द्र-गुप्त गुहा के बाहर वराह मूर्त्ति
वराह की दन्तकोटि पर लटकती हुई स्त्री-मूर्त्ति पृथिवी या ध्रुवस्वामिनी [ग्वालियर पु० वि० ]

§३. रानी प्रभावती—सम्राट् चन्द्र-गुप्त ने अपनी बेटी प्रभावती का राजा पृथ्वीषेण के बेटे रुद्रसेन (२य) से विवाह किया। रुद्रसेन की मृत्यु के बाद अपने नाबालिग बेटों के नाम पर प्रभावती स्वयम् शासन करती रही (लगभग ३९५-४१५ ई०)। इस प्रकार जब उत्तर भारत में चन्द्र-गुप्त विक्रमादित्य का राज्य था तभी महाराष्ट्र में रानी प्रभावती राज करती थी। वह भारतवर्ष के लिए अत्यन्त गौरव और समृद्धि का युग था। चन्द्र-गुप्त ने अपने राज्य से मृत्युदण्ड उठा दिया था।

§४. कुमार-गुप्त (१म)—चन्द्र-गुप्त विक्रमादित्य के बाद उसके बेटे कुमार-गुप्त ने ४० वर्ष (४१५-४५५ ई०) शान्ति-पूर्वक राज्य किया। वाकाटक राज्य में यही समय, प्रभावती के बेटे प्रवरसेन (लगभग ४१५-३५ ई०) और उसके बेटे नरेन्द्रसेन (लग० ४३५-७० ई०) के शासन में बीता। राजगृह और पाटलिपुत्र के बीच नालन्दा नामी स्थान में कुमार-गुप्त ने एक महाविहार की स्थापना

की। आगे चल कर वह एक महान् विद्यापीठ के रूप में प्रसिद्ध हुआ। कुमार-गुप्त का शासन-काल भारतवर्ष में अद्वितीय शान्ति और समृद्धि का युग था। किन्तु उत्तर-पच्छिमी सीमान्त पर तब एक नयी आँधी आने की सूचना मिल रही थी।

महरौली में राजा चन्द्र की लोहे की कीली, जिस पर उसके बगाल, बलख और दक्खिन की विजयों का वृत्तान्त खुदा है। पड़ोस की टूटी मसजिद अनगपाल के मन्दिर का रूपान्तर है। [भा० पु० वि०]

§५. मध्य-एशिया में हूण और गान्धार में किदार वंश—प्राय. पाँच सौ बरस चुप रहने के बाद चौथी शती ई० के अन्त में हूण लोग फिर अपने घरों से निकले, और टिड्डी-दल की तरह ससार के सब सभ्य देशों पर छा गये। जहाँ कहीं वे पहुँचते, गाँव और बस्तियाँ जलाते और मारकाट मचाते जाते। उनकी जगली आदतों के अतिरिक्त उनकी चिपटी नाक, गडी हुई छोटी आँखें और कर्कश आवाज उन्हें और भी भयकर बना देती थीं। उनकी एक बाढ वोल्गा नदी को लाँघ कर युरोप को चली गयी और रोम-साम्राज्य पर मँडराने लगी। जैसे प्राचीन ईरान और आर्यावर्त के उत्तरी सीमान्त पर शक लोग रहते थे, वैसे ही रोम-साम्राज्य के उत्तर-पूरब राइन और दान्यूब नदियों के उस तरफ गत

( Goth ),* स्लाव ( Slav ), त्यूतन ( Teuton ) आदि असभ्य जातियाँ रहती थीं। हूणों ने उनके देशों में खलबली मचा दी, जिससे वे रोम-साम्राज्य पर जा टूटीं और उसे तहस-नहस करने लगीं। स्वयम् हूण मध्य-युरोप तक जा पहुँचे, जहाँ उनके नाम से एक देश हुंगरी कहलाने लगा, तथा उनके भाईबन्दों के नाम से एक देश बुलगारिया। अतिला नामक हूण सरदार ने रोम

चन्द्र-गुप्त विक्रमादित्य का सोने का सिक्का
चित, राजा शेर का शिकार करते हुए,
लेख—नरेन्द्र । पट, सिंहवाहिनी
देवी, लेख—सिंहविक्रम । [श्री० सा० स०]

कुमार-गुप्त (१म) का सोने का सिक्का
चित, राजा घोड़े पर सवार, लेख—गुप्तकुल-
व्योमशशी जयत्यजेयो जितामरेन्द्र ।
पट, देवी मोर को खिलाते हुए।
[श्री० सा० स०]

का पूरा पराभव कर उसे लूट लिया।

हूणों की दूसरी बाढ़ मध्य-एशिया के तुखार राज्यों पर टूटी (लगभग ४२५ ई०)। मध्य-एशिया का किदार नामक एक ऋषिक (युचि) सरदार भाग कर भारत आया, और उसने तक्षशिला में अपने राजवंश की स्थापना की। मध्य एशिया की शान्ति, समृद्धि और सभ्यता का हूणों ने अन्त कर दिया। सुग्ध दोआब के तुखार राज्य को जीत कर उन्होंने ईरान के सासानी राज्य पर हमले करना शुरू किया। सासानियों से उनकी लड़ाइयाँ प्रायः सवा सौ बरस तक जारी रहीं।

---

* भारतीय अभिलेखों में गौथ के लिए गत शब्द आया है। महाराष्ट्र के जुन्नर नामक स्थान में सातवाहन-युग के दो लेख हैं, जिनमें दो गत-यवनों द्वारा बौद्ध संघ को दान दिये जाने की बात दर्ज है। यवन शब्द वहाँ युरोपियन के अर्थ में है।

# अध्याय ३

## गुप्त साम्राज्य, हूण और यशोधर्मा

( लगभग ४५५—५४० ई० )

§१ सम्राट् स्कन्द-गुप्त ( ४५५-४६७ ई० )—४५४ ई० में सासानी राजा यज्दगुर्द ( २य ) को हरा कर हूणों का एक दल अफगानिस्तान लाँघता हुआ पंजाब तक बढ़ आया। कुमार-गुप्त की मृत्यु कैसे हुई, सो स्पष्ट नहीं है। तो भी इतना निश्चित है कि उसकी मृत्यु के समय "गुप्तों की राज्य-लक्ष्मी डगमगा गयी थी", और उसका बेटा स्कन्द-गुप्त बहादुरी से शत्रुओं का मुकाबला कर रहा था। वे शत्रु एक तो हूण थे, दूसरे मालवा का पुष्यमित्र नामक गण था, जिसने अब विद्रोह किया था। तीन महीने के अन्दर सब शत्रुओं को परास्त कर, विजय का समाचार लिये स्कन्द-गुप्त अपनी माँ के पास उसी तरह पहुँचा, जैसे "कृष्ण देवकी के पास गये थे।" माँ ने डबडबाई आँखों से उसका स्वागत किया। हूणों को उसने ऐसी करारी हार दी कि अगले तीस बरस तक उन्होंने भारतवर्ष की ओर मुँह न फेरा, और प्राय ५५ बरस तक गुप्त-साम्राज्य को फिर छेड़ने की हिम्मत न की। उस विजय का स्मारक एक स्तम्भ खड़ा किया गया, जो गाजीपुर जिले के सैदपुर-भितरी गाँव में अब भी मौजूद है। स्कन्द-गुप्त के बारह बरस ( ४५५-४६७ ई० ) के शासन में गुप्त-साम्राज्य का गौरव ज्यों का त्यों बना रहा।

§२. बुध-गुप्त और भानु-गुप्त—स्कन्द-गुप्त के बाद दस बरस में तीन सम्राटों ने राज किया, और फिर बीस बरस तक ( ४७७-९९ ई० ) बुध-गुप्त ने। बुधगुप्त के बाद उल्लेखयोग्य राजा भानु-गुप्त हुआ। वही शायद बालादित्य ( २य ) था। इन सम्राटों का वंशवृक्ष और राज्यकाल इस प्रकार है—
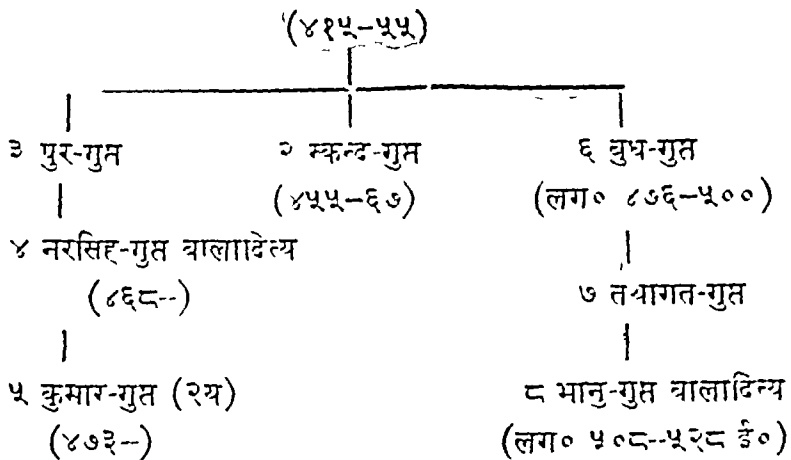
§३ गान्धार मे हूण, तोरमाण और मिहिरकुल—उधर ईरान के सासानी शाहों और काबुल के तुखारों का मध्य एशिया मे हूणों के साथ घोर मुकाबला जारी रहा। ४८४ ई० मे ईरान का शाह फीरोज उनसे लड़ता हुआ मारा गया। तब उन्होंने अफगानिस्तान को भी पैरों तले रौंद डाला, और उसकी अनेक सुन्दर सभ्य बस्तियो को मटियामेट कर डाला। गान्धार पहुँच कर उन्होंने किदार के वशजो को वहाँ से भगा दिया, किदारों ने उरशा ( हजारा ) और कश्मीर में शरण ली।

५०० ई० के बाद गान्धार का हूण राजा तोरमाण "षाही जऊव्ल" था। उसने गुप्त साम्राज्य को कमजोर पा कर पजाब से मालवा तक अधिकार कर लिया। भानु-गुप्त अपने सामन्तों के साथ एरण में हूणों के खिलाफ बहादुरी से लड़ा ( ५१० ई० )। लेकिन बाद में उसे तोरमाण के बेटे मिहिरगुल या मिहिरकुल को अपना अधिपति मानना पड़ा।

मिहिरकुल ने शाकल ( स्यालकोट ) को अपनी राजधानी बनाया। वह अपने को पशुपति ( शिव ) का उपासक कहता था। गान्धार की प्रजा पर, विशेष कर बौद्धों पर, उसने घोर अत्याचार किये, जिससे गान्धार में बौद्ध शासन का अन्त हो गया। भानु-गुप्त बालादित्य ने तब उसका आधिपत्य मानने से इनकार किया। मिहिरकुल ने, उसपर चढाई की। बालादित्य उसके सामने भागने के बहाने कर उसे कहीं गगा के कछार में भटका ले गया, और तब एकाएक हमला कर उसे कैद

कर लिया ( लग० ५२७ ई० )। बालादित्य ने उसे सूली पर चढाना तय किया, लेकिन उसकी माता ने मिहिरकुल की जान बख्श दी। मिहिरकुल पंजाब लौटा, पर उसके भाई ने पीछे उसकी गद्दी सँभाल ली थी। इसलिए मिहिरकुल ने भाग कर कश्मीर के राजा के यहाँ शरण ली और कुछ समय बाद अपने आश्रयदाता का राज्य छीन लिया। तब फिर उसने गान्धार पर चढाई की, और वहाँ बडे अत्याचार किये। हूणों के दो तीन आक्रमणों से तक्षशिला सदा के लिए मटियामेट हो गयी।

हूण विजय का स्मारक स्तम्भ, सैदपुर-भितरी ( जि० गाजीपुर ) [भा० पु० वि०]

§४ यशोधर्मा—उत्तर भारत की जब यह हालत हो रही थी, तब वाकाटक राजा हरिषेण अवन्ति से कुन्तल और कलिंग की सीमाओं तक अपना राज्य बनाये हुए था ( लग० ४६०–५२० ई० ), और कर्णाटक का कादम्ब राज्य भी अच्छी उन्नति पर था।

पंजाब, थानेसर और मालवा को गुप्त सम्राट् हूणों से न बचा सके, तब वहाँ की सारी प्रजा हूणों के खिलाफ उठ खडी हुई। उसका अगुआ "जनता का नेता" यशोधर्मा नाम का एक व्यक्ति था। उसने वह काम कर दिखाया जो गुप्त सम्राटों के वंशज न कर सके थे। हिन्दुस्तान से उसने हूणों की जड उखाड़ डाली और

देश का शासन अपने हाथ में ले लिया। जिस मिहिरकुल से बालादित्य डरता फिरता था, उसे यशोधर्मा ने "हिमालय के जगलों में खदेडा, और अपने चरणों पर झुकने को बाधित किया।" कमज़ोर गुप्तों के साम्राज्य पर भी उसने दखल कर लिया। "लौहित्य (ब्रह्मपुत्र) के कांठे से महेन्द्र पर्वत (उडीसा) तक और हिमालय से पच्छिमी समुद्र तक" समूचा देश अपने उस उद्धारक का शासन मानने
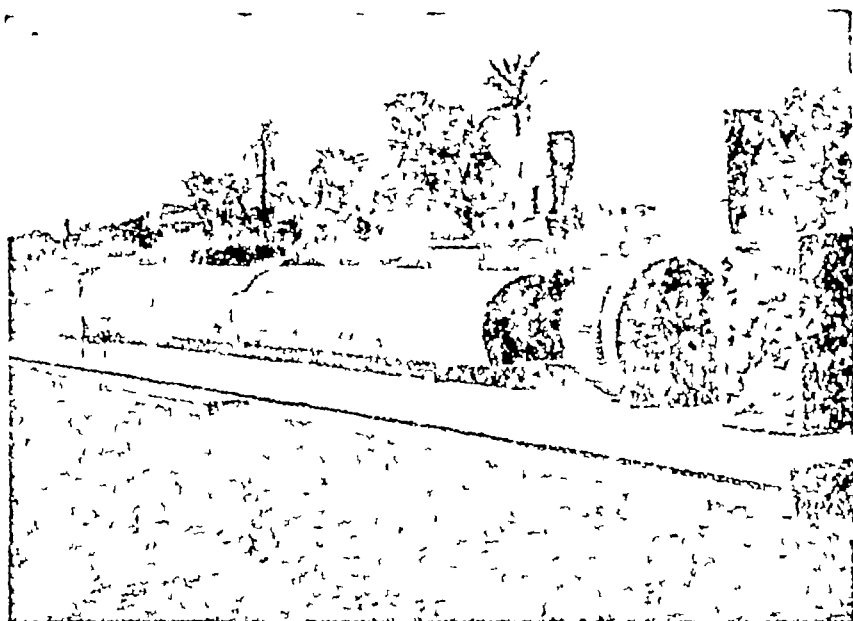
दासोर में पडे हुए यशोधर्मा के विजय स्तम्भ [ ग्वालियर पु० वि० ]

लगा। "जिनपर गुप्तों का अधिकार कभी न हुआ था, और जिनमें हूणों की आज्ञा कभी न पहुँची थी" ऐसे कई देश भी उसके अधीन हो गये। वाकाटकों का राज्य भी सम्भवत. उसी के साम्राज्य में मिल गया। दासोर (मन्दसोर) में यशोधर्मा के विजय-स्तम्भ, जिनमें से एक पर ५३२ ई० का लेख है, अब तक पडे हैं। यशोधर्मा के पचीस-तीस बरस पीछे (५५७–५६७ ई०) ईरान के प्रसिद्ध बादशाह नौशीरवाँ ने मध्य-एशिया में भी हूणों की शक्ति तोड दी।

यशोधर्मा के शान्ति-युग के साथ हमारे इतिहास का प्राचीन काल समाप्त होता है। इसके बाद के करीब एक हजार बरस को हम मध्य काल कहते हैं।

# अध्याय ४

## वाकाटक-गुप्त-युग का भारतवर्ष

§१ गुप्त सुशासन और समृद्धि—गुप्त सम्राटों के शासन-काल में भारतवर्ष ने जैसी शान्ति और समृद्धि देखी, वैसी न तो शायद पहले कभी देखी थी, और न पीछे कभी देख पायी। भारतवर्ष तब अपनी सभ्यता के उच्चतम शिखर पर पहुँच

नालन्दा और महजाति का खुदाई में पायी गुप्तों की सरकारी मुहरें— असल परिमाण

"नगर भुक्तौ कुमारामात्याधिकरणस्य"
(नगर का शासन करने वाले कुमार-अमात्य के दफ्तर की मुहर)

"सामाहर्स विषयाधिकरणस्य"
('सामाहर्स जिले के दफ्तर की')
[मा० पु० वि]

गया था। समूचा गुप्त साम्राज्य बहुत से 'देशों' और 'भुक्तियों' में बँटा हुआ था, जैसे अन्तर्वेदी (ठेठ हिन्दुस्तान), श्रावस्ती-भुक्ति (अवध), तीर-भुक्ति (तिरहुत), 'यमुना-नर्मदा का मध्य', इत्यादि। प्रत्येक देश, या भुक्ति पर एक 'गोप्ता' या "उपरिक महाराज' शासन करता था जो या तो सम्राट् का नियुक्त किया हुआ या उसका सामन्त राजा होता था। देश या भुक्ति फिर कई छोटे "विषयों" अर्थात् जिलों में बँटी होती थी। प्रत्येक देश या भुक्ति के शासन के लिए कई महकमे थे।

प्रत्येक महकमे का अलग-अलग दफ्तर ( अधिकरण ) होता था। तीरभुक्ति की राजधानी वैशाली के खँडहरों में से वहाँ के बहुत से अधिकरणों की मोहरें पायी गयी हैं। गुप्त सम्राटों की सफलता का सब से बड़ा कारण उनका सुशासन और सुव्यवस्था थी। उनकी शासन-पद्धति की नकल भारतवर्ष के दूसरे सब
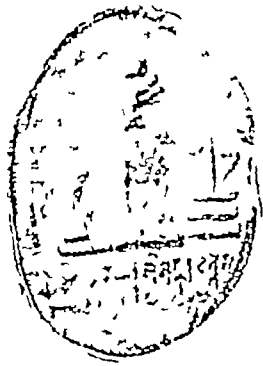
"दण्डनायकश्रीशंकरदत्तस्य" ('पुलिस-नायक श्रीशंकरदत्त का')

राजाओं ने भी की, और उसके बाद के जमाने में भी लगातार उसी की नकल होती रही।

'कुमारामात्याधिकरणस्य" (कुमार अमात्य के दफ्तर का')

§ ७. ग्रामों और जनपदों के संघ, शिल्पियों की श्रेणियाँ, व्यापारियों के निगम—वैशाली के खँडहरों में पायी गयी गुप्त-युग की मुहरों में एक ग्राम की मुहर भी है, जिससे प्रतीत होता है कि राजकीय शासन के नीचे ग्रामों, नगरों आदि की पंचायतें पहले की तरह अपना प्रबन्ध स्वतन्त्रता से करती आती थीं। नालन्दा के खँडहरों में से सरकारी अधिकरणों (दफ्तरों) और ग्रामों की मुहरों के अतिरिक्त कई 'जानपदों'—अर्थात् जनपद या देश के संघों—की भी मुहरें मिली हैं। उनसे सिद्ध होता है कि जनपदों की संगठित राष्ट्रसभाएँ इस युग में भी मौजूद थीं।

वैशाली में व्यापारियों के निगमों और कारीगरों की श्रेणियों की मुहरें भी पायी गयी हैं। श्रेणियों के लेख और भी कई जगह से मिले हैं। उनसे यह जाना गया है कि व्यापारियों और शिल्पियों के संगठन भी पहले से अधिक समृद्ध दशा में थे।

"पुरिकाग्राम-जानपदस्य"
नालन्दा में पाया गया एक जानपद संघ की मुहर, गुप्त युग की लिपि में [ भा० पु० वि० ]

वाकाटकों और गुप्तों के समय में देश की समृद्धि और उसका व्यवसाय सातवाहन-युग से भी कहीं, अधिक बढ़े हुए थे। विदेशी व्यापार खूब होता था। कुषाण-वंशजों के शासन में कश्मीर में तीसरी शती तक वहाँ के जगत्-प्रसिद्ध शालों का व्यवसाय स्थापित हो चुका था। २७४ ई० में सासानी राजा ने रोम-सम्राट् को एक कश्मीरी शाल भेंट किया, जिसकी नफासत देख कर रोम के लोग दंग रह गये थे। होर्मिज्द (२य) (३०१–३०६ ई०) के साथ काबुल की जिस राजकुमारी का विवाह हुआ, उसका सब दहेज भी कश्मीरी जुलाहों ने तैयार किया था। भारतवासी अपने ही जहाजों से विदेशों में माल ले जाते थे। इस जमाने में नारद-स्मृति बनी। मनुस्मृति और याज्ञवल्क्य-स्मृति की अपेक्षा उसमें व्यापारिक कानून कहीं अधिक हैं।

**§३. वाकाटक-गुप्त-युग का बृहत्तर भारत**—वाकाटक और गुप्त युगों में भारतवर्ष कहने से उपनिवेशों-सहित भारतवर्ष ही समझा जाता था। वाकाटक और पल्लव राज्यों का सामुद्रिक उपनिवेशों से घनिष्ठ सम्बन्ध था। यह सम्बन्ध ठेठ

भारतवर्ष तथा उन उपनिवेशों की लिपियों तक का मिलान करने से देखा जा सकता है। वाकाटक युग में तत्कालीन बरमा-निवासी प्यू नामक किरात जाति की भाषा भारतीय अक्षरों में लिखी जाने लगी।

चीन-हिन्द में तुखार और ऋषिक लोग जो बोलियाँ बोलते थे, वे भी गुप्त जमाने में लिखी जाने लगीं और सभ्य भाषाएँ बन गयीं। उनमें साहित्य पैदा हो गया, और अच्छे-अच्छे ग्रन्थ भी लिखे
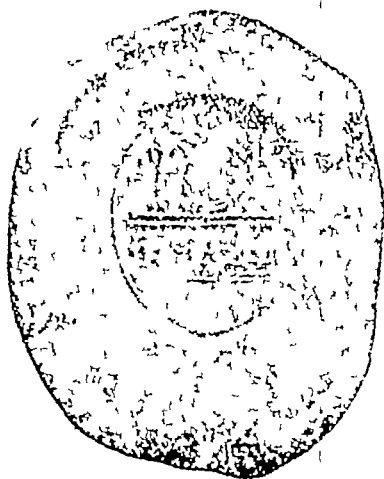
"पादयाग् ग्रामस्य"

नालन्दा में पायी गयी एक ग्राम की मुहर—
गुप्त युग की लिपि में [ भा० पु० वि० ]

अश्वघोष-कृत वज्रच्छेदिका के खोतनदेशी अनुवाद की भोजपत्र पर लिखी पोथी का एक पृष्ठ। यह पोथी तुर्किस्तान से मिली है।

जाने लगे। पर वे लिखी गयी हमारे देश की ही उस लिपि में जो यहाँ गुप्त-युग में चलती थी। उसका साहित्य भी प्रायः संस्कृत से अनुवादित था, या उसके नमूने पर बना था। उन भाषाओं को तुखारी और खोतनदेशी कहते हैं। तुखारी तारीम नदी के उत्तर तुरफान, कूचा आदि बस्तियों की भाषा थी, खोतन-देशी उसके दक्खिन खोतन इलाके की।

उधर परले हिन्द और हिन्दी द्वीपावली में भारतीय राज्य बोर्नियो द्वीप के पूरबी छोर तक पहुँच गये। पूरबी बोर्नियो में चौथी शती में राजा मूलवर्मा का

राज्य था, जिसके बनवाये हुए यज्ञों के यूप ( खम्भे ) और संस्कृत के लेख अब भी मौजूद हैं। जावा में उसी समय का राजा पूर्णवर्मा का लेख पाया गया है। चम्पा
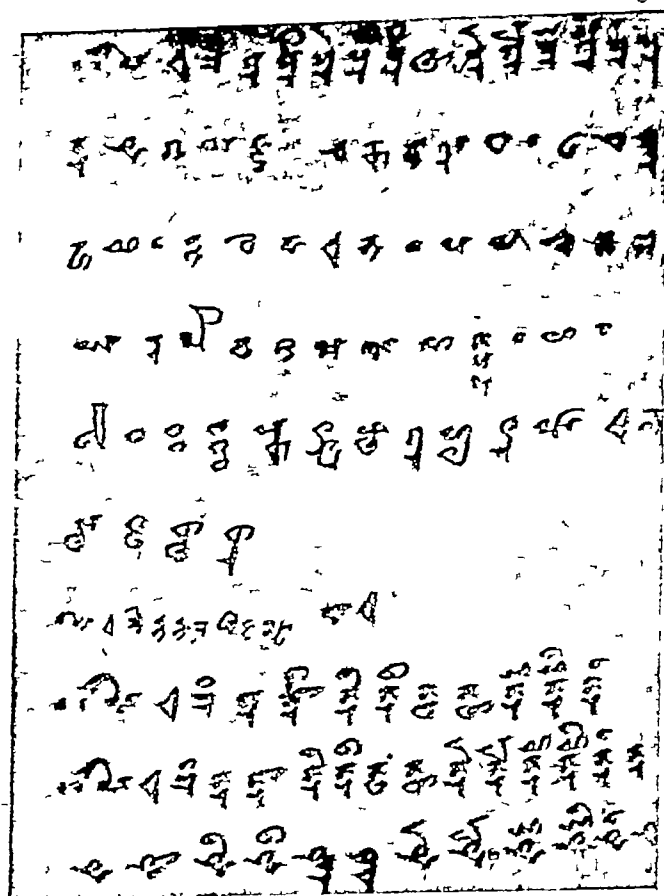
खोतनदेशी वर्णमाला और बारहखडी का तुएनहोआङ मे मिला एक पत्रा। शुरू में 'सिद्धम्' शब्द है। पहली पंक्ति में स्वर हैं, २-३-४ पंक्तियों में व्यंजन, ५-६ में अंक, ८-९-१० में क की बारहखड़ी।

में ४०० ई० के करीब राजा भद्रवर्मा ( १म ) था, उसका बेटा गंगा की तीर्थ-यात्रा करने आया। अपने देश में लौटने पर वह गंग-राज कहलाया, और उसका वंश भी तब से गंगराज-वंश कहलाने लगा। 'फूनान' के साम्राज्य में चौथी शती के

अन्त में दक्खिन भारतवर्ष से एक दूसरा कौडिन्य गया, जिसने वहाँ भारत के नमूने पर धर्म और समाज-विषयक अनेक सुधार किये। सुवर्णद्वीप अथवा यवभूमि ( =सुमात्रा-जावा ) मे पाँचवीं शती मे एक नया राज्य स्थापित हुआ, जो शीघ्र एक साम्राज्य बन गया। उसकी राजधानी श्रीविजय ( सुमात्रा मे आजकल का पालेम्बाग ) थी।

फन-ये नामक एक चीनी लेखक ने पाचवी शती के शुरू मे लिखा है कि काबुल से शुरू कर दक्खिन पच्छिम समुद्र-तट तक और वहाँ से पूरब तरफ आनाम तक सब देश शिन्-तु ( सिन्धु=हिन्द ) मे शामिल हैं। शिन्-तु को चीनी लोग थियेन-चु ( देवताओं का देश ) भी कहते थे।

जावा के राजा पूर्णवर्मा का लेख

(प०१) विक्रान्तस्यावनिपते (पं०२) श्रीमत पूर्णवर्म्मण (पं०३) तारुमनगरेन्द्रस्य (पं०४) विष्णोरिव पदद्वयम्।

§४. फा-हियेन, कुमारजीव और गुणवर्मा—भारतवर्ष और बृहत्तर भारत की हालत उस समय कैसी थी और उनका आपस मे और विदेशों से सम्बन्ध कैसा था, इसका पता हमें इस समय के तीन प्रसिद्ध विद्वान् यात्रियों के वृत्तान्तो से मिलता है। इनमे से एक फा-हियेन था। वह बौद्ध धर्म की ऊँची शिक्षा पाने और बुद्ध की जन्मभूमि देखने के लिए ३९९ ई० मे चीन से भारत के लिए रवाना हुआ और चन्द्र-गुप्त विक्रमादित्य के राज्य मे ४०५ से ४११ ई० तक रहा। चीन के कानसू प्रान्त से चीन-हिन्द पहुँच कर वहाँ के भारतीय राज्यो मे घूमता हुआ गान्धार हो कर वह मध्यदेश पहुँचा। वह लिखता है कि भारतवर्ष दुनिया भर से बढ कर सभ्य देश है, यहाँ पूरा रामराज्य है। प्रजा सभ्य, सम्पन्न और सदाचारी है। लोग नशा नहीं करते, अपराध बहुत कम होते हैं, अपराधों के दण्ड बहुत हलके हैं और मृत्यु-दण्ड किसी को नहीं दिया जाता। अपनी लम्बी यात्रा मे

फा-हियेन को कहीं चोर-डाकुओ से वास्ता नहीं पडा। एक बात और ध्यान देने की यह है कि फा-हियेन के समय तक हिमालय की तराई की बस्तियाँ—कपिलवास्तु, कुशिनगर आदि—जिनमें बुद्ध के समय बडी चहल-पहल थी, सब जगल हो चुकी थीं। वैसे बौद्ध धर्म और पौराणिक धर्म दोनों देश में बराबर-बराबर चल रहे थे। फा-हियेन मगध से चम्पा ( भागलपुर ) हो कर ताम्रलिप्ति ( तामलूक ) पहुँचा। वहाँ जहाज मे बैठ १४ दिन मे सिंहल पहुँचा, फिर वहाँ से ६० दिन मे यवद्वीप।

वेंगिपुर ( कृष्णा के मुहाने ) का चौथी शती ई० का एक लेख
( पूर्णवर्मा के लेख मे लिपि की तुलना करने के लिए )
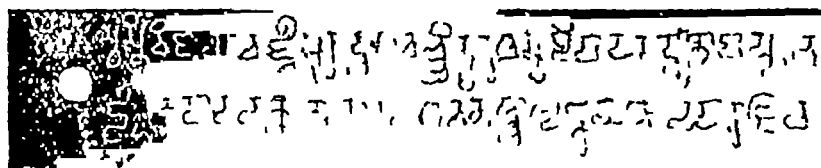
( पहला पत्रा, प० १ ) स्वस्ति विजयवेङ्गीपुराद्भगवच्चित्ररथस्वामिपादानुद्ध्यातो भ-
( प० २ ) ट्टारकपादभक्त परमभागवतश्शालङ्कायनो महाराजा च-
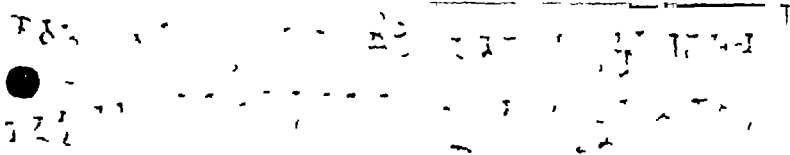
( दूसरा पत्रा, प० १ ) एटवर्म्मणस्सूनुर्ज्ज्येष्ठो महाराजश्री · · इत्यादि।

यवद्वीप मे तब तक बौद्ध धर्म का प्रचार न था। वहाँ से वह एक जहाज़ मे, जिसमे २०० भारतीय व्यापारी भी थे, चीन वापिस गया।

फा-हियेन जब भारत में बौद्ध शिक्षा पाने आया, तभी एक भारतीय विद्वान् चीन मे वही शिक्षा देने गया था। उसका नाम था कुमारजीव। उसका पिता कुमारायण किसी भारतीय राज्य के एक अमात्य का बेटा था। घर छोड़ कर वह चीन-हिन्द में कूचा के राज्य मे चला गया। वहाँ की राजकुमारी से उसका प्रेम और विवाह हो गया, वहीं कुमारजीव पैदा हुआ। बच्चे को पढाने के लिए उसकी माँ उसे कश्मीर ले आयी, और जब वह पढ चुका तो वापिस ले गयी। वह मध्य एशिया की सब भाषाएँ सीख गया। ४०१ ई० में वह चीन पहुँचा और

४१३ ई० तक वहाँ उसने अश्वघोष, नागार्जुन आदि के अनेक ग्रन्थों का चीनी अनुवाद कर महायान का प्रचार किया। उसके ग्रन्थ आज तक चीन में उसी तरह पढ़े जाते हैं जैसे यहाँ कालिदास के।

तीसरे विद्वान् का नाम है गुणवर्मा। वह कश्मीर का युवराज था, पर बौद्ध भिक्षु बन गया था। पहले वह सिंहल गया, और वहाँ से ४२३ ई० में यवद्वीप पहुँचा। फा-हियेन के जाने के १० बरस पीछे वहाँ उसने पहले-पहल बौद्ध धर्म का प्रचार किया। यवद्वीप से वह नन्दी नामक एक भारतीय के जहाज में चीन गया।

समुद्र-गुप्त के समय कोरिया में बौद्ध धर्म स्थापित हो गया (३५२ ई०)। उस देश की भाषा भी तब भारत की ब्राह्मी लिपि में लिखी गयी, और तब से आज तक वह समय के साथ बदलती हुई उसी लिपि में लिखी जा रही है। यशोवर्मा के समय निपन (जापान) देश भी बौद्ध हो गया (५३८ ई०), तब वहाँ होरिउजी और नारा के बौद्ध विहार स्थापित हुए, जिनमें तत्कालीन संस्कृत ग्रन्थ आज तक रक्खे हैं, और जिनकी भीतों पर लिखे चित्रों में स्पष्ट भारतीय प्रभाव झलकता है।

होरिउजी मठ की भीत पर एक बोधिसत्त्व-चित्र

[ राहुल जी के सौजन्य से ]

§५. नाग-वाकाटक-गुप्त-युग का धर्म, कला, साहित्य, ज्ञान और संस्कृति—चौथी शती ई० के अन्त में पेशावर में आसंग और वसुबन्धु नाम के दो भाई दार्शनिक हुए। वे दोनों महायान के आचार्य थे। पाँचवीं शती ई० के शुरू में मगध में बुद्धघोष ब्राह्मण हुआ, जिसने सिंहल जा कर पाली में त्रिपिटक की 'अत्थकथाएँ' (अर्थकथाएँ = भाष्य) लिखीं। कहते हैं वहाँ से वह परले हिन्द गया और वहीं उसका देहान्त हुआ। ४५३ ई० में काठियावाड़ की वलभी नगरी में जैन विद्वानों का एक संघ

बैठा। उसमें जैनों के सब धर्म-ग्रन्थो का सम्पादन हुआ। उसी रूप मे आज वे ग्रन्थ हमें मिलते हैं।

बौद्ध और जैन धर्म के साथ-साथ पौराणिक धर्म भी पूरे यौवन पर था। वह अब पूर्ण हो चुका था। विष्णु, स्कन्द, शिव, सूर्य और देवी की पूजा चल चुकी थी। विदेश-यात्रा, असवर्ण विवाह और मास-भोजन का परित्याग अब तक न हुआ था। आजकल के हिन्दू धर्म की बाकी बहुत सी बातें चल पडी थी।

"माँ"—मथुरा से पायी गयी एक मूर्त्ति, अन्दाजन तीसरी शती ई० पूर्वार्ध (भारशिव-युग) की [ मथुरा म्यू०, भा० पु० वि० ]

सातवाहन जमाने मे पहली शती ई० पू० के बाद का कोई पौराणिक मन्दिर नही पाया गया। पर इस जमाने मे मन्दिर खूब बनने लगे। ऊँचे नुकीले शिखर वाले वैष्णव मन्दिर बनाने की शैली इसी युग मे अधिक चली। भारशिव युग मे वैसे मन्दिर बहुत बनने लगे। उन मन्दिरो के शिखरों पर कमल का संकेत उदय होते सूर्य को अर्थात् नयी ज्योति और नये जीवन को सूचित करता है। वह नया जीवन नाग-वाकाटक-गुप्त-युग के भारत में चारों तरफ दिखायी देता था। आन्ध्र-देश मे इक्ष्वाकु राजाओं के समय अमरावती स्तूप को और भूषित किया गया तथा नागार्जुनीकोंडा स्तूप की मूर्त्ति चित्रों से अलकृत वेदिका ( जगला ) बनी। महाराष्ट्र की रमणीक अजन्ता- पहाड़ी में, जिसमे पिछले मौर्यों और सातवाहनों के समय के दो-एक गुहामन्दिर थे, वाकाटक

राजाओं के समय वैसे अनेक नये और विशाल मन्दिर काटे गयें। तभी काबुल के कुषाण-वंशी राज्य में बामियाँ के पहाड़ में बौद्ध गुफाएँ बनीं।
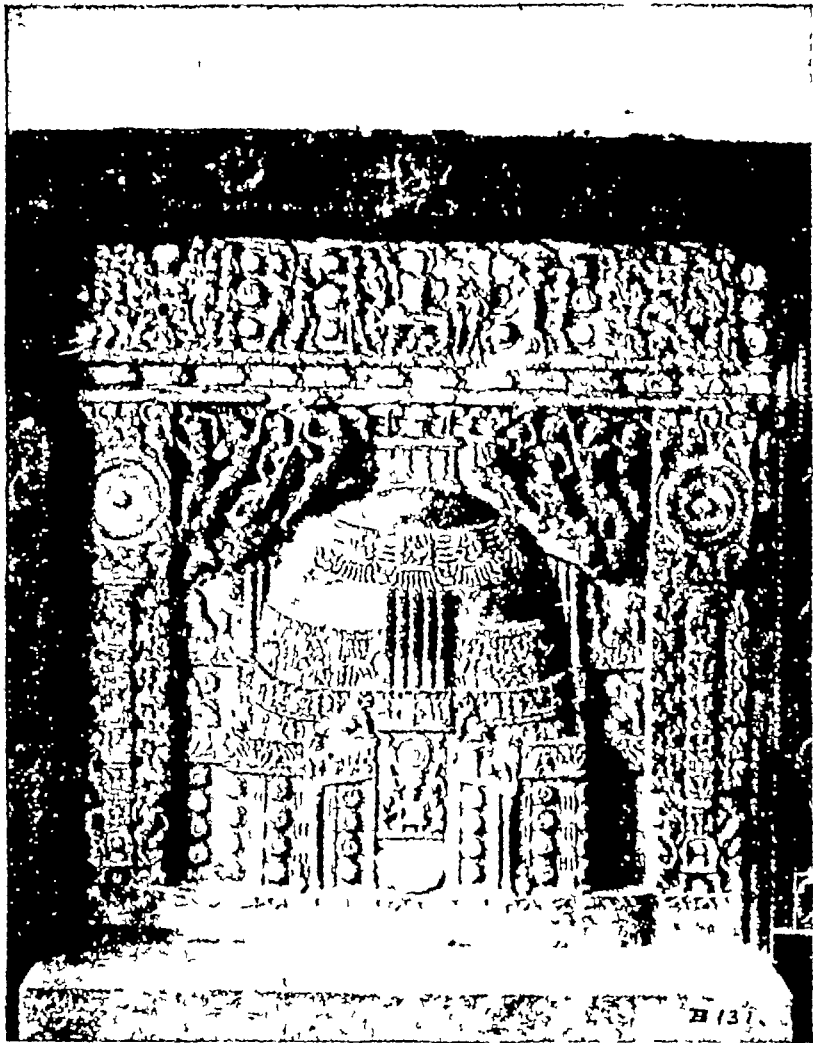
अमरावती-स्तूप पर चुनी गयी एक चाप पर का मूर्त्त दृश्य—सम्भवतः समूचा स्तूप इस में चित्रित है। [ मद्रास म्यू०, भा० पु० वि० ]

अजन्ता-गुहाओं की दीवारों पर गुप्त-युग में और बाद में चित्र भी लिखे गये, जिनमें से कुछ अब तक मौजूद हैं। अजन्ता-"लेणों" के ये चित्र प्राचीन जगत् की चित्रकला के सर्वोत्तम उदाहरणों में से हैं। इस युग की मूर्त्तिकला में

शृंगारहीन सीधापन है, और उसके साथ कमाल की सजीवता है। उदयगिरि की वराह-मूर्त्ति और भेलसा से पायी गयी गंगा-मूर्त्ति को देखते ही बनता है। उनके अंग अंग से मानो बल, तेज़ और सौन्दर्य टपकता है।

बामिया ( अफगानिस्तान ) की एक गुहा में ५३ मीटर ऊँची खण्डित बुद्ध-मूर्त्ति
[ फादर हेरस के सौजन्य से ]

साहित्य और ज्ञान में इस युग में भारतवर्ष अपनी उन्नति की चरम सीमा तक पहुँच गया। दार्शनिक वसुबन्धु का उल्लेख हो चुका है। बाद के प्रसिद्ध दार्शनिक शंकराचार्य की विचार-पद्धति वसुबन्धु के दर्शन पर ही निर्भर है। पातंजल योगसूत्र का भाष्यकार व्यास और सांख्यतत्त्वकौमुदी का लेखक ईश्वरकृष्ण चौथी-पाँचवीं शती ई० में हुए। बौद्ध तार्किक दिङ्नाग गुप्त-युग के अन्त में हुआ। सम्राट् कुमार-गुप्त ने राजगृह के पास नालन्दा महाविहार की नींव डाली। वह एक भारी विद्यापीठ बन गया, जहाँ बाद में देश-विदेश के अनेक विद्वान् शिक्षा पाने आते रहे।

प्रसिद्ध ज्योतिषी आर्यभट ४७६ ई० में पैदा हुआ। उसे यह मालूम था कि पृथिवी गोल है। गुरुताकर्षण और सूर्य के चौगिर्द पृथिवी के घूमने के सिद्धान्त

गुप्त-युग की मूर्त्तिकला का नमूना—देवगढ़ ( जि० झाँसी ) के विष्णु-मन्दिर में नर-नारायण की मूर्त्तियाँ [ भा० पु० वि० ]

उसने स्थापित किये। और अनेक बातों में भी भारतवर्ष का गणित और ज्योतिष गुप्त जमाने में जिस सीमा तक पहुँच गया था, उस सीमा को आजकल के विद्वान् पिछली शती में ही लाँघ सके हैं।

ज्ञान और सचाई को कहीं से भी ले लेने मे उस युग के भारतवासी उत्सुक रहते थे। ज्योतिषी वराहमिहिर ने, जो छठी शती मे हुआ, लिखा है, "यवन (यूनानी) लोग म्लेच्छ हैं, पर उनमे इस शास्त्र का ज्ञान है। इस कारण वे ऋषियों की तरह पूजे जाते हैं।" गुप्त युग मे भारतीय ज्योतिष मे रोम और अलक्सान्दरिया के सिद्धान्त भी शामिल कर लिये गये थे। दशगुणोत्तर गिनती

दिव्य गायक—किन्नर-किन्नरी।

अजन्ता लेण नं० १७ का चित्र,—इस लेण के चित्र लगभग ५०० ई० के हैं।

पहले-पहल चौथी शती ई० मे भारतीयों ने ही निकाली, फिर यहा से उसे दुनिया के सब देशों ने सीखा। गिनती पहले भी थी, परन्तु जिस प्रकार नौ इकाइयो के निशान हैं, उसी तरह दस, बीस, तीस आदि दहाइयों के अलग निशान होते थे, फिर सैकडो के अलग, इत्यादि। इकाई के आगे शून्य लगा कर दहाई बना ली जाय, यह आविष्कार पहले-पहल चौथी शती मे यहीं हुआ। युरोप वालों ने यह तरीका १३वीं-१४ वीं शती में जा कर सीखा।

इस युग के काव्य-साहित्य मे विष्णुशर्मा का पञ्चतन्त्र एक अमर रत्न है, जिसका ससार की बीसियों भाषाओं में अनुवाद हुआ है। गुप्त युग का सबसे प्रसिद्ध पुरुष महाकवि कालिदास है। कालिदास के काव्यो तथा नाटकों में भारत की आत्मा जिस तरह प्रकट हुई है, वैसी आज तक और किसी रचना मे शायद नहीं हुई। रघु के दिग्विजय की कहानी द्वारा उसने बतलाया कि कम्बोज से कन्या कुमारी तक और ईरान की सीमा से लौहित्य ( ब्रह्मपुत्र ) तक सारा भारत एक है, वह एक ही राज-छत्र के नीचे रहना चाहिए। दुष्यन्त और शकुन्तला के प्राकृतिक प्रेम की कहानी लिख कर उसकी लेखनी ने प्राचीन आर्य्यों के सरल साहसी और रसमय जीवन के आदर्श को अमर कर दिया, और भारतवासियों को अपने उस पुरखा भरत की याद दिलायी जो बचपन के खेलों मे शेर के दाँत गिना करता था। प्रातःकाल की उषा की सूचना जैसे चिड़ियों के चहचहाने से मिलती है, वैसे गुप्त युग की नयी ज्योति की सूचना कालिदास के जादू-भरे छन्दों से मिलती है। भारतवर्ष की संस्कृति का पूरा निचोड़ हम उसकी रचनाओं में पाते हैं।

कालिदास के समय भारतवर्ष मे ज्ञान और जीवन की जो ज्योति प्रकट हुई, वह प्रायः एक हजार बरस तक ससार को रोशन करती रही। भारतवर्ष की इस जागृति का प्रभाव एक तरफ चीन पर हुआ, और वहाँ से कोरिया और जापान तक पहुँचा, दूसरी तरफ वह अरब के रास्ते पच्छिमी युरोप तक गया। उत्तर तरफ वह तिब्बत और मध्य-एशिया द्वारा मगोलिया तक जा निकला, और दक्खिन तरफ परले हिन्द के द्वीपो की अन्तिम सीमा तक। प्रायः एक हजार बरस तक न तो स्वयम् भारत-वासियो ने ( सिवा वैद्यक और गणित के ) अपने ज्ञान मे आगे कुछ उन्नति की, और न बाकी दुनिया का ज्ञान—दो-चार बातो को छोड कर—उससे कुछ आगे बढा। इस लम्बे अरसे में वही ससार भर का ज्ञान रहा और जिस देश मे वह पहुँचा वहीं नव जागृति की लहर उठ खड़ी हुई।

वाकाटक-गुप्त-युग के भारतीयों का साधारण जीवन भी पहले से परिष्कृत हो गया। गोहत्या को इसी युग से पाप माना जाने लगा। उस युग के ससार मे चार ही सभ्य साम्राज्य और जातियाँ थीं—चीनी, भारतीय, ईरानी और रोमन। उपनिवेश-सहित गुप्त युग का भारतवर्ष बाकी तीनों जातियो के क्षेत्रों से बहुत अधिक विस्तृत और समृद्ध था, और उस युग में भारतवासी वस्तुतः सभ्य ससार के नेता थे। अपने इस गौरव को तब वे अवश्य अनुभव करते होंगे।

# सातवाँ प्रकरण

# कन्नौज और कर्णाटक के साम्राज्य

(५४०-११६० ई०)

## अध्याय १

## पिछले गुप्त, मौखरि, वैस और चालुक्य राज्य

(लगभग ५४०–६६६ ई०)

§१ पिछले गुप्त और मौखरि (लगभग ५४०–५९२ ई०)—यशोवर्मा ने अपना कोई राजवंश स्थापित न किया था। उसके बाद गुप्त साम्राज्य पुनर्जीवित हुआ। सन् ५४४ में ही पुण्ड्रवर्धनभुक्ति (उत्तरी बंगाल) के एक लेख में 'महाराजाधिराज ··गुप्त' का उल्लेख है। महाराजाधिराज का नाम उस लेख में मिट गया है। सम्भवत भानु-गुप्त बालादित्य का बेटा प्रकटादित्य अब से प्राय आधी शती तक उत्तर भारत का सम्राट् रहा। लेकिन वह नाम का सम्राट् था, क्योंकि अब विभिन्न प्रान्तों में अनेक नयी शक्तियाँ उठ खड़ी हुईं।

छठी शती के शुरू में गुप्त सम्राटों के वंश से एक शाखा निकली जिसके राजाओं ने अगली दो शतियों के इतिहास में विशेष भाग लिया। प्रकटादित्य के समय भी वास्तविक शासक इसी शाखा के राजा थे। इन राजाओं को 'पिछले गुप्त' कहते हैं। इनका दावा समूचे गुप्त साम्राज्य पर था, लेकिन इनका वास्तविक अधिकार केवल मगध-बंगाल पर या कुछ समय के लिए मालवे पर रहा। इन गुप्तों के मुकाबले में अन्तर्वेद के ठीक बीच दक्खिन पञ्चाल की राजधानी कन्नौज में मौखरि नाम का एक नया राजवंश उठ खड़ा हुआ। मौखरि लोग पहले-पहल हूणों के युद्धों में प्रसिद्ध हुए। सम्भवत: वे यशोधर्मा की सेना की हरावल में रहे थे। पञ्चाल की तरह कुरु देश का वैस वंश भी हूणों के युद्धों में प्रसिद्ध हुआ, और अब राजवंश बन गया। इसकी राजधानी थानेसर थी।

छठी शती में उत्तर भारत में गुर्जर जाति एकाएक प्रबल हो उठी। पंजाब में गुजरात और गुजरावाला ज़िले उसके राज्य की याद दिलाते हैं। दक्खिनी मार-

वैस वंश
पिछले गुप्त
मौखरि
कृष्ण-गुप्त
हरिवर्मा
हर्ष-गुप्त
हर्ष-गुप्ता
=
आदित्यवर्मा
जीवित-गुप्त (१म)
उपगुप्ता = ईश्वरवर्मा
नरवर्धन
कुमार-गुप्त (३य)
×
ईशानवर्मा (५५५ ई०)
राज्य वर्धन (१म)
दामोदर-गुप्त
×
शर्ववर्मा
आदित्यवर्धन
=
महासेन-गुप्ता
महासेन-गुप्त
अवन्तिवर्मा
प्रभाकर वर्धन
राज्यवर्धन
हर्षवर्धन
राज्यश्री
(६०६ ई०)
(६०६–४७ ई०)
= ग्रहवर्मा मौखरि
देव-गुप्त
कुमार गुप्त
माधव-गुप्त
(हर्षवर्धन के सगी)
राज्यश्री = ग्रहवर्मा
आदित्य सेन (६७२ ई०)
देव-गुप्त
कन्या
=
भोगवर्मा
विष्णु-गुप्त चन्द्रादित्य
जीवित-गुप्त (२य)
यशोवर्मा
(लगभग ७२५–४० ई०)
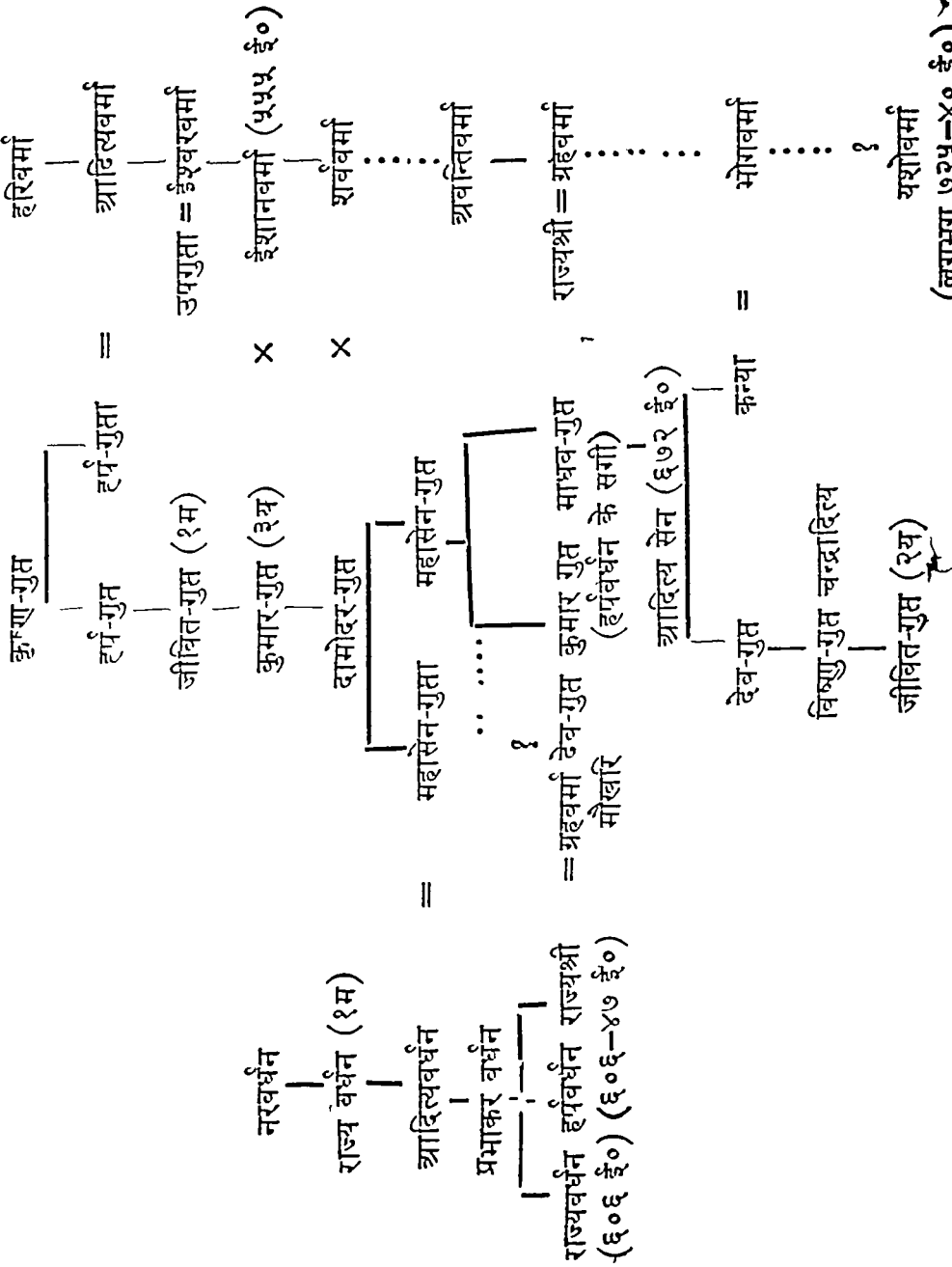
चाड में उनकी एक बड़ी राजधानी भिन्नमाल थी। उनका एक और छोटा सा राज्य भरुच में भी था। उनके नाम से इस देश का नाम भी गुर्जरत्रा (गुजरात) पड़ गया। गुर्जरत्रा में तब मारवाड़ की भी गिनती थी। सुभीते के लिए हम पिछले इतिहास मे भी इसे गुजरात कहते रहे हैं। असल में वह नाम इसी युग से शुरू हुआ।

शर्ववर्मा मौखरि की नालन्दा मे पायी गयी मुहर, ठीक इस तरह की मुहर पहले असीरगढ (खानदेश) मे भी पायी गयी थी। [भा० पु० वि०]

सुराष्ट्र (काठियावाड) में छठी शती के आरम्भ में मैत्रक वंश का भटार्क नामक एक सेनापति था। उसके बेटे द्रोणसिंह का 'समूची पृथ्वी के एक स्वामी'

अर्थात् गुप्त सम्राट् ने स्वयम् राज्याभिषेक किया। मैत्रको का राजवश तब से वलभी नगरी ( भावनगर के पास ) में स्थापित हो गया।

पूरबी सीमा पर कामरूप का राज्य समुद्रगुप्त के समय से गुप्त साम्राज्य के अधीन था। उससे भी हमे इस युग के इतिहास में वास्ता पडेगा। इन राज्यों के वश-वृक्ष सामने रखने से इनका इतिहास समझना सुगम होगा।

ईश्वरवर्मा और ईशानवर्मा के समय भारत का साम्राज्य मौखरि वश के हाथ मे चला गया। उन्होंने सुराष्ट्र, आन्ध्र और गौड ( पच्छिमी बगाल ) तक विजय की। कुमार-गुप्त ( ३य ) के साथ ईशान का युद्ध हुआ, जिसका परिणाम अनिश्चित रहा। ईशान के बेटे शर्व के समय ( लगभग ५५६–७० ई० ) मे मौखरियो का प्रताप और भी बढा। शर्व से लडता हुआ दामोदर-गुप्त मारा गया। मौखरियों के प्रताप से अब कन्नौज की वही हैसियत हो गयी जो पहले पटना की थी। अगले छ सौ बरस तक वह उत्तर भारत का केन्द्र माना और हिन्दुस्तान कहने से कन्नौज का ही साम्राज्य समझा जाता था।

मगध मे भी मौखरि वश की एक शाखा स्थापित हो गयी, गुप्त "महाराजाधिराज" का अधिकार तब केवल बगाल मे ही रह गया होगा। उसके पडोसी कामरूप के राजा सुस्थितवर्मा ने भी 'महाराजाधिराज' पद धारण कर स्वतन्त्र होना चाहा। तब महासेन-गुप्त ने लौहित्य ( ब्रह्मपुत्र ) तक चढाई कर उसे हराया। शर्ववर्मा के उत्तराधिकारी अवन्तिवर्मा के समय मे मौखरि साम्राज्य शायद किसी तरह कमजोर हो गया, और ऐसा जान पड़ता है कि उससे लाभ उठा कर गुप्त महाराजाधिराज ने महासेन-गुप्त को मालवे का राज्य सौप दिया ( लगभग ५८५ ई० )।

**§२. चालुक्य और पल्लव** ( लगभग ५५०–६०८ ई० )—यशोधर्मा के बाद दक्खिन का राजनीतिक नक्शा भी पलट गया। जहाँ कादम्बों और वाकाटकों के राज्य थे, वहाँ अब चालुक्यों का एक राज्य उठ खड़ा हुआ। उसका सस्थापक पुलकेशी था, जिसने कादम्बो से वातापी नगरी ( बीजापुर जिले में बदामी ) छीन कर अश्वमेध किया ( लगभग ५५० ई० )। किन्तु दक्खिनी छोर पर काञ्ची के पल्लवो का राज्य ज्यों का त्यो बना रहा, प्रत्युत पहले से भी अधिक चमक उठा। पल्लव राजा सिंहविष्णु ने सिंहल को भी जीता ( लगभग ५९० ई० )।

**§३. कुरुक्षेत्र का प्रभाकरवर्धन** ( लगभग ५९०–६०५ ई० )—थानेसर का प्रभाकरवर्धन शायद महासेन-गुप्त का भानजा था। उसने उत्तरापथ की तरफ

अपनी शक्ति बढ़ायी। पहले उसने कश्मीर या तुखारिस्तान से हूणों को खदेड़ा, फिर सिन्ध, गुर्जर (पजाब, मारवाड) और गान्धार के राजाओं पर काबू किया। तब वह दक्खिन की ओर झुका और लाट देश (दक्खिनी गुजरात = भरुच-सूरत) पर चढ़ाई कर मालवा के राज्य को जीता। मालवा के राजा (महासेन-गुप्त ?) ने अपने दो बेटे कुमार-गुप्त और माधव-गुप्त उसे सौंपे।

प्रभाकरवर्धन की तीन सन्तानें हुईं—राज्यवर्धन, हर्षवर्धन तथा राज्यश्री। कुमारगुप्त और माधवगुप्त बचपन से राज्यवर्धन और हर्षवर्धन के अनुचर रहे थे। जवान होने पर राज्यश्री मौखरि राजा अवन्तिवर्मा के बेटे ग्रहवर्मा को ब्याही गयी। प्रभाकरवर्धन ने राज्यवर्धन को "हूणों को मारने के लिए उत्तरापथ में भेजा।" हर्ष भी उसके पीछे-पीछे जगल में शिकार के लिए गया। वहाँ कश्मीर के पहाड़ों की तराई में उसे पिता की बीमारी की खबर मिली। उसके लौट आने पर प्रभाकर ने प्राण छोड़ दिये (६०५ ई०)। राज्यवर्धन भी यह खबर पा कर वापिस आया।

**§४. रानी राज्यश्री**—इधर प्रभाकर को मरा सुन मालवे के राजा (महासेन के बेटे देवगुप्त ?) ने कन्नौज पर चढ़ाई की, और ग्रहवर्मा को मार कर राज्यश्री को कन्नौज के कैदखाने में डाल दिया। पूरबी भारत में इस समय शशाङ्क नाम का एक नया राजा था। वह शायद महासेन-गुप्त के मालवा चले आने और सम्राट् प्रकटादित्य की मृत्यु के बाद बगाल-बिहार-उड़ीसा का राजा बन खड़ा हुआ था। मालवे का राजा उसे साथ ले थानेसर पर चढ़ाई की तैयारी करने लगा। खबर पाते ही दस हजार सवारों के साथ राज्यवर्धन उसके मुकाबले को बढ़ा। 'मालवे की सेना को खेल ही खेल में जीत कर' वह शशाङ्क की तरफ मुड़ा। गौड के राजा ने उससे मैत्री प्रकट की और उसे छल से कतल कर डाला। शशाङ्क अपने एक और कारनामे के लिए भी प्रसिद्ध है। उसने बौद्धों पर बहुत अत्याचार किये, और बोधिवृक्ष को उखड़वा कर जलवा दिया।

नौजवान हर्ष अपने इस शत्रु के मुकाबले को तेज़ी से बढ़ा। एक ही पड़ाव आगे पहुँचने पर प्राग्ज्योतिष (आसाम) के राजा भास्करवर्मा के दूत उसे मैत्री का सन्देश लिये मिले। कन्नौज के करीब पहुँचने पर हर्ष को मालवे के कैदियों को लिये हुए सेनापति भण्डि मिला। वहीं उसने यह सुना कि पिछली गड़बड़ में राज्यश्री कैद से छुट कर निराश दशा में विन्ध्य के जगल में कहीं चली गयी है। भण्डि को गौड की तरफ रवाना कर, हर्ष बहन की खोज में निकला। विन्ध्याचल के जगलों में

शबर जवानों की सहायता से खोजते हुए उसने उसे ठीक उस समय पाया जब वह सती होने की तैयारी कर रही थी। भाई के मिलने पर उसने वह इरादा छोड़ दिया, पर फिर भी भिक्षुणी होना चाहा। अन्त में उसने स्वीकार किया कि जब तक हर्ष अपने शत्रुओं से बदला न चुका ले, तब तक वे दोनों अपनी राजकीय जिम्मेदारी निबाहेंगे।

यह वृत्तान्त हमें बिहारी कवि बाण भट्ट के हर्षचरित नामक ग्रन्थ में मिलता है। बाण कवि हर्ष की सभा में था।

**६५. हर्षवर्धन**—६३० ई० में युवान च्वाङ नाम का एक चीनी यात्री चीन-हिन्द और अफगानिस्तान के रास्ते हो कर भारत आया, और ६४३ ई० में उसी रास्ते से वापिस गया। वह हर्ष के साथ भी कुछ समय रहा। यहाँ वह देश के एक छोर से दूसरे छोर तक घूमा और उसने अपने भ्रमण का वृत्तान्त भी लिखा। उस वृत्तान्त से भी हर्ष के समय की बहुत सी बातें मालूम होती हैं।

राज्यश्री ने वापिस आ कर कनोज का राज्य सँभाला, और हर्ष अपनी बहन का प्रतिनिधि हो कर राजा शीलादित्य नाम से उसकी देख-रेख करने लगा। इस प्रकार अब कुरु और पञ्चाल दोनों राज्यों की शक्ति हर्ष के हाथ में आ गयी। उन दोनों की सेनाएँ तैयार कर वह भारत-दिग्विजय को निकला। छः बरस तक वह पूरब से पच्छिम तक सब प्रदेशों को जीतता रहा। उसके हाथियों के होदे और सिपाहियों की वर्दियाँ बराबर कसी रहीं। कामरूप के "भास्करवर्मा का उसने स्वयम् अभिषेक कराया, सिन्धुराज को कुचल कर उसका राज्य छीन लिया और तुखार पहाड़ों के दुर्गों से कर वसूल किया।" शशांक ने शायद उसके आगे झुक कर अपने को बचा लिया। वलभी का राजा ध्रुवसेन हर्ष से हार कर भरुच के गुर्जर राजा के पास भाग गया। पीछे हर्ष ने उसे अपना सामन्त बना कर अपनी इकलौती बेटी ब्याह दी। किन्तु महाराष्ट्र के राजा पुलकेशी ( २य ) पर जब हर्ष ने चढ़ाई की तो वह नर्मदा के घाटों पर अपनी सेना को इस प्रकार से सजग और तैनात रक्खे हुए था कि अपने साम्राज्य की सारी शक्ति लगा कर भी हर्ष उसे न लाँघ सका। गंगा और गोदावरी के काँठों के वे सम्राट् एक दूसरे के ठीक मुकाबले के थे और दोनों ने नर्मदा नदी को तब से अपनी सीमा मान लिया। हर्ष की अन्तिम चढ़ाई ६४३ ई० में उड़ीसा तट के दक्खिन गंजाम प्रदेश पर हुई।

हर्ष जैसा विजेता था वैसा ही योग्य और न्यायी शासक भी था। बरसात के सिवाय वह सदा अपने राज्य में दौरे करता, और फूस के खेमों में ही पड़ाव

क्रिया करता था। राज्य-कार्य के पीछे वह अपनी भूख और नींद को भूल जाता था। उसका नाम शीलादित्य भी सार्थक था, क्योंकि वह शील और सच्चरित्रता की मूर्त्ति था। उसने एक-पत्नीव्रत धारण किया और आजन्म उसे निवाहा। प्रजा उसके राज्य में सुखी थी। तो भी अब गुप्तो के समय की सी पूरी शान्ति न थी और दड भी तब से कुछ अधिक कठोर थे। ६०६ ई० मे हर्ष ने अपने अभिषेक का सम्वत् चलाया। ६४७ ई० में उसकी मृत्यु हुई।

"स्वहस्तो मम महाराजाधिराजश्रीहर्षस्य"—हर्षवर्धन के हस्ताक्षर बांसखेड़ा ताम्रपत्र पर से (लखनऊ म्यू०)

हर्ष के राज्यकाल में भिन्नमाल और पजाब के गुर्जर राज्यों का अन्त हुआ। मध्य पजाब मे तब टक्क ( टाक ) जाति का राज्य स्थापित हुआ, जिसके कारण सातवीं शती मे वह टक्कदेश कहलाने लगा। शाकल उसकी राजधानी थी और मुलतान भी उसके अधीन था। उसके दक्खिन, सिन्ध में एक अलग स्वतन्त्र राज्य था, जिसका मकरान तक अधिकार था। भरुच का छोटा गुर्जर राज्य आठवीं शती के शुरू तक बना रहा।

**§६ पुलकेशी और विक्रमादित्य चालुक्य, पल्लव महेन्द्रवर्मा और नरसिंहवर्मा**—हर्ष का समकालीन सत्याश्रय पुलकेशी ( लगभग ६०८--६४२ ई० ) भी उसी की तरह प्रसिद्ध है। उसने गुजरात, कोशल (छत्तीसगढ) और आन्ध्र को जीत कर पच्छिमी से पूरबी समुद्र तक अपना राज्य फैलाया। आन्ध्र-देश का राज्य उसने अपने भाई कुब्ज विष्णुवर्धन को दिया, जिसके वशज पीछे पूरबी चालुक्य कहलाये। गोदावरी और कृष्णा के मुहानों के बीच वेगि राजधानी मे उन्होंने लगातार ४½ शतियों तक राज्य किया। पुलकेशी ने पल्लव सिंहविष्णु के बेटे

महेन्द्रवर्मा को हरा कर कावेरी पर अपनी धाक जमायी। वह सामुद्रिक शक्ति में भी प्रवल था। ईरान के राजा ख़ुमरो (२य) ने ६२५-२६ ई० में उसके दरबार में अपनी एलची भेजे। बदले में महाराष्ट्र राजा के दूत भी ईरान गये।

पुलकेशी के अन्तिम समय महेन्द्रवर्मा के बेटे नरसिंहवर्मा पल्लव ने वातापी पर चढाई की, और उसे हरा कर अपने बाप की हार का बदला चुकाया (अन्दाजन ६४२ ई०)।

पन्च-पाण्डव रथ, मामल्लपुरम् [भा० पु० वि०]

महेन्द्रवर्मा (१म) (६१८ ई०) और नरसिहवर्मा (६४६ ई०) दोनों शक्तिशाली राजा थे। पुद्दुकोटै राज्य मे सित्तनवासल नामक स्थान की गुफाएँ जिनकी दीवारो पर अजन्ता की गुफाओं की तरह सुन्दर चित्र अंकित हैं, इन्हीं राजाओ की कटवायी हुई हैं। काची के सामने समुद्रतट पर मामल्लपुरम् के एक-एक चट्टान में से काटे हुए विशाल मन्दिर भी, जिन्हे 'रथ' कहते हैं, और जो ससार की अद्भुत चीजों मे गिने जाते हैं, इन्ही राजाओं के बनवाये हुए हैं। पुलकेशी के बेटे विक्रमादित्य (१म) ने नरसिंहवर्मा के पोते के समय काची को फिर जीत कर बदला चुकाया। चालुक्यों और पल्लवों की यह उठापटक अगले सौ बरस तक इसी तरह चलती रही।

§७. आदित्यसेन और विनयादित्य (लगभग ६७०-६६६ ई०)—हर्षवर्धन के कोई पुत्र न था। उसके पीछे माधव-गुप्त के बेटे आदित्यसेन ने
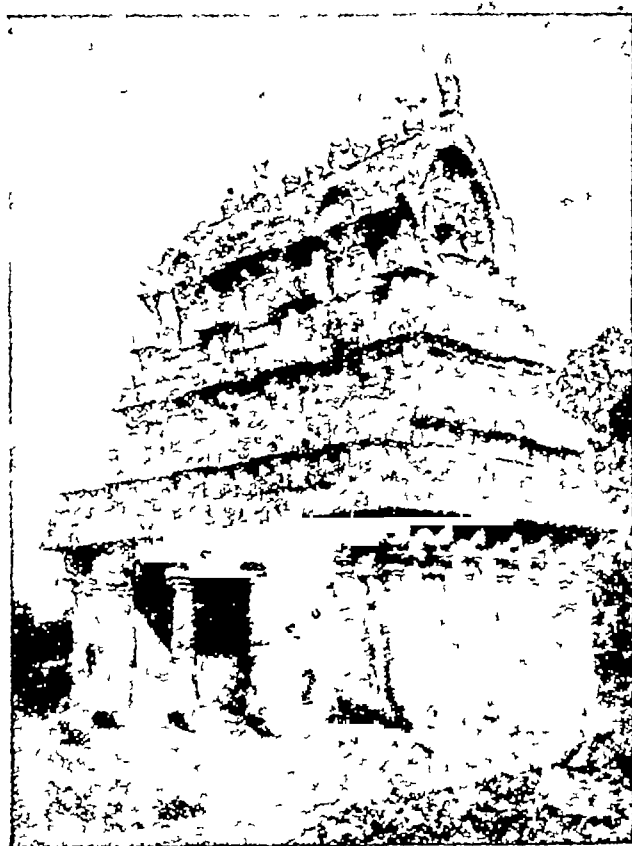
गणेश रथ, मामल्लपुरम् [भा० पु० वि०]

मगध में स्थापित हो फिर अपने को समूचे उत्तर भारत का सम्राट् बना लिया। उसने दक्खिन पर भी चढाई की, और पूरबी तट के साथ-साथ वह चोल देश तक पहुँच गया। किन्तु यह पुनर्जीवित गुप्त साम्राज्य चिरस्थायी न हुआ। विक्रमादित्य (१म) चालुक्य के बेटे विनयादित्य (६८०-६६६ ई०) ने एक तरफ सिंहल तक जीता और दूसरी तरफ "समूचे उत्तर भारत के स्वामी" को हरा कर उससे उसका साम्राज्य-चिन्ह—गंगा-यमुना के चित्रों से अंकित झंडा—

छीन लिया। यह 'समूचे उत्तर भारत का स्वामी' सम्भवत. आदित्यसेन का बेटा देवगुप्त था।

§८. नेपाल, कश्मीर के राज्य—उत्तरी सीमान्तों पर भी छठी शती के मध्य से कई नयी शक्तियाँ प्रकट हो गयीं। कामरूप की चर्चा हो चुकी है। नेपाल में लिच्छवियों का राज चला आता था, पर हर्ष के समय वहाँ ठाकुरी वंश का राजा अंशुवर्मा हुआ, जिसने हर्ष की तरह अपना सम्वत् भी चलाया। उसके बाद अनेक शतियों तक नेपाल में लिच्छवि और ठाकुरी सरदारों का सम्मिलित द्विराज जारी रहा। उत्तरपच्छिमी सीमान्त पर हूणों की सत्ता को कन्नौज और थानेसर के राजाओं ने मिटा दिया। युआन-च्वाङ जब उधर से गुजरा तब काबुल और पच्छिमी गान्धार में एक क्षत्रिय राजा राज्य करता था, और कश्मीर में दुर्लभवर्धन ने कर्कोट राजवंश की स्थापना की थी, जिसकी राज्य-सीमा नमक-पहाड़ियों तक थी।

नरसिंहवर्मा की समकालीन मूर्त्ति—धर्मराज रथ, मामल्लपुरम्

[ फ़ादर हेरंस के सौजन्य से ]

§९. मध्य एशिया में तुर्कों का प्रवेश और दमन—मध्य एशिया में हूणों की शक्ति ५६५ ई० में नौशीरवाँ ने तोड़ दी थी, सो कह चुके हैं। किन्तु नौशीरवाँ ने वह काम अकेले न किया, उसमें 'पच्छिमी तुर्क' उसके सहायक थे। तुर्क असल में हूणों की एक शाखा ही थे, जिसका असल नाम असेना था। असेना लोग पाँचवीं शती में कान्सू प्रान्त में एक पहाड़ के पास रहते थे। उस

पहाड़ की शक्ल एक खोद या मिगफार (फौजी टोपी) की सी थी, जिसे हूण भाषा में 'तुर्कु' कहते हैं। इसी से वे लोग तुर्कु या तुर्क कहलाने लगे। ५४५ ई० से वे प्रबल हुए। नौशीरवाँ ने उनकी मदद से हूणों को हराया—अर्थात् हूणों के एक फिरके की मदद से दूसरों को हराया।

मध्य एशिया पर नौशीरवाँ का प्रभाव नाममात्र को रहा। ५६५ ई० से ६३१ ई० तक वहाँ तुर्कों की ही प्रधानता रही। तुरफान से मर्व तक मध्य एशिया में जो तुर्क थे, वे पच्छिमी तुर्क और जो अभी अपने मूल घरों में थे वे उत्तरी तुर्क कहलाते थे, यह पच्छिम उत्तर का हिसाब चीन की दृष्टि से था। युआन-च्वाङ को ६३० ई० में भारत आते समय तुरफान से कपिश की सीमा तक के लिए पच्छिमी तुर्कों के 'कजान' अर्थात् राजा ने ही राहदानी दी थी। तुर्कों में तब धीरे-धीरे बौद्ध धर्म का प्रवेश हो रहा था। तुर्की भाषा में संस्कृत से कई ग्रन्थों के अनुवाद किये गये।
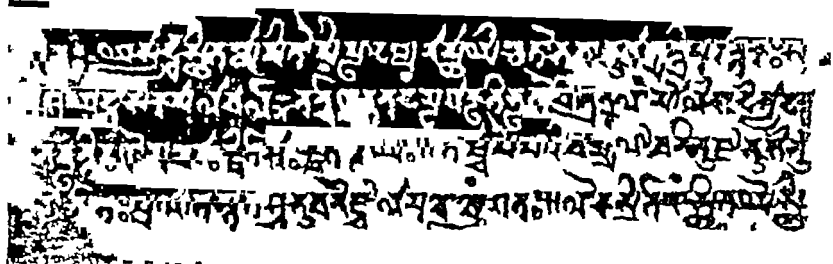
छठी शती की भारतीय लिपि, जिसमें तिब्बती भाषा पहले-पहल लिखी गयी—
हड़हा (जि० रायबरेली) से प्राप्त ईशानवर्मा मौखरि के सं० ६११
वि० के लेख में से [लखनऊ म्यू०]

६३० ई० से ही तुर्कों की शक्ति टूटने भी लगी। उस साल चीन ने उत्तरी तुर्कों का देश जीत लिया। खोतन के भारतीय राज्य को ४४५ ई० से हूण और तुर्क लोग सता रहे थे। ६२० ई० में वहाँ के राजा विजयसंग्राम ने तुर्कों के देश पर चढ़ाई कर उनका संहार किया। उससे कुछ बरस पहले या पीछे ही तो राज्यवर्धन और हर्षवर्धन ने भी तुखार पहाड़ों पर चढ़ाइयाँ की थीं। यों पंजाब और खोतन के भारतीय राज्यों के दोतरफा दबाव से कश्मीर और तुखारिस्तान में हूण-तुर्कों का

अन्त हुआ। ६४०-४८ ई० के बीच तुरफान और कूचा से भी वे निकाले गये; और ६५६ ई० तक चीन ने पच्छिमी तुर्कों का भी समूचा देश जीत कर काबुल और कश्मीर के भारतीय राज्यों पर भी अपना आधिपत्य स्थापित किया।

§१० तिब्बत का उत्थान—किन्तु चीन और कश्मीर तथा खोतन और नेपाल के बीच एक नया राज्य भी इसी युग में उठ खडा हुआ। वह तिब्बत का राज्य था। इससे पहले तिब्बती लोग निरे जगली थे और छोटे-छोटे गिरोहों में रहते
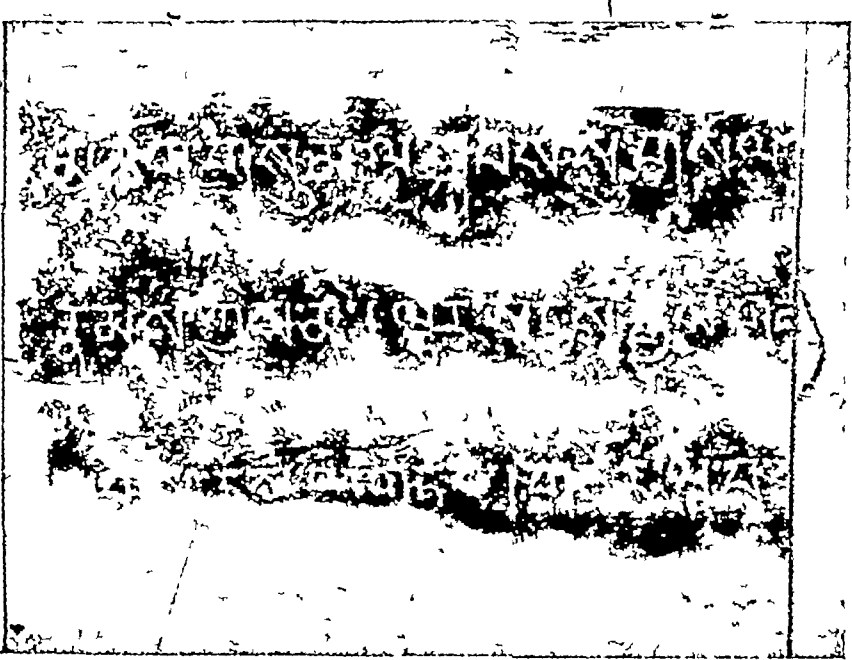
आरम्भिक तिब्बती लिपि—ल्हासा के पास ग्यल्खड् विहार के एक शिलालेख में से। हडहा लेख की लिपि से इसकी तुलना कीजिये।

[ राहुलजी के सौजन्य से ]

थे। तीन तरफ के भारतीय देशों से और चौथी तरफ चीन से उनमे धीरे-धीरे सभ्यता का प्रकाश पहुँचा। खोतन और कूचा में जो भारतीय लिपि प्रचलित थी, वह सातवीं शती के शुरू में तिब्बत में भी पहुँच गयी। तिब्बती भाषा तब से आज तक हमारी ही वर्णमाला मे लिखी जाती है। ६३० ई० में पहले-पहल एक सम्राट् सारे तिब्बत को अपने शासन में ले आया, उसने ६५० ई० तक राज्य किया। ल्हासा की स्थापना उसी ने की। उस सम्राट् का नाम स्रोङ्चन-गम्पो था। उसने

नेपाल के अंशुवर्मा की बेटी भृकुटि से और चीन-सम्राट् की एक कन्या से विवाह किया। वे दोनो देवियाँ बौद्ध थीं। उन्होने तिब्बतियों के रहन-सहन में अनेक सुधार करवाये। ६४१ ई० मे हर्षवर्धन ने अपने दूत चीन भेजे। दो बरस बाद चीन के दूत तिब्बत के रास्ते कन्नौज आये। इस प्रकार अब पहले-पहल चीन और भारत के बीच तिब्बत के रास्ते आना-जाना शुरू हुआ। बाद के तिब्बती राजाओं ने भी नेपाल, मगध और कन्नौज से लगातार सम्पर्क जारी रक्खा।

§ ११ **कम्बुज राष्ट्र और शैलेन्द्र साम्राज्य**—गुप्त युग के उपनिवेशों में चम्पा, 'फूनान' और श्रीविजय मुख्य थे। युवान्-च्वाङ जब भारत मे लौटा तब दक्खिनी बरमा श्रीक्षेत्र कहलाता था। प्रायः उसी समय 'फूनान' राज्य को उसके एक सामन्त चित्रसेन ने समाप्त कर उसके स्थान में कम्बुज-राष्ट्र की नींव डाली। परले हिन्द के उस हिस्से का नाम अब तक वही चला आता है। उसका वह नाम भारतीय प्रवासियों ने रक्खा था। वहाँ के असल निवासी ख्मेर लोग हैं, जो हमारे सथाल लोगों से मिलते-जुलते और 'आग्नेय' जाति के हैं। आर्यों के कम्बुज उपनिवेश में होने के कारण वे कम्बुज कहलाने लगे, पर उनका कहना है कि वे महर्षि कम्बु और मेरा अप्सरा की सन्तान हैं। चित्रसेन भी कम्बु और मेरा की उसी सन्तान मे से था। कम्बुज के राजा अपने को सूर्यवंशी मानते थे।

सुमात्रा के श्रीविजय साम्राज्य मे सातवीं शती में शैलेन्द्र राजवंश स्थापित हुआ। शैलेन्द्रों की अधीनता में उस साम्राज्य मे बहुत जल्दी अड़ोस-पड़ोस के सब द्वीप और मलक्का प्रायद्वीप भी समा गये। श्रीविजय के जहाज पूरब तरफ चीन तक और पच्छिम तरफ मदगास्कर और अलक्सान्दरिया ( मिश्र के बन्दरगाह ) तक जाते थे।

# अध्याय २

## इस्लाम का उदय और भारतवर्ष मे प्रवेश

( लगभग ६२०–७६० ई० )

§१. **हजरत मुहम्मद**—जब भारतवर्ष मे हर्ष और पुलकेशी राज्य करते थे, उसी समय अरब में इस्लाम धर्म का उदय हुआ। इस धर्म के प्रवर्तक हजरत मुहम्मद नाम के महात्मा ५७१ ई० मे अरब की कुरैश जाति मे पैदा हुए। अरब लोग उसी सेमेटिक ( Semitic ) नस्ल से हैं, जिससे पुराने बाबुली लोग थे या यहूदी लोग हैं। हजरत मुहम्मद से पहले अरब वाले अनेक जड़-जन्तुओं को पूजते और छोटे-छोटे फिरकों मे बँटे हुए थे। मुहम्मद साहब ने उन्हे तौहीद अर्थात् परमेश्वर के एक होने की शिक्षा दी। उन्होंने अनुभव किया कि उनका वह तौहीद का विचार स्वयम् परमेश्वर या अल्लाह की प्रेरणा है। इसलिए उन्होंने अपने को अल्लाह का 'रसूल' अर्थात् भेजा हुआ कहा। फिर उनकी यह शिक्षा थी कि अल्लाह और उसके रसूल को मानने वाले सब मुसलमान हैं, और उसकी दृष्टि मे बराबर हैं। उनमे कोई ऊँच-नीच या छोटाई-बडाई नहीं है। अल्लाह और रसूल को न मानना कुफ्र अर्थात् नास्तिकता है, और कुफ्र करने वाला काफिर है।

इन शिक्षाओं के प्रचार से अरब वालों मे एक अनुपम एकता और शक्ति प्रकट होने लगी। पहले तो उन्होने इस शिक्षा का विरोध किया। यहाँ तक कि रसूल को अपने विरोधियों से सताये जाने पर अपनी जन्मभूमि मक्का को छोड कर मदीना भागना पड़ा। ( इसे 'हिजरत करना' कहा गया और उसी समय—६२२ ई०—से हिजरी सन् जारी हुआ )। किन्तु पीछे उन्हे पूरी सफलता हुई और सारा अरब उनकी छत्रच्छाया मे आ गया। ६३२ ई० मे उनका देहान्त हुआ।

§२. **खिलाफत का विस्तार**—उनके पीछे अरबों के जो नेता बने वे खलीफा कहलाये। पहले चार खलीफा बहुत प्रसिद्ध हैं। उन्होंने इस क्रम से राज्य किया—( १ ) अबू बक्र, ६३२-३४ ई०, ( २ ) उमर, ६३४-४३ ई०, ( ३ ) उस्मान, ६४३-५५ ई०, और ( ४ ) अली, ६५५-६१ ई०।

अरब के पड़ोस मे एक तरफ ईरान और दूसरी तरफ रोम का साम्राज्य था। वे दोनों बोदे और खोखले हो चुके थे। रसूल की मृत्यु के बाद पाँचवे ही बरस

( ६३६–३७ ई० ) अरबों ने सासानी राजा यज़्दगुर्द को हरा कर ईरान पर दखल कर लिया। ईरान के लोग मुसलमान बनाये गये, और उनमें से कुछ बच कर समुद्र के रास्ते भारत भाग आये। उन भागने वालों के वंशज, जो अब गुजरात में आबाद हैं, पारसी नाम से प्रसिद्ध हैं। अगले पन्द्रह बरस के भीतर ( ६५२ ई० तक ) खलीफाओं ने रोम-साम्राज्य से शाम ( सीरिया ), फिलिस्तीन और मिस्र ले लिये। उसके बाद खिलाफत अर्थात् खलीफा-साम्राज्य का केन्द्र अरब के रेगिस्तान के छोर से उठ कर दमिश्क ( सीरिया की राजधानी ) में चला आया ( ६७० ई० )। ७६६ ई० में वह दमिश्क से बगदाद आया।

पाण्ड्य, सिंहल, श्रीविजय ( सुमात्रा ) आदि जिन भारतीय राष्ट्रों का सामुद्रिक व्यापार बहुत था, वे पच्छिमी समुद्र की इस नयी शक्ति की उपेक्षा न कर सकते थे। अत उसके साथ मैत्री रखना उनके लिए आवश्यक था। अरब लोग भी भारतीय समुद्र मे व्यापार और मल्लाहगीरी करते थे। किन्तु पहले जहाँ वे कोरे व्यापारी और माँझी थे, वहाँ अब उनमें से प्रत्येक एक नयी उमग लिये हुए अपने दीन ( धर्म ) का उग्र प्रचारक बन गया। जहाँ कहीं भी व्यापार या मल्लाहगीरी के कारण उनकी छोटी-मोटी बस्ती रही, वहाँ मस्जिदें खडी होने लगीं, इस्लाम का प्रचार होने लगा, और वहाँ से लोग हज ( अरब के तीर्थों की यात्रा ) के लिए जाने और खलीफा के पास जकात ( अपनी बचत का ४०वाँ अश ) भेजने लगे। इस नये जोश और जीवन में अरबो की सामुद्रिक शक्ति भी बढने लगी और इन मुस्लिम केन्द्रों से भारत के तट-प्रदेशों का परिचय पा कर खलीफाओं की जल-सेना उनपर हमले भी करने लगी।

**§३. भारत के सीमान्त पर हमले** ( ६४३–७०० )—खलीफा उमर के समय मे पहले-पहल भारत के पच्छिमी तट पर अरबों के सामुद्रिक हमले हुए। एक हमला कोंकण के ठाना जिले पर हुआ, जिसमें पुलकेशी के हाथों अरबों की बुरी तरह हार हुई। दूसरे सामुद्रिक हमले भी उसी प्रकार विफल हुए।

६४३ ई० में ईरान के पूरबी प्रान्त किरमान और सिजिस्तान ( प्राचीन शकस्थान ) जीत लिये गये। सिजिस्तान लेने से अरब लोग हेलमन्द नदी पर पहुँच गये, जो उस समय भी भारत की सीमा मानी जाती थी। उसका काँटा सिन्ध और अफगानिस्तान के बीच एक पच्चर की तरह घुसा हुआ है। ६४४ ई० में सिन्ध के राजा "सिहर्सराय" ( श्रीहर्षराज ) से अरबों ने मकरान छीन लिया।

सिहर्सराय लडाई मे मारा गया। उसके बेटे साहसी ने लडाई जारी रक्खी, पर दो बरस पीछे वह भी मारा गया। तब सिन्ध का राज्य ब्राह्मण मन्त्री चच के हाथ आया। उधर ६५० ई० में हरात भी अरबो के कब्जे मे चला गया, जिसमे अफगानिस्तान का पच्छिमी छोर भी उन्होंने घेर लिया। पच्छिम की तरफ सीरिया, फिलिस्तीन और मिस्र भी प्राय. उसी समय तक अरब साम्राज्य मे शामिल हो चुके थे।

६६३ ई० मे अरबों ने काबुल पर पहली चढाई की। साल भर काबुल घिरा रहा और लोग बस्तियाँ छोड भाग गये। पर ज्यों ही अरब सेनाओं ने मुँह फेरा कि काबुली फिर स्वतन्त्र हो गये। ६६७ और ७०० ई० मे काबुल पर फिर वैसी ही विफल चढाइयाँ हुईं।

अरब विजेता हरात से मध्य एशिया की तरफ भी बढे। काबुल की पहली चढाई से चार ही बरस पहले तो चीन ने मध्य एशिया और अफगानिस्तान पर प्रभाव जमाया था। अब अरबों और चीनियो का मुकाबला आ पडा। किन्तु चीनियो को जहाँ सामने से अरबों का मुकाबला करना पडता था, वहाँ उनके बायीं तरफ अब उनका नया शत्रु तिब्बत खडा हो गया था। तिब्बती लोग उत्तर तरफ बढ कर चीनी सेनाओं का रास्ता काट देते और कई बार अरबों के साथ सन्धि कर लेते थे। चीनियों की कोशिश रहती कि वे एक दूसरे से नहीं मिल पायें। इस कोशिश में वे प्रायः सफल हुए, तो भी ६७४ ई० मे तिब्बतियो ने खोतन के राजा विजयकीर्त्ति को हरा दिया, और १६ बरस तक वहाँ अधिकार बनाये रहे। कश्मीर के उत्तर बोलौर प्रदेश पर भी उन्होंने दखल कर लिया।

**§४. सिन्ध-विजय**—मकरान लेने के बाद खलीफाओ की दृष्टि सिन्ध पर पड़ी और उस पर चढाई के लिए कारण भी उपस्थित हो गया। सिंहल के राजा ने खलीफा के पास कई भेंट के जहाज भेजे। सिन्ध नदी के पच्छिमी तट के देवल बन्दर पर वे लुट गये। तब चच का बेटा दाहिर सिन्ध का राजा था। मुलतान भी तब टक्क (पजाब) के बजाय सिन्ध-राज्य में शामिल था। दाहिर ने जब खलीफा के कहने पर भी जहाज लुटने का कोई प्रतिकार न किया; तब मकरान के तट तथा समुद्र से देवल पर चढाई की गयी (७१०-११ ई०)। उस चढ़ाई का नेता एक नौजवान मुहम्मद-इब्न-क़ासिम था। देवल पर अरब सेना का विशेष मुकाबला न करके दाहिर सिन्ध नदी के पच्छिम के सारे इलाके को छोड़ पूरब की तरफ हट गया। मुहम्मद ने पहले उसी भाग पर कब्जा किया। उसके उत्तरी

छोर पर सिविस्तान में दाहिर के एक भाई ने सख्त मुकाबला किया, परन्तु जनता का एक बड़ा अंश बौद्ध श्रमण थे, और वे तमाशबीन बने रहे। अन्त मे मुहम्मद-इब्न-कासिम की जीत हुई।

तब वह नीचे आ कर सिन्ध नदी लाँघने का उपाय करने लगा। सामने दाहिर की सेना थी, और उसका बेटा जयसिंह नदी का घाट रोके हुए था। किन्तु नदी के बीच में एक टापू था। उसका "मुखी" मुहम्मद-इब्न-क़ासिम के साथ मिल गया और जैसे सिकन्दर को आम्भि ने सिन्ध नदी के पार उतार दिया था, वैसे ही उसने मुहम्मद-इब्न-कासिम को उतार दिया। उस पार दाहिर वैसी ही वीरता से लडा जैसे पुरु सिकन्दर से लड़ा था। किन्तु सिन्ध के इन अन्तिम हिन्दू राजाओं ने अपनी जाट और मेड प्रजा पर बडे ज़ुल्म किये थे, इसलिए बहुत से जाटों ने अरबों का साथ दिया। दाहिर युद्ध में मारा गया। उसकी रानी ने पडोस के एक किले मे कुछ सेना ले कर, जब तक बना, मुकाबला किया। अन्त में उसने बची हुई स्त्रियों के साथ "जौहर" कर लिया। भारत मे जौहर की यह पहली घटना थी। उत्तर की तरफ बढ कर मुहम्मद-इब्न-कासिम ने छ. महीने के घेरे के बाद सिन्ध का मुख्य नगर ब्राह्मनाबाद जीत लिया। तब उसने सिन्ध की राजधानी अलोर (रोरी के पास) पर भी कब्जा किया। अलोर के बाद मुलतान भी अरबों के हाथ में चला गया।

§ ५ **सिन्ध का अरब राज्य**—जाटों और मेडों से काम निकल जाने के बाद मुहम्मद-इब्न-क़ासिम ने भी उनपर पहले सी सख्ती की। परन्तु व्यापारी और कृषक प्रजा को विशेष नहीं सताया, उनसे जज़िया ले कर उन्हें अपना धर्म बनाये रखने और अपने मन्दिरों मे पूजा-पाठ करने दिया। राज्य का शासन, वसूली आदि का काम ब्राह्मणों और पुराने सरदारों के हाथ सौंपा। मुलतान के प्रसिद्ध सूर्य-मन्दिर को तोडने के बजाय उसके चढावे की आमदनी मे से हिस्सा लेना अरब विजेताओं को अच्छा जँचा। कुछ समय बाद मुहम्मद-इब्न-क़ासिम खलीफा-दरबार की दलबन्दी के कारण वापिस बुलाया गया और यातनाएँ दे कर मार डाला गया।

अरबों ने सिन्ध से और आगे बढने के भी अनेक जतन किये, पर वे सब विफल हुए। ७३९ ई० में उनकी सेना कच्छ, सुराष्ट्र आदि जीत कर सूरत जिले की नवसारी नगरी तक पहुँच गयी, पर वहाँ चालुक्यों ने उसे तहस-नहस कर दिया।

भिन्नमाल राज्य के साथ तो उनकी प्रायः लगातार मुठभेड़ होती रही। ७६६ ई० में उन्होंने सुराष्ट्र पर चढाई कर वलभी नगरी को लूटा। तब मैत्रक वंश का राज्य समाप्त हुआ। खलीफाओं की शक्ति शिथिल होने पर भी सिन्ध में अनेक अरब सरदार बने रहे।

§६ **कन्नौज का राजा यशोवर्मा, गुप्त राज-वंश का अन्त** (लगभग ७२०–७४० ई०)—सिन्ध में अरब राज्य स्थापित होने के कुछ ही बरस बाद मगध और गौड में गुप्त राजवंश का अन्त हुआ। कन्नौज का राजा इस समय यशोवर्मा था। उसने मगध और गौड पर चढाई कर वहाँ के गुप्त राजा को मार डाला और पूरबी समुद्र तक अपना साम्राज्य फैला लिया। इसके थोडे ही अरसे बाद यशोवर्मा को एक प्रबल शत्रु से हारना पडा, जिसका उल्लेख हम अभी करेंगे। गुप्त राजवंश ने तब फिर उठने की चेष्टा की, पर वह विफल हुई। मगध, मिथिला और बंगाल में कुछ बरसों तक अराजकता फैली रही।

§७ **मध्य एशिया में तिब्बत, अरब और चीन की कशमकश, राजा ललितादित्य**—मुहम्मद-इब्न-क़ासिम जब सिन्ध को जीत रहा था उसी समय दो और नौजवान खिलाफत-साम्राज्य को दूसरे दो कोनों पर बढ़ा रहे थे। एक तरफ तारिक आफ्रिका के अन्तिम छोर से स्पेन में घुस कर रोम-साम्राज्य की उत्तराधिकारिणी पच्छिमी युरोप की त्यूतन जातियों से लड रहा था। स्पेन का प्रसिद्ध बन्दरगाह उसी के नाम से जब्रुल्-तारिक (जिब्राल्तर) कहलाने लगा। दूसरी तरफ कौतैबा मध्य एशिया में चीनी सेनाओं से लड रहा था (७०५–१४ ई०)। पहले तो तिब्बतियों और अरबों ने वहाँ से चीन के पैर उखाड दिये, किन्तु ७१५ ई० के बाद चीन की शक्ति फिर जाग उठी, और गजनी और बलख़ तक के राज्यों को उसने अरबों के विरुद्ध खडा किया। अगले तीस बरस में चीन-सम्राट् ने कास्पियन सागर के दक्खिन तक के शासकों पर अपना प्रभाव जमा लिया। कश्मीर की गद्दी पर लगभग ७३३ से ७६६ ई० तक दुर्लभवर्धन का पोता राजा मुक्तापीड ललितादित्य था। उसने बोलौर और चीन-हिन्द से तिब्बतियों को मार भगाया और तुख़ारिस्तान को भी जीता।

ललितादित्य ने इधर कन्नौज-सम्राट् यशोवर्मा से भी लोहा लिया। यशोवर्मा के साम्राज्य में हिमालय के पहाडी प्रदेश भी थे, और उसके साम्राज्य की सीमा तिब्बत से लगती थी। यशोवर्मा को हरा कर उसने पच्छिमी हिमालय के सब प्रदेश

उससे छीन लिये और काली नदी, जो अब नेपाल को कुमाऊँ से अलग करती है, उनके राज्यों के बीच की सीमा बनी। ललितादित्य और यशोवर्मा दोनों ने चीन-सम्राट् के पास दूत भेजे। ललितादित्य ने सम्राट् से तिब्बतियों को उत्तर से दबाने का अनुरोध करते हुए लिखा कि मैंने अन्तर्वेद के सम्राट् यशोवर्मा के साथ मिल कर उनके सब दक्खिनी रास्ते रोक दिये हैं।
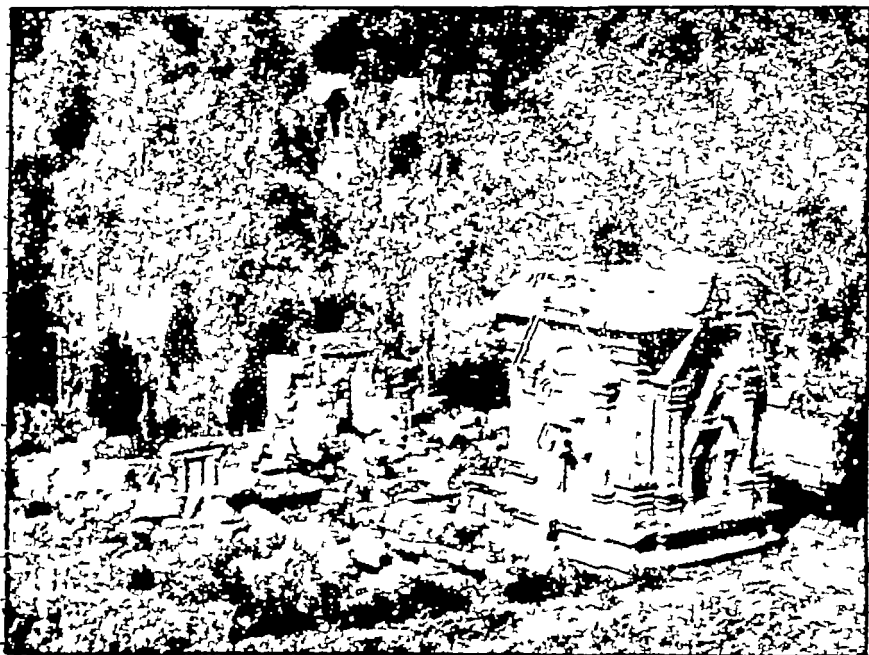
मटन तीर्थ ( कश्मीर ) में ललितादित्य के बनवाये मार्त्तण्ड मन्दिर के खँडहर

आठवीं शती के मध्य तक चीन ने तिब्बत और अरब की प्रगति को रोके रक्खा, किन्तु ७५१ ई० में अरबों ने तुर्कों के साथ मिल कर समरकन्द में चीनियों को बुरी तरह हराया। उसी युद्ध के चीनी कैदियों से पहले-पहल अरबों ने कागज बनाना सीखा, और फिर उनसे समूचे पच्छिमी जगत् ने। ७८० ई० में तिब्बतियों ने खोतन के विजय-वंश के राज्य को सदा के लिए मिटा दिया। ७८६ ई० में खलीफा हारूँनुल-रशीद के समय काबुल पर अरबों ने फिर चढाई की और नगर के

बाहर एक बहुत बडे विहार को लूटा। वहाँ तो उनके पैर न जमे, पर गजनी कुछ समय बाद अरब शासन मे चला गया।

§८. खिलाफत की सभ्यता—अरब लोग शुरू मे तो क्रूर और महारकारी थे, पर ईरान और भारत के ससर्ग मे जल्दी सभ्य हो गये। आठवी शती के शुरू मे सिन्ध और बलख के अरब-साम्राज्य मे सम्मिलित होने पर भारतवर्ष का प्रभाव खिलाफत के देशो पर पडने लगा। खलीफा हारूँनुल-रशीद के समय ( ७८६–८०६ ई० ) तो हिन्दू सस्कृति के प्रवाह मे बगदाद का दरबार मानो आप्लावित हो उठा। बरमक नाम के वजीर खानदान की वहाँ बडी ताकत थी वे लोग बलख के थे। उनके पुरखा बलख के नव-विहार मे पदाधिकारी रह चुके थे। वे नाम को मुसलमान हुए थे। पुराने रिश्ते-नातो के कारण वे भारत से हिन्दू विद्वानो को बगदाद बुलाते और उन्हे वहाँ वैद्य आदि के पदो पर रखते थे। अरब विद्यार्थियो को वे पढने को भारत भेजते। सम्स्कृत के दर्शन, वैद्यक, ज्योतिष, इतिहास, काव्य आदि के अनेक ग्रन्थों के उन्होने अरबी अनुवाद करवाये। भारतवर्ष मे गणित आदि का ज्ञान अरब लोग ही युरोप ले गये। पचतन्त्र आदि की कहानियाँ भी उन्ही के द्वारा विदेशो मे पहुँची।

किन्तु उनका साम्राज्य और वैभव जैसे जल्दी बटा था, वैसे ही उनका पतन भी जल्दी हुआ। वैभव ने उन्हे विलासी बना दिया। नवी शती के उत्तरार्द्ध मे अरब साम्राज्य टुकडे-टुकडे हो गया। खिलाफत एक छोटी सी रियासत के रूप मे रह गयी, और जो राज्य उसके स्थान मे उठ खडे हुए, उनमे अधिकाश मुसलमान बने हुए ईरानियो के थे। उनमे से एक बुखारा और खुरासान ( उत्तरी ईरान ) के अमीरों का था, जिससे हमे आगे वास्ता पडेगा। बुखारा हमारे ही 'विहार' शब्द का तुर्की-मगोली उच्चारण है। वह सुग्ध दोआब मे है। वहाँ के अमीर ईरानी मुसलमान थे।

---

# अध्याय ३

## पाल, प्रतिहार, राष्ट्रकूट

( लगभग ७५०–९९५ ई० )

**§१. कन्नौज साम्राज्य की अवनति** ( लगभग ७४०–८२० )—ललितादित्य से हारने के बाद कन्नौज साम्राज्य की शीघ्र ही अवनति हुई। यशोवर्मा किस वंश का था, सो मालूम नहीं हुआ, उसका नाम और सिक्के मौखरियों की शैली के हैं। उसके बाद के राजा "भण्डि-कुल" के थे। हर्षवर्धन के मामा का लड़का और सेनापति भण्डि था। जान पड़ता है कि यशोवर्मा के बाद कन्नौज का साम्राज्य उस सेनापति के वंश के हाथ में चला गया। किन्तु ललितादित्य के उत्तराधिकारी जयापीड ने कन्नौज के नये सम्राट् वज्रायुध को भी हरा कर पहाड़ों में नेपाल तक अपना राज्य बढ़ाया। पहला कन्नौज-साम्राज्य जब यों कश्मीरियों के हमलों से जीर्ण हो रहा था, तब उसके पूरब, दक्खिन और पच्छिम में नयी शक्तियाँ उठ रही थीं।

**§२. पाल, गंग, राष्ट्रकूट और प्रतिहार राज्यों का उदय** ( लगभग ७४३–७९० ई० )—मगध और बंगाल में अराजकता फैली थी, जिससे लोग ऊब गये थे। उस "मछलियों की सी दशा"* को बदलने के लिए प्रजा ने श्रीगोपाल के हाथ में राज्य-लक्ष्मी सौंप दी"—अर्थात् उसे अपना राजा चुन लिया ( लग० ७४३ ई० )। गोपाल योग्य राजा था, उसने समूचे मगध, मिथिला और बंगाल को शीघ्र एक सुसंगठित राज्य बना दिया।

कलिंग अर्थात् उड़ीसा में इस समय तक गंग वंश का राज्य स्थापित हो चुका था। गंग राजा पहले कादम्बों के सामन्त रूप में पूरबी मैसूर में राज्य करते थे। उस प्रदेश का नाम इसी कारण गंगवाड़ी पड़ा, वहाँ कोलाहलपुर ( कोल्हार ) गंगों की राजधानी थी। वहीं से वे लोग कलिंग आये, और यहाँ आठवीं से पन्द्रहवीं शती तक बराबर राज करते रहे।

---

* अराजकता को संस्कृत में "मछलियों की दशा" कहते हैं। बड़ी मछली छोटी को खा जाती है, और उसे भी अपने से बड़ी का डर रहता है। अराजकता में भी यही हाल होता है।

७५३ ई० में महाराष्ट्र-कर्णाटक के अन्तिम चालुक्य राजा से उसके सामन्त दन्तिदुर्ग राष्ट्रकूट ने उसका राज्य छीन लिया। 'राष्ट्रकूट' का असल अर्थ "प्रान्त का शासक" था। वही शब्द इस वंश का नाम हो गया। पीछे उसी का रूप 'राठोड' हुआ। दन्तिदुर्ग के उत्तराधिकारी, उसके चाचा, कृष्ण ( लगभग ७६०-७७५ ई० ) के समय राष्ट्रकूट सत्ता समूचे महाराष्ट्र और कर्णाटक पर स्थापित हो गयी। कृष्ण ने वेरूल* में एक चट्टान में से कटवा कर कैलाश
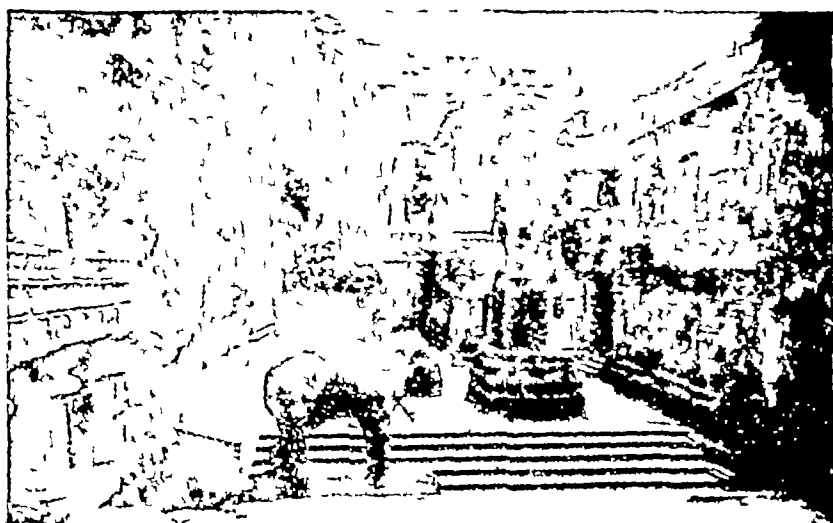
कैलाश-मन्दिर वेरूल [ निजाम-हैदराबाद पुरातत्व विभाग ]

नाम का मन्दिर बनवाया। वह भारतवर्ष की लेणियों या गुहामन्दिरों में सब से अनोखी रचना है।

महाराष्ट्र में जब राष्ट्रकूट राज्य स्थापित हुआ तभी गुर्जरदेश के राजा नागभट ने सिन्ध के मुसलमान शासकों को हरा कर ख्याति पायी। नागभट की राजधानी भिन्नमाल थी और मारवाड़ से भरुच तक उसका राज्य था। उसके पुरखा किसी राजा के प्रतिहार अर्थात् द्वारपाल थे। वही प्रतिहार शब्द उनके वंशजों का उपनाम हो गया।

इन नये राज्यों के मुकाबले में कन्नोज का साम्राज्य बोदा था। मगध और गौड राज्य में गोपाल का उत्तराधिकारी उसका सुयोग्य बेटा धर्मपाल हुआ

* 'वेरूल' का बिगड़ा हुआ अँगरेज़ी रूप 'एलोरा' है।

( लगभग ७७०–८०६ ई० )। उसने उत्तर भारत का सम्राट् बनना चाहा। कन्नौज का सम्राट् तब इन्द्रायुध था। ७८३ ई० के बाद धर्मपाल ने उसे गद्दी से उतार कर उसकी जगह चक्रायुध को बैठाया। चक्रायुध के अभिषेक के समय कन्नौज-साम्राज्य के सब सामन्तों ने उसे सम्राट् स्वीकार किया। इनमें पंजाब के मद्र, गान्धार और कीर ( कांगड़ा ) तक के राज्यों की गिनती थी। इस प्रकार कन्नौज का साम्राज्य यद्यपि अब निःशक्त था, तो भी उसका शासन दूर-दूर तक माना जाता था।

नागभट के भाई के पोते प्रतिहार राजा वत्सराज ने धर्मपाल को चुनौती दी और उसपर चढ़ाई कर उसे हराया, किन्तु उन दोनों पर राष्ट्रकूट कृष्ण के बेटे ध्रुव धारावर्ष ( ७८३-९३ ई० ) ने चढ़ाई की। लाट और मालवा प्रान्तों के लिए राष्ट्रकूटों और प्रतिहारों के बीच लड़ाई रहती थी। ध्रुव धारावर्ष ने कांची से कोशल ( छत्तीसगढ़ ) और लाट तक अपना आधिपत्य स्थापित किया। अब उसने वत्सराज को हराया, और गंगा-जमुना के बीच भागते हुए गौड राजा ( धर्मपाल ) का छत्र छीन लिया।

§३ धर्मपाल, नागभट ( २य ) और गोविन्द ( लगभग ७९०–८१५ ई० )—ध्रुव के दो बेटों—स्तम्भ और गोविन्द ( ३य )—में घरेलू युद्ध हुआ। उस अवसर से लाभ उठा कर वत्सराज के बेटे नागभट ( २य ) ने, जो राजस्थान की ख्यातों में नाहडदेव नाम से प्रसिद्ध है, चक्रायुध और धर्मपाल दोनों को हरा कर कन्नौज पर अधिकार कर लिया ( लगभग ७९२-९४ ई० )। किन्तु गोविन्द ( ७९४-८१४ ई० ) ने अपने राज्य में स्थापित होने के बाद उत्तर भारत पर चढ़ाई की और नागभट को हराया, धर्मपाल और चक्रायुध को भी उसके सामने झुकना पड़ा। इस चढ़ाई में उसने मालव, कोशल, कलिंग, ओड्र ( उड़ीसा का पहाड़ी भाग ) और डहाला ( जबलपुर प्रदेश ) पर अधिकार कर लिया। उधर उसने कांची और रामेश्वरम् तक जीता था। इस प्रकार वह अपने समय का भारत का सम्राट् था।

धर्मपाल का उत्तराधिकारी उसका बेटा देवपाल (लगभग ८१०–८५१ ई०) भी उसी की तरह योग्य हुआ। पाल राजा सब बौद्ध थे। धर्मपाल ने भागलपुर के पास विक्रमशिला नाम का एक महाविहार स्थापित किया, जो नालन्दा की तरह बाहर के बौद्ध देशों में भी शीघ्र प्रसिद्ध हो गया।

**§४. अमोघवर्ष और कृष्ण, मिहिर भोज और महेन्द्रपाल (८१५-९११ ई०)**—गोविन्द के बेटे शर्व अमोघवर्ष (८१५–७७ ई०) और उसके बेटे कृष्ण अकालवर्ष (८७७–९११ ई०) के एक शती के शासन में दक्खिन भारत ने अद्वितीय शान्ति और समृद्धि प्राप्त की। अमोघवर्ष ने मान्यखेट (निजाम राज्य की मालखेड) नगरी को अपनी राजधानी बनाया।

उधर राजा देवपाल ने मगध के राज्य को पूरबी भारत का साम्राज्य बना दिया। उसके सेनापति ने उत्कल (उड़ीसा) और प्राग्ज्योतिष (आसाम) को जीत लिया। शायद ललितादित्य और जयापीड की पूरबी विजयों के सिलसिले में पूरबी हिमालय में कश्मीरियों और कम्बोजों की एक बस्ती बस गयी थी। हिमालय में देवपाल ने उन्हें हराया। दूसरी तरफ उसने विन्ध्य में अमोघवर्ष से टक्कर ली। नागभट की मृत्यु के बाद उसके बेटे रामभद्र के मुकाबले में भी देवपाल का पलड़ा भारी रहा।

किन्तु लगभग ८३६ ई० में रामभद्र के बेटे भोज या मिहिर भोज के अधिकार पाने पर अवस्था पलट गयी। भोज ने राज पाते ही कन्नौज को जीता और भिन्नमाल के बदले उसे अपनी राजधानी बना लिया। कश्मीर की सीमा तक हिमालय के प्रदेशों पर उसने फिर से कन्नौज का आधिपत्य स्थापित किया। उसने प्रतिहार साम्राज्य की पच्छिमी सीमा उन पहाड़ों से मुलतान-सिन्ध की सीमा तक और सुराष्ट्र के समुद्र तक पहुँचा दी। पूरब तरफ उसने देवपाल के बेटे नारायणपाल (लगभग ८५४-९०८ ई०) से न केवल मगध-तिरहुत प्रत्युत पुण्ड्रवर्धन (उत्तरी बंगाल) भी छीन लिया (लगभग ८७१ ई०)। पालों का राज्य तब केवल राढ देश (पच्छिमी बंगाल) और समतट में रह गया। पूरबी बंगाल में भी एक स्थानीय चन्द्र-वंश खड़ा हो गया, जिसकी राजधानी विक्रमपुर (ढाका के पास) थी।

भोज के पचपन बरस (लगभग ८३६-९० ई०) और उसके बेटे महेन्द्रपाल के सत्रह बरस (८९१-९०७ ई०) के शासन में कन्नौज फिर भारत के सब से प्रतापी सम्राटों की राजधानी बना रहा। उनके डर से दक्खिन के राष्ट्रकूटों और सिन्ध के अरबों ने परस्पर मैत्री कर ली। अरब लोग मान्यखेट के राजा को बल्हारा (वल्लभ-राजा) नाम से जानते और उसे भारत में सबसे बड़ा राजा मानते थे।

**§५. चोल, कश्मीर और ओहिन्द के नये राज्य (लगभग ८५०–९०० ई०)**—नवीं शती के उत्तरार्द्ध में भारतवर्ष के सीमान्त राज्यों में रद्दोबदल हुआ।

काञ्ची, कश्मीर और काबुल के सीमान्त राज्य कर्णाटक, कन्नौज और बोखारा साम्राज्यों के हमलों से जीर्ण हो गये थे, इसलिए उनमें आन्तरिक परिवर्तन जरूरी हो गया। काञ्ची के पल्लव राज्य को समाप्त कर एक चोल राजा तामिल देश में उठा ( लगभग ८८० ई० ), जिसके वंशज आगे चल कर बड़े प्रतापी हुए।

कश्मीर में तभी कर्कोट वंश का राज्य समाप्त हो कर उत्पल वंश का शुरू हुआ। पहला उत्पल राजा अवन्तिवर्मा ( ८५५-८८३ ई० ) अत्यन्त न्यायी और सुशासक था। उसके सुय्य नाम के एक मन्त्री ने कश्मीर की नदियों में बाँध बँधवाये, नहरें खोदवायीं और दलदलों को सुखा कर सैकड़ों नये गाँव बसा दिये। कश्मीर की उपज तब इतनी बढ़ी कि धान की कीमत एकाएक ५१/३ वाँ हिस्सा रह गयी। सुय्य को लोगों ने अन्नपति की पदवी दी।

अवन्तिवर्मा का बेटा शंकरवर्मा ( ८८३-९०२ ई० ) भी बड़ा विजेता था। उसने पूरब और मिहिर भोज का मुकाबला किया और पच्छिम की तरफ उरशा ( हजारा ) और काबुल राज्य जीते। ८७० ई० में बोखारा के एक सेनापति याकूब-ए-लैस ने काबुल का किला ले लिया। काबुल शहर और इलाका हिन्दू राजाओं के पास रहा किन्तु वे अपनी राजधानी सिन्ध नदी के पुराने घाट उदभाण्ड-पुर ले गये। उदभाण्डपुर अटक के १६ मील उत्तर है और अब ओहिन्द कहलाता है। वहाँ ८८३ ई० में अन्तिम राजा से उसके ब्राह्मण मन्त्री लल्लिय ने राज्य छीन लिया। लल्लिय के वंशज ब्राह्मण शाहि कहलाये। शंकरवर्मा ने लल्लिय को जीत कर अपना सामन्त बनाया। अरसे तक शाहियों का राज्य कश्मीरियों की अधीनता में रहा। मिहिरभोज से शंकरवर्मा की लड़ाई कांगड़े के इलाके में हुई होगी।

**§६ दूसरे कन्नौज साम्राज्य की अवनति ( ९१६ ई० से )**—जब महेन्द्र-पाल का बेटा महीपाल कन्नौज की गद्दी पर बैठा, तब भी उसका शासन कलिंग से काठियावाड और काठियावाड से कुल्लू तक माना जाता था। उधर कर्णाटक में कृष्ण अकालवर्ष का उत्तराधिकारी उसका पोता इन्द्र नित्यवर्ष हुआ। ९१६ ई० में मध्यदेश और महाराष्ट्र के सम्राटों में फिर लड़ाई हुई। इस बार इन्द्रराज ने कन्नौज नगरी को ले कर उजाड़ा और उसके एक सामन्त ने प्रयाग तक महीपाल का पीछा किया। तब से कन्नौज-साम्राज्य की घटती कला शुरू हुई। बंगाल के पालवंशी राजाओं ने ९५० ई० तक मगध फिर वापिस ले लिया। तो भी उत्तरी बंगाल को वे न ले सके और वहाँ एक कम्बोज वंश स्थापित हो गया।

**§७. चेदि, जझौती, मालवा, गुजरात, राजपूताना, पजाब और महाराष्ट्र के नये राज्य** ( लगभग ६२५--६६५ ई० )—अन्तर्वेद का साम्राज्य कमजोर होने से विन्ध्यमेखला के सामन्त राज्य स्वतन्त्र हो गये। जमना के दक्खिन में विदर्भ और कलिंग की सीमा तक पुराना चेदि देश था। इस युग में चेदि नाम उसके दक्खिनी अश का रहा, उत्तरी अश जेजाकभुक्ति या जझौती कहलाता था। चेदि के कलचुरि-वश की राजधानी त्रिपुरी ( जबलपुर के पास आधुनिक तेवर ) थी। महाकोशल अर्थात् छत्तीसगढ भी उसके अधीन रहा। उसकी पच्छिमी सीमा वर्धा नदी तक थी।

जझौती में चन्देल राजवश था। उनकी राजधानी पहले महोबा और फिर खजुराहो में रही। कालजर का प्रसिद्ध किला ले लेने से वे कालजर के राजा भी

भद्रावती ( भादक, जि० चाँदा ) में एक पुराने पुल के खँडहर। भद्रावती ह्वान-च्वाङ के समय महाकोशल की राजधानी थी।

[ भा० पु० वि० ]

कहलाये। यशोवर्मा चन्देल ( लगभग ६२०–५० ई० ) ने डहाला से मगध, मिथिला और गौड तक चढाई की, और पूरबी हिमालय तक जा कर वहाँ की कश्मीरी या कम्बोज बस्ती को हराया। उसके बेटे धग ने ( लगभग ६५०–६५ ई० ) अग और राढ देश पर चन्देलों का आधिपत्य जारी रक्खा। दसवीं शती के अन्तिम भाग में पालवशी राजा महीपाल ( लगभग ६७५-१०२६ ई० ) ने फिर धीरे-धीरे अपने

पुरखों के राज्य का पुनरुद्धार किया। पहले उसने कम्बोज वंश का अन्त कर उत्तरी बंगाल लिया ( लगभग ६८४ ई० ) और फिर मगध। अपने राज्यकाल के प्रायः अन्त में उसने मिथिला को भी ले लिया ( लगभग १०२३ई० )।
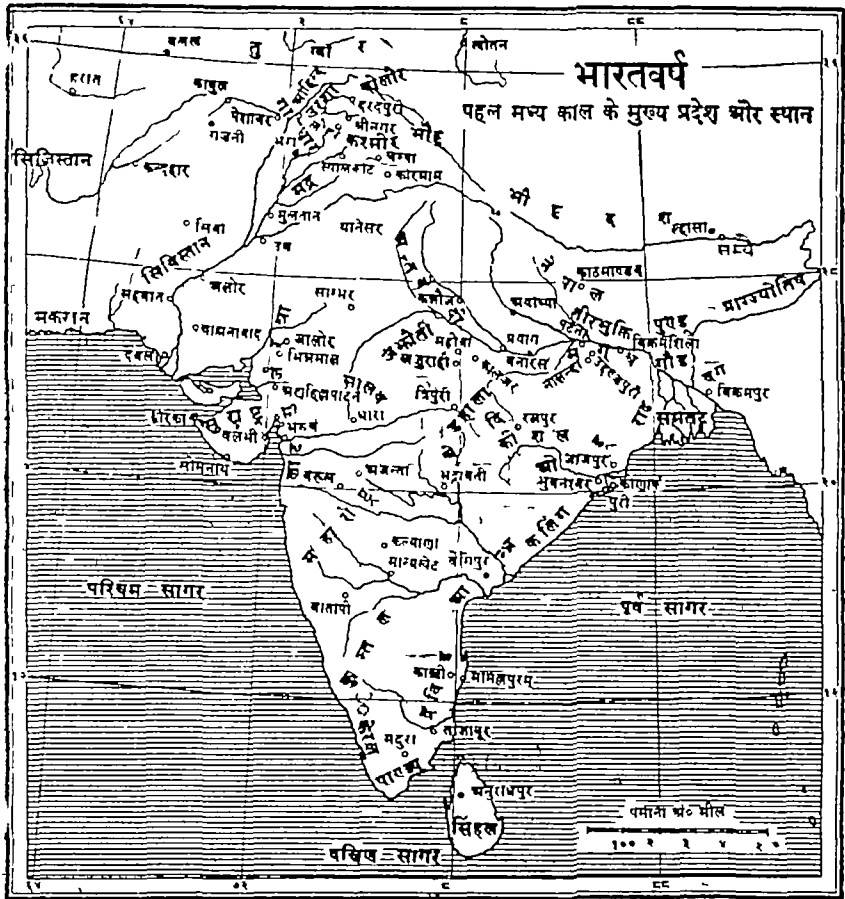
चेदि और जझौती के पच्छिम मालवे में परमार राजपूतों का एक राज्य स्थापित हुआ, जिसकी राजाधानी धारा थी। मालवे के पच्छिम गुजरान में मूलराज सोलंकी ( चालुक्य ) ने ६६० ई० में एक राज्य स्थापित किया जिसकी राजधानी अणहिल्लपाटन ( अणहिलवाड़ा ) थी। दक्खिनी राजपूताने पर प्रायः गुजरात और

मालवे का अधिकार रहा। उत्तरी राजपूताने में चौहानों का एक स्वतन्त्र राज्य उठ खड़ा हुआ, जिसकी राजधानी साँभर थी। उधर ओहिन्द के शाहियों ने अपना राज्य पंजाब तक फैला लिया। इन राज्यों के बीच कन्नौज का प्रतिहार राज्य भी बना रहा।

काबुल-ओहिन्द के शाहि सामन्तदेव का सिक्का [ श्री० सा० स० ] चित, राजा घोड़े पर, पट, नन्दी, ऊपर लेख—श्री सामन्तदे (व)।

इन्द्रराज राठोड़ ने ९१६ ई० में कन्नौज पर दखल किया था, ९७२ ई० में मालवा के पहले स्वतन्त्र राजा सीयक ( श्रीहर्ष ) ने राष्ट्रकूटों की राजधानी मान्यखेट पर दखल किया। तब राष्ट्रकूटों का राज्य समाप्त हुआ और तैलप चालुक्य ने महाराष्ट्र-कर्णाटक में फिर से चालुक्य राज्य स्थापित किया ( ९७३ ई० )। पिछले चालुक्यों की राजधानी कल्याणी नगरी ( बिदर के पास ) थी, इस कारण वे कल्याणी के चालुक्य कहलाये। सीयक का बेटा राजा मुंज छः बार तैलप को हराने के बाद सातवीं लड़ाई में उसके हाथ से मारा गया (लगभग ९९४ ई०)।

इन सब नये राज्यों में उत्तरी और दक्खिनी किनारे के दो राज्य—गजनी और तांजोर के—सबसे ज्यादा जबरदस्त निकले, उन्होंने अगले पचास बरस में बीच के सब राज्यों को एक बार झकझोर दिया।

---

## अध्याय ४

### गज़नी और तांजोर के साम्राज्य

### ( ९८५–१०४५ ई० )

§१ **तुर्कों का फिर बढ़ना ( ९५० ई० से )**—मध्य एशिया में शकों-तुखारों का स्थान किस प्रकार हूण-तुर्कों ने ले लिया और उनपर पहले चीनियों तथा पीछे अरबों ने कैसे अपना आधिपत्य जमाया, सो कह चुके हैं। ६५९ ई० में ये चीन के शासन में चले गये थे, और ७५१ ई० में चीन का स्थान अरबों ने लिया था। खिलाफत-साम्राज्य टूटने पर कई अरब और ईरानी राजवंश सारे पच्छिम और मध्य एशिया पर शासन करते रहे। तुर्क लोग प्रायः तीन सौ बरस तक गौण

रहे। इस बीच मध्य एशिया में बौद्ध धर्म का स्थान इस्लाम ले रहा था। तुर्कों की पच्छिमी जातियाँ पहले मुसलमान हुईं। यारकन्द और काशगर के पूरबी तुर्क दसवीं शती के अन्त मे मुसलमान हुए। ९५० ई० के करीब से अरबों और ईरानियो के अधीन जो तुर्क सरदार थे वे सिर उठाने लगे। कुछ ही समय में तुर्क सत्ता उन सब देशों पर छा गयी जो पहले खिलाफत के अधीन थे। इसी समय अलप्-तगीन नामक तुर्क ने, जो पहले बुखारा के अमीर के यहाँ हाजीब अर्थात् प्रतिहार (द्वारपाल) था, गजनी में एक छोटी सी तुर्क जागीर की नींव डाली। गजनी को बुखारा के अमीरो ने कुछ ही समय पहले छीना था और अब भी उसके पडोस में सब तरफ हिन्दू ही थे।

§२ **सुबुक्-तगीन** (९७७-९७ ई०)—अलप्-तगीन के पीछे उसका दामाद सुबुक्-तगीन जो उसी की तरह पहले बुखारा में प्रतिहार रहा था, गजनी का मालिक बना (९७७ ई०)। जिस अन्तिम ईरानी राजा यज्दगुर्द से अरबों ने राज्य छीना था, उसकी एक लडकी एक तुर्क सरदार को ब्याही थी। कहते हैं सुबुक्-तगीन उसी का वंशज था। यह बात सच हो या झूट, इसमें सन्देह नहीं कि तुर्क लोग अब पुराने हूण न रहे थे। मध्य एशिया मे आ कर शकों-तुखारो और ईरानियों का आर्य खून उनमे पूरी तरह मिल चुका था।

सुबुक्-तगीन ने अपना राज्य बढाना शुरू किया, और पूरब और उत्तर तरफ कई किले छीने, जो कि ओहिन्द के शाहि जयपाल के थे (लगभग ९८६ ई०)। जयपाल ने उसके इलाके पर चढाई की। कई दिन की घोर लडाई के बाद, हिन्दू सेना जिस चश्मे का पानी पीती थी उसे शराब से गन्दा कर तुर्कों ने उन्हें सन्धि करने पर विवश किया। जयपाल ने कुछ किले देना स्वीकार कर लिया, पर लौट कर उसने वे किले न दिये। तब सुबुक्-तगीन उसके इलाकों को लूटने और उजाडने लगा। निंग्रहार के उत्तर-पच्छिम पहाडों की उस तराई का, जिसमें अलीशाग नदी काबुल में मिलती है, संस्कृत नाम लम्पाक था, और अब लमगान है। सुबुक्-तगीन ने उसी को अपना लक्ष्य बनाया। जयपाल कन्नौज के राजा राज्यपाल और जझौती के राजा धंग की सहायता मँगा कर एक बडी सेना के साथ फिर गजनी की तरफ़ बढा। कुर्रम नदी की दून में लड़ाई हुई। सुबुक्-तगीन ने सामने लडने के बजाय ५--५ सौ सवारों की टुकडियो मे शत्रु सेना पर झपट्टे मारने की नीति पकडी, जिसमें वह सफल हुआ। लमगान उसके अधीन हो गया।

§३. **महमूद गज़नवी** (९९७–१०२९ ई०)—सुबुक्-तगीन की जागीर उसके पीछे ९९७ ई० में उसके बेटे महमूद को मिली। कुछ ही समय बाद बुखारा-खुगमान का राज्य तुर्क सरदारों के उपद्रवों से तथा पामीर पार के काशगर के बौद्ध तुर्कों के हमलों के कारण समाप्त हो गया। आमू-सीर-दोआब काशगर के राज्य में चला गया, और खुरासान का बाकी सब राज्य, जिसमें ईरान के अतिरिक्त आमू और कास्पियन के बीच का प्रदेश--ख्वारिजम--था, महमूद को मिला। महमूद ने सुलतान बन कर नये राज्य पर अपना अधिकार दृढ किया। वह सीस्तान पर काबू करने में लगा था, जब उसे खबर मिली कि जयपाल फिर लडाई की तैयारी कर रहा है। इससे पहले कि जयपाल को समय मिले उसने एकदम पेशावर पर हमला कर दिया (१००१ ई०)। जयपाल अपने बेटे आनन्दपाल और अनेक सरदारों सहित कैद हुआ। पेशावर और ओहिन्द अर्थात् अटक नदी तक का कुल इलाका विजेता के हाथ में चला गया! आनन्दपाल को ओल रख उसने जयपाल को जाने दिया पर जयपाल को अपनी हारों से इतनी ग्लानि हुई कि वह आग में जल मरा। तब महमूद ने आनन्दपाल को छोड़ दिया। आनन्दपाल ने नमक की पहाडियों में भेरा को अपनी राजधानी बनाया और वहीं रहने लगा। यह महमूद की पहली चढाई थी। कहते हैं उसने भारतवर्ष पर कुल १७ चढाइयाँ कीं।

ओहिन्द के बाद "भाटिया" और मुलतान ये दो और राज्य महमूद के पड़ोसी थे। "भाटिया" दक्खिन पजाब में भाटी राजपूतों की बस्ती थी। पजनद के पास उच्च नाम का स्थान उसकी राजधानी थी। महमूद ने पहले "भाटिया" पर चढ़ाई की। किले के बाहर तीन दिन के घोर युद्ध के बाद राजा विजय-राय मारा गया। विशेष लूट विजेता के हाथ नहीं लगी। लौटते समय उसकी सेना बुरी तरह सतायी गयी और स्वयम् सुलतान की "कीमती जान" बडी मुश्किल से बची।

मुलतान के शासक मुसलमान थे। महमूद ने उनपर चढाई करने के लिए आनन्दपाल से उसके राज्य में से लाँघने की इजाजत माँगी। आनन्दपाल ने इजाजत न दी। तब महमूद ने उसके प्रदेश में घुस कर उसे उजाडना शुरू किया, और कई मुठभेड़ों में आनन्दपाल को हरा कर कश्मीर की ओर भगा दिया। मुलतान का शासक यह समाचार पा कर भाग गया। महमूद ने मुलतान पर अधिकार कर प्रजा से भारी जुरमाना वसूल किया।

आनन्दपाल ने फिर एक वार कन्नौज, जझौती आदि के राजाओ से सहायता मँगा कर अटक के पूरब एक वडे युद्ध की तैयारी की ( १००६ ई० )। उस इलाके के वीर गक्खड भी उसकी सेना मे शामिल थे। महमूद भी एक वडी फौज के साथ आया। ४० दिन तक दोनों सेनाएँ अटक के पास छछ के मैदान मे एक दूसरे की ताक मे पडी रही। अन्त में गक्खडों ने तुर्कों पर हमले शुरू किये। लडाई मे तुर्कों के पैर उखड गये और महमूद पीछे हटने की सोचने लगा। उसी समय आनन्दपाल का हाथी विगड कर भागा और उसकी सेना उसे राजा के हारने का सकेत समझ भाग खडी हुई। इस हार ने हिन्दू राज्यों की हिम्मत तोड दी, उन-पर महमूद का आतक जम गया। शाहियो के राज्य के पूरब लगा हुआ कीर देश ( कागडा ) का राज्य था। छछ की विजय के वाद महमूद सीधा उसपर जा टूटा, और वहाँ के नगरकोट के मन्दिर को लूटा।

इतने हमलो के वावजूद भी पजाव का शाहि-राज्य टूटा न था। महमूद की एक और चढाई में आनन्दपाल मारा गया। उसके वेटे त्रिलोचनपाल ने वार्षिक कर देना स्वीकार किया, और अपने दो हजार सैनिक सुलतान की सेवा मे रख दिये। महमूद का राज्य पच्छिम तरफ भी कास्पियन तक फैला हुआ था। उधर उसने कास्पियन के पच्छिम गर्जिस्तान ( ज्यौर्जिया ) तक के प्रदेश जीते। आमू पार के वौद्ध तुर्कों का उसे कई वार मुकावला करना पडता था। गजनी के पडोस के गोर आदि इलाको के पठानो को कावू में रखने के लिए भी उसे सदा सजग रहना पडता था। वे पठान तव तक हिन्दू थे। चार वरस तक महमूद और त्रिलोचनपाल के वीच शान्ति रही, किन्तु १०१४ ई० मे महमूद ने फिर चढाई की। अटक और जेहलम के वीच पहाडी इलाके मे तौसी नदी के किनारे लडाई हुई। कश्मीर के राजा सग्रामराज ने अपने सेनापति तुग को त्रिलोचन शाहि की मदद को भेजा। महमूद ने कुछ सेना तौसी पार भेजी, जिसे तुग ने मार भगाया। शाहियो को अव तक तुर्कों के "छल-युद्ध" का तजरवा हो चुका था। त्रिलोचनपाल ने तुग को समझाया कि एकाएक आगे न वढे, किन्तु तुग अपनी उस जीत के मद में नदी पार कर गया और अन्त मे महमूद की वडी सेना से हार गया। त्रिलोचन कश्मीर भाग गया और पजाव पर महमूद ने दखल कर लिया। कश्मीरी इतिहासलेखको ने तुग की उस मूर्खता को ही पजाव के पतन का कारण माना है।

मुलतान और पंजाब पर दखल करने के बाद महमूद ने और आगे बढ़ना शुरू किया। उसने थानेसर पर धावा बोला। फिर १०१८ ई० में एक लाख सेना के साथ उसने अन्तर्वेद पर चढ़ाई कर मथुरा और कन्नौज को लूटा। राजा राज्यपाल गंगा पार भाग गया। एक और चढ़ाई के बाद उसने कर देना स्वीकार किया। कालंजर के युवराज विद्याधर और उसके ग्वालियर के सामन्त ने इस कायरता के कारण राज्यपाल को मार डाला। तब महमूद ने एक चढ़ाई ग्वालियर और कालंजर पर भी की।

महमूद के पड़ोसी उत्तर भारत के हिन्दू राज्यों में से अब एक मात्र कश्मीर ऐसा बचा था जिसने उससे नीचा न देखा था। १०२१ ई० में महमूद ने कश्मीर पर भी चढ़ाई की, किन्तु लोहर नाम के पहाड़ी किले से हार कर उसे लौटना पड़ा।

महमूद की अन्तिम प्रसिद्ध चढ़ाई १०२३ ई० में सुराष्ट्र के सोमनाथ मन्दिर पर हुई। मुलतान से तीस हजार ऊँटों पर रसद-पानी ले कर वह जालोर के रास्ते अणहिलवाड़ा की तरफ बढ़ा। राजा भीम सोलंकी भाग कर कच्छ चला गया। समुद्र के किनारे सोमनाथ पर पहुँच कर महमूद ने नगर और मन्दिर को लूटा, और उसका शिव-लिंग* तोड़ डाला। वह मन्दिर काठ का था और धारा के राजा मुञ्ज परमार के भतीजे राजा भोज ने उसे कुछ ही पहले बनवाया था। जब महमूद लौटने को था तो उसे खबर मिली कि मालवे का परमारदेव अर्थात् राजा भोज लौटते हुए उसका रास्ता काट कर हमला करेगा। इसलिए महमूद राजपूताने के बजाय कच्छ और सिन्ध के रास्ते लौटा। सिन्ध नदी के नाविक जाटों ने उसकी सेना को बहुत सताया और बहुत सी लूट रास्ते में छीन ली। उन्हें दंड देने के लिए महमूद ने एक और चढ़ाई की।

**§४ महमूद का चरित्र**—१०२६ ई० में महमूद का देहान्त हुआ। वह अपने जमाने का अद्वितीय सेनापति था। मुस्लिम इतिहासलेखकों का एक अरसे तक यह विश्वास रहा कि काफिरों को लूटना धर्म है। इस कारण उन्होंने महमूद का हाल इस ढंग से लिखा कि उसकी भारतीय चढ़ाइयों का एकमात्र प्रयोजन लूट ही प्रतीत होता है। असल में वह बात न थी। उसकी अधिकांश चढ़ाइयाँ पंजाब पर हुईं—पंजाब ने उसका अन्त तक मुकाबला किया। उन चढ़ाइयों का उद्देश धीरे-धीरे अपने राज्य को बढ़ाना और संगठित करना ही था। शत्रु को तंग

* वह लिंग ठोस था, उसके खोखले पेट में रत्न भरे होने की बात पीछे की गप्प है।

करने और डराने के लिए वह लूट-मार और क्रूरता अवश्य करता था। किन्तु वह सफल सेनापति था, इसका यह अर्थ है कि उसकी सेना मे पूरा नियमपालन होता था। उसके शहर लूटने, योद्धाओ को कैद और कतल करने आदि के वृत्तान्त में कहीं स्त्रियों, बच्चो को सताने की बात नहीं सुनी जाती। वह स्वयम् सच्चरित्र था, और उसके अपने राज्य मे प्रजा सुरक्षित थी तथा शासन व्यवस्थित और सुसगठित था। अपने धर्म पर उसे अटल विश्वास था, और उसके जीवन के सामने एक बड़ा लक्ष्य था। तो भी उसे कोरा धर्मान्ध नहीं कह सकते। उसके दरबार मे फारसी का महाकवि फ़िरदौसी था, जिससे उसने ईरान के पुराने अग्निपूजक राजाओ की कीर्ति शाहनामा नामक ग्रन्थ मे लिखवा कर अपने को उनका वशज बताया। अल्बेरूनी नाम का एक और विद्वान् उसके यहाँ था, जिसने पेशावर और मुलतान के पडितों से सस्कृत पढी और भारतवर्ष के विषय में एक बडा ग्रन्थ लिखा। महमूद ने अफगानिस्तान के हिन्दुओं को जबरदस्ती मुसलमान जरूर बनाया, परन्तु वैसा किये बिना उसका राज्य दृढ न हो सकता था। क्योकि वह हिन्दू अफगानो के देश मे बिलकुल विदेशी था, और अपनी प्रजा से किसी बात में एकता पैदा करना उसके लिए ज़रूरी था। उसकी सेना में बहुत से हिन्दू सैनिक और सरदार भी थे, जो पच्छिम की लडाइयो मे बडी वीरता दिखाते रहे। उसने हिन्दू मन्दिरों को जरूर लूटा, किन्तु उस युग मे मन्दिरों में उचित से इतनी अधिक सम्पत्ति लगायी जाने लगी थी कि किसी न किसी राजपरिवर्तन में वे लुटे बिना न रह सकते थे। मथुरा के मन्दिरो की कारीगरी देख कर महमूद चकित हो गया, और भारत से कारीगर ले जा कर उसने गजनी मे अत्यन्त शानदार मसजिदें और महल बनवाये। जझौती की कृत्रिम पहाडी झीलों के नमूने पर उसने अफगानिस्तान में झीलें बनवायीं। उसके चाँदी के सिक्को पर यह सस्कृत लेख पाया जाता है—
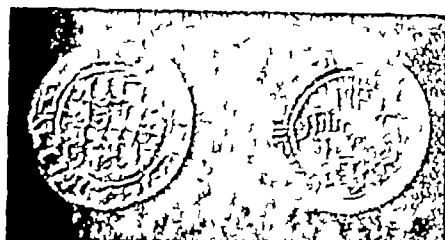
कलमे के सस्कृत अनुवाद सहित महमूद का टका
[ लाहौर म्यू० ]

अव्यक्तमेक मुहम्मद अवतार नृपति महमूद अय टको महमूदपुरे घटे हतो जिनायन-सवत् ... ।

अर्थात—"एक अव्यक्त ( ला इलाह इल्लिल्लाह ), मुहम्मद अवतार ( मुहम्मद रसूल इल्लाह ), राजा महमूद। यह टका महमूदपुर (लाहौर ) की टकसाल में पीटा गया, जिन ( हजरत ) के अयन ( भागने ) का संवत्...।"

काला-ए बुस्त, अफ़ग़ानिस्तान, में महमूद के समय की मेहराब [ फादर हेरस के सौजन्य से ]

§५. राजराज और राजेन्द्र चोल ( ६८५-१०४४ ई० )—महमूद की तुर्क सेना जब गजनी से सोमनाथ की ओर बढ रही थी, उसी समय राजेन्द्र चोल का

तामिल दल ताजोर से बगाल पर टूट रहा था। उत्तर और पच्छिम भारत की जो दशा गजनी के तुर्क राजा ने की, दक्खिन और पूरब की वही दशा ताजोर के

गज़नी में महमूद के बनवाये एक ताल की पाल,—बाँये तरफ की नयी पाल अमीर हबीबुर्रहमान की बनवायी हुई है।
[ फ़ादर हेरस के सौजन्य से ]

चोल राजाओं ने की। राजराज चोल ६८५ ई० में ताजोर की गद्दी पर बैठा।

पाड्य और केरल को उसने पूरी तरह वश मे किया, वेंगि के चालुक्यो और कलिग पर आधिपत्य जमाया, कर्णाटक पर चढाई कर तैलप के बेटे सत्याश्रय को चार बरस की लड़ाई के बाद बुरी तरह हराया। स्थल और जल सेना से उसने सिंहल को भी जीत लिया, और लकदिव और मालदिव को अपने राज्य मे मिला लिया। ताजोर मे उसका बनवाया विशाल मन्दिर अब तक मौजूद है। उसके राज्य का शासन
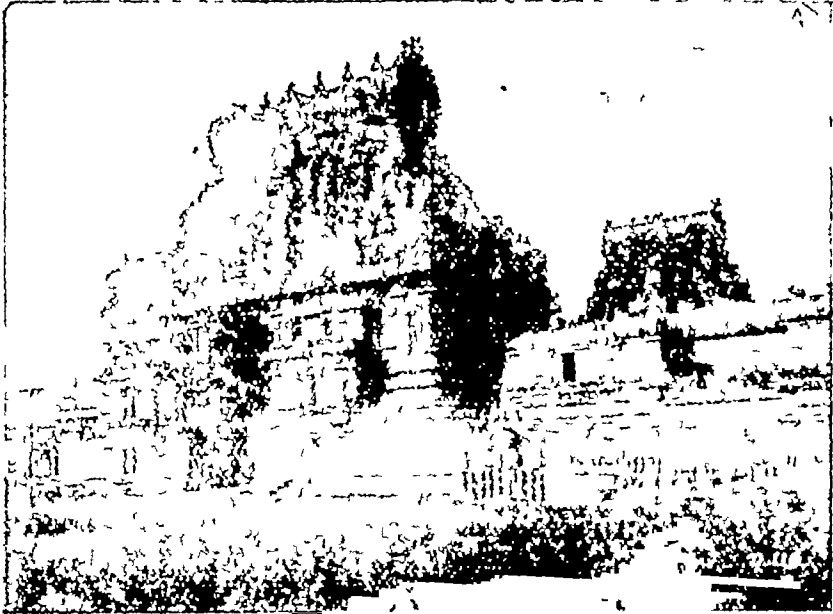
राजराज का बनवाया बृहदीश्वर मन्दिर, ताजोर—भीतरी गोपुर का दृश्य [ भा० पु० वि० ]

बहुत ही बाकायदा था। प्रत्येक ग्राम की अपनी पचायत थी, और उन पचायतों के प्रतिनिधि ताजोर के मन्दिर में इकट्ठे होते थे।

राजराज के बाद राजेन्द्र चोल राजा बना (१०१२ ई० )। उसने अपने जगी बेडे से श्रीविजय ( "मलाया" प्रायद्वीप, सुमात्रा, जावा ) के शैलेन्द्र* राजा सग्राम-विजयोत्तुगवर्मा पर हमला कर उसे जीता और बृहत्तर भारत का बडा अश अपने अधीन किया। कलिग के रास्ते उसनै गौड ( पच्छिमी बगाल ) के राजा महीपाल पर चढाई कर उसे युद्ध में भगा दिया। गगा तक विजय करने के कारण वह "गगैकोंड" कहलाया। महमूद के प्रायः पन्द्रह बरस पीछे उसका देहान्त हुआ।

---

* देखिये ऊपर पृ० १५०, १७१।

# अध्याय ५

## पहले मध्य काल के अन्तिम राज्य

( लगभग १०१०-११६० ई० )

§१. **महमूद के वंशज**—महमूद के समय में ही गुज्ज नाम की नयी तुर्क जातियाँ आमू के इस पार आयीं। उनके एक राजवंश का नाम सेल्जुक था। सेल्जुकों ने महमूद के पीछे सारे ईरान और पच्छिमी एशिया पर अधिकार कर लिया। अफगानिस्तान, पंजाब और सिन्ध में महमूद के वंशजों का अधिकार बचा रहा। महमूद के बेटे मसऊद ( १०३०--४० ई० ) के समय तिलक नाम का हिन्दू-अफगान पंजाब का शासक रहा। पंजाब से तुर्कों के कई हमले कन्नौज साम्राज्य और राजपूताने पर होते रहे।

§२. **राजा भोज, गांगेयदेव और कर्ण** ( १०१०-१०७३ ई० )—भारतवर्ष के ठीक मध्य के केवल दो राज्य ऐसे थे जो तुर्कों और तामिलों के हमलों से बच गये थे। एक था मालवा और दूसरा चेदि। महमूद और राजेन्द्र के बाद ये दोनों भारत में मुख्य हो गये। मालवे के राजा भोज ने लगभग १००६ से १०५४ ई० तक राज्य किया। उसका नाम भारत का बच्चा-बच्चा जानता है। उसी समय चेदि का राजा गांगेयदेव ( लगभग १०१५--४१ ई० ) और उसका बेटा कर्ण ( लगभग १०४१--७३ ई० ) हुआ। कन्नौज और जझौती के निःशक्त हो जाने के कारण गांगेय ने प्रयाग और काशी पर उस समय अधिकार कर लिया था जब वे राज्य महमूद के साथ जीने-मरने की कशमकश में फँसे थे। फिर कर्ण ने राज पाते ही मगध पर चढ़ाई की। राजा महीपाल के बेटे नयपाल (१०२६--४१ ई०) और कर्ण के बीच में पड़ कर दीपंकर श्रीज्ञान नाम के बौद्ध आचार्य ने शान्ति करा दी। कर्ण अपने समय के भारत में सब से प्रतापी राजा था। हिमालय में कीर ( नगरकोट ) राज्य तक, जो तब महमूद के वंशजों के अधीन था, उसने चढ़ाइयाँ कीं और विजय पायीं। भोज ने और उसने तुर्कों से उत्तर हिन्दुस्तान को बहुत कुछ उबारा। थानेसर, हाँसी और नगरकोट के प्रदेश १०४४ ई० तक स्वतन्त्र हो गये। त्रिपुरी के अतिरिक्त काशी को भी कर्ण ने अपनी राजधानी बनाया। लगभग १०५४ ई० में उसने गुजरात के राजा भीम सोलंकी से मिल कर धारा नगरी पर चढ़ाई की। तभी भोज की मृत्यु हुई।

§३. कीर्तिवर्मा चन्देल और चन्द्र गाहड्वाल ( १०४६–११०० ई० )—कुछ बरस बाद कीर्तिवर्मा चन्देल ( लगभग १०५४–१०६६ ई० ) ने चेदि के इस सर्व-विजयी कर्ण को परास्त किया। तब भोज के वंशज उदयादित्य ने भी मालवा राज्य का पुनरुद्धार किया ( लगभग १०७५ ई० )। १०८० ई० में चन्द्रदेव गाहड्वाल ( गहरवार ) ने कन्नौज में एक नया मजबूत राज्य स्थापित कर अन्तर्वेद को तुर्क हमलों से सुरक्षित किया। उसने कर्ण कलचुरि के उत्तराधिकारी से प्रयाग और बनारस भी वापिस ले लिये।

§४ राजेन्द्र चोल के वंशज ( १०४५-११४२ ई० )—उधर राजेन्द्र चोल का बेटा राजाधिराज चोल तुंगभद्रा के किनारे कोप्पम की लड़ाई में सोमेश्वर (१म) चालुक्य के हाथ मारा गया ( १०५२ ई० )। उसी रणभूमि में उसके भाई राजेन्द्र परकेसरी ने मुकुट पहना और सोमेश्वर को हरा दिया। १०६८ ई० में चोल राजाओं ने श्रीविजय पर आधिपत्य छोड़ दिया। १०७४ ई० में चोल वंश में कोई पुरुष न रहा, तब राजेन्द्र गंगैकोंड का एक दोहता, जो वेंगि का राजकुमार था, तांजोर की गद्दी पर कुलोत्तुंग चोल नाम से बैठा, जिससे वेंगि का चालुक्य और तांजोर का चोल राज्य मिल कर एक हो गये। कुलोत्तुंग के समय उड़ीसा में भी राजेन्द्र गंगैकोंड का एक दोहता अनन्तवर्मा राज करता था। वह गंग वंश का था, पर चोल माता का बेटा होने से चोडगंग कहलाने लगा। उसने ७१ वर्ष ( १०७६-११४७ ई० ) तक उड़ीसा का सुशासन किया। पुरी का प्रसिद्ध जगन्नाथ मन्दिर उसी के समय बना।

§५ कर्णाटक की प्रधानता, सेन और कर्णाट वंश ( १०७५–११५६ ई०)—चोल राजाओं से पिटने के बावजूद भी कर्णाटक के नये राज्य में काफी जान थी। ११वीं शती के मध्य से वह फिर चमक उठा। सोमेश्वर का बेटा विक्रमांक चालुक्य अपने पिता से भी अधिक प्रतापी निकला ( १०७६-११२५ ई० )। इन राजाओं के समय कर्णाटक की तूती फिर सारे भारत में बोलने लगी। १०वीं शती से ही कनाडे सिपाही भारत भर में प्रसिद्ध थे। १०८० ई० के करीब विजयसेन और नान्यदेव नामक दो कनाडे सैनिकों ने पाल राजाओं से बंगाल और तिरहुत छीन कर दो नये राज्य स्थापित किये। कर्णाटक का तब इतना प्रभाव था कि सुदूर कश्मीर में विक्रम चालुक्य का समकालीन राजा हर्ष ( १०८९-११०१ ई० ) अपने दरबार में कर्णाटक की ही चाल-ढाल की नकल करता था। विजयसेन ने पाल राजा

से मगध भी लेना चाहा, और तिरहुत पर भी आधिपत्य जमाना चाहा, पर उन दोनों राज्यों ने चन्द्र गाहड्वाल से रक्षा पायी।

**§६ गुजरात के सोलंकी और अजमेर के चोहान ( १०९०–११९२ ई० )**—११वीं शती के अन्त में अणहिलवाड़ा का चालुक्य राज्य भी फिर सँभल गया। वहाँ सिद्धराज जयसिंह ( १०९३-११४२ ई० ) और कुमारपाल ( ११४२-७३ ई० ) नाम के दो प्रतापी और योग्य राजा हुए। बारह बरस लड कर सिद्धराज ने मालवा का राज्य जीत लिया। सोमनाथ के मन्दिर को इन राजाओं ने अब पत्थर का बनवा दिया।

इनके पडोसी और समकालीन चौहान अजयराज और आना थे। अजयराज ने अजमेर बसा कर साँभर के बजाय उसे राजधानी बनाया। उसके बेटे आना को पहले तो सिद्धराज ने हराया, पर पीछे अपनी लडकी काचनदेवी ब्याह दी। आना की पहली रानी से विग्रहराज उर्फ बीसलदेव पैदा हुआ, और काचनदेवी से सोमेश्वर। इसी बीसलदेव ने ११५० ई० के करीब हाँसी और दिल्ली को जीत कर अजमेर राज्य में मिलाया। दिल्ली नगरी की स्थापना उससे करीब १०० साल पहले अनगपाल नामक एक तोमर सरदार ने की थी। बीसलदेव ने पजाब के तुर्कों को पीछे ढकेला। समूचा राजपूताना उसके अधीन था। ११६३ ई० मे दिल्ली की अशोक वाली प्रसिद्ध लाट पर, जो तब अम्बाला के उत्तर थी, उसने एक लेख खुदवाया जिसका अभिप्राय यह है कि "विन्ध्याचल से हिमालय तक राजा बीसल ने विजय की, म्लेच्छों (विदेशियों) को उखाड कर आर्यावर्त्त को फिर से यथार्थ आर्यावर्त्त बनाया। चोहान राजा विग्रहराज अब अपनी सन्तान से कहता है कि इतना तो हमने किया, बाकी जो रहा उसे पूरा करने का उद्योग तुम मत छोडना।"

बीसलदेव के पीछे सोमेश्वर अजमेर की गद्दी पर बैठा। उसका विवाह चेदि की एक राजकुमारी कर्पूरदेवी से हुआ था। उनका पुत्र प्रसिद्ध पृथ्वीराज चौहान हुआ ( ११७९–९२ ई० )। पृथ्वीराज वीर राजा था, पर उसमें वह राजनीतिक दूरदर्शिता न थी जो उसके चचा बीसलदेव मे थी। बजाय इसके कि वह बीसलदेव की वसीयत पर ध्यान दे कर पजाब की तरफ अपनी वीरता आजमाता, उसने पूरब की तरफ उसका दुरुपयोग किया। महमूद के समय जझौती का राज्य कन्नौज से भी अधिक मजबूत था। जमना के दक्खिन ग्वालियर तक के प्रदेश जझौती के अधीन थे। फिर जझौती के राजा कीर्तिवर्मा ने ही भारत-विजयी कर्ण को हराया था।

पृथ्वीराज ने उसके वंशज परमर्दी चन्देल पर चढ़ाई कर धसान नदी तक के प्रदेश उससे छीन लिये ( ११८२ ई० )। किन्तु उसी समय पृथ्वीराज का एक प्रबल शत्रु पंजाब में पैर जमा रहा था।

§७. गाहड़वाल वंश, ११००-११६४ ई०—उधर कन्नौज में चन्द्र गाहड़वाल का पोता गोविन्दचन्द्र ( १११४–५४ ई० ), उसका पुत्र विजयचन्द्र और विजयचन्द्र का पुत्र जयच्चन्द्र भी प्रबल और योग्य राजा हुए। कन्नौज के गौरव को उन्होंने फिर से स्थापित किया। वे काशी के राजा भी कहलाते थे। गोविन्दचन्द्र के समय चेदि के राजा ने बंगाल के राजा विजयसेन के पोते लक्ष्मणसेन ( ११२६–११७० ई० ) से मिल कर बनारस वापिस लेने की कोशिश की। पर गोविन्दचन्द्र ने उन दोनों को परास्त किया और लक्ष्मणसेन को हरा कर मगध भी ले लिया। पीछे जब वीसलदेव चौहान दिल्ली और हाँसी को जीत रहा था, लगभग तभी गोविन्दचन्द्र ने मुंगेर तक अपना अधिकार कर लिया ( ११४५ ई० )। उसके बाद १२वीं शती के अन्त तक मगध और अंग गाहड़वालों के अधीन रहे।

§८. धोरसमुद्र और ओरंगल राज्य ( ११११ ई० से )—कल्याणी का विक्रमांक चालुक्य यद्यपि प्रबल राजा प्रसिद्ध था तो भी उसके पिछले समय में उसकी सीमाओं के दो सामन्त सिर उठाने लगे। ११११ ई० में मैसूर अर्थात् दक्खिनी कर्णाटक में यादवों का एक वंश प्रबल हो उठा। उस वंश की छेड़ ( चिह्नने ) का नाम होयशल था, और उसकी राजधानी धोरसमुद्र। १११७ ई० में चालुक्य राज्य की पूरबी सीमा पर उत्तरी तेलंगाना में काकतीय वंश के सामन्तों ने सिर उठाया। उनकी राजधानी ओरंगल थी। चालुक्य राज्य को ओरंगल ने उड़ीसा से और धोरसमुद्र ने चोल राज्य से अलग कर दिया।

§९. देवगिरि के यादव ( ११८६ ई० से )—फिर ११५६ ई० के बाद कल्याणी का राज्य बिलकुल ढीला पड़ने लगा। उसके किनारों के प्रदेश धोरसमुद्र के यादवों और ओरंगल के काकतीयों ने दबा लिये थे। बाकी ठेठ महाराष्ट्र बचा, उसे भी ११८६ ई० में उत्तरी महाराष्ट्र के भिल्लम नामक एक यादव सरदार ने छीन लिया, और देवगिरि में अपनी राजधानी स्थापित की।

---

# अध्याय ६

## पहले मध्य काल की सभ्यता

§१. **बौद्ध धर्म की अवनति, वज्रयान**—हर्षवर्धन-युग का जीवन पहले-पहल गुप्त-युग के जीवन सा लगता है, पर उसमें कई नयी प्रवृत्तियाँ शुरू हो गयी थीं। हर्ष के समय बौद्ध धर्म उन्नति पर था, तो भी उसमे अवनति का बीज पड़ चुका था। कम से कम सिन्धु के प्रान्त में वह अवनति स्पष्ट दिखायी देती थी। युवानच्वाङ का कहना है कि वहाँ के भिक्खु-भिक्खुनी निठल्ले, कर्तव्य-विमुख और पतित थे। सिन्ध पर जब अरब आक्रमण हुआ तब वहाँ भी श्रमणों का निकम्मापन स्पष्ट प्रकट हुआ। दूसरे प्रान्तों की हालत अच्छी थी, पर वहाँ भी यह बुरी प्रवृत्ति शुरू हो चुकी थी। महायान मे से एक नया पन्थ वज्रयान निकल आया। वह बौद्ध वाममार्ग छठी शती ई० मे आन्ध्र देश के श्रीपर्वत में पहले-पहल प्रकट हुआ। महायान बुद्ध को ससार के उद्धारक रूप मे देखता था। वज्रयान ने उसे "वज्रगुरु" बना दिया। वज्रगुरु वे उस आदर्श पुरुष को कहते थे, जिसे अलौकिक "सिद्धियाँ" प्राप्त हों। उन सिद्धियों को पाने के लिए अनेक गुह्य साधनाएँ करनी पडती थीं। आठवी से ग्यारहवीं शती तक वज्रयान के ८४ सिद्ध हुए। प्रसिद्ध गोरखनाथ उन्हीं ८४ मे से एक था। ७४७ ई० मे नालन्दा महाविहार के शान्तरक्षित नामक आचार्य निमन्त्रण पा कर तिब्बत गये। उन्होंने वहाँ पद्मसम्भव नामक सिद्ध को भी बुलवाया। पद्मसम्भव को तिब्बती अब भी अपना गुरु मानते हैं। फिर १०४०–४२ ई० मे विक्रमशिला विहार से जो आचार्य दीपकर श्रीज्ञान उर्फ अतिशा तिब्बत गया, वह तो स्वयम् वज्रयानी था।

§२. **शंकराचार्य**—बौद्ध धर्म की अवनति का मुख्य कारण उसके अन्दर की ये नयी प्रवृत्तियाँ थीं। वैदिक और पौराणिक धर्म का मुकाबला भी उसके साथ जारी था। सातवी शती मे कुमारिल नामक विद्वान् ने फिर से वैदिक यज्ञों को चलाना चाहा। फिर ७८८ ई० में केरल देश में शकराचार्य उत्पन्न हुए। कहा जाता है कि शकर ने बौद्ध मत को भारत से उखाड दिया। सच बात यह है कि शकर के विचारों पर बौद्ध दार्शनिक वसुबन्धु की पूरी छाप है। इसी कारण वे

प्रच्छन्न बौद्ध ( छिपे बौद्ध ) कहलाते हैं। और चूँकि उन्होंने अपने दर्शन में बौद्धों की मुख्य बातें अपना लीं, इसलिए बौद्ध दर्शन अनावश्यक सा हो गया। शंकर ने घूम-घूम कर सारे भारत में अपने मत का प्रचार किया। एक बार मंडन मिश्र नाम के विद्वान् से उनका शास्त्रार्थ हुआ, जिसमें मंडन की विदुषी स्त्री मध्यस्थ बनायी गयी, और उसने अपने पति के विरुद्ध फैसला दिया। शंकर ने भारत के चार कोनों में अपने चार मठ स्थापित किये—एक केरल में शृंगेरी मठ, दूसरा गढ़वाल में बदरिकाश्रम, तीसरा पुरी में और चौथा द्वारिका में। भारतवर्ष के समूचे विचार पर शंकर का बहुत गहरा प्रभाव पड़ा।

दो-तीन शताब्दियों तक तो उनके विचारों के आगे दूसरी कोई विचार पद्धति टिकने न पायी। किन्तु वे प्रच्छन्न बौद्ध थे। आस्तिक लोग धीरे-धीरे अनुभव करने लगे कि उनकी पद्धति में भक्ति को कोई स्थान नहीं है। इसी कारण पीछे ग्यारहवीं शती से आस्तिक विद्वान् उसके विरोध में आवाज उठाने लगे। उस विरोध के पहले नेता रामानुज थे जो तामिल देश में १०१६ ई० में पैदा हुए।

**§३. पौराणिक धर्म की अवनति, मूर्त्तिपूजा और भक्ति मार्ग**—किन्तु इन आचार्यों के ऊँचे-ऊँचे विचार साधारण जनता के लिए नहीं थे। वह अपने देवताओं को ही पूजती रही। परन्तु जनता की वह सरल भक्तिमयी पौराणिक पूजा भी, जिसने सातवाहन और गुप्त युगों में एक नया जीवन जगाया था, अब आडम्बर से घिर गयी। देवताओं के सुनहले मन्दिर बनने लगे, उनका साज-शृंगार होने लगा और उनकी पूजा एक भारी प्रपंच हो गयी। जीवित देवता मानों जड़ हो गये। महायान से जैसे मन्त्रयान और वज्रयान पैदा हुए, वैसे ही शैव मत में पाशुपत और कापालिक, वैष्णव मत में गोपी-लीला, और शाक्त सम्प्रदाय में आनन्दभैरवी की पूजा आदि घोर और अश्लील पन्थ चल पड़े। "सिद्धि" पाना अब सभी पन्थों में जीवन का मुख्य ध्येय बन गया। ये "अतिमार्ग" या "वाममार्ग" पहले मध्य काल के पिछले अंश में विशेष रूप से बढ़े।

शंकर और रामानुज जैसे आचार्यों के अतिरिक्त अनेक भक्त और सुधारक भी इस युग में पैदा हुए। तामिल देश में तो वैष्णव और शैव भक्तों का एक सिलसिला ही जारी रहा। वैष्णव भक्त वहाँ आलवार और शैव भक्त नायन्मार कहलाते थे। उनकी तामिल रचनाओं का वेद और उपनिषद् की तरह आदर किया जाता है। अवन्तिवर्मा के समय ( ८५४ ई० ) कश्मीर में शैव धर्म में सुधार की एक लहर

चली। ११वीं शती के अन्त में कर्णाटक में लिंगायत या वीरशैव नाम का एक और सुधार-पन्थ चला। अपने अच्छे अंश के कारण ही पौराणिक धर्म में अब तक इतनी शक्ति बची रही कि वह सातवीं से बारहवीं शती तक इस्लाम का प्रायः सफलता से बराबर मुकाबला करता रहा।

परन्तु उसमें अन्ध विश्वास भी काफी था। कन्नौज के प्रतिहार सम्राटों के लिए कई ऐसे मौके आये जब वे मुलतान को आसानी से जीत सकते थे। किन्तु
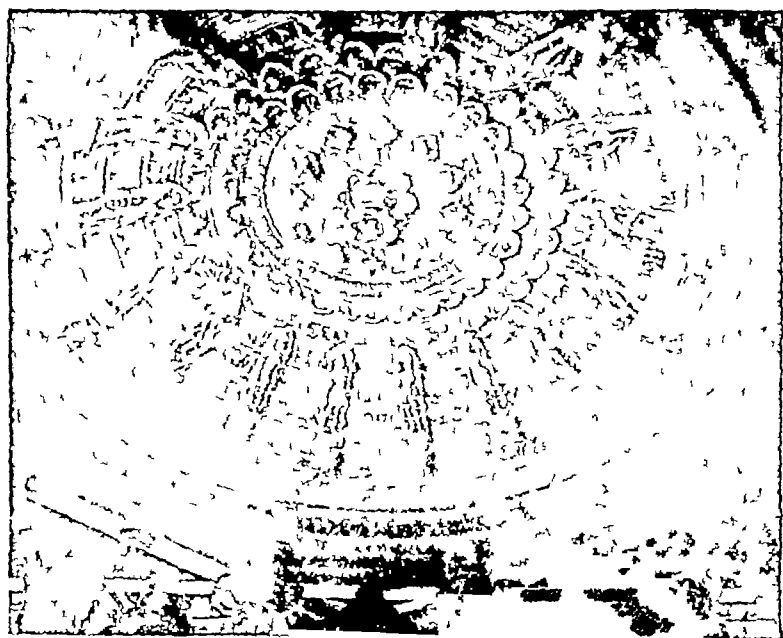
विमलवसहा ( विमलशाह का बनवाया मन्दिर, १०३१ ई० ), देलवाड़ा, आबू, की छत का दृश्य [ भा० पु० वि० ]

जब वैसा अवसर आता तभी मुलतान के मुस्लिम शासक सूर्य मन्दिर को तोड़ने की धमकी देते, और कन्नौज की सेना लौट जाती। दो-एक दृष्टान्त इससे उल्टे भी मिलते हैं। कश्मीर के राजा शंकरवर्मा ( ८८३-९०२ ई० ) ने अपनी आय बढ़ाने के लिए जो उपाय किये, उनमें मन्दिरों की जायदाद जब्त करना भी एक था। और ग्यारहवीं शती के अन्त में—कीर्तिवर्मा चन्देल, विक्रम चालुक्य, चन्द्र गाहड्वाल और सिद्धराज जयसिंह के जमाने में—कश्मीर के राजा हर्ष ( १०८९-११०१ ई० )

ने एक "देवोत्पाटन-नायक" अर्थात् मन्दिर उखाड़ने वाला अफसर रक्खा, जिसका काम था देवमन्दिरों को चुपके-चुपके बिगड़वा देना, और जब लोग उन्हें पूजना छोड़
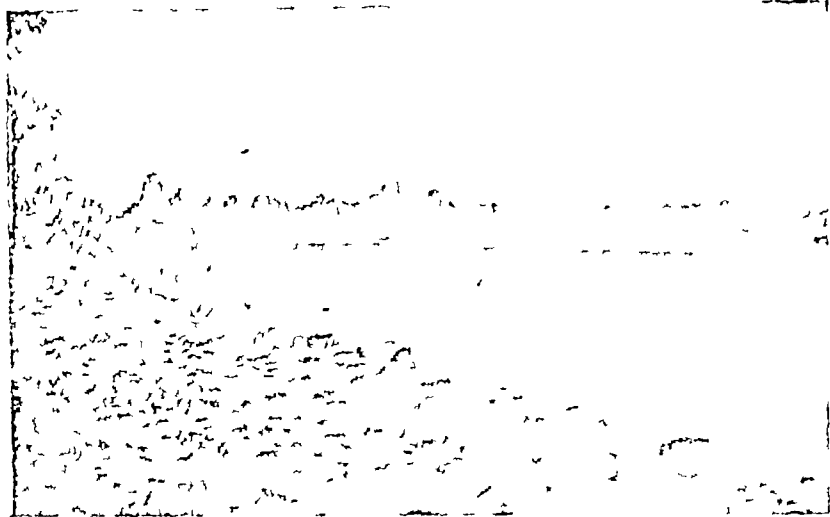
बिन्दु-सरोवर के किनारे लिंगराज और अन्य मन्दिर, भुवनेश्वर, जि० पुरी [ भा० पु० वि० ]
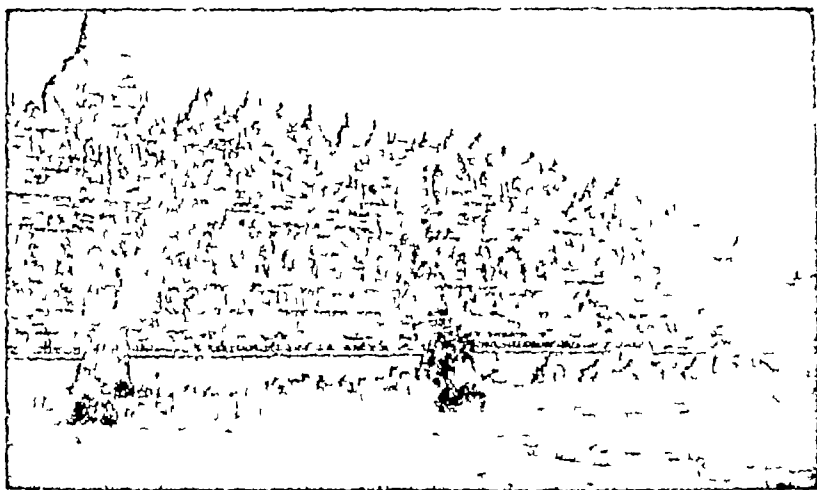
बोरोबुदुर मन्दिर ( ८वीं शता ई० )

दें तब जब्त कर लेना। अन्ध विश्वास में मुसलमान भी हिन्दुओं से बहुत पीछे न थे। महमूद के बेटे मसऊद के राज्य पर सेलजुकों का हमला होने पर उसने
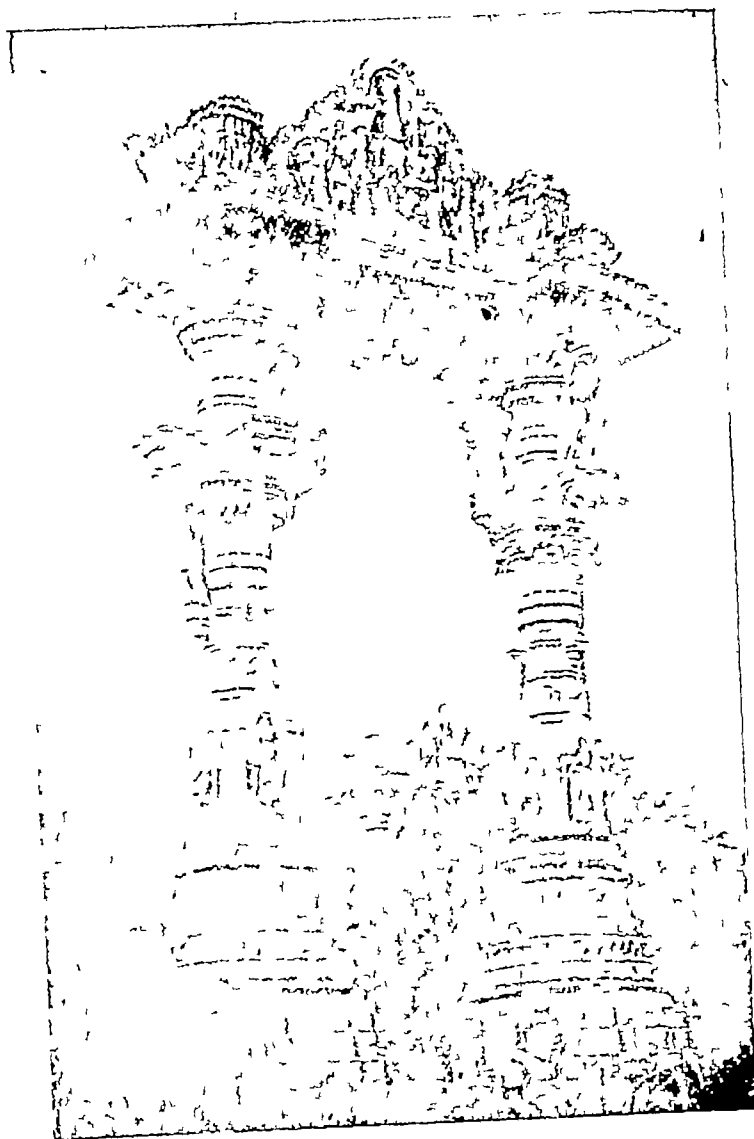
वडनगर ( गुजरात ) के एक मन्दिर का तोरण—सोलंकी राज्यकाल का।

[ राय कृष्णदास के सौजन्य से ]

शुरू मे उनका मुकाबिला इसलिए नहीं किया कि पच्छिमी तारा उसके प्रतिकूल था।

§४ ललित कला— धार्मिक श्रद्धा से कहीं अधिक ललित कला की रुचि थी जो बडे-बडे मन्दिर बनाने की प्रेरणा देती थी। पिछले कई युगो मे देश मे
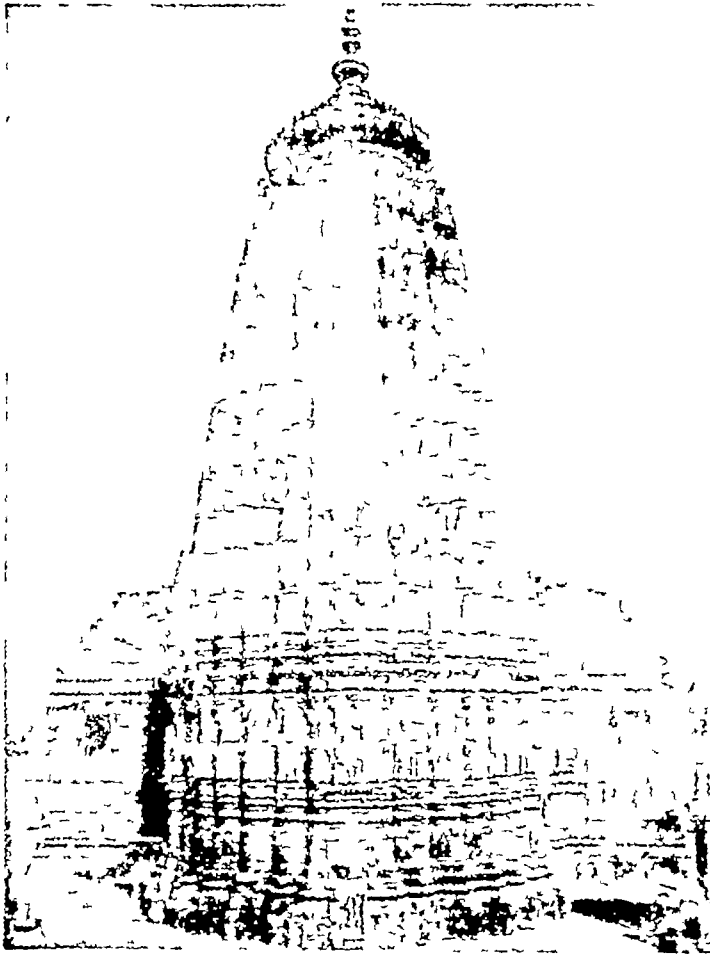
उदयपुर ( ग्वालियर राज्य ) में उदयादित्य का उदयेश्वर मन्दिर [ ग्वालियर पु० वि० ]

पूंजी जमा हो रही थी। वह फालतू पूंजी अब सुन्दर और विशाल मन्दिर बनाने और अन्य कारीगरी के कामों मे खर्च हुई। यही कारण था कि महमूद के अनेक मन्दिर ढहाने और लूटने से भी हिन्दुओं की वह प्रवृत्ति दबने न पायी।

गुजरात के चालुक्य राज्य के दक्खिनी छोर पर महमूद जब सोमनाथ को ढहा रहा था, उसी समय उसी राज्य के उत्तरी छोर पर आबू के पास देलवाड़ा का वह विशाल मन्दिर खड़ा हो रहा था, जो संगमरमर की बारीक नक्काशी के
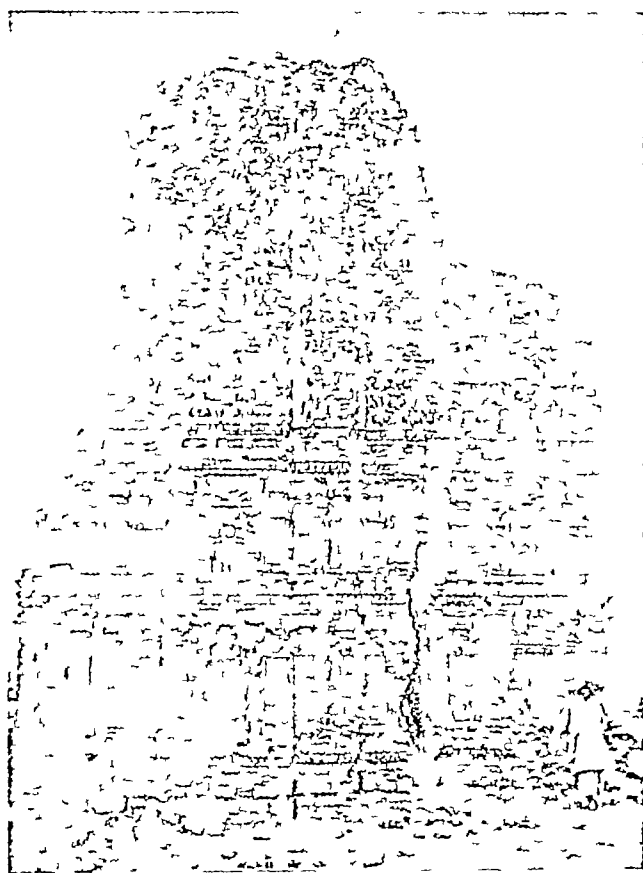
काफिरकोट का मन्दिर [ भा० पु० वि० ]

काम में भारत भर में एक अनूठी रचना है। और स्वयम् महमूद ने क्या अपनी लूट के बड़े अंश को गजनी के भव्य महलों और मसजिदों पर खर्च न कर दिया? और पीछे के विजेताओं ने क्या उनकी वही गति न की जो महमूद ने सोमनाथ की की थी?

ललित कला की उन्नति में इस युग के भारतवासियों ने सचमुच कमाल किया। अजन्ता और सित्तनवासल की लेणियों के चित्रों, मामल्लपुरम् के रथों, वेरूल के कैलाश-मन्दिर और ताजोर के राजराजेश्वर मन्दिर आदि का उल्लेख हो चुका है। मालवे में बाघ के गुहामन्दिरों में, सिंहल के सीगिरिय (श्रीगिरि) नामक स्थान में और चीन-हिन्द में दन्दान-ऊलिक, मीरान आदि के अवशेषों में सातवीं शती की भारतीय चित्रकला के सुन्दर नमूने पाये गये हैं। भारतीय स्थापत्य और मूर्त्तिकला भी मध्य युग में अपने सबसे मनोरम रूप में प्रकट हुई—गुप्त-युग का सा ओज उनमें

कंडरिया महादेव, खजुराहो [ भा० पु० वि० ]

नहीं रहा, पर लालित्य अवश्य बढ गया। उडीसा में भुवनेश्वर के मन्दिर, खजुराहो में चन्देल राजाओं के बनवाये मन्दिर, डेराइस्माइलखाँ जिले में काफिरकोट का मन्दिर और मालवे में उदयादित्य का मन्दिर आदि उसके कुछ नमूने हैं। भारत और बृहत्तर भारत के किसी भी प्रान्त से इस युग की पत्थर या धात की जो मूर्त्तियाँ मिलती हैं, उनमें एक अनोखा-सौन्दर्य दिखायी देता है। दक्खिन भारत में नटराज की प्रसिद्ध कांस्य-मूर्त्तियाँ इसी युग के अन्त में बनने लगीं। इसी युग में श्रीविजय के

बौद्ध शैलेन्द्र राजाओं ने जावा के बोरोबुदुर स्थान में वे अनोखे मन्दिर बनवाये जिनको "पत्थर मे तराशे हुए महाकाव्य" कहा जाता है। नौवीं शती के अन्त में जावा श्रीविजय से अलग हो गया और तब वहाँ स्वतन्त्र शैव राजा दक्ष ने प्राम्बनन के मन्दिर बनवाये, जिनपर रामायण की सारी कहानी मूर्तियो मे चित्रित है।

कुर्किहार, जि० गया, से पायी गयी एक कांस्य बोधिसत्व मूर्त्ति—पाल युग में मगध की मूर्त्तिकला का नमूना [ पटना म्यू० ]

§५. विद्या और साहित्य—विद्या और साहित्य की उन्नति का सिलसिला गुप्त युग के एक दो शती बाद भी जारी रहा। छठी शती मे ज्योतिषी वराहमिहिर हुआ, और सातवी में ब्रह्मगुप्त। भवभूति कवि, जिसे यशोवर्मा की सभा से ललितादित्य कश्मीर ले गया था, अपनी रचनाओं मे कालिदास से टक्कर लेता है। दर्शन मे धर्मकीर्त्ति, शान्तरक्षित और शकर के ग्रन्थ भारतीय विचार की ऊँची उड़ान को सूचित करते हैं।

इनके बाद भी अनेक कवि, दार्शनिक, लेखक और विचारक होते रहे, किन्तु उनकी रचनाओं मे वह मौलिकता और ताजगी नहीं है जो

पहले की रचनाओं में होती थी। कविता में सहज सुन्दरता का स्थान अलकारों की भूषा ने ले लिया, दर्शन में नये विचार के बजाय बाल की खाल उधेड़ना शुरू हो गया, विज्ञान की प्रगति रुक गयी, और कानून के लेखक अपना काम केवल पुराने शास्त्रों
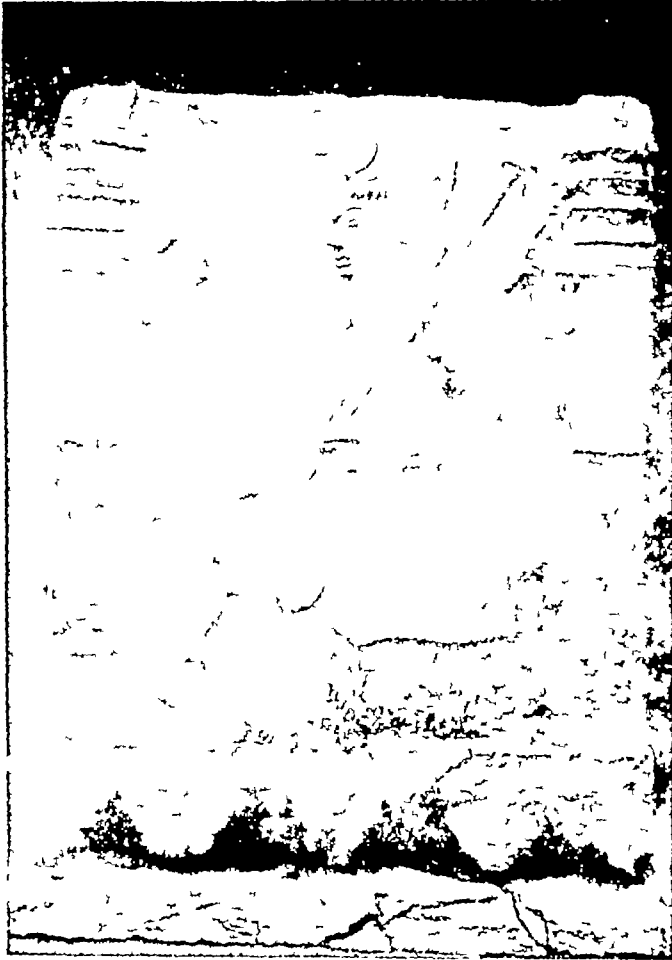
सुहानिया ( ग्वालियर राज्य ) से पाया गया सरस्वती-मूर्त्ति—आरम्भिक मध्य युग का।

[ ग्वालियर पु० वि० ]

की व्याख्या करना समझने लगे। भारतीय विचार आगे बढ़ना छोड़ कर जहाँ तक पहुँच चुका था उतने में ही चक्कर काटने लगा। लगभग ८०० ई० का कश्मीरी

दार्शनिक जयन्त भट्ट सीधे शब्दों में कहता है कि "हममें नयी वस्तु की कल्पना करने की शक्ति कहाँ है ?"

परन्तु विचार की प्रगति बन्द हो जाने पर भी इस युग में विद्या और शिक्षा का प्रचार बहुत अधिक रहा। मगध के विहार बौद्ध शिक्षा के बड़े केन्द्र थे, उन में सुदूर देशों से विद्यार्थी आते थे। सन् ६७५ से ६८५ ई० तक इ-चिङ नामक चीनी विद्वान् नालन्दा में रह कर वहाँ पढ़ा, उस समय वहाँ पर ३५०० से ५००० छात्र पढ़ते थे। राजा देवपाल ने श्री-विजय के राजा बलपुत्र-देववर्मा की प्रेरणा से वहाँ एक और विहार बनवाया, और नगरहार (जलालाबाद, अफगा-निस्तान) के अफगान विद्वान् वीरदेव को उसका मुख्य आचार्य नियत किया। तिब्बत को सभ्यता सिखाने वाले आचार्य शान्त-रक्षित नालन्दा के और अतिशा विक्रमशिला

सम्ये विहार [ राहुल जी के सौजन्य से ]

विहार के थे। शान्तरक्षित ने नालन्दा विहार के ही नमूने पर तिब्बत में सम्ये विहार स्थापित कराया। नालन्दा के ही नमूने पर जापान में नाग विहार बना। जापानी लोग इसी युग में बौद्ध शिक्षा पा कर सभ्य बने। श्रीविजय उन दिनों संस्कृत

विद्या का बड़ा केन्द्र था। स्वयम् अतिशा तिब्बत जाने से पहले श्रीविजय के आचार्य धर्मकीर्ति के पास गया था।
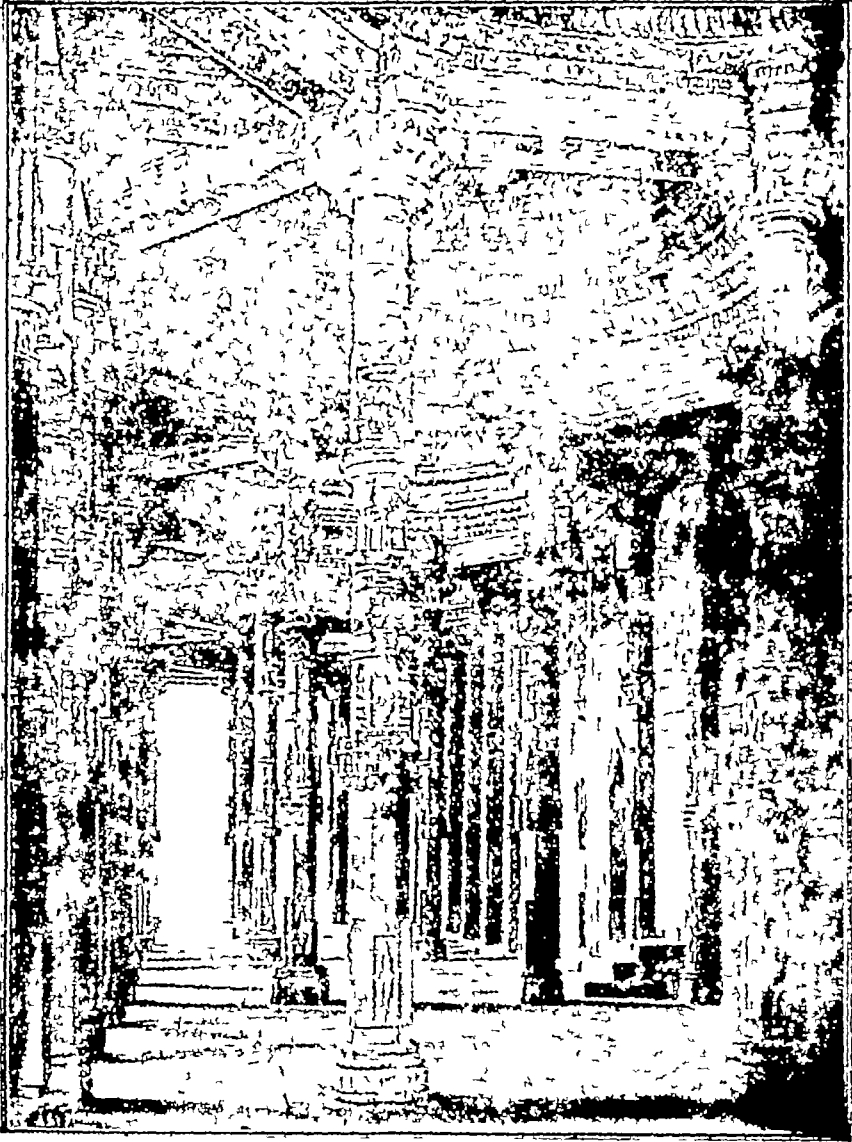
'अढाई दिन का झोंपडा', अजमेर [ भा० पु० वि० ]

मगध और श्रीविजय जैसे बौद्ध शिक्षा के केन्द्र थे, वैसे ही कन्नौज वैदिक और पौराणिक का। कन्नौज के ब्राह्मणों ने इस युग में दूसरे प्रान्तों में जा-जा कर भी

वैदिक और पौराणिक रीतियों को स्थापित किया। प्रतिहार राजा महेन्द्रपाल का गुरु प्रसिद्ध कवि राजशेखर था जिसकी रचनाओं में काफी ताजगी पायी जाती है। किन्तु कन्नौज के राजा जयचन्द्र के दरबारी कवि श्रीहर्ष की रचना मे हमे पिछली अलकारो से लदी कविता का ठीक नमूना मिलता है।

दूसरे सब राष्ट्रो मे भी विद्या की काफी उन्नति हुई, पर कवियों और विद्वानो की खान के रूप में कश्मीर जैसी प्रसिद्धि शायद ही किसी ने पायी हो। वहाँ के कल्हण पडित ने ११४६ ई० मे राजतरगिणी नामक कश्मीर का इतिहास लिखा, जो भारतीय साहित्य का एक रत्न है।

अन्तिम हिन्दू राजाओ मे भोज का नाम विद्या-प्रचार के लिए आज तक प्रसिद्ध है। भोज ने सब प्राचीन विद्याओं का फिर से सम्पादन और सकलन करने की एक भारी योजना चलायी। उसने धारा मे एक बडा विद्यालय बनवाया, जिसकी इमारत अब नही बची। दिल्ली के विजेता बीसलदेव चौहान ने भी अजमेर मे वैसा ही एक विद्यालय बनवाया, उसकी इमारत अब अढाई दिन का झोपडा कहलाती है।

"नालन्दामहाविहारीयार्यभिक्षुसघस्य"—नालन्दा की खुदाई में पाया गयी नालन्दा विद्यापीठ की मुहर, असल परिमाण। [भा० पु० वि०]

विक्रमाक चालुक्य की सभा मे विज्ञानेश्वर नामक पडित था, जिसने याज्ञवल्क्य-स्मृति पर मिताक्षरा नामक टीका लिखी। उस तरह की कानूनी टीकाएँ इस युग मे और भी लिखी गयी, पर मिताक्षरा ने बडा नाम पाया, और आज तक भारत के बडे अश मे हिन्दुओ का सामाजिक और पारिवारिक कानून उसी के अनुसार माना जाता है।

§ ६. देशी भाषाएँ—सस्कृत और प्राकृतो में तो पढना-लिखना चलता ही था, पर इस युग से हमारी 'देशी भाषाएँ' भी शुरू हो गयीं। हेमचन्द्र नामक जैन आचार्य सिद्धराज जयसिंह के गुरु के समान था, उसने प्राकृतों का वैसा ही व्याकरण लिखा जैसा पाणिनि ने सस्कृत का लिखा था। ८४ सिद्धों के गीतो और दोहो मे हिन्दी कविता का सबसे पहला नमूना है। उन सिद्धो की वाणियों के तिब्बती अनुवाद भी हैं।

तामिल साहित्य सातवाहन युग से शुरू हुआ था। अब उसमें वैष्णव और शैव भक्तों ने अनेक रचनाएँ कीं। तेलगु साहित्य भी पूरबी चालुक्यों के प्रोत्साहन से दसवीं शती में शुरू हुआ। गुप्त-युग में जैसे तुखारी और खोतनदेशी भाषाओं में साहित्य शुरू हुआ था, वैसे ही आठवीं शती से जावा की देशी भाषा में संस्कृत के प्रभाव से ग्रन्थ लिखे जाने लगे। उस भाषा को 'कवि' कहते हैं।

§७ **सामुद्रिक जीवन और परला हिन्द**—गुप्त-युग की तरह इस युग में भी भारतवर्ष में बृहत्तर भारत सम्मिलित गिना जाता था, और भारतवासियों का
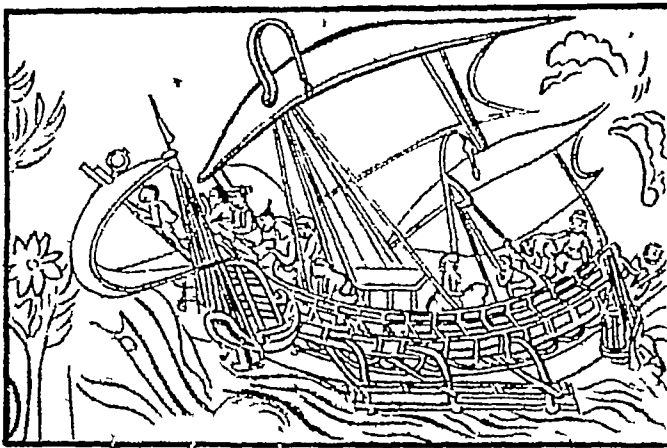
भारतीय उपनिवेश में मातृभूमि से एक जहाज का पहुँचना
बोरोबुदुर मन्दिर का एक मूर्त्त दृश्य।

सामुद्रिक जीवन उन्नत दशा में था। श्रीक्षेत्र, कम्बुजराष्ट्र, चम्पा और श्रीविजय से भारतीय राज्यों का घनिष्ठ सम्बन्ध बना हुआ था और वहाँ भारतीय सभ्यता उन्नत दशा में थी। नौवीं शती के अन्त में कम्बुज के राजा यशोवर्मा (८८९–९०९ ई०) ने नयी राजधानी यशोधरपुर की स्थापना की, जो अब अंकोर-थोम कहलाती है। १२-वीं शती के प्रारम्भ में वहाँ एक वैष्णव मन्दिर बना, जिसकी कारीगरी देख कर आज भी सभ्य जगत् के लोग चकित होते हैं। वह मन्दिर अब अंकोर-वाट अर्थात् नगर का मन्दिर कहलाता है। उसमें भी प्राम्बनन के मन्दिरों की तरह रामायण की समूची कहानी मूर्त्त दृश्यों में अंकित है।

आठवीं शती से भारतीय समुद्र में अरब लोगों की नावें भी चलने लगीं। जब पौराणिक धर्म जनता के निचले दर्जों की उपेक्षा करने और उन्हें घृणित मानने लगा, तब इन दूरगामी मल्लाहों को इस्लाम ने आकर्षित किया। इस काल के अन्त में शिक्षित भारतवासी सामुद्रिक जीवन की तरफ से उदासीन होने लगे।
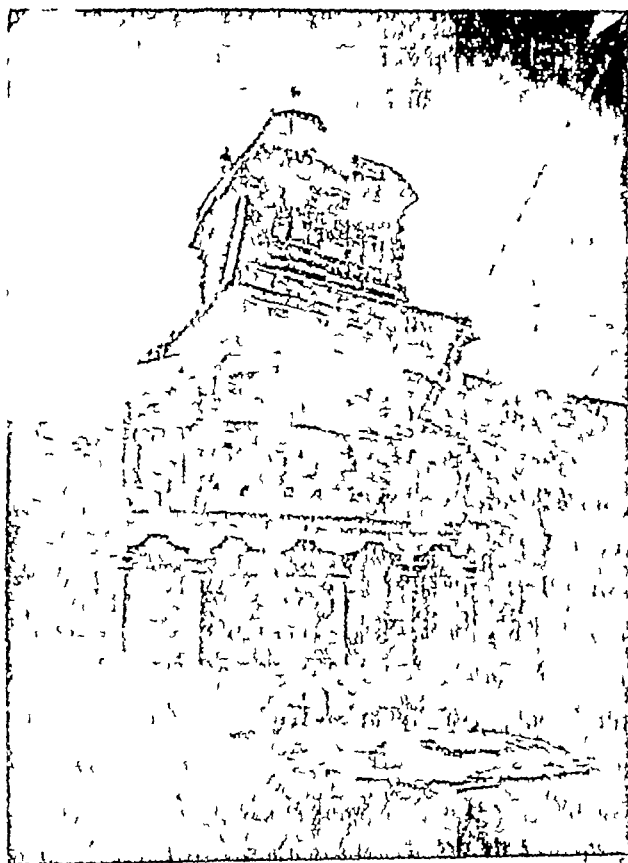
मामल्लपुरम्-समुद्रतट पर नाविकों को रास्ता दिखाने के लिए पल्लव राजाओं का बनवाया ज्योति स्तम्भ [ भा० पु० वि० ]

§८. राजनीतिक और आर्थिक जीवन—मध्य काल के भारतवासी अपने राजनीतिक कर्त्तव्यों और अधिकारों के लिए वैसे सजग नहीं रहे, जैसे उनके पुरखा होते थे। राजकीय मामलों की तरफ प्रजा की उपेक्षा इसी काल से होने लगी। मध्य

काल मे किसी गण-राष्ट्र का नाम भी नहीं सुना जाता। तो भी गाँवों की पचायते ग्यारहवीं-बारहवीं शती तक खूब सुसगठित रहीं। चोलों के अधीन प्रत्येक गाँव मे एक बड़ी सभा होती थी, उसके अलग-अलग महकमो के लिए पाँच-पाँच आदमियो की कमिटियाँ होती थीं। उन सभाओ और कमिटियो के चुनाव के नियम बडी बारीकी से निश्चित किये गये थे। गाँव की खेती, सिचाई, मन्दिरों की देख-रेख, कर की वसूली, अपराधियों को पकडना सब पचायत का काम था। मन्दिर उन पचायतो के सभा-भवन का काम देते थे। साथ ही वे शिक्षा और पूजा के भी केन्द्र थे। चोल राज्य की शासन-पद्धति इन सब ग्राम-पचायतों पर निर्भर थी। दूसरे सब राज्यो का शासन भी नियमित और उदार था, और बहुत कुछ गुप्त शासन के ढाँचे पर चला आता था।

इस युग तक भी राजा देश की भूमि का मालिक न होता था। कश्मीर के इतिहास की एक मनोरजक घटना इस प्रश्न पर प्रकाश डालती है। राजा मुक्ता-पीड ललितादित्य का बड़ा भाई चन्द्रापीड वज्रादित्य जब वहाँ का राजा था तो उसने एक मन्दिर बनवाने की आज्ञा दी। कुछ समय बाद राज्याधिकारियों ने उसे सूचना दी कि मन्दिर की नीव पड़ चुकी है, पर एक चमार की कुटिया बीच मे पडती है और वह उस ज़मीन को नहीं देता। राजा उन अधिकारियों से बहुत नाराज हुआ कि उन्होंने चमार से पूछे बिना नींव क्यों डाली और कहा कि अब दूसरी जगह इमारत शुरू करो। मन्त्रि-परिषद् ने कोशिश करके चमार को राजा के सामने बुलवाया। तब राजा ने उससे पूछा, "क्यों हमारे पुण्यकार्य में विघ्न डालते हो? अपनी कुटिया के बदले मे उससे कीमती जमीन या घर क्यों नही ले लेते?" चमार ने कहा, "राजन् आपके लिए जैसे आपका महल है, वैसे मेरे लिए वह कुटिया है जिसकी दीवार में फूटे घड़ों के मुँह लगा कर झरोखे बनाये गये हैं। वह मेरी माँ के समान जन्म से मेरे सुख-दुःख की साक्षी है, उसका तोडा जाना मै देख नहीं सकता। हाँ, यदि मेरे घर आ कर आप मुझसे उसे माँगे तो मैं सदाचार के अनुरोध से उसे दे दूँगा।" राजा चन्द्रपीड ने तब उस चमार के झोपडे पर जा कर भिक्षा माँगी और उस चमार ने दान का पुण्य पाया।

**§ ९. सामाजिक जीवन, जात-पाँत**—विचारों की प्रगति और प्रवाह बन्द होने का प्रभाव भारतवासियों के सामाजिक जीवन पर भी पड़ा और उससे जात-पाँत की सृष्टि हुई। जात-पाँत का आरम्भ वस्तुतः इसी काल में हुआ।

अपने बराबर वालों में ही ब्याह-शादी की जाय, ऐसा रुझान लोगों मे सदा से रहा है। ११वी शती के भारत में भी यही चलन था। किन्तु उस समय से एक नयी बात होने लगी। जीवन मे सकीर्णता आ जाने के कारण लोगों को दूर के और अपरिचित लोगों से शका और डर प्रतीत होने लगा कि कहीं उनसे मिल कर हमारा कुल बिगड न जाय। सामाजिक ऊँच-नीच के जितने दरजे थे वे पथरा कर जात-पाँत बनने लगे। नदी का प्रवाह बन्द हो जाने से जैसे छोटे-छोटे जोहड बन जाते हैं, वैसे ही भारतीय समाज मे ये जातें बन गयी। तो भी हम देखेंगे कि कम से कम १२वीं-१३वीं शती तक इन जातों में भी बाहर के आदमियों के आ मिलने की गुजाइश बनी रही।

स्त्रियों को समाज में अब भी पूरी स्वतन्त्रता थी। उनमें परदा नहीं था, और विवाह सयानी होने पर होता था। शिक्षा का प्रचार बहुत था। राजघरानों तक की कन्याएँ गाना-नाचना सीखती थी।

---

# आठवाँ प्रकरण

# दिल्ली की पहली सल्तनत

( ११६४--१५०६ ई० )

## अध्याय १

### दिल्ली और लखनोती मे तुर्क राज्य की स्थापना

( ११७५--१२०६ ई० )

§१, शहाबुद्दीन गोरी के आरम्भिक प्रयत्न—महमूद के बाद गजनी की सल्तनत धीरे-धीरे क्षीण होती गयी। गजनी से हरात के रास्ते मे फरारूद नदी की दून मे गोर नामक प्रदेश है। वहाँ के पठान सरदार अलाउद्दीन ने महमूद के वंशज बहराम ( १११८--५१ ई० ) को हरा कर गजनी से भगा दिया, फिर उसके बेटे खुसरो ( ११५२--६० ई० ) के समय में गजनी को सात दिन तक लूटा और जला कर खाक कर दिया। अलाउद्दीन का भतीजा शहाबुद्दीन-बिन-साम या मुहम्मद-बिन-साम ( साम का बेटा मुहम्मद ) था, जो इतिहास मे शहाबुद्दीन गोरी के नाम से प्रसिद्ध है।

शहाबुद्दीन ने हिन्दुस्तान जीतने का संकल्प किया। यद्यपि वह महमूद की तरह असाधारण आदमी नहीं था, तो भी बुलन्दहिम्मत और दृढव्रती था। गजनी लेने के बाद उसने उच्च के राजा की रानी को अपनी तरफ मिला कर वह राज्य जीत लिया, और तब मुल्तान और सिन्ध पर भी अधिकार कर लिया। ११७८ ई० मे उसने गुजरात पर चढाई की। वहाँ का राजा मूलराज सोलंकी ( २य ) अभी छोटा था। उसकी माँ ने आबू के नीचे कायद्राँ गाँव पर शत्रु का मुकाबला किया। गोरी बुरी तरह हार कर भाग गया और उसकी फौज का बड़ा अंश कैद हो गया। कैदियों को हिन्दू बना कर गुजरातियों ने अपनी जातों में मिला लिया।

§७. **अजमेर और दिल्ली का पतन**—गुजरात की तरफ दाल न गलती देख कर शहाबुद्दीन ने ठेठ हिन्दुस्तान की ओर मुँह फेरा। गज़नी छिन जाने पर खुसरो लाहौर भाग आया था, मगर गोरी ने उसके बेटे से पजाब भी छीन लिया (११८५-८६ ई०)। फिर दिल्ली प्रदेश की सीमा पर सरहिन्द का क़िला ले लिया। यह प्रदेश तीस-चालीस बरस से अजमेर के राजाओं के अधीन था। राजा पृथ्वीराज, जो अब तक जम्हौती में अपनी शक्ति नष्ट कर रहा था, अब शहाबुद्दीन के मुक़ाबले के लिए आगे बढा। पानीपत के पास तरावडी के युद्ध में शहाबुद्दीन घायल होकर भाग गया (११९१ ई०)। पृथ्वीराज ने सरहिन्द भी ले लिया, किन्तु शहाबुद्दीन ने हिम्मत न हारी। दूसरे बरस वह फिर फौज लेकर चढ आया और तरावडी पर ही फिर युद्ध हुआ, जिसमें पृथ्वीराज कैद होकर मारा गया। जीत के बाद गोरी सीधा अजमेर पर टूट पडा और वहाँ पृथ्वीराज के बेटे गोविन्दराज को अपना सामन्त बनाया। दिल्ली के इलाके पर दखल करने के लिए अपने तुर्क दास कुतुबुद्दीन ऐबक को छोड कर वह गज्जनी लौट गया। कुतुबुद्दीन ने दिल्ली पर अधिकार कर उसे अपनी राजधानी बनाया। इस तरह गुजरात और कन्नौज के राज्य तुर्कों के पड़ोसी हो गये।

गोरी का नन्दा-छाप टका

चित,—घुड़सवार, नागरी में लेख—स्री हमार। पट,—नन्दो बैठे हुए, चारों तरफ नागरी लेख—स्री महमद साम [श्री०सा०स०]

११९४ ई० में शहाबुद्दीन कन्नौज पर चढाई करने को फिर एक बडी फौज ले कर आया। राजा जयचन्द्र इटावा के पास चन्दावर पर लड़ता हुआ मारा गया। उसके बेटे हरिचन्द्र ने अपने राज्य के पूरबी छोर अवध में हट कर लड़ाई जारी रक्खी। वह जब तक जिन्दा रहा उसने कन्नौज का किला भी अपने हाथ से जाने न दिया।

पृथ्वीराज के भाई हरिराज ने चम्बल के किनारे रणथम्भोर में चौहानों की नयी राजधानी स्थापित की (११९५ ई०)। अजमेर के साथ उत्तरी मारवाड—नागोर—का इलाक़ा भी मुसलमानों के हाथ में चला गया,

किन्तु दक्खिनी मारवाड़—जालोर—में चौहानों की एक शाखा का राज्य बना रहा*।

§. ३ बिहार-बंगाल में तुर्क सल्तनत—अजमेर और कन्नौज राज्यों के जिन अंशों पर मुसलमान विजेता काबू कर सके, वे मुस्लिम अमीरों में बाँट दिये गये। कन्नौज के किले को छोड कर गंगा-जमुना के समूचे दोआब में, गंगा पार सम्भल और बदाऊँ के इलाके में और दक्खिनी अवध में, जगह-जगह उनके केन्द्र स्थापित हो गये। ११९७ ई० के बाद मुसलमानों ने चुनार का इलाका कन्नौज के सामन्तों से ले लिया, और वह मुहम्मद-बिन-बख्तयार खिलजी नामक तुर्क सरदार को सौंप दिया गया। चुनार से मुहम्मद ने मगध के इलाकों पर हमले करना शुरू किया। मगध में पिछली शती भर कोई स्थिर राज्य न रहा था, वहाँ राजा गोविन्दपाल की हैसियत एक मामूली सरदार की सी रह गयी थी। उद्दंडपुर आदि नगर उसके अधिकार में थे। ११९९ ई० में मुहम्मद ने २०० सवारों के साथ उद्दंडपुर पर हमला किया और पहाडी पर बौद्ध भिक्खुओं के विहार को क़िला समझ कर घेर लिया। कोई चारा न देख भिक्खुओं ने भी शस्त्र उठाये और युद्ध किया, किन्तु उनमें से एक भी जिन्दा न बचा। विजेताओं को जब यह मालूम हुआ कि वह स्थान किला नहीं विहार था, और उस विहार की पुस्तकों को पढ कर सुना सकने वाला भी कोई आदमी जीवित नहीं बचा, तो उन्होंने शताब्दियों से जमा हुए पुस्तकों के उस संग्रह को आग की भेंट कर दिया। उस विहार के नाम से उस शहर को भी वे बिहार कहने लगे, और इस प्रकार समूचे मगध प्रान्त का भी वही नाम पड गया।†

गोरी की लक्ष्मी-छाप टका

चित,—लक्ष्मी का भद्दी मूर्त्ति।
पट,—नागरी लेख-श्रीमद् मीर महमद साम।
[ दिल्ली म्यू०, भा० पु० वि० ]

---

*पृथ्वीराज और जयचन्द्र के विषय में बहुत सी निर्मूल कहानियाँ प्रचलित हैं, जो चन्दबरदाई के पृथ्वीराजरासो पर निर्भर हैं। यह सिद्ध हो चुका है कि चन्द बरदाई १६वीं शती से पहले का नहीं है। जयचन्द्र की बेटी सयोगिता सर्वथा कल्पित व्यक्ति है। पृथ्वीराज और जयचन्द्र में द्वेष होने की बात भी निरी काव्य कल्पना है।

† १५वीं शती में बिहार से केवल मगध ही समझा जाता था। अर्थात् वह प्रदेश जो सोन नदी के पूरब, गंगा के दक्खिन, गया की पहाड़ियों के उत्तर और राजमहल की पहाड़ियों के पच्छिम में है।

बिहार जीत लेने के बाद मुहम्मद-बिन-बख्तियार ने सेन राजाओं के गौड़ देश पर चढाई की और उनकी राजधानी लखनौती ले कर उसने वहीं अपनी राजधानी स्थापित की।* बंगाल में उसका राज्य तब लखनौती के चौगिर्द प्राय ४०-४० कोस तक था। लक्ष्मणसेन के बेटे केशवसेन और विश्वरूपसेन उससे बराबर लडते रहे। वे अपनी राजधानी ढाका के पास सुवर्णग्राम (सोनारगाँव) में ले गये और दक्खिनी और पूरबी बंगाल अगले सवा सौ बरस तक सेन राजाओं के अधिकार में बना रहा।

§४ विन्ध्य और हिमालय की तरफ़ बढ़ने की विफल चेष्टाएँ—गंगा-जमना का दोआब कुतुबुद्दीन के हाथ आ जाने से जझौती का चन्देल राज्य उसका पडोसी बन गया। १२०२ ई० में उसने उसपर चढाई कर राजा परमर्दी चन्देल से कालंजर का गढ छीन लिया, परन्तु उसके मुँह फेरते ही हिन्दुओं ने कालंजर फिर वापिस ले लिया, तो भी जझौती का उत्तरी मैदान—अर्थात् कालपी का प्रदेश—तुर्कों के हाथ में रहा।

इधर मुहम्मद-बिन-बख्तयार ने एक और साहस का काम किया। गौड़ और हिमालय के बीच मेच, कोच और थारू जातियाँ रहती थीं। एक मेच सरदार को पकड कर मुहम्मद ने उसे मुसलमान बना लिया और उसी अली मेच की पथप्रदर्शकता मे ११-१२ हजार सवारों के साथ वह हिमालय के एक हिन्दू राज्य को लूटने के लिए आगे बढा। कामरूप के पच्छिम हिमालय की तराई के उस राजा ने तुर्कों को अपने राज्य में बढ जाने दिया, पर पीछे से उन्हे घेर कर लौटते समय करतोया नदी मे समूचे दल को नष्ट कर दिया। मुहम्मद-बिन-बख्तियार इनेगिने साथियों के साथ बच कर देवकोट पहुँचा और वहाँ अपने सिपाहियो की विधवाओं के अभिशापों के डर से उसे घर से बाहर निकलना दूभर हो गया। उसी दशा में उसकी मृत्यु हुई (१२०५-६ ई०)।

---

* यह कहानी प्रसिद्ध है कि सिर्फ़ १८ सवारों के साथ, जिन्हें लोग घोड़े बेचने वाले समझते रहे, बख्तियार के बेटे ने नदिया के राजमहल के रक्षकों पर एकाएक हमला कर दिया, और राजा लक्ष्मणसेन महल के दूसरी तरफ से भाग निकला। परन्तु नदिया कभी सेनों की राजधानी न थी और राजा लक्ष्मणसेन ११७० ई० से पहले ही मर चुका था। तीसरे लखनौती जीतने के ५५ बरस पीछे १२५५ ई० में नदिया पहले-पहल मुसलमानों के क़ब्जे में आया।

उधर उसी समय जेहलम नदी पर रहने वाली खोकर नाम की जाति ने अपने राजा रायसाल के नेतृत्व में, जो एक बार मुसलमान बन कर फिर हिन्दू हो गया था, विद्रोह करके लाहौर ले लिया। शहाबुद्दीन गजनी से और कुतबुद्दीन दिल्ली से खोकरों के खिलाफ बढ़े। उनका दमन करने के बाद शहाबुद्दीन जब गजनी लौट रहा था, तो एक खोकर ने सिन्ध के किनारे उसे मार डाला ( १२०६ ई० )। इसके बाद पन्द्रहवीं शती के अन्त तक दिल्ली के सुल्तान खोकरों को अधीन न रख सके। गजनी से दिल्ली आने वाला रास्ता तब दूर तक सिन्ध के दाहिने किनारे जा कर उच्च के सामने उसे लाँघता था और उच्च से मुलतान और भटिंडा हो कर दिल्ली पहुँचता था।

---

## अध्याय २

### दिल्ली की पहली सल्तनत—गुलाम वंश

( १२०६–१२९० ई० )

§१. कुतुबुद्दीन ऐबक—शहाबुद्दीन के मरने पर उसके उत्तराधिकारी ने दिल्ली का राज्य दास कुतबुद्दीन को सौंप दिया। उसके बाद भी दिल्ली की गद्दी पर कई गुलाम बादशाह बैठे, इसी कारण वह गुलाम वंश कहलाता है। शहाबुद्दीन पठान था, पर कुतबुद्दीन और दूसरे गुलाम तुर्क थे। इस प्रकार दिल्ली की यह सल्तनत असल में तुर्कों की थी। चार बरस के दृढ़ न्यायपूर्ण शासन के बाद कुतबुद्दीन लाहौर में मर गया ( १२१० ई० )। दिल्ली की कुतब मीनार उसकी बनवायी हुई कही जाती है।

इल्तुतमिश की कन्नौज-विजय का स्मारक टका
[ दिल्ली म्यू०; भा० पु० वि० ]

§२. इल्तुतमिश—कुतबुद्दीन का गुलाम और दामाद इल्तुतमिश उसके बेटे आरामशाह को हटा कर खुद सुल्तान बन बैठा। इस समय तक भारत में तुर्कों के जीते हुए प्रदेश एक सुसंगठित राज्य के अन्तर्गत न थे। लखनौती का राज्य शुरू से ही दिल्ली से अलग था। गोरी की

समय में ( १२११-२६ ई० ) गौड सल्तनत की सीमा गगा के पूरब तरफ देवकोट तक और दक्खिन-पच्छिम तरफ लखनोर तक पहुँच गयी। पजाब और सिन्ध के दमन के बाद इल्तुतमिश ने बिहार और ग ड की मुस्लिम सल्तनत को भी जीत लिया। तब से १२८८ ई० तक गौड प्राय. दिल्ली के अधीन रहा।

इल्तुतमिश के बगाल-विजय का स्मारक टंका
[ बर्लिन म्यु०; नेल्सन राइट के ग्रन्थ से ]

§४. जझौती और मालवा पर चढ़ाइयाँ—गाहड्वालों को परास्त करने और उत्तर भारत के सब तुर्क प्रान्तों को एक शासन में लाने के बाद इल्तुतमिश ने पड़ोसी राजपूत राज्यों की तरफ ध्यान दिया। उसने रणथम्भोर और ग्वालियर पर अधिकार किया और परमर्दी चन्देल के बेटे त्रैलोक्यवर्मा पर चढाई कर जझौती को लूट लिया ( १२३३-३४ ई० )। तब मालवा के परमार राज्य पर चढाई कर उज्जैन और भेलसा लूटे, और उज्जैन के महाकाल-मन्दिर को तोड़ डाला ( १२३४ ई० )। मालवा से वह गुजरात की तरफ बढा। रास्ते में उसने मेवाड की राजधानी नागदा को, जो आधुनिक एकलिंग की जगह पर थी, उजाड़ डाला। पर राजा जैत्रसिह से हार कर उसे लौटना पड़ा। मेवाड़ का नाम बाद के इतिहास में बहुत प्रसिद्ध हुआ। सुराष्ट्र के मैत्रक वश में भटार्क का पोता राजा गुहसेन या गुहिल हुआ था। मेवाड़ के राजा उसी के वशज थे। वे पहले गुजरात के चालुक्यों के सामन्त थे। १२वीं सदी के अन्त में गुजरात के कमजोर होने पर वे स्वतन्त्र हो गये और इस स्वतन्त्र हैसियत में उन्होंने अनेक बार दिल्ली के तुर्कों का मुकाबला किया। इल्तुतमिश के नागदा को उजाड़ने के बाद चित्तौड़ मेवाड की राजधानी हो गयी।

§५. सुल्ताना रजिया—मालवा-मेवाड़ की चढाइयों से लौटने पर इल्तुतमिश मर गया ( १२३६ ई० )। वह कह गया था कि उसकी बेटी रजिया उसकी उत्तराधिकारिणी हो। लेकिन तुर्क सरदारों ने उसके एक बेटे को गद्दी दी। छः मास बाद वह उनके हाथ मारा गया। तब कुमारी रजिया गद्दी पर बैठी। वह कुशल और वीर स्त्री थी। मरदाने कपडे पहन कर वह खुले मुँह दरबार में बैठती और युद्ध में सेना का संचालन भी करती थी। किन्तु एक स्त्री का शासन उस समय के तुर्क

कहाँ सह सकते थे? उन्होंने फिर बगावत की, जिसे दबाते हुए रज़िया मारी गयी (१२४० ई०)। उसके बाद उसका एक भाई सुलतान बना। डेढ बरस बाद वह भी मारा गया और उसके एक भतीजे को राज मिला। चार बरस बाद उसकी भी वही गति हुई।

इस बीच दिल्ली की सल्तनत की बड़ी दुर्दशा रही। चौहान राजा वाग्भट ने रणथम्भोर वापिस ले लिया। बंगाल, मुलतान और सिन्ध के प्रान्त अलग हो गये थे। बिहार के हिन्दू स्वतन्त्र हो गये थे। पंजाब के बडे भाग पर खोकरों ने अधिकार कर लिया था। गंगा-जमना दोआब में अनेक हिन्दू सरदारों ने दिल्ली के विरुद्ध सिर उठाया। दिल्ली से बिलकुल लगे हुए अलवर के इलाके (प्राचीन मत्स्य देश) में मेव लोग रहते हैं और वह इसी कारण मेवात कहलाता है। मेवों या मेवातियों ने दिल्ली के मुसलमानों को लूटना-मारना ही अपना धन्धा बना लिया था। उत्तर-पच्छिम से मंगोलों के हमले जारी थे। अफगानिस्तान और गजनी पर उनका अधिकार था, गजनी से मुलतान के रास्ते पंजाब और सिन्ध पर वे झपट्टा मारते थे। १२४१ ई० में उन्होंने लाहौर पर चढाई कर वहाँ के मुसलमानों की बड़ी मार-काट की।

उधर पूरबी सीमान्त पर भी ऐसी ही विपत्ति उपस्थित थी। उडीसा के गंग-वंशी राजा नरसिंहदेव १म ने गौड पर चढाई की। केवल ५० उड़िया सवारों और २०० पैदल सिपाहियों के एकाएक हमला करने पर तुर्क सेना सीमान्त का एक किला छोड़ कर भाग गयी। नरसिंहदेव के सेनापति सामन्तराज ने लखनोर के तुर्कों से वह किला छीन लिया। गंगा के उत्तर भी तुर्कों की जहाँ-तहाँ हार हुई और सामन्तराज ने लखनौती पर घेरा डाल दिया। अन्त में अवध से मुस्लिम सेना आने पर उसे लौटना पडा (१२४४ ई०)। मेदिनीपुर, हावडा और हुगली जिले नरसिंहदेव के अधीन रहे। यह नरसिंह (१२३८–६४ ई०) अनन्तवर्मा चोडगंग के पोते का पोता था। कोणार्क का प्रसिद्ध सूर्य-मन्दिर इसी ने बनवाया था।

§६ नासिरुद्दीन और बलबन—१२४५ ई० में फिर मंगोलों के एक दल ने उच्च के किले को घेर लिया। तब गयासुद्दीन बलबन, जो इल्तुतमिश का दामाद था, सेना ले कर उनके विरुद्ध बढा और उन्हें मार भगाया। दिल्ली की गद्दी पर सरदारों ने अब रज़िया के छोटे भाई नासिरुद्दीन महमूद को बैठाया। उसने बलबन

इसी समय लखनौती के हाकिम उज़बक ने गंगा के दक्खिन नदिया तक और उत्तर की ओर वर्धनकोट ( जि० बगुड़ा ) तक तुर्क राज्य की सीमा पहुँचा दी ( १२५५ ई० )। उसने कामरूप पर भी चढ़ाई की, पर वहाँ उसकी वही गति बनायी गयी जो मुहम्मद-इब्न-बख्तयार की बनी थी और वह कामरूप के राजा की कैद में मरा।

दोआब और मेवात के हिन्दुओं की उच्छृखलता अभी जारी थी। इसलिए १२५९-६० में बलबन ने उन पर फिर चढ़ाइयाँ कीं, और १,२०,००० मेवों को मार डाला। १२६४ में उसे कटहर ( आधुनिक रुहेलखंड ) के हिन्दुओं पर चढ़ाई करनी पड़ी।

१२६६ ई० में नासिरुद्दीन की मृत्यु होने पर बलबन स्वयम् सुलतान बना। मेवात, दोआब और कटहर के हिन्दुओं ने पिछली सजाओं से कुछ सबक न सीखा था। मेव तो अब हिमालय की तराई तक और दिल्ली शहर के भीतर तक धावे मारने लगे थे। उनके कारण दिल्ली की पनिहारिनों का कुओं पर जाना दूभर हो गया था और शहर के पच्छिमी दरवाजे सन्ध्या से पहले ही बन्द कर देने पड़ते थे। बलबन ने अब दिल्ली के पड़ोस के वे सब जंगल साफ़ कर दिये जिनमें मेव शरण पाते थे। उसने दोआब और कटहर पर भी फिर चढ़ाइयाँ कीं। इल्तुतमिश की तरह उसने भी मालवा की तरफ़ से गुजरात पर चढ़ाई करने का जतन किया, पर रास्ते में चित्तौड़ के राजा समरसिंह ( १२७३-१३०२ई० ) से हार कर लौट आया।

अपने बेटे मुहम्मद को उसने मंगोलों पर निगाह रखने को मुलतान का हाकिम बनाया। यह ध्यान देने की बात है कि इस युग में अफ़गानिस्तान और दिल्ली के बीच का रास्ता मुलतान होकर जाता था। उत्तर-पच्छिम पंजाब की गक्खड़, खोकर आदि जातियाँ कभी दिल्ली के अधीन नहीं हुईं। इसी कारण दिल्ली सल्तनत का मुलतान-उच्च वाला इलाका एक तरफ़ को बढ़ा हुआ था और मंगोलों को अधिक आकर्षित करता था। ब्यास नदी तब सतलज में मिलने के बजाय मुलतान के नीचे चिनाब में मिलती थी*, जिससे रावी और सतलज के बीच आज जो 'बार' ( बाँगर, सूखी ऊँची बियाबान भूमि ) है, वह हरा भरा प्रदेश था। इन कारणों से सीमान्त का रास्ता तब ग़ज़नी से उच्च, मुलतान और दीपालपुर होकर दिल्ली

* ब्यास के उस पुराने पाट के चिन्ह अब भी मौजूद हैं। उन्हीं के अनुसार इस प्रकरण के नकशों में ब्यास नदी अंकित की गयी है।

पहुँचता था। दीपालपुर तब व्यास के किनारे दिल्ली सल्तनत का बडा सीमान्त नाका था। सीमान्त का रास्ता उधर से होने के कारण नागोर और अजमेर भी तब सरहद के नजदीक पडते थे।

लखनौती मे भी बलबन ने अपने एक विश्वासपात्र को नियुक्त किया था। उसने कामरूप और उडीसा पर चढाइयाँ कीं, जिनमे उसे बडी लूट मिली। इससे उसका दिमाग फिर गया और बलबन को पच्छिमी सीमान्त पर व्यस्त देखकर वह मुगीसुद्दीन तोगरल नाम से स्वतन्त्र बन बैठा। उसके खिलाफ दो बार सेना भेजने के बाद बलबन ने स्वयम् उस पर चढाई की। तोगरल तब लखनौती से भाग निकला। बलबन ने सोनारगाँव की तरफ बढ कर राजा दनुजराय से, जो पूरबी और दक्खिनी बगाल का स्वामी था, वचन लिया कि वह उधर के किसी जल-मार्ग से तोगरल को भागने न देगा। फिर उसने तोगरल का पीछा कर उडीसा की सीमा पर उसे जा पकडा, और लखनौती के बाजार मे खुली फाँसियाँ टाँग कर विद्रोहियों को लटकवा दिया (१२८२ ई०)। इसके बाद अपने बेटे नासिरुद्दीन महमूद उर्फ बुगरा को गौड का हाकिम बनाकर वह दिल्ली लौट आया।

१२८५ ई० मे मगोलों ने पजाब पर फिर चढाई की। युवराज मुहम्मद उनसे लडता हुआ मारा गया। फारसी और हिन्दी का प्रसिद्ध कवि मलिक खुसरो, जो मुहम्मद का साथी था, उसी युद्ध मे कैद हुआ। दूसरे बरस बलबन भी चल बसा। मरने से पहले उसने बुगराखाँ को दिल्ली की सल्तनत सौंपनी चाही थी, पर बुगरा ने उस काँटों के ताज से गौड की सूबेदारी अधिक आराम की समझी। बुगरा का बेटा कैकोबाद चार बरस ही उस गद्दी को कलकित कर पाया था जब एक खिलजी सेनापति ने उसका काम तमाम कर उसकी लाश जमना मे फेंकवा दी। इस तरह दिल्ली में गुलाम वश का अन्त हुआ (१२९० ई०)।

§७. तेरहवीं शती के हिन्दू राज्य—हम देख चुके हैं कि बारहवीं शती के शुरू में समूचा दक्खिन भारत चालुक्य और चोल राज्यों में बँटा था, पर उस शती के अन्त तक चालुक्य राज्य के बजाय महाराष्ट्र (देवगिरि), आन्ध्र (ओरगल) और कर्णाटक (धोरसमुद्र) के अलग-अलग राज्य हो गये थे। चोल राज्य के पास तब तामिल और केरल प्रान्त बचे थे। १३वीं शती की मुख्य घटना है चोल राज्य का टूटना और उसके स्थान पर पाड्य राज्य का स्थापित होना।

राजराज ३य के शासन-काल ( १२१६-४५ ई० ) में १२२५ ई० से पहले उसके मदुरा के सामन्त मारवर्मा सुन्दर पाड्य ने ठेठ चोल देश अर्थात् कावेरीकाँठे पर चढाई कर उरैपुर ( त्रिचनापल्ली ) और ताजोर को ले लिया, कोंगुदेश ( कोयम्बतूर ) पर अपना प्रभाव स्थापित किया और चिदम्बरम् तक चढाई की। तब चोल राजा को भागना पडा। उस दशा मे कुड्डलूर के उसके पल्लव सामन्त ने उसे कैद कर लिया। राजराज चोल ने तब अपने सम्बन्धी होयसल राजा वीर-नरसिंह २य (१२१८—३५ ई०) से मदद ली। १२४४ ई० में राजराज और उसके भाई राजेन्द्र ३य में युद्ध छिडा। तब फिर राजराज ने वीर-नरसिंह के वेटे वीर-सोमेश्वर से मदद ली। राजराज मारा गया और राजेन्द्र ने गद्दी पायी। लेकिन होयसल राजा ने अब श्रीरगम् के ५ मील उत्तर खडनपुर ( कण्णनूर ) में छावनी डाल दी और कर्णाटक पठार के साथ लगे हुए तामिल प्रदेश पर दखल कर लिया। तभी काकनीय राजा गणपति ( १२००—१२६० ई० ) ने नेल्लूर से काची तक उत्तरी तामिल प्रदेश अपने अधिकार में कर लिया।

राजेन्द्र ने गणपति से अपना इलाक़ा वापिस लिया, और सोमेश्वर की भी कुछ रोक-थाम करके २१ बरस राज किया ( १२४४–६७ ई० )। परन्तु इस बीच मारवर्मा का दूसरा उत्तराधिकारी जटावर्मा सुन्दर पाड्य ( १२५१—७४ ई० ) अपनी शक्ति बढा रहा था। उसने पहले केरल को अधीन किया, फिर कावेरीकाँठे पर चढाई कर राजेन्द्र चोल को करद बनाया। उसने सोमेश्वर को कण्णनूर से भगा दिया और कोंगुदेश को जीत लिया। उधर उसके भाई वीर पाड्य ने इस समय तक सिंहल को जीत लिया था। उत्तर तरफ बढ कर जटावर्मा ने काची जीत ली और नेल्लूर तक समूचे तामिल प्रदेश पर दखल किया। उत्तरी पैण्णार को पार कर उसने तैलग गणपति को उसी के देश में हराया और कृष्णा पार भगा दिया। इस समय गणपति की मृत्यु हो गयी और उसकी बेटी रुद्रम्मा आन्ध्र देश की गद्दी पर बैठी। जटावर्मा ने उससे लड़ाई नहीं की।

लौटते हुए उसकी सोमेश्वर से फिर लडाई हुई, जिसमें सोमेश्वर खेत रहा ( १२६२ ई० )। तब जटावर्मा ने श्रीरगम् के मन्दिर में प्रवेश कर उसे १८ लाख सुवर्ण मुद्रा का दान दिया। श्रीरगम् त्रिचनापल्ली का उपनगर है, जो कावेरी के बीच एक टापू पर बसा है। समूचा शहर रगनाथ के विशाल मन्दिर के सात परकोटों के बीच आबाद है और उस मन्दिर का एक अश जान पडता है।

जटावर्मा और उसकी रानी चेरकुलवल्ली की सादी मूर्त्तियाँ उस मन्दिर में अब भी मौजूद हैं।

रानी रुद्रम्मा ने आन्ध्रदेश पर ३१ बरस राज किया ( १२६०-६१ ई० )। उसके बाद अपने पोते प्रतापरुद्र को राज दे स्वयम् अलग हो गयी। मार्को पोलो नामक इटालियन यात्री १३वीं शती के अन्त मे स्थल के रास्ते इटली से चीन तक गया था। रुद्रम्मा के बारे मे वह लिखता है कि वह बडी विवेकशील और न्याय-परायण स्त्री थी, "और उसकी प्रजा उसे ऐसा चाहती थी जैसा पहले किसी राजा या रानी को नहीं। और इस राज्य में बढ़िया नफीस कपडे बनते हैं, जो सचमुच मकडी के जाले से लगते हैं। दुनिया का कोई राजा या रानी ऐसा नहीं है जो उन्हें पहन कर खुश न हो।" रुद्रम्मा के राज्य में हीरे की खाने थीं। उन हीरों के विषय में मार्को पोलो ने अनेक कहानियाँ लिखी हैं।

जटावर्मा के उत्तराधिकारी मारवर्मा कुलशेखर ने १३११ ई० तक राज्य किया। वह तामिल देश का अत्यन्त समृद्धि का युग था। अरब लोग, जो उस समय युरोप और चीन के बीच मुख्य व्यापारी थे, तामिलनाड को ससार का सबसे समृद्ध देश मानते थे। खम्भात से कनारा तक का भारत का पच्छिमी तट उन्हें पसन्द न था, क्योंकि वहाँ समुद्री डाकुओं के अनेक अड्डे थे, और उसके अलावा वहाँ यह कायदा था कि यदि कोई जहाज विप्रणष्ट होकर किसी बन्दर पर आ लगे तो वह वहाँ के राजा का हो जाता था। इसके विपरीत केरल, तामिल और आन्ध्र तटों पर विदेशी व्यापारियों को अनेक सुविधाएँ थीं। राजा गणपति के वे शासन-पत्र अभी तक मौजूद हैं जिनमें उसने विदेशी व्यापारियों को आश्वासन दिलाया है कि उसके राज्य में उनसे 'कूपशुल्क' ( जकात ) के सिवाय और कोई चुगी न ली जायगी। वैसी ही सुविधा तामिलदेश में भी थी, इसी से "कूलम ( कोल्लम ) से निलावर ( नेल्लूर ) तक" के प्रदेश को अर्थात् केरल और तामिलनाड को अरब लोग "मअबर" यानी रास्ता कहते थे--वह उनके लिए चीन जाने का खुला रास्ता था। इस मअबर में तीन बडे बन्दरगाह तब प्रसिद्ध थे—रामेश्वरम् का पट्टण, देवीपट्टणम् तथा ताम्रपर्णी के मुहाने में कायलपट्टणम्। "चीन और महाचीन की अद्भुत कला की वस्तुएँ और हिन्द और सिन्ध की सब उपज लादे हुए जक कहलाने वाले जहाज, जो पानी पर हवा के पख फैलाये हुए पहाड़ से लगते थे", सदा इन पट्टणों को घेरे रहते थे। ओरमुज, ईरान और अरब से वहाँ बड़ी तादाद

में घोडे आते थे। राजा कुलशेखर हर साल १० हजार घोडे ईरान और अरब में खरीदता था, जिसके लिए ईरान की खाडी में कैस टापू के सरदार मलिक जमालुद्दीन को ठेका दिया गया था। जो घोडे राह में मर जाते उनके दाम भी कुलशेखर चुका देता था। जमालुद्दीन की एक कोठी कायलपट्टणम् मे थी, जहाँ उसका भाई रहता था। उसे इन पट्टणों की जकात का ठेका भी दिया गया था। अरब लोगो की दृष्टि में "ईरान की खाडी के द्वीपों और इराक से रोम और युरोप तक सब देशों की समृद्धि मअबर पर निर्भर थी।" राजा "खलेस देवर" (कुलशेखर देव) के न्याय-शासन की उन्होंने बडी प्रशसा की है।

आन्ध्र और महाराष्ट्र के उत्तर तरफ उडीसा के गगों और गुजरात के चालुक्यों का सम्बन्ध उत्तर और दक्खिन दोनों से था। जब इल्तुतमिश गुजरात पर चढाई करना चाहता था उसी समय देवगिरि का राजा सिंघण भी उस पर घात लगाये था। भोला भीम के मन्त्री वीरधवल ने दोनों से गुजरात को बचाया, परन्तु उसके उत्तराधिकारी से १२४३ ई० में वीरधवल के बेटे ने राज्य छीन लिया। वीरधवल भी गुजरात के सोलकियों की एक दूसरी शाखा मे से था। उस शाखा के पास व्याघ्रपल्ली या बघेल गॉव की जागीर थी। इस कारण ये बघेल-सोलकी कहलाते हैं।

महाराष्ट्र और उडीसा के बीच त्रिपुरी का चेदि राज्य था, जिसकी स्वाभाविक सीमा वर्धा नदी से मगध के दक्खिन-पच्छिम तक थी। उस राज्य पर कोई मुस्लिम हमला नहीं हुआ, तो भी १२वीं सदी के अन्त में वह भी आप से आप छिन्न-भिन्न हो गया, और उसके इलाकों में जहाँ-तहाँ छोटे-मोटे सरदार खडे हो गये। उत्तर-पूरबी चेदि में गुजरात के बघेल सोलकियों की एक शाखा जा बसी, जिससे वह प्रदेश बघेलखड कहलाने लगा। इन बघेलों ने जझौती के चन्देलों से कालजर ले लिया। महाकोशल अर्थात् छत्तीसगढ में चेदि राजवश की एक छोटी शाखा राज्य करती थी। उनकी राजधानी रत्नपुर थी। मालवा के परमारों की शक्ति भी इस शताब्दी में अत्यन्त क्षीण रही। पृथ्वीराज ने जब धसान नदी तक का प्रदेश उनसे ले लिया, तभी से उनका सम्बन्ध उत्तर के मैदान से टूट गया था। उनके और दिल्ली-सल्तनत के बीच रणथम्भोर का चौहान राज्य बना रहा। जझौती के चन्देलों से कालपी का मैदान और कालजर छिन गया, तो भी वे नि शक्त न हुए। गुलाम वश के समय उनके केवल दो राजाओं त्रैलोक्यवर्मा (१२१२–६१ ई०) और वीरवर्मा (१२६१–८६ ई०) ने राज्य किया।

उडीसा के गग राजा इस शती मे बडे प्रबल थे। आन्ध्र और छत्तीसगढ की सीमा से हुगली जिले के मन्दारण किले तक उनका इलाक़ा था। उनकी राजधानी जाजपुर थी। उसके नाम से मुसलमान लेखक उन्हें जाजनगर के राजा कहते थे। सुवर्णग्राम के सेन राजा इस शती भर दुर्बल रहे। गौड के तुर्कों के अलावा अराकान के मग भी उनपर अनेक हमले करते रहे। १२३८ ई० मे कामरूप राज्य से, जैसा हम अभी देखेंगे, पूरबी आसाम छिन चुका था, और बगाल मे भी वह राज्य अन्तिम सास ले रहा था। तिरहुत मे नान्यदेव के वशज कर्णाट राजा दिल्ली और लखनौती के बीच सवा सौ बरस तक अपनी स्वतन्त्रता बनाये रहे।

कश्मीर से नेपाल तक सब पहाड़ी प्रदेशों में हिन्दू राज्य अभी बने हुए थे।

———

## अध्याय ३

### मगोलों का विश्व-साम्राज्य

### ( १२१९—१३७० ई० )

§१. **मगोल साम्राज्य का विस्तार**—मगोलों के सम्राट् चचेज़खाँ का जिक्र हो चुका है। वह सन् १२०३ में मगोलों का खान बना, और १२१९ ई० तक उसने उत्तरी और मध्य एशिया मे पच्छिमी एशिया तक सब तुर्क राज्यों को उखाड फेंका। १२२७ ई० मे उसकी मृत्यु के समय मगोल साम्राज्य प्रशान्त महासागर से रूस, बुलगारिया और हुगरी के अन्दर तक पहुँच चुका था। चीन और तिब्बत उसके अन्तर्गत थे। इस तरह मगोल साम्राज्य की दक्खिनी सीमा भारत को छूती थी। अफगानिस्तान लेने के बाद चगेजखाँ ने भारत हो कर कामरूप के रास्ते वापिस जाने का इरादा किया पर हमारे देश की गरमी वह न सह सका और लौट गया। अफ़गानिस्तान में अब जो हजारा नाम की जाति है वह चगेज के मगोलों की ही वशज है।

चगेज के वशज उसी प्रतापी हुए। उनके समय में मगोल साम्राज्य प्रशान्त महासागर से बाल्टिक सागर और दक्खिनी चीन सागर तक फैला हुआ था। इस साम्राज्य की राजधानी मगोलिया मे ही रही। चगेज के बाद उसके बेटे ओगोताई ने राज्य किया ( १२२७-४१ ई० ), फिर ओगोताई के भतीजे मानकू खान ने ( १२४१-५९ ई० ), और उसके पीछे मानकू के भाई कुबलैखान ने

-( १२५६-६४ ई० )। पूरबी तुर्किस्तान, आमू-सीर का दोआब, बलख और गजनी के सूबे चगेज के बेटे चगताई को दिये गये, जिससे उस इलाके का नाम ही बाद में चगताई पड़ गया, और वहाँ के तुर्क चगताई-तुर्क कहलाने लगे। ओगोताई और मानकू के समय सारा चीन जीत लिया गया। मानकू के भाई हलाकू खान की राजधानी तबरेज ( ईरान ) में थी। उसने १२५८ ई० बगदाद के खलीफा मोतसिम-बिल्ला का वध कर खिलाफत की जड उखाड डाली। कुबलै ने अपना बेडा सुमात्रा-जावा को जीतने भी भेजा ( १२६३ ई० )। वे द्वीप उसके साम्राज्य मे शामिल तो न हुए, पर उसकी चढाई से वहाँ के पुराने राज्य समाप्त हो गये। १२८६ ई० में "मअबर" के राजा मारवर्मा कुलशेखर ने कुब्लै के पास दूत भेजा।

**§२ परले हिन्द और आसाम में चीन-किरात जातियों का आना**—मगोलों की इस प्रगति से चीन और तिब्बत की कई जातियों में भी खलबली मच गयी, और वे दक्खिन की ओर बढी। आजकल हम जिस प्रायद्वीप को हिन्द-चीन कहते हैं उसमे चीनी-तिब्बती जातियों की प्रधानता तभी से हुई। उससे पहले वहाँ आग्नेय लोग रहते थे, जिनमे भारतीय प्रवासी खूब घुल-मिल चुके थे। कम्बुज राष्ट्र में उस समय सुखोदय नाम का एक प्रान्त था। अब चीनी जाति शान या साम के आ बसने से उसका नाम स्याम हो गया। हिन्द-चीन के इन नये विजेताओं ने पुराने हिन्दू राज्य तो दबा या मिटा दिये, पर स्वयम् उनके धर्म, सभ्यता और लिपि की दीक्षा ले ली। उसी शान जाति की एक शाखा अहोम ने कामरूप का पूरबी भाग जीत लिया, जिससे वह प्रान्त आसाम कहलाने लगा। अगली एक शताब्दी मे कामरूप का पच्छिमी अश भी जीता गया, पर अहोम लोग स्वयम् धीरे-धीरे हिन्दुओं मे घुल-मिल गये। आसाम के हिन्दुओं में अब भी फूकन, बरुआ आदि जो उपनाम हैं, वे अहोमों के ही हैं। जावा से कुब्लै की सेना चली जाने पर वहाँ जयवर्धन नामक व्यक्ति ने एक राज्य खडा किया ( १२६४ ई० ), जिसकी राजधानी बिल्वतिक्त या मजपहित नगरी थी। आगे चल कर वह एक बड़ा समुद्री साम्राज्य बन गया।

**§३ ससार की सभ्यता को मगोलों की देन**—मध्य-युग के ससार की अन्य जातियाँ जब अपने-अपने तग दायरों मे कूपमण्डूकों की तरह सीमित और सन्तुष्ट थीं, तब मगोलों ने एक विश्व-साम्राज्य खडा किया। भूमडल की किसी भी रुकावट की उन्होंने परवा न की। अनेक प्रकार की सभ्यताओं, विचारों और धर्मों के सम्पर्क में आने के कारण उनकी दृष्टि भी बडी उदार हो गयी थी।

मुहम्मद-बिन-बख्तयार ने जब बिहार जीता तब विक्रमशिला महाविहार का आचार्य श्रीभद्र नामी एक कश्मीरी था। वह भाग कर नेपाल पहुँचा, और वहां से तिब्बत के साक्य विहार मे बुलाया गया। उसका तिब्बती शिष्य कुङ्गर्ग्येंछन पीछे साक्य विहार का महन्त बना। चगेज ने जब अफगानिस्तान जीता उसी समय कुङ्गर्ग्येंछन मगोलिया का धर्म-विजय करने लगा (१२२२ ई०)। सम्राट् ओगोताई उसका चेला बन गया। सम्राट् मानकू खान ने अपनी राजधानी मे एक सभा बुला
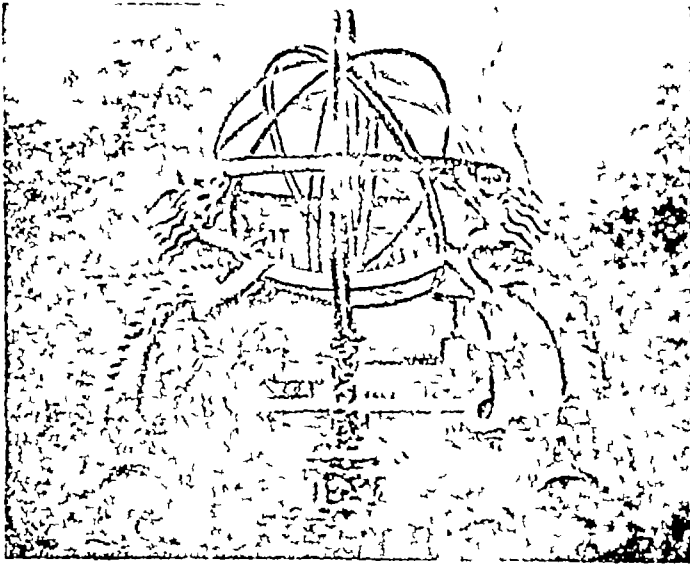
उत्तरी चीन की राजधानी पेपिङ में कुब्लै खान की बनवायी वेधशाला के खँडहरों में काँसे का गोल यन्त्र (अन्तरिक्ष में राशियों की आपेक्षिक स्थिति देखने का यन्त्र)—मगोलों के विज्ञान-प्रेम का प्रमाण।

कर यह तय करना चाहा कि ससार का कौन सा मत सब से अच्छा है। पहले उस सभा मे ईसाई और इस्लाम मतो की जीत होती दिखायी दी, पर अन्त में कुङ्गर्ग्येंछन के भतीजे फग्पा का भाषण सुनकर मानकू ने कहा, "हाथ की हथेली से जैसे पाचो अँगुलियाँ निकली हैं, वैसे ही बौद्ध मत से सब मत निकले हैं।" कुब्लै ने फग्पा को अपना राज-गुरु बनाया। तिब्बत से बौद्ध ग्रन्थों के मगोल भाषा में अनुवाद कराये गये, और फग्पा ने तिब्बत वाली भारतीय लिपि मे मगोल भाषा लिखने की

रीति भी निकाली। मगोल सम्राटों ने अपने इन गुरुओं को तिब्बत में जागीरें दीं, जिससे वहाँ लामा-शासन की नींव पड़ी।

मगोलों द्वारा चीन से बारूद का ज्ञान युरोप पहुँचा, जिससे अगले युग में ससार की काया पलट गयी। मध्य युग के पूरबी और पच्छिमी ससार की सभ्यताएँ जब बिल्कुल निश्चेष्ट और मन्द हो चुकी थीं तब मगोलों ने उन्हें मानो मथ कर उनमें गति और जीवन पैदा किया।

---

## अध्याय ४

### दिल्ली साम्राज्य का चरम उत्कर्ष

### ( १२९०—१३२५ ई० )

§१. जलालुद्दीन खिलजी—मालवा की विजय—जलालुद्दीन जब दिल्ली की गद्दी पर बैठा तब वह ७० बरस का था। वह स्वभाव का नरम था, और प्राय अपराधियों को भी क्षमा कर देता था। सन् १२९१ में उसने रणथम्भौर पर चढ़ाई की। वहाँ सफलता की आशा न देख कर वह उज्जैन की तरफ चला गया, और उसे लूटने में सफल हुआ। दो बरस बाद उसके भतीजे और दामाद अलाउद्दीन ने मालवे पर फिर चढ़ाई करके भेलसा अर्थात् पूरबी मालवा पर अधिकार कर लिया। उसी समय से मालवा दिल्ली का एक सूबा बन गया। इधर १२९२ ई० में मगोल सतलज पार कर सुनम (पटियाला के पास) तक बढ़ आये, किन्तु वहाँ उनकी हार हुई, और उनमें से तीन हजार ने मुसलमान बन कर सुल्तान की सेवा स्वीकार की।

मालवे का मुख्य अंश फतह हो जाने से गुजरात और दक्खिन का सीधा रास्ता तुर्कों के हाथ आ गया। आजकल के इलाहाबाद जिले का मुख्य स्थान तब कड़ामानिकपुर था। अलाउद्दीन वहाँ का हाकिम था। वह बड़ा महत्त्वाकांक्षी था। पहले उसने बगाल जीतने का इरादा किया, पर पीछे उसे दक्खिन जीतना उपयुक्त मालूम हुआ। मालवे की पूरबी सीमा पर चन्देरी प्रदेश जीतने को बाकी था। आठ हजार सेना के साथ चढ़ाई करने के बहाने अलाउद्दीन दक्खिन की ओर बढ़ा और चन्देरी से इलिचपुर होते हुए एकाएक देवगिरि को जा घेरा (१२९४ ई०)। राजा रामदेव ने हार कर इलिचपुर का इलाका (उत्तरी बराड़) और बहुत अधिक धन उसे

दिया। अपनी उस लूट को लिये वह कडा वापिस आया। वहा उसने सुल्तान को वह लूट भेट करने के बहाने बुलाया। बूढा चचा जब उसे छाती से लगा रहा था तब उसे कत्ल करा दिया और खुद दिल्ली का सुल्तान बन बैठा ( १२९५ ई० )।

§२ अलाउद्दीन खिलजी—गुजरात, राजपूताना और दक्खिन की विजय—राज सभालते ही अलाउद्दीन को मगोलो का सामना करना पड़ा। १२९६ ई० मे एक लाख मगोल मुल्तान, पजाब और सिन्ध जीतने को चढ आये। सेनापति जफरखाँ ने जालन्धर के पास उन्हे हरा दिया और वे लौट गये।
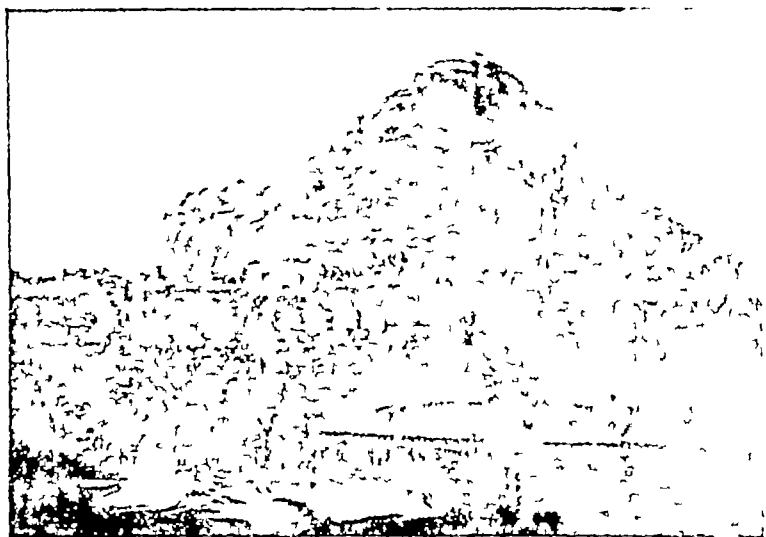
देवगिरि का किला

१२९७ ई० मे अलाउद्दीन ने अपने भाई उलूगखाँ और सेनापति नसरतखाँ को गुजरात पर चढाई करने भेजा। मालवे से उन्होने मेवाड के रास्ते बढना चाहा, किन्तु राजा समरसिंह ने उन्हे मार भगाया। तब मेवाड के दक्खिन घूम कर वे आसावल जा पहुँचे। यह वह स्थान है जहाँ अब अहमदाबाद बसा है। वहाँ से उन्होने अणहिलपाटन पर चढाई कर उसे ले लिया। राजा कर्ण, जिसे गुजरात मे करण वेलो ( पगला कर्ण ) कहते हैं, भाग कर देवगिरि चला गया। तुर्कों ने खम्भात का प्रदेश खूब लूटा और उजाडा। वहाँ से जो दास पकड कर लाये गये उनमे से एक, आगे चल कर, मलिक काफूर के नाम से प्रसिद्ध हुआ।

गुजरात की चढ़ाई से लौटते हुए नौमुस्लिम मगोलों ने विद्रोह किया। वे बड़ी संख्या में मारे गये और बहुत से जहाँ-तहाँ भाग गये। अलाउद्दीन ने दिल्ली में उनकी स्त्रियों और बच्चों से बदला चुकाया। १२९९ ई० मे दो लाख मगोल सेना कुतलग नामक सरदार के नेतृत्व मे दिल्ली तक आ पहुँची। इस बार उन्होंने रास्ते मे लूट-मार कहीं न की क्योंकि दिल्ली को जीत लेना ही उनका उद्देश था। घोर युद्ध के बाद उनकी हार हुई। इस युद्ध मे सेनापति जफरखाँ काम आया।

मालवा और गुजरात के दिल्ली साम्राज्य मे शामिल हो जाने से राजपूताने के राज्य तीन तरफ से घिर गये। अलाउद्दीन ने एक तरफ इन राज्यों को जीतना तथा दूसरी तरफ ताप्ती के आगे दक्खिन की ओर बढ़ना अपना उद्देश बना लिया। राजपूताने में रणथम्भौर का चौहान राज्य उसका सबसे पहला पड़ोसी था। वहाँ के राजा हम्मीर ने इसी समय एक भागे हुए मगोल सरदार को शरण दी, और अलाउद्दीन के माँगने पर उसे लौटाने से इनकार कर दिया। अलाउद्दीन ने उसपर चढ़ाई की। एक बरस के सख्त युद्ध के बाद हम्मीर के मारे जाने पर किला सुल्तान के हाथ लगा। सेनापति नसरतखाँ भी इस युद्ध मे काम आया (१३०१ ई०)। रणथम्भौर की जीत से दिल्ली सल्तनत की सीमा मेवाड़ मे जा लगी। समरसिंह के बेटे रत्नसिंह को मेवाड़ की गद्दी पर बैठे अभी कुछ महीने ही बीते थे कि अलाउद्दीन ने चित्तौड़ को घेर लिया (१३०२ ई०)। ६ महीने घिरे रहने के बाद जब रसद और पानी चुक गये तो किला अलाउद्दीन के हाथ आया। रत्नसिंह मारा गया और उसकी रानी पद्मिनी ने बहुत सी स्त्रियों के साथ जौहर कर लिया। अलाउद्दीन ने चित्तौड़ का राज्य अपने बेटे खिजरखाँ को दे कर उसका नाम खिजराबाद रक्खा।

अलाउद्दीन चित्तौड़ को मुश्किल से ले ही पाया था कि दिल्ली से मगोलों के नये हमले की खबर आयी। तरगी नामक मगोल सरदार ने एक बड़ी सेना के साथ जमना किनारे डेरा आ डाला और दिल्ली को घेर लिया। अलाउद्दीन के आने पर वह हट गया। मगोलों को क़िलों को सर करने का अभ्यास न था, इसी से वे दिल्ली के घेरे से ऊब गये थे। १३०४ ई० मे फिर एक मगोल हमला हुआ। तब अलाउद्दीन ने गाजी तुगलक नामक सेनापति को मगोलों को रोकने के लिए दीपालपुर के सरहद्दी थाने पर नियुक्त किया। उसके बाद भी दो बार मगोल फिर सिन्ध पार कर आये, पर गाजी तुगलक ने उनका दृढ़ता से मुकाबला किया, और फिर तो उसने कई बार काबुल और लमगान तक उनका पीछा किया। सन्

१३०५ ई० से १३०८ ई० तक अलाउद्दीन ने मारवाड़ पर सेनाएँ भेज जालोर और सिवाना के राज्य जीत लिये।

राजा रामदेव ने इलिचपुर का कर भेजना बन्द कर दिया था, इसलिए १३०६-७ ई० में अलाउद्दीन ने एक बड़ी सेना मलिक काफ़ूर के नेतृत्व में उधर रवाना की। मालवा और गुजरात होते हुए काफ़ूर ने बागलान के साल्हेरगढ़ में कर्ण सोलंकी को जा घेरा और उसे हराया। देवगिरि का यादव राजा रामदेव और उसका बेटा शंकर भी कैद हो कर दिल्ली पहुँचे, और अधीनता मानने पर अपने देश को वापिस भेजे गये। इलिचपुर प्रान्त पर काफ़ूर ने दखल कर लिया।

दूसरे बरस काफ़ूर को ओरंगल की चढ़ाई पर भेजा गया (१३०८ ई०)। एक बरस किले में घिरे रहने के बाद राजा प्रतापरुद्र ने बहुत सा खजाना और वार्षिक कर का वचन दे कर छुटकारा पाया। एक हजार ऊँटों पर उस लूट को लादे हुए काफ़ूर दिल्ली वापिस पहुँचा। १३१० ई० के अन्त में वह फिर रवाना हुआ और इस बार दोरसमुद्र के राजा वीर बल्लाल को हरा कर उससे भारी रकम वसूल की और अधीनता का वचन लिया।

तामिल देश के राजा कुलशेखर ने अपने छोटे बेटे वीर पाड्य को अधिक योग्य जान कर उत्तराधिकारी बनाया था। इसपर बड़े बेटे सुन्दर पाड्य ने पिता को मार डाला (१३११ ई०), और जब वीर पाड्य ने उसपर हमला किया तो वह मलिक काफ़ूर की मदद लेने पहुँचा। इस दशा में काफ़ूर ने 'मअबर' पर चढ़ाई की। घाट पार कर वह कावेरी-काँठे में उतरा और कण्णनूर पर छावनी डाली। वहाँ से श्रीरंगम्, चिदम्बरम् आदि की बस्तियों और मन्दिरों को लूटते हुए उसने त्रिचनापल्ली से मदुरा पर चढ़ाई की, और मदुरा से पट्टणम् अर्थात् रामेश्वर-पट्टण के सामने तक जा पहुँचा, जहाँ उसने एक मस्जिद बनवायी। वीर पाड्य इस बीच जंगलों में भाग गया था। मदुरा में कुछ सेना छोड़ कर बहुत बड़ी लूट के साथ १३११ ई० के अन्त में काफ़ूर दिल्ली पहुँचा। उसके लौटते ही त्रावकोर के राजा रविवर्मा कुलशेखर ने समूचे तामिल देश पर अधिकार कर लिया। मदुरा में दिल्ली की जो सेना थी, वह उस शहर में घिर गयी। वीर पाड्य कोंकण भाग गया।

देवगिरि के राजा शंकर ने खिराज देना बन्द कर दिया और पिछली चढ़ाई में मदद भी न की थी। इस कारण १३१३ ई० में चौथी बार दक्खिन पर चढ़ाई कर काफ़ूर ने उसे हराया और समूचे महाराष्ट्र को लूटा।

§३ अलाउद्दीन का शासन—अलाउद्दीन कठोर शासक था। तुर्क सरदारों की उच्छृंखलता दबाने के लिए उसने उनके पारस्परिक प्रीतिभोजों तक को बन्द कर दिया। उसने स्वयम् शराब पीना छोडा और राज्य में उसकी सख्त मनाही कर दी। उसने सब मुफ्तखोरों की वक्फ, जागीरें आदि जब्त कर लीं। पिछले सुल्तान शरीअत अर्थात् इस्लामी कानून के अनुसार शासन करते थे, उसने अपने राजकीय अधिकार को उससे भी ऊँचा माना और स्वतन्त्रता से नियम बनाये। वह अपने जासूसों द्वारा अपने हाकिमों के कार्यों का पूरा-पूरा पता रखता था—सेना तो सुसगठित थी ही।

दोआब के हिन्दू जमीन्दारों को उसने बुरी तरह दबाया, और उनपर ५० फी सदी तक कर लगा दिया। कहते हैं उनकी यह हालत हो गयी कि वे न घोडे पर चढ सकते और न अच्छे कपडे पहन सकते थे। व्यापार और बाजारों का उसने पूरा नियन्त्रण किया, यहाँ तक कि चीजों के भाव तक तय कर दिये। वैसा करने का प्रयोजन शायद यह था कि जमीन्दार और बिचवानिये गरीब प्रजा को न लूट पावें। कहते हैं कि इस प्रबन्ध से राज्य में सुभिक्ष हो गया।

§४. लखनौती-सल्तनत का विस्तार—बलबन के मरने पर जब कैकोबाद दिल्ली की गद्दी पर बैठा, तब उसका बाप नासिरुद्दीन महमूद लखनौती में स्वतन्त्र हो गया था। दिल्ली राज्य के विस्तार के साथ-साथ लखनौती-राज्य का भी विस्तार हुआ। विहार भी लखनौती के सुल्तानों के अधीन रहा। कडा-मानिकपुर तब दिल्ली-सल्तनत का सबसे पूरबी इलाका था। लखनौती के इन सुल्तानों के राज्य-काल यों है—
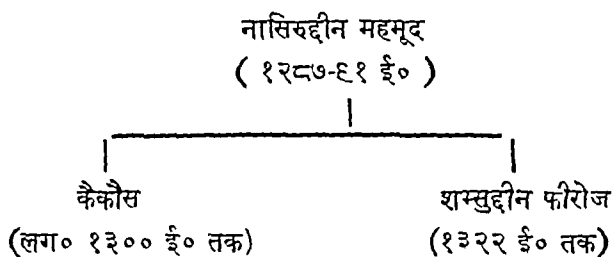
१२६८ ई० में दक्खिनी बगाल का मुख्य नगर सातगाँव जीता गया। फिर शम्सुद्दीन फीरोज के शासन-काल में उसके बागी बेटे गयासुद्दीन बहादुर ने सोनारगाँव छीन कर सेन राजवश का अन्त कर दिया। इस प्रकार बगाल का मुख्य भाग

लखनोती के अधीन हुआ। पूरब में सिलहट और त्रिपुरा, और दक्खिन में यशोहर-खुलना आदि समुद्रतट के इलाक़ों में छोटे-छोटे हिन्दू राज्य बने रहे। उत्तर बंगाल में कामरूप राज्य तो अहोमों के हाथों ख़तम हो गया, पर कामतापुर में एक हिन्दू राज्य बना रहा।

§५ खिलजी वंश का अन्त—अलाउद्दीन के वृद्ध होते-होते दिल्ली राज्य का संगठन ढीला पड़ने लगा। उसकी मृत्यु (१३१६ ई०) के बाद मलिक काफ़ूर ने उसके दो बेटों की आँखें निकलवा दीं, पर तीसरा मुबारक बच निकला। काफ़ूर को मार कर वह गद्दी पर बैठा। दिल्ली के इस राजविप्लव के समय दक्खिन के राज्य स्वतन्त्र हो गये। वीर बल्लाल ने धोरसमुद्र को फिर से बसाया (१३१६ ई०), और देवगिरि तथा ओरंगल ने भी कर देना छोड़ दिया। मुबारक ने देवगिरि के राजा हरपालदेव पर, जो रामदेव का दामाद था, चढ़ाई की, और उसे पकड़ कर उसकी खाल उधड़वा दी। तब उसने महाराष्ट्र के उस राज्य को मिटा कर देवगिरि को दिल्ली का सूबा बना दिया और वहाँ अपने हाकिम नियत किये (१३१८ ई०)। उसने सेनापति खुसरो को ओरंगल पर भेजा। राजा प्रतापरुद्र ने फिर कर देना स्वीकार किया और राज्य के पाँच परगने सौंप दिये। ओरंगल से देवगिरि लौट कर खुसरो ने मअबर पर चढ़ाई की, जहाँ बरसात के कारण उसे छावनी में बन्द पड़ा रहना पड़ा।

खुसरो भी हिन्दू से मुसलमान बना था। पहले वह एक 'नीच जाति' का गुजराती था। दिल्ली लौट कर उसने मुबारकशाह को अपने हाथ की कठपुतली बना लिया। पीछे उसका काम तमाम कर खुसरो नासिरुद्दीन के नाम से दिल्ली की गद्दी पर बैठा (१३२० ई०)। पुराने सरदारों को दबा कर उसने अपनी जाति के लोगों को बड़े-बड़े पदों पर पहुँचा दिया। उसके दिल में हिन्दू संस्कार बाक़ी थे। मस्जिदों में कुरानों के ऊपर उसने मूर्त्तियाँ रखवा दीं। उसके जोर-जुल्म से तुर्क तंग आ गये। दीपालपुर के हाकिम गाजी तुगलक ने दिल्ली पर चढ़ाई की और खुसरो को मार डाला (१३२० ई०)। कुल ३० बरस शासन करके खिलजी राजवंश मिट गया, और गाजी तुगलक गयासुद्दीन के नाम से दिल्ली की गद्दी पर बैठा।

§६ गयासुद्दीन तुगलक—गयासुद्दीन तुगलक एक गरीब तुर्क का बेटा था। उसकी माँ पंजाब की एक जट्टी (जाटनी) थी। उसने दिल्ली के राज्य को फिर से

दिल्ली और लखनौती की सल्तनतें
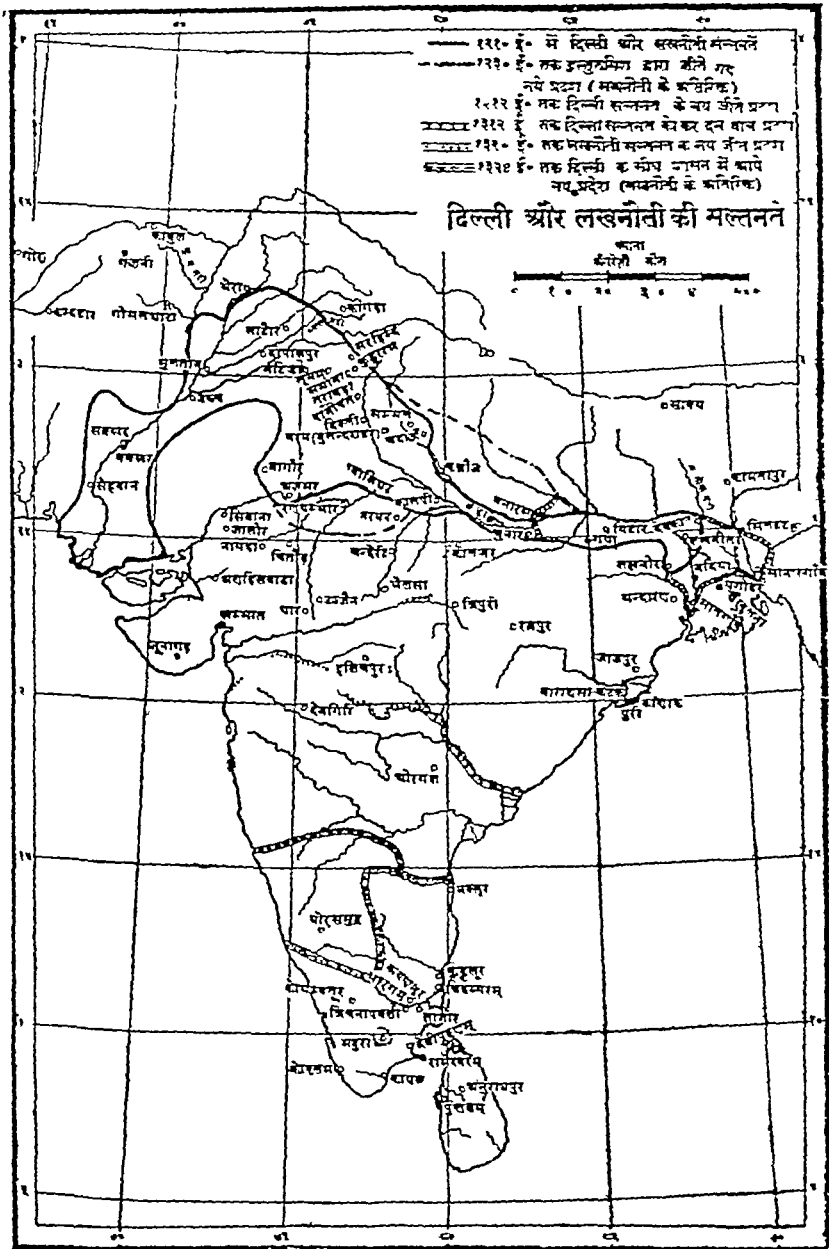
व्यवस्थित किया। ओरंगल के राजा प्रतापरुद्र ने कर देना फिर बन्द कर दिया था। उसके दमन के लिए गयासुद्दीन ने अपने बेटे जूना को भेजा, जो एक बार (१३२१ ई०) विफल लौट कर दूसरी बार सफल हुआ (१३२३ ई०)। राजा प्रतापरुद्र कैदी बना कर दिल्ली भेजा गया, और तेलगण को दिल्ली का सूबा बना दिया गया। ओरंगल से जूना ने राजमहेन्द्री पर चढ़ाई की, और उस शहर को ले लिया। वहाँ से उसने उडीसा के राज्य पर एक धावा किया। उडीसा मे इस समय नरसिंह १म का पडपोता भानुदेव २य राज कर रहा था।

गयासुद्दीन के दीपालपुर से दिल्ली जाते ही सिन्ध के समरा सरदार, जो वहाँ के असल शासक थे, विद्रोह कर स्वतन्त्र हो गये। गयासुद्दीन उधर ध्यान न दे सका। इसके बाद सिन्ध नाम को ही दिल्ली के अधीन रहा।

बंगाल मे शम्सुद्दीन फीरोज के मरने पर उसके बेटे आपस मे लडने लगे। उनमे से दो दिल्ली के सुलतान से मदद लेने पहुँचे। १३२४ ई० मे गयासुद्दीन ने बंगाल पर चढ़ाई की। वह गंगा के उत्तर-उत्तर तिरहुत के रास्ते बढा। इस कारण तिरहुत के कर्णाट-वंशी राजा हरसिंहदेव से उसका युद्ध हुआ। हरसिंहदेव के मन्त्री चंडेश्वर ने चौदहवीं सदी के शुरू मे ही नेपाल को जीता था। हरसिंह वहीं भाग गया। बंगाल को जीत कर गयासुद्दीन ने लखनौती, सातगाँव और सोनारगाँव के अलग-अलग प्रान्त बनाये और उनमे अपने हाकिम नियुक्त किये।

जब वह लौट कर दिल्ली आया तो उसके बेटे जूना ने उसके स्वागत को शहर के बाहर लकडी का एक तोरण (कुश्क) खडा किया, जो ठीक मौके पर सुल्तान के ऊपर गिर पडा (१३२५ ई०)। गयासुद्दीन एक सीधा सादा कर्तव्य-परायण आदमी था। दिल्ली के पास तुगलकाबाद किले की इमारत मे, जो उसने बनवायी थी, उसका वही गौरवयुक्त सीधापन झलकता है।

§७ **दिल्ली साम्राज्य की सीमाएँ**—दिल्ली-सल्तनत-युग में दिल्ली का साम्राज्य गयास तुगलक के समय अपनी चरम सीमा पर पहुँच गया था। मुलतान, दीपालपुर और लाहौर से सोनारगाँव और सातगाँव तक केवल तिरहुत का एक प्रान्त बाकी था, जो उसके अधीन न हुआ था। पर तिरहुत का भी पराभव हो चुका था। राजपूताना, मालवा और गुजरात (कच्छ-काठियावाड के बिना) इसमें सम्मिलित थे। मालवे के ठीक पूरब लगा हुआ चन्देरी का सूबा (=सागर-दमोह जिले) भी, जो पुराने चेदि राज्य मे था, गयासुद्दीन के अधीन था। ठेठ

दक्खिन मे महाराष्ट्र और तेलगण दिल्ली साम्राज्य के अन्तर्गत थे और कर्णाटक ( धोरसमुद्र ) का राजा उसे कर देता था। सुदूर दक्खिन में 'मअबर' का भी पराभव हो चुका था और उसपर दिल्ली-साम्राज्य का दावा था। भारतवर्ष का मुख्य भाग जो दिल्ली के अधीन न हुआ था, वह बगाल, ओरगल, मालवा, चन्देरी और कडा-मानिकपुर के बीच का था, जिसमें जझौती, चेदि, छत्तीसगढ ( महाकोशल ), उडीसा और झाडखड ( छोटा नागपुर ) के प्रान्त शामिल थे। सिन्ध भी इस समय वस्तुत. स्वतन्त्र था।

---

## अध्याय ५

### दिल्ली साम्राज्य का ह्रास और प्रादेशिक राज्यो का उदय

( १३२५--१३९८ ई० )

§ १. मुहम्मद तुगलक—गयासुद्दीन की मृत्यु के बाद जूना मुहम्मद तुगलक के नाम से गद्दी पर बैठा ( १३२५ ई० )। वह पढा-लिखा और विद्वान् होने के साथ-साथ सनकी, क्रूर और मूर्ख भी था।

कृष्णा के काँठे मे सगर के इलाके का हाकिम बहाउद्दीन गुर्शास्प था। उसने मुहम्मद को सुलतान मानने से इनकार किया और देवगिरि पर चढाई की। मुहम्मद ने तब दक्खिन पर चढाई की ( १३२७ ई० ), और बहाउद्दीन, जो धोरसमुद्र के राजा के पास भाग गया था, पकडा और मारा गया। इसी प्रसग में मुहम्मद ने धोरसमुद्र राज्य पर भी दखल करना चाहा और मअबर को एक नयी फौज भेजी। उसने दिल्ली के बजाय देवगिरि को अपनी राजधानी बनाया और उसका नाम दौलताबाद रक्खा। बहाउद्दीन की खाल में भुस भरवा कर उसे प्रान्तों मे घुमा दिया कि फिर कोई विद्रोह करने की न सोचे। उसका उलटा फल हुआ। मुलतान के नाजिम ने, जिसे गयासुद्दीन तुगलक अपने भाई की तरह मानता था, उस लाश को दफनवा दिया और स्वयम् विद्रोह किया ( १३२८ ई० )। तब मुहम्मद को अपनी दक्खिन की योजनाएँ छोड़ कर पजाब जाना पडा। मुलतान का प्रबन्ध करके वह लौटता ही था कि मगोलो की एक सेना पजाब लाँघ कर जमना तक चढ आयी। उन्हें हरा कर उसने कलानौर ( जि० गुरदासपुर ) तक उनका पीछा किया। उसके दिल्ली वापिस आने पर दिल्ली की प्रजा ने शिकायत की कि राजधानी बदल देने से

उनका सब कारोबार चौपट हो गया है। इसपर खीझ कर उसने हुक्म दिया कि दिल्ली के तमाम निवासी दौलताबाद जाँय, एक भी आदमी दिल्ली में न रहने दिया जाय।

इसी समय सुलतान के दिमाग में कई बड़ी योजानाएँ समाया था, जिनके लिए रुपये की जरूरत थी। इसलिए उसने दोआब के किसानों पर एकदम दूना-तिगुना कर बढा दिया। दूसरे, उसने ताँबे का सिक्का चलाया और उसे सोने-चाँदी के बराबर ठहराया। यदि शाही टकसाला में सिक्के ढल सकते थे तो लोगों के घरों में भी ढल सकते थे। इसलिए ताँबे के सिक्के इतने बन गये कि उनका मूल्य ताँबे के ही बराबर रहा। तब सुलतान ने उनका चलन बन्द किया, और उन्हें खजाने में लौटाने का हुक्म दिया। लोग उन्हें लौटा लौटा कर चाँदी-सोने के सिक्के ले गये, जिससे खजाने को भारी नुकसान हुआ। ये नये प्रबन्ध करके सन् १३३० में मुहम्मद अपनी राजधानी ( दौलताबाद ) पहुँचा। तब उसे सोनारगाँव के हाकिम के विद्रोह की खबर मिली। विद्रोही पकड़ कर मार डाला गया। उसी प्रसंग में तिरहुत का प्रान्त भी जीत कर वहाँ एक तुगलकपुर की स्थापना की गयी। इसी बीच में किसानों के प्रति सुलतान की नयी नीति फल लाने लगी। किसानों ने जब देखा कि वे बढा हुआ कर किसी तरह अदा नहीं कर सकते तब वे खेत छोड़ कर भागने लगे। उन्हें दंड देने को मुहम्मद फिर दिल्ली आया और दोआब पर चढ़ाई की। बरन ( बुलन्दशहर ), दलमऊ, कन्नौज आदि के इलाके उसने ऐसे उजाड़े मानो किसी शत्रु के देश पर चढ़ाई कर रहा हो। और किसानों को जंगलों में घेर-घेर कर ऐसे मारा मानो जंगली जानवरों का शिकार करता हो।

दिल्ली लौटने पर उसे खबर मिली कि मअबर में जिस सेनापति जलालुद्दीन को भेजा गया था वह वहाँ स्वतन्त्र सुलतान बन बैठा है ( १३३५ ई० )। वह फिर दक्खिन चला, पर ओरंगल पहुँचने पर उसकी सेना में बीमारी फैल गयी और वह खुद भी बीमार पड़ गया और उसे देवगिरि लौटना पड़ा।

अब से उसने सूबों की मालगुजारी नीलाम करना शुरू किया, अर्थात् सूबों का शासन वह ऐसे व्यक्तियों को देने लगा जो अधिक से अधिक मालगुजारी उगाहने का वचन दें। इसी समय उसके दिमाग में खुरासान जीतने की सनक समायी। उसके लिए एक बड़ी फौज खड़ी की गयी, पर एक साल बाद जब तनखाह देने को खजाने में रुपया न रहा तब वह तितरबितर हो गयी। वह खुरासान

जीतने के सपने देख रहा था कि इधर हुलागू नामक एक मगोल सरदार और कुलचन्द्र खोकर ने मिल कर लाहौर पर कब्जा कर लिया और वे वहाँ के राजा और मन्त्री बन बैठे। मुहम्मद फिर दिल्ली के लिए रवाना हुआ। अब उसने दिल्ली की निर्वासित प्रजा को भी वापिस लौटने की इजाजत दे दी। हुलागू और कुलचन्द्र को इस बीच सुल्तान के वजीर ने हरा दिया था।

मुहम्मद जब दिल्ली पहुँचा ( १३३६ ई० ) तब दिल्ली और दोआब के प्रदेशों में घोर दुर्भिक्ष शुरू हो चुका था, जो सात साल तक जारी रहा। बहुत अंश तक यह उसकी ही करतूतों का फल था। अवध के सूबे में तब सुभिक्ष था, इसलिए एक साल तक वह अपनी राजधानी फर्रुखाबाद जिले में गंगा के किनारे ले गया। इस दशा में भी उसपर चीन जीतने की सनक सवार हुई। और एक लाख सवार उसने हिमालय की तरफ भेजे, जिनमें से साल भर बाद १० वापिस आये। दिल्ली के चौगिर्द के इलाकों में प्रजा ने कृषि छोड़ कर लुटेरे जत्थे बना लिये थे। सुलतान की एक लाख सेना नष्ट हो जाने से दूर के प्रान्तों से उसका डर उठ गया। मालगुज़ारी की नीलामी से प्रान्तों के शासक भी अयोग्य रह गये थे। यों अब सारा साम्राज्य टूटने लगा था।

§२ मेवाड कर्णाटक और तेलगण का स्वतन्त्र होना—मेवाड १३२६ ई० में ही स्वतन्त्र हो चुका था। वहाँ का राजा हम्मीर, जो गुहिलोत वंश की एक छोटी शाखा का कुमार था, मुहम्मद के गद्दी पर बैठते ही स्वतन्त्र हो गया था। उस शाखा के पास तब तक सीसोदा गाँव की जागीर होने से हम्मीर के वंशज सीसोदिया कहलाये।

होयसल राजा वीर बल्लाल ३य ने १३२७ ई० में जब यह देखा कि दिल्ली का सुल्तान उससे कर ले कर ही सन्तुष्ट होने वाला नहीं है, प्रत्युत उसके राज्य पर दखल करना चाहता है, तब वह अपने राज्य की रक्षा के उपाय करने लगा। उत्तरी सीमा पर उसने हाम्पी की किलाबन्दी शुरू की, वह स्थान आगे चल कर विजय-नगर कहलाया। पाँच यादव ( वोडेयार ) भाई उसकी सेवा में थे, जिनमें से बड़े तीन—हरिहर, कम्पन और बुक्क--के नाम प्रसिद्ध हैं। गोवा से नेल्लूर तक की उत्तरी दुर्ग-पंक्ति इन्हें सौंपी गयी थी। तामिल मैदान में बल्लाल ने तिरुवण्णामलै की किलाबन्दी की—दिल्ली से मअबर के रास्ते पर वह बहुत अच्छा नाका था। जब १३३५ ई० में जलालुद्दीन अहसानशाह मअबर में स्वतन्त्र

हो गया तो बल्लाल उसे चारों तरफ से घेरने लगा। कुछ समय बाद मअबर के सुलतानों के हाथ में केवल कणनूर और मदुरा शहर रह गये। मदुरा में चौथे सुलतान के राज्य-काल में बल्लाल ने कणनूर को भी घेर लिया, तब मदुरा के सुलतान ने उसपर हमला किया। अस्सी बरस का बूढ़ा बल्लाल उस युद्ध में मारा गया (१३४३ ई०)। उसके बेटे विरूपाक्ष बल्लाल ने मुकाबला जारी रक्खा। तीन बरस बाद वह भी मारा गया। बुक्क के बेटे कुमार कम्पन ने तब अपने राजा की मृत्यु का बदला चुकाया, और समूचे तामिल तट पर अधिकार कर लिया। केवल मदुरा शहर में सल्तनत बची रह गयी।

होयसल राजवंश के समाप्त हो जाने से वोडेयार हरिहर और बुक्क क्रम से कर्णाटक-तामिलनाड के राजा हुए। पाँचों वोडेयार भाई अपने देश को स्वतन्त्र रखने का व्रत लिये हुए थे। विद्यारण्य और सायण नामक दो विद्वान भाई उनके परामर्शदाता थे।

इनकी देखादेखी प्रतापरुद्र के बेटे कृष्णय्या नायक ने भी १३४५ ई० में ओरंगल राज्य की पुनःस्थापना की।

§३. बंगाल, कश्मीर और महाराष्ट्र की नयी सल्तनतें—१३३६ ई० में बंगाल भी स्वतन्त्र हो गया। सोनारगाँव-सातगाँव में फखरुद्दीन नामक एक व्यक्ति सुल्तान बन बैठा। लखनौती की गद्दी सन् १३४६ ई० में शम्सुद्दीन इलियास ने छीन ली। उसने तिरहुत पर भी अधिकार कर लिया, और नेपाल की राजधानी काठमाण्डू पर चढाई कर उसे लूटा और उजाडा (दिसम्बर १३४६ ई०)। उसके बाद उसने बिहार-बनारस तक कब्जा करना चाहा।

इसी समय कश्मीर में तुर्क सल्तनत स्थापित हुई (१३४६ ई०)। वहाँ अब तक हिन्दू राज्य बना हुआ था। किन्तु राजाओं की सेना में तुर्क सैनिक काफी थे। अब उनके नेता शाह मीर ने हिन्दू राजा की विधवा कोटा को गद्दी से हटा कर राज्य ले लिया।

गुजरात और महाराष्ट्र में भी बहुत से मुस्लिम सरदारों ने विद्रोह किया। मुहम्मद उन्हें दबाने के लिए १३४५ ई० में दिल्ली से निकला और छः बरस बाद उसी कोशिश में मर गया। गुजरात का विद्रोह दबा कर वह देवगिरि पहुँचा। तब देवगिरि के विद्रोही कुलबर्गा भाग गये। इसी समय गुजरात में फिर विद्रोह हुआ। मुहम्मद के उधर जाने पर दक्खिनी विद्रोहियों के नेता हसन गंगू या काँगू ने

महाराष्ट्र में एक नये राज्य की नींव डाली। कागू अपने को ईरान के प्राचीन सम्राट् बहमन का वंशज मानता था, इस कारण इस वंश का नाम बहमनी पड़ा। बहमनी राज्य की राजधानी पहले कुलबर्गा (कलबर्ग) और फिर बिदर (बदरकोट) में रही।

गुजरात का दूसरा विद्रोह दबा कर मुहम्मद ने सुराष्ट्र या सोरठ (काठियावाड) को जीतने की चेष्टाएँ कीं, पर चूडासमा वंश के राजा मंडलीक ने उसका बहादुरी से मुकाबला किया। गुजरात का विद्रोही सरदार सिन्ध भाग गया था। मुहम्मद ने तब सिन्ध पर चढाई की और वहीं उसका देहान्त हुआ। (१३५१ ई०)।
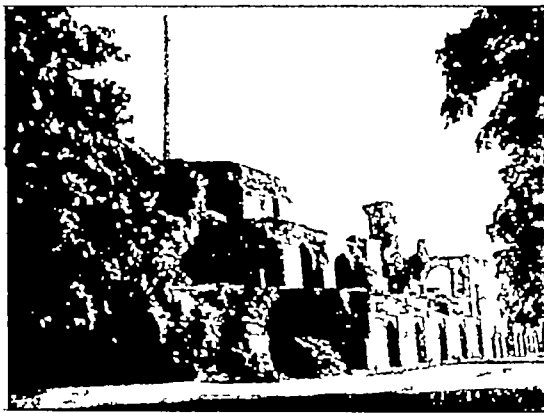
दिल्ली में फ़ीरोज़शाह का कोटला

हिमालय की तराई में अशोक की एक लाट को फीरोज़ उठवा लाया था। वह इसके ऊपर खड़ी है।

§४. फीरोज तुगलक—मुहम्मद तुगलक के पीछे उसका चचेरा भाई फीरोज सन् १३५१ से १३८८ ई० तक दिल्ली की गद्दी पर रहा। वह मुहम्मद की तरह पागल नहीं था। उसने दूर के प्रान्तों में दखल देने के बजाय अपने उपस्थित राज्य को संगठित करने की ओर ध्यान दिया। दिल्ली साम्राज्य में जौनपुर, मालवा और गुजरात ही दूर के प्रान्त बचे थे, इनमें फीरोज ने योग्य शासक नियुक्त किये। थानेसर के एक टाक वंश के सैनिक को जफरखाँ नाम से मुसलमान बना कर उसके हाथ गुजरात का शासन सौंपा। आगे चल कर इन्हीं हाकिमों के वंशजों ने उन प्रान्तों में स्वतन्त्र राज्य स्थापित किये। फीरोज तुगलक में सैनिक क्षमता न थी, पर वह सच्चरित्र और योग्य शासक था। उसने प्रजा की भलाई के लिए बहुत से काम किये। दिल्ली के आस-पास सैकड़ों बगीचे लगवाये, और सतलज और जमना से पाँच नहरें निकलवायीं, जिनमें से एक-आध अब तक बची हैं। उसके सुशासन का बहुत कुछ श्रेय उसके सुयोग्य

मन्त्री खाने-जहान मकबूल को है। खाने-जहान जन्म से तेलगण का हिन्दू था। फीरोज ने हिन्दुओं को मुसलमान बनाने के लिए पहले के सब सुल्तानों से अधिक जतन किये। अलाउद्दीन और मुहम्मद तुगलक न्याय और शासन में मुल्लों और मौलवियों की कुछ न सुनते थे, पर फीरोज पूरी तरह उनके हाथ में था।

§५ इलियासशाह और गणेश्वर—इलियासशाह बंगाली की काठमाडू की चढाई का उल्लेख हो चुका है। १३५२ ई० में उडीसा के राजा नरसिंह ३य की मृत्यु हुई, और उसका बेटा भानुदेव ३य राजा बना। इलियासशाह ने तब एकाएक उडीसा पर धावा किया और उसे लूटा। उसके बाद जब उसने बिहार और तिरहुत भी ले लिये तब फीरोज तुगलक को उससे लडना पडा। फीरोज के आने पर इलियास तिरहुत से हट गया, पर बंगाल में फीरोज उसे न हरा सका। १३५४ ई० में जब वह लौटा तो इलियास ने सोनारगाँव भी जीत लिया। तब से इलियासशाह बंगाल के तीनों हिस्सों का सुलतान हुआ। १३५७ ई० में उसकी मृत्यु हुई और उसका बेटा सिकन्दर तख्त-नशीन हुआ। फीरोज तुगलक ने तब फिर बंगाल पर चढाई की, पर फिर विफल रहा। इलियास तथा उसके वंशजों के शासन में बंगाल में सुख-समृद्धि बनी रही। १३६० ई० से १५३८ ई० तक दिल्ली के किसी सुल्तान ने बंगाल पर चढाई नहीं की।

बंगाल की इन चढाइयों में फीरोज गोरखपुर और तिरहुत हो कर गया था। गोरखपुर तब दिल्ली का सीमान्त गिना जाता था। इस इलाके में फीरोज ने जौनपुर बसाया, और पहले-पहल तिरहुत में दिल्ली के कर्मचारी कर वसूल करने के लिए रक्खे। दूसरी चढाई से जौनपुर लौट कर १३६० ई० में उसने कडा से गढकटका (या गढा) के रास्ते उडीसा पर चढाई की। गढकटका पुराने चेदि राज्य की राजधानी त्रिपुरी के पास है। फीरोज के आने पर उडीसा का राजा भानुदेव (३य) तेलगण भाग गया। फीरोज ने वाराणसी-कटक (=कटक) को लूटा और पुरी से जगन्नाथ की मूर्त्ति उठा लाया।

उसके दिल्ली वापिस पहुँचने पर तिरहुत उसके हाथ से निकल गया। वह सूबा कुल ३०-३५ बरस ही दिल्ली के अधीन रहा था। कर्णाट* राज्य के पतन के समय कामेश्वर नाम के एक ब्राह्मण ने मिथिला में एक नया राज्य दिल्ली की अधीनता

---

* तिरहुत का नान्यदेव वाला वंश कर्णाट कहलाता है।

में खड़ा कर लिया था। कामेश्वर का बेटा भोगीश्वर फीरोज का मित्र था। उसने या उसके पुत्र गणेश्वर ने मिथिला में फिर से स्वतन्त्र राज्य स्थापित किया। १३७० ई० में गणेश्वर दिल्ली या बगाल की सेना से लड़ता हुआ मारा गया, पर उसके पुत्र कीर्त्तिसिंह ने "पिता के वैरियों से अपनी राजलक्ष्मी की रक्षा की। मैथिल कवि विद्यापति ने कीर्त्तिलता नामक काव्य में उसकी कीर्त्ति गायी है। तिरहुत के स्वतन्त्र हो जाने पर भी बिहार ( मगध ) फीरोज और उसके वंशजों के अधिकार में बना रहा।

§६. सिन्ध के जाम—सिन्ध के विद्रोही समरों का दमन करते हुए मुहम्मद तुगलक की मृत्यु हुई थी। फीरोज ने उन्हें शान्त किया। लेकिन उसी समय सम्मा सरदारों ने विद्रोह कर दक्खिनी और उत्तरी सिन्ध की राजधानियों—सेहवान और बक्खर—पर काबू कर लिया ( १३५१ ई० )। सिन्ध के सम्मा और सोरठ के चूडासमा एक ही वंश के थे। सिन्ध में वे मुसलमान हो गये और उनके मुखिया 'जाम' कहलाते थे।

१३६२ ई० में फीरोज ने सिन्ध पर चढ़ाई की। उसकी सेना के साथ सिन्ध नदी में एक बेड़ा भी था। जाम माली और उसका भतीजा बाबनिया वीरता से लड़े। उन्होंने फीरोज का बेड़ा छीन लिया और उसे हरा कर ठट्ठा से रन के रास्ते गुजरात भगा दिया। एक बरस की तैयारी के बाद फीरोज ने गुजरात से फिर ठट्ठा पर चढ़ाई की। इस बार उसकी जीत हुई। जाम माली और बाबनिया को वह दिल्ली ले गया, और अधीनता मानने पर छोड़ा। किन्तु १३७२ ई० में सम्मों ने सिन्ध में फीरोज की सब सेना को भगा दिया और वहाँ जामों का वंश स्वतन्त्र हो कर राज्य करने लगा।

§७ दक्खिनी रियासतें (१३५८–९७ ई०)—१३५८ ई० में हसन बहमन-शाह की मृत्यु हुई और उसका बेटा मुहम्मद १म उत्तराधिकारी हुआ। उसने अपनी रियासत का सोने का सिक्का चलाना चाहा, पर दक्खिन के सुनार उस सिक्के को पाते ही गला देते थे और विजयनगर और ओरंगल राज्यों के सिक्के को ही चलाते थे। मुहम्मद ने राज्य भर के सुनारों को मरवा दिया और उत्तर भारत के खत्रियों को उनकी जगह स्थापित किया। कृष्णय्या नायक और बुक्कराय को भी धमकी दी। फलस्वरूप कृष्णय्या से उसका दो साल तक युद्ध हुआ, जिसके अन्त में गोलकुंडा का प्रदेश उसके हाथ आया। १३६५-६७ ई० में उसने कृष्णा

पार कर विजयनगर पर चढाई की। बुकराय की हार हुई, और लाखों की सख्या

तैमूर

अकबर के समय लिखा गयी सचित्र तारीखे-खानदाने-तैमूरिया की अप्रकाशित हस्तलिखित प्रति में से। खुदाबख्श पुस्तकालय पटना के ट्रस्टियों के सौजन्य से।

[ कापीराइट, खु० पु० ]

में जनता कत्ल हुई। अन्त में सन्धि हुई और यह तय हुआ कि आगे से युद्धों मे असैनिक जनता को न मारा जाय।

१३७७ ई० में मुहम्मद १म की मृत्यु हुई, उसके उत्तराधिकारी मुजाहिद ने घटप्रभा से तुगभद्रा तक का इलाका बुक्कराय से तलब किया और विजयनगर

पर चढाई की। लेकिन उसे निष्फल लौटना पडा और लौटते समय उसकी बुरी दशा हुई।

मदुरा की सल्तनत ने १३५६ ई० के बाद फिर सिर उठाना चाहा, लेकिन १३७७ ई० तक बुक्कराय ने उसको बिलकुल मिटा दिया। अगले वर्ष बुक्क की मृत्यु हुई और हरिहर २य उसका उत्तराधिकारी हुआ। मुजाहिद भी तभी मारा गया। १३७८ से १३९७ ई० तक मुहम्मद २य ने शान्तिपूर्वक राज किया। उस ज़माने में खानदेश बहमनी सल्तनत से निकल गया और वहाँ एक स्वतन्त्र रियासत स्थापित हुई (१३८२ ई०)।

§८ तैमूर की चढ़ाई—फीरोज़ के वशज बिलकुल ही निकम्मे निकले। उनके समय राज्य की यह हालत हो गयी कि पुरानी दिल्ली और फीरोज की नयी बसायी हुई दिल्ली में दो अलग-अलग सुलतान थे। वे शतरज के बादशाह जब दिल्ली के तख्त के लिए झगडते थे, तभी मध्य एशिया में एक महान् विजेता प्रकट हो चुका था। उसका नाम तैमूर था, और वह चगताई प्रदेश का तुर्क था। मध्य एशिया में चगेज़खाँ के वशजों के दो राज्य चले आते थे। उनकी उसने सफाई कर दी (१३७० ई०)। एक तरफ उसने रूस की वोल्गा नदी तक के देश जीते, दूसरी तरफ ईरान पार करते हुए काकेशस पर्वत और पच्छिमी एशिया तक के देशों पर अधिकार किया। उसके विशाल साम्राज्य की राजधानी समरकन्द थी। इधर दिल्ली राज्य की दुर्दशा सुन कर उसने भारत पर चढाई की (१३९८ ई०)। उसका पोता पीर मुहम्मद एक साल पहले आ कर उच्च और मुलतान ले चुका था। अफगानिस्तान पहुँच कर तैमूर ने सिकन्दर की तरह पहले काबुल नदी के उत्तर का काफिरिस्तान* इलाका जीता। फिर सिन्ध, जेहलम और रावी पार कर मुलतान के नजदीक तुलम्बा की बस्ती पर आ टूटा। उसे लूट कर पाकपट्टन और भटनेर के रास्ते वह दिल्ली की तरफ बढा। जहाँ-जहाँ से उसकी फौज गुजरी, लूटना, मारना, फूँकना, उजाडना उसके साथ-साथ चलता गया। अन्त में दिल्ली से मेरठ होते हुए वह हरद्वार के पास आ निकला, और शिवालक के साथ-साथ काँगडा होते हुए जम्मू पहुँचा। वहीं कश्मीर के सुलतान सिकन्दर

*काफ़िरिस्तान का नाम कापिशी नगरी से है। अरबी लिपि में पहले काफ़िसिस्तान लिखा गया था, जो गलती से काफिरिस्तान बन गया।

का दूत अधीनता का सन्देश लाया। लाहौर पर इस समय शेखा खोकर का कब्जा था। तैमूर ने उसे पकड मँगवाया और मरवा डाला। उसके भाई जसरथ ने तैमूर का सामान लूटना चाहा, तब तैमूर उसे कैद कर अपने साथ ले गया। सिन्ध पार कर बन्नू होते हुए वह समरकन्द लौट गया।

दिल्ली साम्राज्य की शक्ति तैमूर के आने से पहले ही प्रान्तीय शासकों के हाथों में जा चुकी थी। जो प्रान्तीय शासक अब तक नाम को दिल्ली के अधीन थे, वे भी अब स्पष्ट रूप से स्वतन्त्र हो गये। दिल्ली साम्राज्य यों मटियामेट हो गया।

§९. प्रादेशिक राज्यों का युग—अलाउद्दीन खिलजी और गयासुद्दीन तुगलक के समय दिल्ली की सल्तनत ने जिन दूर के प्रान्तों को पहले-पहल जीता उनमें उसका शासन २५-३० बरस भी न टिक पाया। तो भी उनकी विजयों से एक राजनीतिक युग-परिवर्तन हो गया। उन्होंने मालवा, गुजरात, राजपूताना, दक्खिन और पूरब के पुराने जीर्ण राज्यों को तोड-फोड कर नये राज्यों के उदय के लिए मैदान साफ कर दिया। यदि उनके उत्तराधिकारी अधिक योग्य होते तो भी उनका खडा किया हुआ साम्राज्य अधिक टिकाऊ न हो पाता। इसका कारण यह था कि चौदहवीं-पन्द्रहवीं शती की अवस्थाएँ एक विशाल साम्राज्य के बजाय प्रादेशिक राज्यों के अधिक अनुकूल थीं। हिन्दुओं में तब यदि इतना जीवट न था कि वे भारत में अपना एक साम्राज्य खडा कर सकते तो वे इतने मुर्दा भी न थे कि दूर के प्रान्तों में भी अपनी स्वतन्त्रता बनाये न रख सकते। दूसरी तरफ तुर्क सरदारों में भी अब दिल्ली का शासन मानने की प्रवृत्ति अधिक न थी। उन्होंने जब पहले पहल भारत को जीता तब वे एक नये और अपरिचित विशाल देश में एक छोटे से दल की तरह थे। अपनी रक्षा के लिए ही तब यह जरूरी था कि वे आपस में मिल कर और एक शासन में सगठित हो कर रहते। किन्तु डेढ शताब्दी में वे भारतवर्ष के विभिन्न प्रान्तों से परिचित हो चुके और भारत के बन चुके थे। प्रत्येक प्रान्त में कुछ लोग मुसलमान बन चुके थे और बाहर से आये हुए तुर्क उनमें घुल मिल गये थे। अब जब अपने-अपने प्रदेश में वे निःशकता के साथ राज्य खडे कर सकते और चला सकते थे, तब उन्हे किसी सम्राट् की आज्ञा मानने की जरूरत न थी।

———

# अध्याय ६

## पिछले मध्य युग के प्रादेशिक राज्य

### ( १३६८-१५०६ ई० )

§१ मेवाड १३८२-१४३३ ई०—मेवाड मे राणा लक्षसिंह या लाखा का राज्यकाल ( १३८२-१४१६ ई० ) अलाउद्दीन के समय की क्षतिपूर्त्ति और जीर्णोद्धार करने मे वीता। उसी समय राज्य में एक चाँदी और सीसे की खान निकल आने से उसे वडी मदद मिली। लाखा के वेटे मोकल ( १४१६-३३ ई० ) ने साम्भर और अजमेर तक के इलाक़ों पर अधिकार कर लिया।

§२. राजा गणेश और शिवसिंह—तिरहुत में कामेश्वर के वंशजों का राज्य जारी था। वंगाल में इलियासशाह के पोते गयासुद्दीन आजमशाह ( १३८६-६६ ई० ) के समय गणेश नाम का एक प्रवल जमींदार सल्तनत का कर्ता-धर्ता वन गया। उसने अन्त में आजमशाह को मरवा डाला और फिर आजमशाह का वेटा और पोता उसके हाथ की कठपुतली वने रहे। १४०६ ई० में आजमशाह के पोते को मरवा कर गणेश स्वयम् वंगाल का राजा वना। वह तिरहुत के राजा शिवसिंह का समकालीन और पडोसी था। वह उदार शासक था और प्रजा उससे सन्तुष्ट थी, तो भी पीरों और फ़कीरों ने मुस्लिम सरदारों को हिन्दू राजा के विरुद्ध भडकाना शुरू किया। गणेश ने उनका दमन किया। उसके समय में वंगाल में संस्कृत पढने लिखने की फिर से उन्नति हुई। गणेश ने सात वरस ( १४०६-१५ ई० ) शासन किया। उसका वेटा यदु मुसलमान हो गया। गणेश ने उसे प्रायश्चित्त करा के हिन्दू वनाया, पर पीछे वह फिर मुसलमान हो गया और उसका नाम जलालुद्दीन हुआ। वह एक वरस ही राज्य कर पाया था कि दनुजमर्दन नाम के एक सरदार ने उससे गौड छीन लिया, और दक्खिनी और पूरवी वंगाल को भी अधीन कर लिया ( १४१७ ई० )। इस प्रकार दनुजमर्दन सारे वंगाल का राजा वन गया। उसने अपने नाम के सिक्के भी चलाये, पर वह दूसरे ही वरस मर गया। उसके वेटे महेन्द्र से जलालुद्दीन ने फिर राज्य छीन लिया। जलालुद्दीन तिरहुत के शिवसिंह से लड कर हारा। १४३० ई० से पहले उसने चटगाँव जीत लिया। उसका अत्याचारी वेटा १४४२ ई० मे क़त्ल किया गया, और वंगाल का राज्य फिर इलियासशाह के एक वंशज के अधिकार मे आया।

§३. इब्राहीम शर्की—दिल्ली साम्राज्य के टूटने पर जो नयी रियासतें उठ खडी हुई उनमें से तीन—जौनपुर, मालवा और गुजरात—बहुत शक्ति-शाली और प्रसिद्ध हुई। पिछले तुगलकों के समय से जौनपुर मे एक हाकिम रहता था, जो मलिक्-उस्-शर्क अर्थात् पूरब का स्वामी कहलाता था। कन्नौज के पूरब बगाल की सीमा तक साम्राज्य का सब इलाका उसके अधीन था। तैमूर की चढाई के बाद, उस हाकिम का बेटा मुबारकशाह के नाम से स्वतन्त्र सुल्तान बन बैठा। मुबारक का भाई
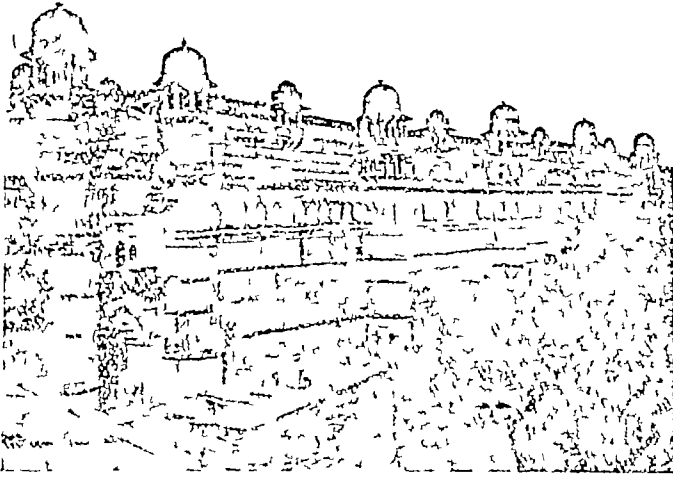
ग्वालियर में मानसिंह तोमर का महल
१५वीं सदी के भारतीय शिल्प का नमूना [ ग्वालियर पु० वि० ]

इब्राहीमशाह शर्की ( १४००-१४३६ ई० ) जौनपुर का पहला प्रसिद्ध सुल्तान हुआ। बिहार और बनारस के इलाकों पर उसका शुरू ही से क़ब्जा था। उसने जौनपुर के ठीक पूरब तिरहुत की तरफ आगे बढना चाहा, पर राजा शिवसिंह से उसे हारना पडा। किन्तु पच्छिम का रास्ता शर्की के लिए खुला था। कालपी और कन्नौज जीत कर वह दिल्ली की तरफ बढा। दोआब मे बुलन्दशहर और गगा के उत्तर सम्भल को भी उसने ले लिया। यह तब उस प्रदेश की राजधानी थी जो आजकल रुहेल-खड कहलाता है। दिल्ली के परकोटे तक शर्की का अधिकार पहुँच गया, तब मालवे के नये सुल्तान ने कालपी छीन कर उसे पीछे हटने को बाधित किया। अपने जमाने में इब्राहीम शर्की उत्तर भारत का एक-मात्र प्रबल सुल्तान था। उसका दरबार

विद्या और संस्कृति का केन्द्र था। जौनपुर की प्रसिद्ध अटाला-देवी मस्जिद उसी के समय बनी।

§४. हुशग गोरी और अहमदशाह गुजराती—मालवे का हाकिम दिलावरखाँ गोरी १४०१ ई० में स्वतन्त्र होगया। उसका बेटा हुशग गोरी (१४०५-३४ई०) मालवे का पहला प्रसिद्ध सुल्तान हुआ। मालवा के साथ चेदि देश का पच्छिमी अंश यानी चन्देरी का प्रदेश ( सागर और दमोह जिले ) भी इन सुल्तानों के अधिकार में था। हुशग ने उत्तर की तरफ कालपी और ग्वालियर तक अपना राज्य पहुँचा दिया।
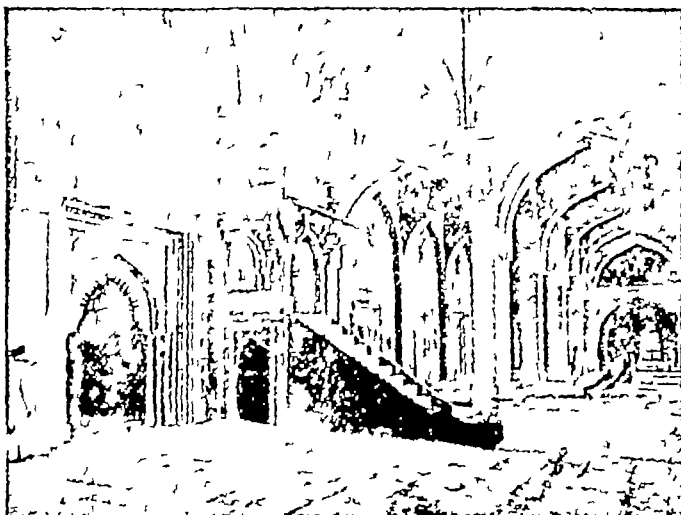
माडू में हुशग गोरी की बनवायी जामा मसजिद [ भा० पु० वि० ]

ग्वालियर के इलाके पर तैमूर के जाने के बाद हरसिंह तोमर ने अधिकार कर लिया था, १५१८ ई० तक उसके वंश में वह राज्य बना रहा।

गुजरात के सुल्तान अहमदशाह ( १४११-४१ ई० ) के मुकाबले में हुशग को दबना पड़ा। गुजरात का हाकिम जफरखाँ दिलावरखाँ गोरी के साथ-साथ स्वतन्त्र हो कर मुजफ्फरशाह बन गया था। पच्छिम तरफ गिरनार, पूरब तरफ चाँपानेर, उत्तर-पूरब ईडर और उत्तर जालोर और सिरोही के राज्यों तक गुजरात सल्तनत की सीमाएँ थी। इसके अलावा इस तरफ दिल्ली सल्तनत के जितने इलाके थे उनपर गुजरात के सुल्तान अपना अधिकार

मानते थे, इसीलिए मुज़फ्फरशाह ने सुदूर नागोर में भी अपना एक सामन्त नियुक्त किया था। मुजफ्फर का पोता अहमदशाह प्रबल विजेता और न्यायी शासक था। वह गुजरात की राजधानी अणहिलपाटन से उठा कर आसावल (आशापल्ली) नामक प्राचीन बस्ती में ले आया, जिसका नाम उसने अहमदाबाद रक्खा। उसे उसने सुन्दर भव्य इमारतों से भूषित किया। हुशग गोरी से उसकी बरसों खटपट चलती रही, और १४२१ ई० में उसने मालवे की राजधानी माडू को जा घेरा।

§५. उत्तरपच्छिमी प्रान्त १३९८–१४५० ई०—जसरथ खोकर और जैनुलआबिदीन—सिन्ध पर तैमूर की चढाई का कुछ प्रभाव नहीं पडा, और वहाँ जामों का राज्य शान्तिपूर्वक कायम रहा। काबुल तैमूर के वशजों के हाथ में रहा।

मुलतान का प्रान्त तैमूर एक सैयद खिज़्रखाँ को दे गया था। तैमूर की मृत्यु (१४०५ ई०) के बाद जसरथ खोकर भी समरकन्द से भाग आया और उत्तरी पजाब में उसने फिर अपना राज्य स्थापित किया। कश्मीर के जिस सिकन्दर ने तैमूर के पास दूत भेजा था, उसके शासन-काल (१३९४–१४१६ ई०) में बाल्तिस्तान या बोलौर का प्रान्त भी जीता गया। यह सिकन्दर बुतशिकन नाम से प्रसिद्ध है। उससे पहले के कश्मीर के पाँच सुल्तानों में कोई भी धर्मान्ध न हुआ था, पर सिकन्दर ने अपनी हिन्दू प्रजा को जबर्दस्ती मुसलमान बनाने में कोई कसर उठा न रक्खी। उसके बाद उसके बेटों में लडाई हुई, उसके दूसरे बेटे जैनुलआबिदीन ने जसरथ खोकर की मदद से राज्य पाया। जैनुलआबिदीन सच्चरित्र, योग्य, शक्तिशाली तथा न्यायी शासक था, उसकी शासन-नीति अपने पिता से ठीक उलटी थी। उसने देश की सिंचाई के लिए नहरें निकलवायीं तथा रास्ते और पुल बनवाये। निर्वासित हिन्दुओं को वापिस आने दिया, जो दिल से मुसलमान न बने थे उन्हे फिर हिन्दू हो जाने दिया, उनके टूटे मन्दिरों का स्वयम् जीर्णोद्धार करवाया और जजिया कर उठा दिया। उसने और भी बहुत से कर उठा दिये, और खानों की उपज से राज्य की आमदनी बढायी। अधिकाश कैदियों को छोड कर उसने उन्हें खानों, सडकों आदि पर काम में लगाया। जैनुलआबिदीन फारसी और सस्कृत का अच्छा विद्वान् था, उसे सगीत और साहित्य से तथा विद्वानों की सगति से भी खूब प्रेम था। उसने आजन्म एकपत्नीव्रत निबाहा। व्यक्तिगत जीवन में वह मुसलमान था, तो भी अपनी हिन्दू प्रजा की तीर्थयात्राओं और त्योहारों में भाग लेता था। उसके ५० वर्ष (१४२०–७० ई०) के रामराज्य की याद कश्मीर में आज भी बनी है।

खास दिल्ली मे फीरोज तुगलक का एक वशज १४१३ ई० तक जैसे-तैसे राज करता रहा। खिज़्रखॉ सैयद ने उससे रोहतक, नारनौल तक का प्रान्त छीन लिया था। १४१४ ई० मे उसकी मृत्यु होने पर खिज़्रखॉ ने दिल्ली भी ले ली। खिज़्रखॉ के वशज मुलतान पर अधिकार न रख सके और १४४० ई० में वहाँ सिवी के एक पठान ने अपना राज्य स्थापित किया।

§६. बुन्देलखड बघेलखड छत्तीसगढ और गोंडवाना—मालवा, जौनपुर, बिहार, बगाल, तेलगण और बहमनी रियासत के बीच प्राचीन चेदि और उडीसा के विशाल प्रदेश थे। चेदि का उत्तरी और पच्छिमी किनारा—कालपी और चन्देरी—अब मालवे में शामिल था। बाकी उत्तरपच्छिमी अश—जझौती—पहले चन्देलों के अधीन था। पन्द्रहवीं सदी के शुरू से चन्देलों का पता नहीं मिलता। अब वहाँ अनेक बुन्देले सरदार राज्य करने लगे थे, जिससे वह बुन्देलखड कहलाने लगा। बुन्देले गाहड्वालों के वशज थे, जो विन्ध्य में रहने के कारण बुन्देले कहलाये। चेदि का पूरबी भाग बघेलखड बन चुका था। दक्खिन-पूरब में महाकोशल या छत्तीसगढ का राज्य बना हुआ था। तीनों के बीच गढा (जबलपुर) मे एक गोड राज्य स्थापित होने से इस इलाके को इसके पडोसी गोंडवाना कहने लगे। इस राज्य की स्थापना एक गोंड ने की थी, पर पीछे यह राज्य उसके क्षत्रिय दामाद के वश में रहा। उडीसा का गग राज्य १३२७ ई० से बराबर दुर्बल रहा।

§७ फीरोज और अहमद बहमनी—१३६७ से १४२२ ई० तक बहमनी रियासत मे सुल्तान फीरोज़ ने राज्य किया, और १४२२ से १४३५ ई० तक उसके भाई अहमद ने। फीरोज के समय विजयनगर से तीन युद्ध हुए। १३६८ ई० में ही हरिहर २य ने कृष्णा काँठे पर चढाई की, तभी कृष्णा के उत्तरी किनारे के कोलियों ने तथा बराड के एक हिन्दू सरदार ने विद्रोह किया। विजयनगर की सेना विश्रृखल रूप में कृष्णा के दक्खिन तट पर पडी थी, उनकी बडी सख्या के कारण फीरोज कृष्णा पार करने से डरता था। उस समय एक क़ाजी ने साहस का काम किया। वह गाने-नाचने में निपुण था। भेस बदल कर एक नाच-मडली बना कर वह हरिहर की छावनी में घुसा, और धीरे-धीरे प्रसिद्धि पा कर हरिहर के बेटे के पास पहुँच गया। तलवार का नाच दिखाते हुए वह एकाएक युवराज पर टूट पडा और उसका काम तमाम कर दिया। हरिहर अपने बेटे की लाश ले कर विजयनगर लौटा और उसकी भागती हुई सेना को फ़ीरोज़ ने पूरी तरह हरा दिया।

प्रादेशिक राज्य १५६९ ई० में
राज्यों की सीमाएँ।
ऐसी रेखा मे घिरे प्रत्येक इलाके में अनेक छोटे-छोटे हिन्दू राज्य।
ऐसी रेखा मे घिरे प्रदेश एक एक किन्तु बहुत छोटे हिन्दू राज्य।
जैसलमेर
जोधपुर
जूनागढ़
दीव
देवगिरि
बीजापुर
पुरी
मदुरा
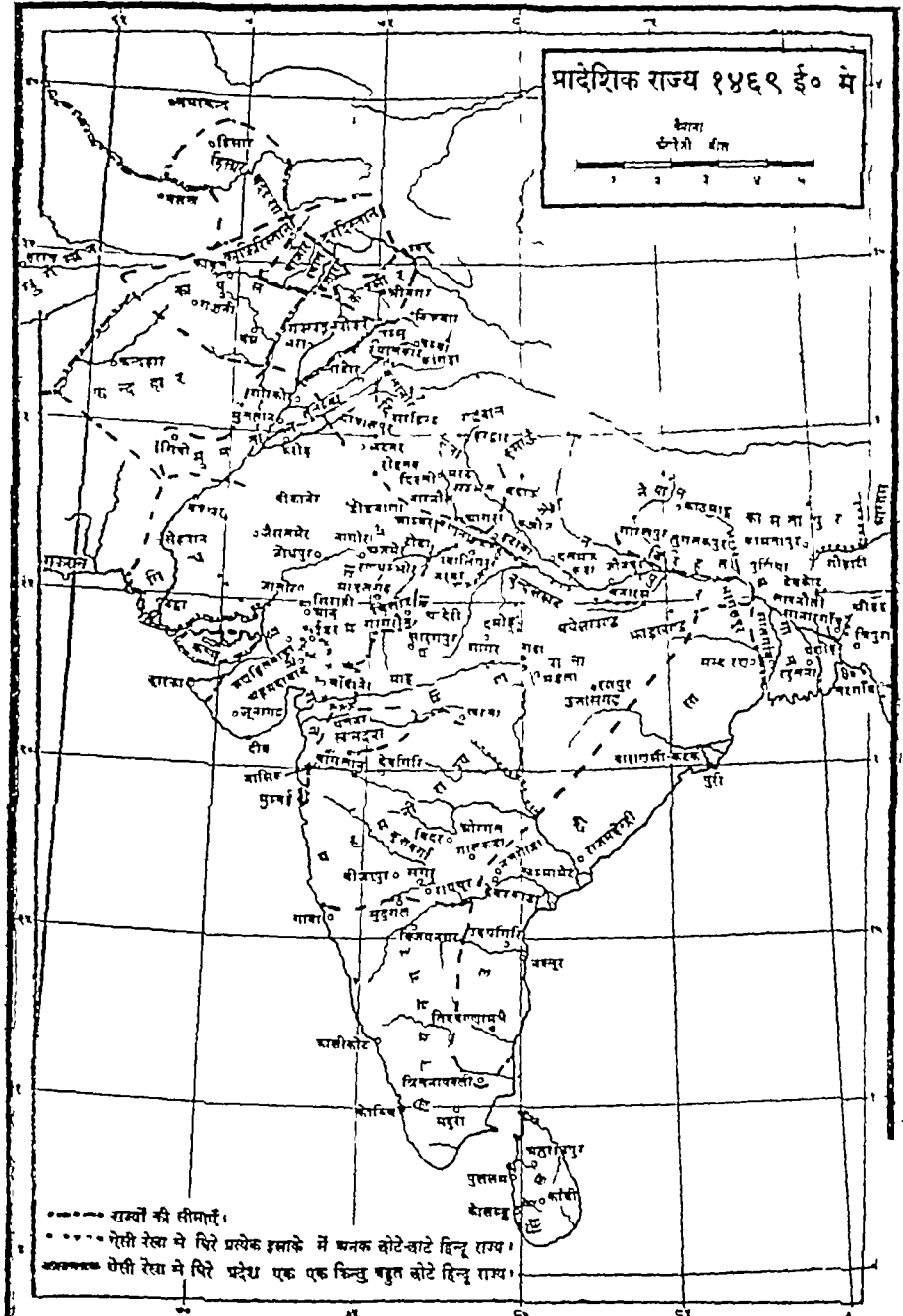
इसके बाद गुजरात, मालवा और खानदेश के सुल्तानों ने विजयनगर के राजा को बहमनी सुल्तान के खिलाफ मदद करने का वचन दिया। १४०६ ई० में हरिहर २य की मृत्यु हुई और उसका पुत्र देवराय १म राजा बना। उसी बरस उसकी सेना ने मुद्गल पर चढाई की। उन्हें हराकर फीरोज ने विजयनगर पर चढाई की जिसमें वह घायल हुआ। देवराय ने आठ बार उस पर हमला किया, पर मालवा आदि से कोई मदद न मिली। फीरोज की फिर जीत हुई और तुङ्गभद्रा नदी दोनों राज्यों की सीमा बनी।

१४१८ ई० में देवराय के बेटे वीरविजय ( १४१३–१४२५ ई० ) के समय तेलङ्गण और विजयनगर के राजाओं ने मिल कर फिर फीरोज से युद्ध किया। इस बार फीरोज की पूरी हार हुई और विजेताओं ने पुरानी हत्याओं का पूरा बदला लिया।

उस हार का बदला लेने के लिए अहमदशाह बहमनी ने १४२३ ई० में चढाई की। यह युद्ध पिछले पाँचों युद्धों से भयकर हुआ। युद्ध के समय असैनिकों को न मारने का वचन विजयनगर वालों ने तोड़ दिया था, इसलिए अहमदशाह ने इस बार दिल खोल कर क़त्लेआम किये। वीरविजय कर देने को बाधित हुआ। इस युद्ध के कैदियो मे दो ब्राह्मण थे, जिनके वशजों ने बाद में अहमदनगर और बराड की रियासतें स्थापित कीं।

१४२४ ई० में अहमद बहमनी ने आरगल पर दखल करके उस राज्य को मिटा दिया, और पूरबी मसुद्र तक अपनी सीमा पहुँचा दी। ओरगल के सब इलाकों पर वह कब्जा न कर सका, क्योंकि कृष्णा के दक्खिन कोंडवीडु क़िले ( गुन्टूर के पास ) और उसके इलाके पर देवराय २य ( १४२५–४६ ई०।) ने अधिकार कर लिया था। इसके बाद अहमद बहमनी की मालवे और गुजरात से लडाइयाँ हुईं। अहमदशाह गुजराती से उसकी हार हुई ( १४३० ई० ), जिससे मुम्बई का द्वीप गुजरात के अधिकार में रहा।

**§८. कुम्भा और महमूद खिलजी**—राणा मोकल के बेटे कुम्भा के समय ( १४३३–६८ ई० ) पच्छिमी भारत की राजनीति में एक नया अध्याय शुरू हुआ। मालवे में हुशग गोरी के बेटे को मार कर उसका वजीर महमूद खिलजी गद्दी पर बैठा। वह कुम्भा का समकालीन था ( १४३६–६६ ई० )। १४३७ ई० से कुम्भा ने अपनी अग्रसर नीति शुरू की। उसी बरस उसने सिरोही के राजा से

आबू छीन लिया, और मालवा में सारगपुर तक पहुँच कर महमूद खिलजी को हराया। आबू ले कर उसने गुजराती सुल्तान का पच्छिमी राजस्थान की तरफ रास्ता काट दिया, और महमूद का पराभव कर पूर्वी राजस्थान मे अपना रास्ता सुगम कर लिया। फिर दो बरस में उसने मारवाड मे आबू से नागोर तक, मध्य राजस्थान में अजमेर तक, उत्तर-पूरब आम्बेर तक, और दक्खिन-पूरब मॉडलगढ से गागरौन तक अर्थात् बनास से काली सिन्ध तक अपना अधिकार फैला लिया। कुम्भा को रोकने के लिए महमूद खिलजी ने सन् १४४३,४६ तथा ५४ मे तीन युद्ध किये। पहली बार वह चित्तौड़ तक जा पहुँचा, पर फिर कभी मॉडलगढ से आगे न बढ सका। किन्तु दूसरे युद्ध में भरतपुर के पास बयाना के क़िले पर अधिकार कर वह कुम्भा का दिल्ली आगरा की तरफ वाला रास्ता काट देने मे सफल हुआ। इसी बीच राणा ने रणथम्भोर, आम्बेर, टोडा और डीडवाणा तक अधिकार कर लिया।

नागोर पर कुम्भा ने आधिपत्य कर ही लिया था। १४५६ ई० में उसने गुजराती सुल्तान की विडम्बना करते हुए वह "गढ़ तोड दिया, खाई भरवा दी और नागोर को जो तुर्की शक्ति की जड़ था, उजाड़ कर फूँक डाला, और उसका क़िस्सा खतम कर दिया।" तब गुजरात के सुल्तान कुतुबशाह (१४५१–५६ ई० ) ने मेवाड़ पर चढाई की, पर वह आबू भी न ले सका। दूसरे बरस गुजरात और मालवे के सुल्तानों ने एक साथ मेवाड़ पर चढाई की। पर न कुतुबशाह सिरोही से आगे बढ पाया, और न महमूद ही मेवाड के अन्दर घुस सका। कुम्भा ने दोनो को एक साथ परास्त कर दिया

राणा कुम्भा अपनी बनवायी हुई इमारतों के लिए भी प्रसिद्ध है। चित्तौड़-गढ़ के बुर्ज, दरवाज़े, रथमार्ग, ( चौड़ा रास्ता ) तथा कीर्तिस्तम्भ उसी के बन-वाये हुए हैं। साहित्य, सगीत, नाट्यशास्त्र वास्तुशास्त्र इत्यादि पर कुम्भा ने अनेक ग्रन्थ लिखे और लिखवाये। बुढापे में उसे उन्माद-रोग हो गया और उसके बेटे उदयसिंह ने उसे मार डाला। पितृघातक उदयसिंह को भगा कर सरदारो ने उसके भाई रायमल को गद्दी दी। रायमल ने मालवे के मुकाबले में मेवाड का गौरव बनाये रक्खा ( १४७३–१५०६ ई० )।

**§६. कपिलेन्द्र और पुरुषोत्तम—पूरबी और दक्खिनी भारत १४३५–१५०६ ई०**—उडीसा का गग राजवश जीर्ण हो चुका था। १४३५ ई० मे गग राजा को हटा कर उसके सूर्यवंशी मन्त्री कपिलेन्द्र ने राज्य ले लिया। उसी साल

बिदर में अहमदशाह बहमनी का बेटा अलाउद्दीन तख्तनशीन हुआ। अलाउद्दीन ने पच्छिमी और पूरबी घाटों के छोटे-छोटे स्वतन्त्र हिन्दू सरदारों को वश में करने को फौजें भेजीं। कोंकण में तो उसे सफलता हुई (१४३७ ई०), पर तेलगण में कपिलेन्द्र ने उसे रोक दिया।

विजयनगर के देवराय ने एक परिषद् इस बात पर विचार करने को बुलायी कि बहमनी बार-बार युद्ध मे क्यों जीत जाते हैं। विचार का परिणाम यह निकला कि उनके पास अच्छे घोडे हैं तथा उनकी सेना में ऐसे सवार हैं जो घोडे पर चढ़े-चढ़े निशाने पर तीर मार सकते हैं। उत्तर और पच्छिम के देशों में अच्छे घोडे की नस्लें पैदा होती हैं, और उनसे बहमनियो का सम्पर्क था। तब से घोडों के व्यापार को उत्साहित करना और जिस तरह बने, अच्छे घोड़े उपलब्ध करना विजयनगर राज्य की नीति हो गयी। ईरान से बहमनी रियासत मे घोडे लाने वाली नावों को लूटने पर इनाम दिया जाने लगा। देवराय ने अपने राज्य में निशानची मुसलमानों को जागीरें देकर बसाना भी शुरू किया। सवार तीरन्दाजों की अपनी नयी सेना तैयार कर उसने बहमनी रियासत पर चढाई की और कृष्णा नदी तक के प्रदेश पर दखल कर लिया (१४४३ ई०)। लेकिन अलाउद्दीन ने बदला लेने और जनता को क़त्ल करने की धमकी दी, जिससे वह डर गया और उसके कैदियों को छोड़ दिया।

१४४९ ई० मे देवराय की मृत्यु हुई और उसका बेटा मल्लिकार्जुन उत्तराधिकारी हुआ। १४५८ ई० मे अलाउद्दीन मरा और उसका बेटा हुमायूँ तख्तनशीन हुआ। कपिलेन्द्र इस समय तक गोदावरी-कृष्णा दोआब को जीत चुका था। अब उसने कावेरी तक समूचा तट और कावेरी पार त्रिचनापल्ली तक जीत लिया। हुमायूँ ने देवरकोंडा के तेलुगु सरदार पर चढाई की, उसने कपिलेन्द्र से मदद माँगी। कपिलेन्द्र के तुरन्त पहुँच जाने से हुमायूँ को भागना पडा (१४५९ ई०)। यह हुमायूँ दक्खिन में अब तक हुमायूँ ज़ालिम के नाम से याद किया जाता है। १४६१ ई० मे वह मारा गया। तब कपिलेन्द्र बिदर के पास आ पहुँचा और बड़ी रकम ले कर लौटा। आन्ध्रदेश के पहाड़ी जिलों—खम्मामेट और नलगोंडा—पर भी उसने दखल कर लिया। उत्तर की ओर उसने दामोदर से गगा तक का पहाड़ी प्रदेश लेकर भागलपुर के पास जौनपुर रियासत से अपनी सीमा मिला दी। हुसेनशाह शर्क़ी ने तब तीन लाख फौज के साथ उसपर चढाई की (१४६५ ई०)। इस युद्ध में दोनो पक्ष अपनी जीत हुई बताते हैं—परिणाम अनिश्चित रहा।

१४७० ई० में कपिलेन्द्र की मृत्यु हुई और उसका बेटा पुरुषोत्तम उत्तराधिकारी हुआ। हुमायूँ शाह के बेटे मुहम्मद ३ य ने तब अपने सेनापति हसन बहरी को भेजकर राजमहेन्द्री ले ली। विजयनगर के राजा का एक सामन्त सालुव नरसिंह, जो चन्द्रगिरि का सरदार था, नेल्लूर और उदयगिरि को लेते हुए कृष्णा के तट तक आ पहुँचा। उसने बहमनी सेना को कृष्णा के दक्खिन आगे न जाने दिया। गोदावारी-कृष्णा-दोआब के लिए पुरुषोत्तम और बहमनी सुलतान में छीनझपट जारी रही। बहमनी रियासत में दक्खिनी और विदेशी अमीरों में सदा से लड़ाई चली आती थी। मुहम्मद ३ य का मंत्री महमूद गवाँ नामक एक चतुर विदेशी अमीर था। हसन बहरी ने उसके नाम से जाली चिट्ठियाँ बना कर मुहम्मदशाह के मन में यह बैठा दिया कि वह पुरुषोत्तम से मिल गया है। इसपर मुहम्मद ने उसे मरवा डाला (१४८१ ई०)। इधर मल्लिकार्जुन के बाद उसका भाई विरूपाक्ष विजयनगर का राजा हुआ। उसके कुशासन से राज्य की बुरी दशा थी। इस दशा में पुरुषोत्तम ने राजमहेन्द्री से नेल्लूर तक का तट तथा खम्मामेट और नलगोंडा जिले फिर जीत लिये।

मुहम्मद ३य के बाद बहमनी सुलतान सर्वथा निःशक्त हो गये। १४८७ ई० से बरीद नामक वंश के सरदार बिदर में सल्तनत के कर्ता-धर्ता होने लगे, और बहमनी सुलतान उनके हाथ में कैदी की भाँति रह गये। उसी बरस सालुव नरसिंह ने विरूपाक्ष को पदच्युत कर विजयनगर का राज्य ले लिया।

बंगाल में इस समय इलियासशाही वंश का राज्य जारी था। १४५४ ई० से १४८२ ई० तक दक्खिनी बंगाल के यशोहर, खुलना आदि जिले जीते गये, और राजा गौरगोविन्द से सिलहट छीन लिया गया। किन्तु कामतापुर (उत्तरी बंगाल) के राजा से इलियासी सेनापति की दीनाजपुर जिले में हार हुई। १४८७ ई० में इलियास-वंश का राज्य समाप्त हुआ और बंगाल में अराजकता उमड़ पड़ी।

१४९० ई० में हसन बहरी के बेटे अहमद ने, जो अहमदनगर का संस्थापक तथा उत्तरी महाराष्ट्र का हाकिम था, बीजापुर और बराड के हाकिमों को लिखा कि हम तीनों स्वतन्त्र सुलतान बन जायँ। यों अब एक बहमनी रियासत के बजाय चार रियासतें हो गयीं।

पुरुषोत्तम का बेटा प्रतापरुद्र उड़ीसा का राजा हुआ (१४९७ ई०), तो उसका राज्य हुगली से नेल्लूर तक था। पुरुषोत्तम बंगाली सन्त चैतन्य का शिष्य बन गया

और उसकी देखादेखी उसके सरदार भी वैष्णव हो गये। राज-काज के बजाय भजन-कीर्तन इनका मुख्य काम बन गया। तब से उड़ीसा राज्य की शीघ्र अवनति हुई।

सालुव नरसिंह का सेनापति तुलुव वंश का नरस नायक था। १५०५ ई० में उसकी मृत्यु होने पर उसके बेटे वीर-नरसिंह ने सालुव नरसिंह के बेटे को पदच्युत कर स्वयम् राज्य ले लिया। यों विजयनगर का तीसरा राजवंश शुरू हुआ।

§१० बहलोल लोदी और दिल्ली की नयी सल्तनत (१४५१—८८ ई०)—१४५१ ई० में बहलोल लोदी नाम के पठान ने, जो सरहिन्द का शासक था और जिसने जसरथ खोकर से मैत्री कर ली थी, दिल्ली ले कर वहाँ पहले पठान राजवंश की स्थापना की। बहलोल दिल्ली को एक साम्राज्य न बना सका, तो भी वह उसे एक मज़बूत राज्य बनाने में सफल हुआ। दिल्ली के इलाके सब से अधिक शर्की सुल्तानों ने दबा रक्खे थे। भागलपुर-मुंगेर से कन्नौज और अवध तक तो उनका राज्य निर्विवाद था। बहलोल ने हुसेनशाह शर्की को अनेक लड़ाइयों में हरा कर जौनपुर जीत लिया (१४७६ ई०)। हुसेनशाह तब बिहार भाग गया।

§११. महमूद बेगडा—गुजरात के महमूद बेगडा (१४५६-१५११ ई०) को १५वीं शती के उत्तरार्ध में भारत का प्रमुख सुल्तान कहना चाहिए। महमूद ने गुजरात के पच्छिम और पूरब के दो दुर्जेय गढ, जूनागढ और चाँपानेर, हिन्दू राजाओं से जीते। राणा कुम्भा के दामाद जूनागढ के राव मडलीक को हराने और उसे मुसलमान बनाने के बाद उसने द्वारिका और कच्छ पर भी काबू कर लिया। इस प्रकार बेगड़ा के समय में समूचा गुजरात उसकी सल्तनत के अन्तर्गत हो गया। महमूद की मूँछें बडी-बड़ी थीं जिन्हे वह बैल के सींगों की तरह ऊपर की ओर घुमा कर उठा देता था। जिस बैल के सींग बडे-बडे और ऊपर को घूमे हुए हो उसे गुजराती में बेगड़ो कहते हैं। महमूद का छेड का नाम बेगडा पड़ गया और इतिहास में वह उसका उपनाम बन गया।

§१२. हुसेनशाह बंगाली और सिकन्दर लोदी—बंगाल की अराजकता का अन्त अलाउद्दीन हुसेनशाह ने किया (१४९३ ई०)। गौड पर अधिकार पाते ही उसने अपनी सेना को लूटने से रोका। पर उच्छृंखल सेना जब न मानी, तब उसने १२ हज़ार सैनिकों को फाँसी दे दी। पुरन्दरखाँ बसु हुसेन का वजीर था। सनातन उसका दबीरे-खास (निजी मन्त्री) था। सनातन के दो भाई रूप और अनूप भी ऊँचे पदों पर थे।

बंगाल की गद्दी पाते ही हुसेन ने शर्क़ी सुल्तान से भागलपुर और मुंगेर जीत लिये। दिल्ली की गद्दी पर बहलोल के बाद सिकन्दर लोदी बैठा (१४८८–१५१७ ई०)। उसने हुसेनशाह शर्क़ी से बिहार भी छीन लिया (१४९४ ई०)। हुसेन शर्क़ी तब हुसेन बंगाली की शरण में चला आया। तब सिकन्दर ने उस पर भी चढ़ाई की। सन्धि होने पर पटना के ३७ मील पूरब बाढ़ नाम के कस्बे पर बंगाल और दिल्ली सल्तनतों की सीमा मानी गयी।

शर्क़ी शक्ति का यों अन्त होने पर सिकन्दर जमना के दक्खिन दिल्ली के पुराने इलाक़ों को ग्वालियर राज्य से वापिस लेने में लग गया। सिकन्दर लोदी धर्मान्ध मुसलमान था। उसके राज्य में हिन्दू धर्म को भरसक दबाया गया। दिल्ली के साथ-साथ आगरा को भी उसने अपनी राजधानी बनाया।

उधर हुसेनशाह ने अपने पड़ोस के राज्यों से लोहा लिया। कामतापुर के राज्य का अन्त करके उसने अपनी सीमा आसाम से मिला दी। तब से बंगाल आसाम का जल-स्थल-युद्ध जारी हुआ, जो ३५ बरस तक चलता रहा। उधर मिथिला के राजा से उसने सारन जिले तक का इलाक़ा छीन लिया, वह राज्य तब उत्तर की तराई भर में रह गया। हुसेन के एक सेनापति ने उड़ीसा पर चढ़ाई कर पुरी को लूटा (१५०९ ई०)। प्रतापरुद्र ने दक्खिन से लौट कर उसका पीछा किया और उसे गंगा पर हराया। तो भी मन्दारण का किला प्रताप के हाथ से निकल गया। त्रिपुरा के राजा धन्यमाणिक्य से तीन बार हारने के बाद चौथी बार हुसेन ने उसका कुछ इलाका जीत लिया।

**§१३ हिन्द महासागर पर पुर्तगालियों का अधिकार होना**—महमूद बेगड़ा के समय में विश्व के इतिहास की एक भारी घटना घट रही थी। बीच में तेरहवीं-चौदहवीं शती छोड़ कर सातवीं से पन्द्रहवीं शती तक संसार पर इस्लाम का आतंक छाया हुआ था। आठवीं शती में जब अरबों ने सिन्ध से स्पेन तक जीत लिया, तब से दक्खिनी स्पेन में इस्लाम के पैर जम गये थे। १५वीं शती के शुरू में तुर्कों का बल फिर प्रकट हुआ और १४५३ ई० में जब उन्होंने कुस्तुन्तुनिया को और बालकन प्रायद्वीप के रोम-साम्राज्य के बचे-खुचे अंश को भी ले लिया, तब युरोप अपने दोनों दक्खिनी पहलुओं पर इस्लाम का दबाव अनुभव करने लगा। रोम और भारत के बीच में मुस्लिम राज्यों के उठ खड़े होने से भारत और युरोप का सीधा व्यापार-सम्बन्ध टूट गया था। मध्य युग में 'मूर'

अर्थात् अरब और अन्य मुसल्मान भारत और लाल सागर के बीच व्यापार करते थे, और इटली के वेनिस आदि नगरों के व्यापारी आगे मिस्र से युरोप तक माल लाते और ले जाते थे।

पन्द्रहवीं शती में पच्छिमी युरोप की जातियों में एक गहरी जागृति हुई। प्राचीन यूनानी विद्याओं की तरफ लोगों की रुचि फिरी और उनके ज्ञानचक्षु खुलने लगे। लोगों में नये-नये और साहसपूर्ण विचार प्रकट होने लगे। स्पेन-पुर्तगाल वालों की मुसलमानों से विशेष शत्रुता थी। आफ्रिका के पच्छिमी तट पर वे कुछ दूर तक जाते थे। उन्हें तब यह मालूम न था कि आफ्रिका कितना बड़ा महाद्वीप है। उनमें यह एक विश्वास भी प्रचलित था कि आफ्रिका के पूरबी छोर पर हब्शदेश (अबीसीनिया) में प्रेस्तर जौन नाम का एक ईसाई राजा है। उनके दिलों में यह उमग उठी कि यदि वे आफ्रिका के दक्खिन छोर से घूम सकें तो एक तो उनका मुस्लिम शत्रु दोनों तरफ से घिर जाय, जिससे वह पीठ पीछे मे जोर की चोट लगा सकें—इस काम मे शायद उन्हें प्रेस्तर जौन की भी मदद मिल जाय—, और दूसरे भारतवर्ष के व्यापार में उन्हे अपने शत्रुओं पर निर्भर न रहना पड़े।

वास्को द-गामा

यह उमग उन्हें आफ्रिका के पच्छिमी तट पर आगे-आगे ढकेलने लगी। उस महाद्वीप के पहले पूरबी घुमाव पर पहुँच कर (१४४२ ई०) उन्होंने जाना कि अब रास्ता पा लिया। किन्तु जब आगे स्थल का किनारा दक्खिन की तरफ बढा हुआ निकला और वह आगे-आगे बढता ही गया, तब वे निराश होने लगे। अन्त में दियाज़

नामक नाविक जब उसकी नोक पर पहुँच गया ( १४८७ ई० ), तो फिर से उनकी आस बँधी। इसीलिए उस नोक का नाम "आशा-अन्तरीप" रक्खा गया। इसी समय कोलम्बस नामक नाविक को एक नयी बात सूझी। प्राचीन यूनानियों का विचार था कि जमीन गोल है। कोलम्बस ने सोचा यदि ऐसा है तो पच्छिम की तरफ बढते-बढते भारत पहुँच जाना सम्भव है। स्पेन की रानी इसाबेलाने उसे जहाज दिये, जिनके द्वारा उसने अतलान्तक पार किया, और पच्छिमी अमेरिका के द्वीपों पर पहुँच कर समझा कि भारत मिल गया ( १४९२ ई० )। छ. बरस पीछे वास्को द-गामा नामक एक पुर्तगाली नाविक आशा अन्तरीप का चक्कर लगा कर कालीकट आ पहुँचा ( १४९८ ई० )। तब यह समझा गया कि कोलम्बस भारत के एक छोर पर पहुँचा है और वास्को द-गामा ने उसी का दूसरा छोर पाया है। रोम का पोप ईसाइयों का सबसे बडा महन्त था। पोप ने अतलान्तक के बीच एक रेखा निश्चित कर फतवा दे दिया कि उसके पच्छिम के सब नये गैर-ईसाई देश स्पेन के और पूरब के पुर्तगाल वालों के होंगे।

मलबार-तट के सरदारों ने अपना व्यापार बढाने की गरज से इन आगन्तुकों को अपने यहाँ कोठियाँ बनाने दीं। पुर्तगालियों के भारतीय समुद्र मे पहुँचने पर "मूर" अर्थात् मुस्लिम सामुद्रिक उनका विरोध करने लगे। अपने बचाव के लिए पुर्तगाली लोग तट पर, जहाँ जैसे दाव लगा, किलाबन्दी करने लगे। सबसे पहले १५०३ ई० में उन्होंने कोचि ( कोचीन ) मे अपनी कोठी की किलाबन्दी की। फिर आफ्रिका के तट पर कई किले बनाये। गुजरात प्रान्त भारत के पच्छिमी व्यापार मे सदा से प्रमुख रहा है। गुजराती सुल्तान महमूद बेगडा ने इन नये आगन्तुकों को भारतीय समुद्र से निकालना अपना कर्त्तव्य समझा। १५०७ ई० मे मिश्र के सुल्तान ने इस कार्य मे उसकी मदद के लिए मीर होज़ेम की नायकता मे १२ जगी जहाजो में पन्द्रह हजार सैनिक भेजे। पहले युद्ध में पुर्तगाली बेडा डुबाया गया, किन्तु आलमीदा और आलबुकर्क नामक पुर्तगाली सेनापतियों ने फिर तैयारी करके १५०९ ई० के दूसरे युद्ध में दीव के सामने मिस्री-गुजराती बेडे को जला कर लूट लिया। फिर उन्होने हिन्द महासागर में जहाँ तहाँ "मूरों" के जहाजों का सहार कर उस समुद्र पर एकाधिकार कर लिया। १५१० ई० मे आलबुकर्क ने बीजापुर से गोवा छीन कर उसे पुर्तगालियों के सामुद्रिक साम्राज्य की राजधानी बनाया;

तथा १५११ और १५१५ ई० में मलक्का और ओर्मुज़ ले कर हिन्द महासागर की दो मुख्य खाडियाँ काबू में कर लीं।

मसाले पैदा करने वाले पूरबी द्वीपों के लिए स्पेन वाले भी तरसते थे। पोप की सीमान्त-रेखा से पच्छिम जाते हुए उन द्वीपों तक पहुँचने का उन्हें विचार हुआ। मैगलान नामक नाविक इस दृष्टि से पृथ्वी की परिक्रमा करने को तैयार हुआ। इसावेला के पोते चार्ल्स ने उसे पाँच जहाज दिये, जिनमे २०० आदमी रवाना हुए ( १५१९ ई० )। मैगलान ने कोलम्बस से कहीं अधिक हिम्मत और बहादुरी का काम किया। अमेरिका के दक्खिनी छोर मे वह पहले-पहल प्रशान्त महासागर में घुसा। दो बरस पीछे उसे एक द्वीपावली मिली, जिसका नाम उसने चार्ल्स के बेटे फिलिप के नाम पर फिलिपाइन रक्खा। वहीं उसकी मृत्यु हुई। उसके १८ बचे हुए साथी एक जहाज़ ले कर दूसरे बरस स्पेन पहुँचे ( १५२२ ई० )। तब लोगों ने जाना कि अमेरिका और भारत अलग-अलग देश हैं।

---

## अध्याय ७

### पिछले मध्य काल का भारतीय जीवन

**§१. हिन्दुओं का राजनीतिक पतन और उसके कारण**—पिछला मध्य युग हिन्दू सभ्यता की सड़ाँद और अधोगति का युग था। हिन्दुओं की राजशक्ति इस युग मे विशृखल हो गयी। हिन्दू इस युग में प्राय सदा ही क्यों हारते रहे, इस प्रश्न के बहुत से उत्तर प्रचलित हैं। यह कहा जाता है कि ( १ ) ठडे देशों के निवासी और माँसाहारी होने के कारण मुसलमान हिन्दुओं से अधिक हृष्ट-पुष्ट होते थे, ( २ ) युद्ध में हिन्दू अपने लस्टमपस्टम हाथियों पर भरोसा रखते थे, जो फुर्तीले घुडसवारों के मुकाबले में निकम्मे निकलते थे, और ( ३ ) हिन्दुओं में एकता न थी। हर्षवर्धन के बाद से भारत मे कोई सम्राट् पैदा नहीं हुआ और अराजकता छायी रही, छोटे-छोटे राज्य सदा आपस में लड कर कमज़ोर होते रहे।

इनमें से कोई भी व्याख्या परीक्षा करने पर सन्तोषजनक नहीं ठहरती। भारतवर्ष के गरम मैदानों मे पैदा होने वाली नस्लें ठडे देशों के लोगों से कभी कमजोर नहीं रही हैं। भारतीय योद्धा तुर्कों से शारीरिक बल मे कम न थे। अब भी

भारत के गरम प्रदेशों के निवासी राजपूत, जाट सिक्ख और भोजपुरी संसार की सब से बलिष्ठ सैनिक जातियों से टक्कर लेते हैं। यदि गरम और ठंडे देश में पैदा होने से ही यह भेद होता तो अफगान जब हिन्दू थे, तब वे महमूद से क्यों हारते रहे? और कश्मीर से नेपाल तक के ठंडे प्रदेशों के हिन्दू राज्य इस युग में क्यों मुर्दा पड़े रहे? मलिक काफूर किसी ठंडे देश में पैदा न हुआ था। हिन्दू रहते हुए उसी काफूर ने वह योग्यता क्यों न दिखलायी? मांसाहार की बात भी वैसी ही है। दाक्षिणात्य और गौड़ ब्राह्मणों, बनियों और जैनों को छोड़ कर आज भी प्रायः सब हिन्दू मांसाहारी हैं। हाथियों वाली बात भी गलत है। स्वयम् महमूद गजनवी ने अपने विरोधी तुर्कों के मुकाबले में भारतीय हाथियों का प्रयोग किया था। उसका वृत्तान्त मनोरंजक है। उसके हाथी शत्रु के सवारों को अपनी सूँडों में पकड़ कर काठियों में से खींच लेते और नीचे पटक कर पैरों तले रौंद देते थे।

तीसरी बात भी अज्ञानमूलक है। गुर्जर-प्रतिहारों और राष्ट्रकूटों के साम्राज्य हर्ष और पुलकेशी के साम्राज्यों के प्रायः बराबर थे। आठवीं, नवीं और दसवीं सदी में जितने बड़े राज्य भारतवर्ष में रहे, उतने बड़े राज्यों का परस्पर लड़ना यदि अराजकता कहलाये तो संसार के सब देशों में सदा ही अराजकता रही है। समय-समय पर उनके परस्पर लड़ने से तो उलटा उनका पौरुष बना रहा। भारत जैसे बड़े देश में यदि तीन सदियों तक कोई लड़ाई न होती तो लोग शायद युद्ध करना ही भूल जाते। तुर्क कौमें भी आपस की लड़ाइयों में हिन्दुओं से क्या कुछ कम थीं? महमूद आमू पार के तुर्कों से लगातार लड़ता रहा। यदि महमूद ने हिन्दू राज्यों की लड़ाइयों से लाभ उठाया तो क्यों नहीं किसी हिन्दू राजा ने तुर्कों की आपस की लड़ाइयों से लाभ उठाने की चेष्टा की? सच बात यह है कि यदि हिन्दुओं का राजनीतिक जीवन मन्द न हो गया होता तो एक-एक हिन्दू राज्य अकेले-अकेले भी शत्रु का मुकाबला कर सकता और यदि महमूद जैसा कोई असाधारण सेनापति उसे पछाड़ भी देता, तो भी अवसर पाते ही वह फिर उठ खड़ा होता।

इस प्रसंग में हमें इस बात पर भी ध्यान देना चाहिए कि इस युग में हिन्दुओं ने जितनी लड़ाइयाँ लड़ीं, वे प्रायः सब अपनी रक्षा के लिए थीं। कभी उन्हें आगे बढ़ कर शत्रु पर चढ़ाई करने की न सूझी, और सूझी भी तो बहुत दूर की नहीं। शहाबुद्दीन गोरी यदि कई हमलों में हारा भी तो उन हारों से उसे अपने राज्य का कोई हिस्सा न देना पड़ा। और हिन्दू राजा यदि उसके मुकाबले में जीते

भी तो अधिक से अधिक अपना घर बचाने मे ही सफल हुए। राजपूतों की जिस वीरता की बडी प्रशसा की जाती है, वह वीरता सदा रक्षापरक युद्धों मे ही प्रकट हुई। वह अपना अन्त निकट देख निराश हो कर मरने मारने पर तुले हुए आदमिया की वीरता होती थी। उसमें महत्त्वाकाँक्षा की वह प्रेरणा, विशाल दृष्टि का वह स्वप्न, वह ऊँची साध कभी न होती थी जो मनुष्यों को नयी भूमियाँ खोजने और जीतने के खतरे उठाने के लिए आगे बढाती है। बेशक, कायर बन कर अधीनता मानने की अपेक्षा वैसी वीरता की मौत मरना भी अच्छा था। किन्तु वह बहादुरी का मरना ही था, बहादुरी का जीना नहीं कहा जा सकता।

हिन्दुओं की हार का एक यह कारण भी कहा जाता है कि उनमे अनेक देशद्रोही पैदा होते रहे। देशद्रोह की बहुत सी बातें तो कल्पित हैं, जैसे पृथ्वीराज के विरुद्ध जयचन्द्र की। अनेक सच भी हैं, जैसे मुहम्मद गोरी के समय उच्च की रानी की या अलाउद्दीन के गुजरात पर चढाई करने के समय कर्ण के उस मन्त्री की जिसका कर्ण ने मूर्खतावश अपमान किया था। इन उदाहरणों के विषय में यह सोचना चाहिए कि हिन्दू राज्यो के नेता इतने जागरूक क्यों न रहते थे कि देशद्रोह के अकुर को ही कुचल देते। प्रजा का कोई आदमी ज्योंही देशद्रोह करने लगता, राजा उसे पकड कर दड क्यों नहीं देता था? और यदि राजा ही देश बेचने लगता तो प्रजा उसके विरुद्ध क्यों नहीं उठ खडी होती थी? इस प्रकार देशद्रोह के इन दृष्टान्तों से वास्तव में राजनीतिक जीवन की मन्दता ही सूचित होती है।

**§७. तुर्कों और हिन्दुओं के राजनीतिक जीवन और शासन की तुलना**—इस युग के तुर्क सरदार और सैनिक नि सन्देह बहुत उच्छृ खल और उपद्रवी थे। सन् ११६३ से १५२६ ई० तक दिल्ली की गद्दी पर कुल ५ वशों के ३५ बादशाह बैठे। उसी अन्तर में मेवाड़ मे १३ राजाओं ने राज्य किया। दिल्ली के उन बादशाहों में से १६ तथा मेवाड के राजाओं में से ३ स्वाभाविक मृत्यु के बिना मारे गये। सन् ११६६ से १५३८ ई० तक गौड में कुल ४३ शासकों ने शासन किया। उसी अरसे में उसके पडोसी उड़ीसा में केवल १४ राजाओं का शासन रहा।

इन अकों से तुर्क शासन की कमजोरी प्रकट होती है। किन्तु यदि कोई हिन्दू राजा इस कमज़ोरी से लाभ उठा कर दिल्ली पर चढाई करता तो क्या होता?

तुर्कों मे कोई न कोई गयास तुगलक उठ खड़ा होता, और सब तुर्क अपने उपद्रव छोड कर उसके झडे के नीचे जमा हो जाते। हमें यह समझना चाहिए कि तुर्क सल्तनत मे वास्तविक शासन तुर्कों के सैनिक दल के हाथ में था। उस दल के नेता कब खिलजी रहे, कब तुगलक, आदि, यो गौण बात है। वह दल एक जाति के लोगों का था, जिनका जीवन, रहन-सहन, भाषा और मजहब एक था। उस तरुण जाति में नये-नये देश जीतने की उमग सहज ही मौजूद थी। इस्लाम ने उनमें यह विश्वास पैदा कर दिया था कि उनकी वह उमग और लूटमार की प्रवृत्ति भी एक ईश्वरीय प्रेरणा है।

यों वे उमगें उनके लिए एक ऊँचा आदर्श बन गयीं। यह आदर्श उन्हे सदा आगे बढने को प्रेरित करता रहा। उनके दल मे छोटे-बडे सब बराबर थे, योग्यता से कोई भी आगे बढ सकता रहा। वे लोग काफी उत्पाती और उच्छृ खल थे, तो भी इस्लाम की शरीअत ने उनके समाज मे कुछ नियम बाँध दिये थे, और चूँकि वे नियम उनकी दृष्टि मे ईश्वरी कानून थे, इसलिए उनका उल्लघन करने की एक आन्तरिक रुकावट उनके लिए उपस्थित रहती थी। यदि उनका शासन उपद्रवमय था तो इसका समूचा दोष भी उन्हे नहीं दिया जा सकता। इसके लिए मुख्य दोषी शासित प्रजा थी जो निश्चेष्ट हो कर सब कुछ सहने को तैयार थी, और अपने राजनीतिक कर्त्तव्यों के प्रति बिलकुल बेहोश हो गयी थी। यदि हिन्दू सभ्यता मे पहले सा जीवन होता तो वह शकों की तरह तुर्कों को भी पालतू बना लेती, इस्लाम ने तुर्कों के दल में जो व्यवस्था पैदा की वह उससे भी अधिक अच्छी व्यवस्था पैदा कर देती।

खिलजियों के पतन-काल मे यदि कोई हिन्दू सरदार दिल्ली पर अधिकार कर भी लेता तो जहाँ उसे तुर्कों के उस जीवित दल का मुकाबला करना पडता, वहाँ उसके अपने पक्ष में कौन सी शक्तियाँ उपस्थित होतीं? यदि वह 'नीच' जात का होता— जैसा कि खुसरो था ही—तो उसे कहीं से भी सहयोग न मिलता। और यदि वह कुलीन होता तो भी उसकी दशा प्राय वही होती जो बगाल मे राजा गणेश की हुई। गणेश के बेटे के मुसलमान होने के विषय मे कई कहानियाँ प्रसिद्ध हैं, पर असलियत यह मालूम होती है कि उसके अधीन हिन्दू सरदार निश्चेष्ट थे जिनके सहयोग पाने की उसे कोई आशा न थी, और सचेष्ट मुस्लिम सरदारों और पीरों-फकीरों का अकेले मुकाबला करने लायक दृढ़ता, जो उसके बाप में थी, उसमें न थी।

चौदहवीं-पन्द्रहवीं सदी म उत्तर भारत के मैदान, मालवा, गुजरात और बहमनी रियासत के सिवाय समूचे भारत म हिन्दू राज्य थे। यदि उनमें राजनीतिक सचेष्टता और जागरूकता होती तो वे एक बडी शक्ति सगठित कर सकते थ। किन्तु उनकी दृष्टि सकीर्ण और शून्य थी। पुरानी लकीर पर चलने के अतिरिक्त कोई दूर का या ऊँचा लक्ष्य उनके सामने आता ही न था।

जिन राज्यों के सचालक अपने चारों तरफ की परिस्थिति को देखने और समझने में इतने वेसुध और जागरूकताहीन थे, उनके अन्दर का शासन भी कैसा रहा होगा? हमने दिल्ली और लखनौती के तुर्क शासन की एक अश मे मेवाड और उडीसा के मुकाबले म कमजोरी देखी है। हिन्दू शासन में एक दूसरी कमजोरी थी। जहाँ राज्य के नेता ऊँघने वाले और उपेक्षाशील होते हैं, वहाँ उसका सगठन बाहर के किसी हमले के बिना ही ढीला हो जाता है और चारों तरफ़ उपद्रव होने लगते हैं। चेदि देश का इतिहास इसका उदाहरण है। सल्तनत युग मे उसका बडा अश प्राय स्वतन्त्र रहा, किन्तु बारहवीं सदी के अन्त म वह राज्य आप से आप ही टूट गया। इसके बाद उसके स्थान में कोई सुसगठित राज्य पैदा न हुआ; जहाँ-तहाँ छोटे-मोटे सरदारों की रियासतें खडी हो गयीं, जिनकी सीमाओं पर हमेशा ही अशान्ति रहती होगी। यदि भारत में तुर्क न आते तो प्राय समूचे भारत की वही दशा हो जाती। इस प्रकार यदि तुर्कों के राज्य में शासक दल की असयत सचेष्टता के कारण उत्पात और उपद्रव होते रहते थे, तो हिन्दुओं के राज्य में शासकों की निश्चेष्टता के कारण वैसे ही उपद्रव जारी थे। प्रजा में राजनीतिक चेतनता न रहने के कारण उस युग मे देश की वैसी दुर्दशा होना अवश्यम्भावी था।

§३ भारतीय उपनिवेशों का अन्त—इस दशा मे भारत का अपने बाहरी उपनिवेशों से सम्बन्ध टूट जाना स्वाभाविक ही था। तेरहवीं सदी से पहले हिन्द मे तिब्बत और चीन से गयी जातियों की प्रधानता हो गयी थी। किन्तु उन विजेताओं पर भी विजितों के धर्म, सभ्यता, भाषा आदि का बहुत प्रभाव पडा। कम्बुज, स्याम और बरमा की जनताएँ अब भी बौद्ध हैं, वे भारतीय लिपियों मे अपनी भाषाएँ लिखती हैं, उनकी भाषाओं मे पाली और सस्कृत के शब्द भरपूर हैं।

भारतीय द्वीपों के राज्य भी कुबलेखान के हमले से टूट गये (१२९३ ई०), पर उसके ठीक बाद ही जावा में विल्वतिक्त का राज्य खडा हो गया। उसका सस्थापक कृतरजस जयवर्धन था। उसकी लडकी त्रिभुवनोत्तुगदेवी जयविष्णुवर्द्धनी

भी बडी योग्य स्त्री थी। अपने निकम्मे भाई के बाद वह बिल्वतिक्त की रानी बनी। उसकी बहन राजदेवी और माँ गायत्री भी उसके साथ शासन करती थीं। उसका पति राज्य का मुख्य न्यायाधीश था। उसके मन्त्री गजमद ने एक बार सभा में प्रण किया कि वह पहांग, सिंहपुर ( सिंगापुर ) और श्रीविजय ( सुमात्रा ) से लेकर बकुलपुर ( दक्खिनी बोर्नियो ) तक सब राज्यों को जीत कर छोड़ेगा। सब लोगों ने उसकी हँसी की; लेकिन रानी ने हँसी करने वालों को निकाल कर गजमद के हाथ में पूरी शक्ति दे दी। गजमद ने जो कहा था उससे अधिक कर दिखाया। क्रा की स्थलग्रीवा और सुमात्रा से आजकल न्यूगिनी कहलाने वाले द्वीप तक के सब प्रदेश बिल्वतिक्त के साम्राज्य में सम्मिलित हो गये। उनमें से बहुतों को जयविष्णुवर्धनी के 'जलधिमन्त्री' (जल-सेनापति) नल ने जीता था। आनाम, चम्पा, कम्बुज, अयोध्या और राजपुरी* तथा मरुत्म ( मर्त्तबान, बरमा के तट पर ) के राज्य बिल्वतिक्त की मैत्री चाहने लगे।

बिल्वतिक्त के साम्राज्य में भी बौद्ध और शैव मत के तान्त्रिक रूप जोरों पर थे। १३८९ ई० में जयविष्णुवर्धनी के बेटे राजसनगर की मृत्यु के बाद से अवनति होने लगी। पन्द्रहवीं सदी के पूर्वार्द्ध में राजा कृतविजय हुआ, जिसने चम्पा की एक राजकुमारी से विवाह किया। वह इस्लाम की पक्षपातिनी थी। इससे जावा में इस्लाम के पैर जम गये। १४४८ ई० में वह मरी, और १४७८ ई० में बिल्वतिक्त का साम्राज्य भी समाप्त हो गया। हिन्दुओं के अन्य राज्यों की तरह वह भी अपने अन्दर की जीर्णता से ही खण्डित हुआ।

**§४ सामन्त शासनप्रणाली और जागीर-पद्धति**—हिन्दू जनता की राजनीतिक निश्चेष्टता तथा तुर्कों की विजयों से मध्य युग में शासन और भूस्वत्व की एक नयी पद्धति चल पड़ी थी। पहले किसान अपनी जमीन का खुद मालिक होता था। अब तुर्क और दूसरे विजेता विजय के बाद जमीन आपस में बाँट लेते थे। किन्तु वे पहले किसानों को हटा कर उनके स्थान में खुद खेती करने के बजाय उन्हीं को खेती-बाडी करने देते और खुद उनके ऊपर मालिक बन बैठते थे। वास्तव में वे अपने इलाके के मालिक होते थे या शासक, सो कहना कठिन है। जनता के अपने स्वत्वों के प्रति उदासीन हो जाने के कारण इन दोनों बातों में विशेष अन्तर न रह गया था। जहाँ नये विजेता न पहुँचे, वहाँ भी पुराने कर

* अयोध्या और राजपुरी दोनों स्याम में हैं।

वसूल करने वाले और अन्य राजकीय अधिकारी उसी तरह किसानो के ऊपर जमीन के मालिक से बन बैठे। जहाँ पहले किसान जमीन के मालिक थे, वहाँ अब राजा सब भूमि का स्वामी माना जाने लगा। वह अपने बडे सरदारो या सामन्तो को मानो जमीन ठेके पर देता—या जागीर देता—था और वे अपने छोटे सरदारो और सैनिकों को देते थे। इस ठेके की परम्परा में प्रत्येक ठेके की यह शर्त होती थी कि सैनिक या सरदार अपने 'स्वामी' को बदले मे सैनिक-सेवा देंगे। इसी को हम सामन्त-शासनपद्धति या जागीर-पद्धति कहते हैं।

§५ सामाजिक जीवन—जातपॉत, परदा और बालविवाह—अब न केवल हिन्दुओं के राजनीतिक जीवन मे प्रत्युत उनकी सभ्यता के सब पहलुओं में जीर्णता आ गयी थी। उस सभ्यता मे प्रगति और प्रवाह बन्द हो गये थ। किन्तु जीर्ण होने पर भी हिन्दू सभ्यता ने अपने को बचाये रखने की अनुपम शक्ति दिखलायी। पहले मध्य युग में जात-पॉत का विकास हो चुका था और ब्याह-शादी, खान-पान पर कडे बन्धन लग चुके थे। वे बन्धन अब औरभी कडे हो गये, जिससे हिन्दू समाज के अन्दर के जीवन पर बाहर से कोई प्रभाव पडना बहुत कठिन हो गया। हिन्दुओं ने अपने विजेताओं को अपने से ऊँचा मानने के बजाय उलटा नीच बताया। तो भी इस युग तक वे अपनी जातों मे बाहर के आदमियों को मिला लेते थे। इसका एक उदाहरण, शहाबुद्दीन गोरी के हारे हुए कैदियों का गुजराती हिन्दुओं में मिलाये जाने का, दिया जा चुका है। दूसरा बडा उदाहरण अहोम लोगों के हिन्दुओं में मिलने का है। तेरहवी सदी में जब वे आसाम में आये तो वे अपनी बोली बोलते थे और गो-मास खाते थे। धीरे-धीरे उन्होंने एक आर्य भाषा अपना ली, और पूरे हिन्दू बन गये। परदा और बालविवाह की प्रथाएँ भी इसी युग में परिपक्व हुई।

§६ धार्मिक जीवन (अ) तौहीद और मूर्तिपूजा—इस्लाम के धार्मिक विचारों मे शिक्षित हिन्दुओं के लिए कोई नयी बात न थी। एक ब्रह्म का विचार उपनिषदों के समय से स्पष्ट रूप मे मौजूद था। शिक्षित समाज की दृष्टि मे ब्रह्मा, विष्णु और शिव आदि केवल उसकी विभिन्न शक्तियो के सूचक थे। उनकी मूर्त्तियाँ केवल सकेत थीं, जिनकी रचना में कला को अपना कौशल दिखाने का अवसर मिलता था। राणा कुम्भा के प्रसिद्ध कीर्ति-स्तम्भ में हिन्दुओं के सब देवी-देवताओं की मूर्त्तियां हैं। ब्रह्मा, विष्णु और शिव से शुरू कर ऋतुओं और मासों तक की मूर्त्त

किया गया है। स्पष्ट है कि वे सब मूर्त्तियाँ पूजा के लिए न थीं। वहाँ प्रतिमा का अर्थ केवल भाव का मूर्त्त रूप है। वह पत्थर में तराशी गयी कविता है। धार्मिक विचारों में हिन्दू कितने उदार थे, इसका उदाहरण भी उसी कीर्त्ति-स्तम्भ में मौजूद है। ब्रह्मा, विष्णु, शिव की मूर्त्तियों के साथ-साथ अरबी अक्षरों में अल्लाह का नाम भी वहाँ लिखा है। वह निराकार ब्रह्म का अरबी नाम है। इस प्रकार इस युग में इस्लाम के बुनियादी विचार को हिन्दुओं ने खुशी-खुशी स्वीकार कर लिया था।

( इ ) **जडपूजा, वाम मार्ग और अन्धविश्वास**—किन्तु जनसाधारण में मूर्त्तिपूजा जड-पूजा के रूप में प्रचलित थी। इसके अलावा, पहले मध्य युग तक हिन्दुओं के प्रायः सभी पन्थों में कोई न कोई विषयी या घोर रूप चल चुके थे। तीसरे, अलौकिक और असाधारण सिद्धियाँ ऊँचे जीवन का मुख्य चिन्ह मानी जाने लगी थीं। चौथे, पौराणिक धर्म में अर्थहीन क्रियाकलाप बहुत बढ गया था, और उस रूप में उसे निभाना फुरसत वाले निठल्ले लोगों के लिए ही शक्य था। देवगिरि के अन्तिम यादव राजा के मन्त्री हेमाद्रि ( हेमाड पन्त ) ने हिन्दू धर्म-कर्म का एक ग्रन्थ लिखा जिसमें बरस भर में करने के लिए प्रायः २,००० व्रतों और अनुष्ठानों का विधान है। उसी तरह के ग्रन्थ काशी और मिथिला में शूलपाणि उपाध्याय, कमलाकर भट्ट, नीलकंठ आदि ने लिखे, जिनमें हिन्दू धर्म का वही जटिल रूप दिखायी देता है।

( उ ) **सन्त और सूफी सुधारक सम्प्रदाय**—इस प्रवृत्ति के खिलाफ बाद में सुधार की एक लहर चली। वह लहर मुख्यतः सन्त लोगों ने चलायी जो सब वैष्णव भक्त थे। उन्होंने जनता का ध्यान मूर्त्तियों के जड रूप से हटा कर उनके भाव और आदर्श की तरफ खींचा, विषयासक्त पूजाओं की उपेक्षा कर शुद्ध पूजाओं को उज्ज्वल और आकर्षक रूप में उपस्थित किया, तथा पूजा की विधि और क्रिया-कलाप के बजाय भाव और भक्ति पर जोर दिया। मध्य एशिया में वैष्णव धर्म के सम्पर्क से इस्लाम में भी एक रहस्यवाद चला। उसके प्रवक्ता सूफी कहलाये। उनकी धार्मिक दृष्टि बहुत उदार थी।

इस युग के सब से पहले बडे सुधारक प्रयाग के रामानन्द तथा पंढरपुर (महाराष्ट्र) के विसोबा खेचर थे, जो दोनों चौदहवीं शती में हुए। रामानन्द ने गोपियों में घिरे कृष्ण की बजाय राम को भगवान् माना, संस्कृत के बजाय देशी

भाषा में उपदेश दिया और नीच कहलाने वाली जातियों के लोगों, स्त्रियों तथा मुसलमानों को भी शिष्य बनाया। भक्ति छोटे-बड़े सब को पवित्र बना सकती है, इसलिए भक्त सन्तों ने 'नीच' जातों को भी सहज ही ऊँचा उठा दिया। बिसोबा खेचर ने खुले शब्दों में मूर्त्ति-पूजा को धिक्कारा—"पत्थर का देवता नहीं बोलता" वह चोट से टूट जाता है। ' पत्थर के देवताओं के पुजारी मूर्खतावश सब खो बैठते हैं।"

चौदहवीं सदी में ही ईरान में हाफिज नामी प्रसिद्ध सूफी कवि हुआ। उसे बहमनी रियासत के मुहम्मदशाह २य तथा बंगाल के गयास आजमशाह दोनों ने अपने यहाँ आने का निमन्त्रण दिया था। इससे जान पड़ता है कि भारतीय मुसलमानों पर हाफिज का बड़ा प्रभाव पड़ा था।

कबीरदास

[ ब्रिटिश म्यूजियम में रक्खे एक पुराने चित्र की प्रतिलिपि, भारत कलाभवन ]

बिसोबा के शिष्य नामदेव तथा रामानन्द के शिष्य कबीर कहे जाते हैं। नामदेव ने तीर्थ, व्रत, उपवास आदि धर्म के सब बाह्य साधनों को व्यर्थ कह कर मन की शुद्धि और हरि के ध्यान को असल मार्ग बतलाया। कबीर एक मुस्लिम जुलाहा था। हिन्दू और मुसलमान दोनों में उसके अनुयायी हैं, और दोनों को उसने खरी-खरी सुनायीं। वह भी राम का उपासक था। हिन्दुओं से उसने कहा—

पाहन पूजे हरि मिलें,<br>
तो मैं पूजौं पहार।<br>
तातें ये चाकी भली<br>
पीस खाय संसार।

और मुसलमानों से—

काकर पाथर जोरि कै<br>
मसजिद लई चुनाय,<br>
ता चढ़ि मुल्ला बांग दे,<br>
क्या बहरा हुआ खुदाय?

कबीर के बाद सब से अधिक उल्लेख-योग्य नाम पजाब के गुरु नानकदेव
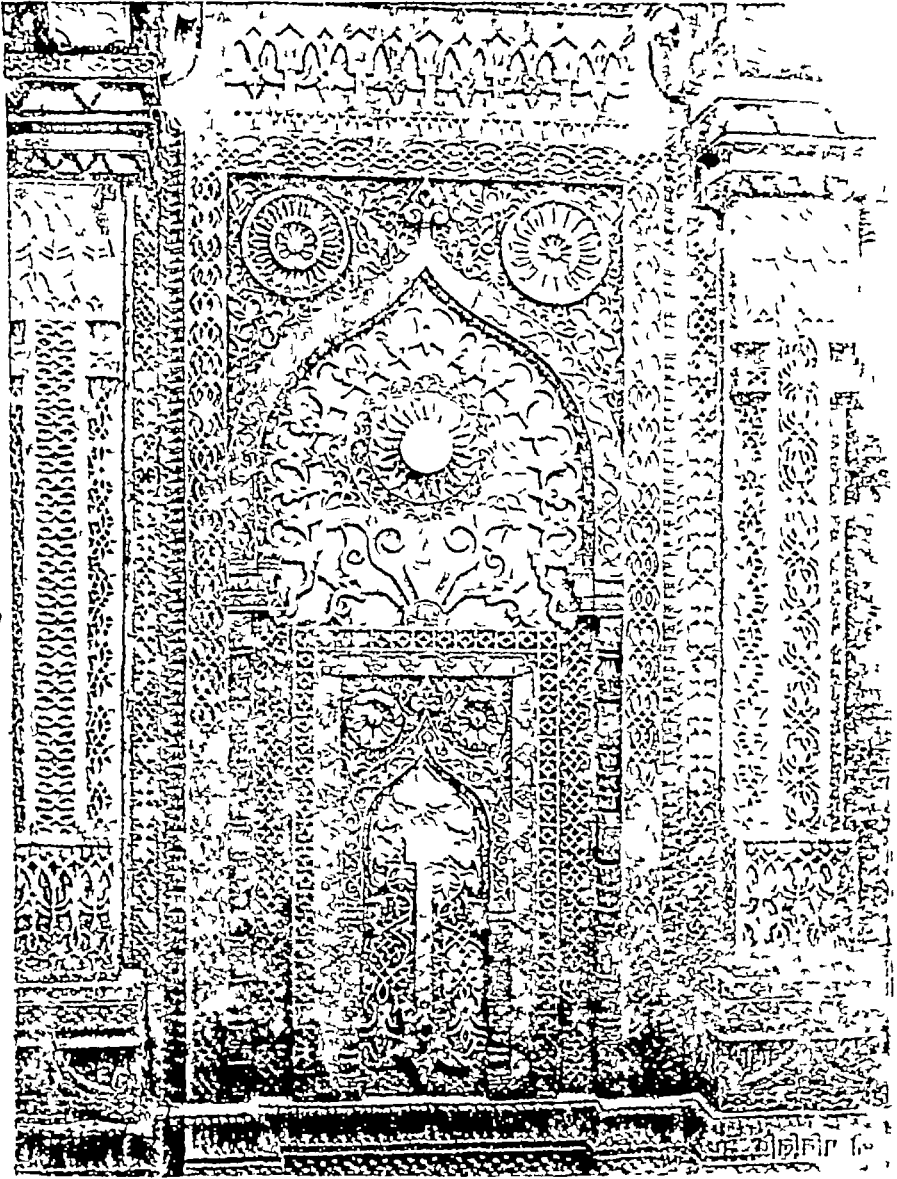
चन्देरी के एक मकबरे की मेहराब—मालवे की १५वीं सदी की कारीगरी। [ग्वालियर पु० वि०]

( १४६८–१५३८ ई० ) का है। वे सन्त होते हुए भी गृहस्थ थे। ससार के कर्त्तव्यों

को करते हुए भी सदाचरण और भक्ति से मनुष्य धर्मात्मा हो सकता है, यह उनकी शिक्षा थी।

नानक और हुसेनशाह का समकालीन बंगाली सन्त चैतन्य था (१४८५–१५३३ ई०)। राजा गणेश के प्रधान मन्त्री का पोता अद्वैताचार्य चैतन्य का साथी था। इन दोनों ने बंगाल को वज्रयान और शाक्त वाममार्ग से उबारा। इनके वैष्णव धर्म में जटिल दार्शनिकता न थी, भाव-प्रधान भक्ति ही उसका सार था। इन्होंने जाति-भेद को दूर किया और मुसलमानों को भी अपना शिष्य बनाया। बंगाल में बौद्ध भिक्खु-भिक्खुनियों का एक बड़ा दल था, जो हिन्दू समाज से अलग हो गया था। वे नेड़ा-नेडी कहलाते थे। अद्वैताचार्य ने उन सब को वैष्णव दीक्षा दे हिन्दुओं में मिला लिया। आसाम के अहोमों को हिन्दू बनाने का श्रेय भी वैष्णव भक्तों को है। किन्तु इन भक्तों के द्वारा भजन-कीर्त्तन को ही जीवन का मुख्य धन्धा बना देने का प्रभाव अच्छा न हुआ।

मारवाड की प्रसिद्ध मीराबाई, जो राणा साँगा की पतोहू थी, चैतन्य से १३ बरस पीछे हुई (१४९८–१५४६ ई०)। उसने अपने दादा और पिता की परम्परा से वैष्णव भक्ति पायी थी।

(ऋ) भारतीय इस्लाम—चौदहवीं सदी से—प्रादेशिक मुस्लिम राज्यों की स्थापना के साथ-साथ—इस्लाम भी भारतवर्ष में विदेशी न रहा। तुर्क लोग तब तक भारतीय हो गये थे और बहुत से भारतीय भी मुसलमान बन चुके थे। लोदी और अन्य पठान भी भारतीय मुसलमान—अर्थात् हिन्दू से बने हुए मुसलमान—थे। भारतवर्ष म इस्लाम का वास्तविक प्रचार प्रादेशिक मुस्लिम राज्यों द्वारा ही हुआ। उन राज्यों के शासकों मे से कई इस्लाम के उग्र प्रचारक थे और उन हिन्दी मुसलमानों ने तुर्कों से बढ कर इस्लाम को फैलाया। फीरोज तुगलक, सिकन्दर बुतशिकन, अहमदशाह गुजराती, महमूद बेगडा तथा सिकन्दर लोदी उस प्रकार के इस्लाम-प्रचारक थे। दूसरी तरफ ज़ैनुलआबिदीन जैसे सुशासक थे जिन्होंने अपने चरित्र के उदाहरण से इस्लाम का गौरव बढाया।

§७. शिल्प-कला—१४वीं-१५वीं सदी के सभी प्रादेशिक शासकों ने भारतीय सभ्यता, साहित्य और कला को अपनाया और पुष्ट किया। भारतीय कला के बहुत से पुराने चिन्ह तुर्कों ने मिटा दिये थे, तो भी भारतीय कारीगरों का कौशल मिट न गया था, और वह कौशल अब नयी मुस्लिम इमारतों में प्रकट हुआ। इनमें
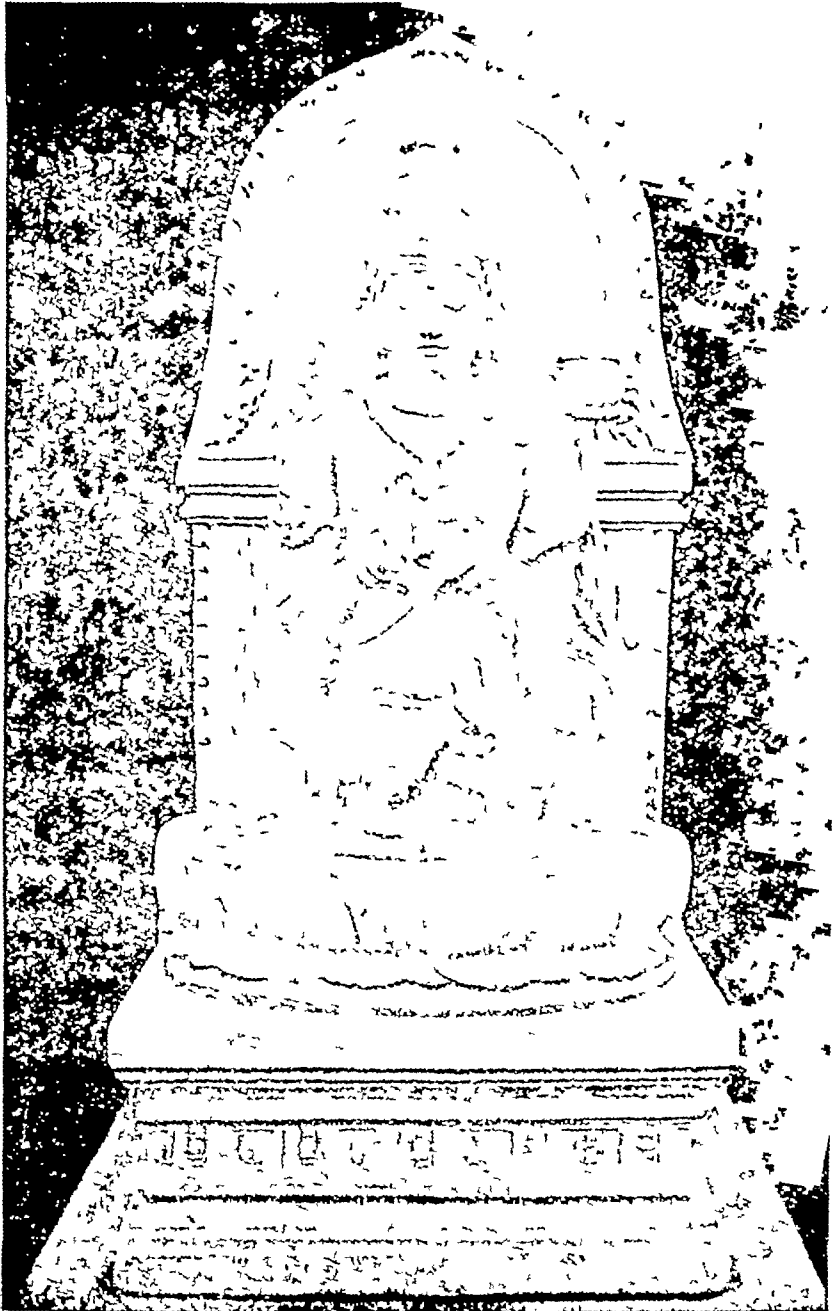
प्रज्ञापारमिता (जावा, १२वीं सदी)

से बहुत सी तो पुरानी हिन्दू इमारतों का केवल रूपान्तर थी। बगाल मे इलियास के बेटे सिकन्दरशाह की बनवायी पाण्डुश्रा ( जि० मालदा ) की अदीना मसजिद, जो एक बौद्ध स्तूप की सामग्री से बनी, तथा जिसके बराबर बडी मसजिद भारत में कभी कोई नहीं बन पायी, जौनपुर की अटला देवी मसजिद तथा मालवा, गुजरात और दक्खिन की इस युग की इमारतें भारतीय वास्तु-कला के बढ़िया नमूनों में से हैं। उनमे से प्रत्येक पर अपने अपने प्रान्त की पुरानी शैली की छाप है।
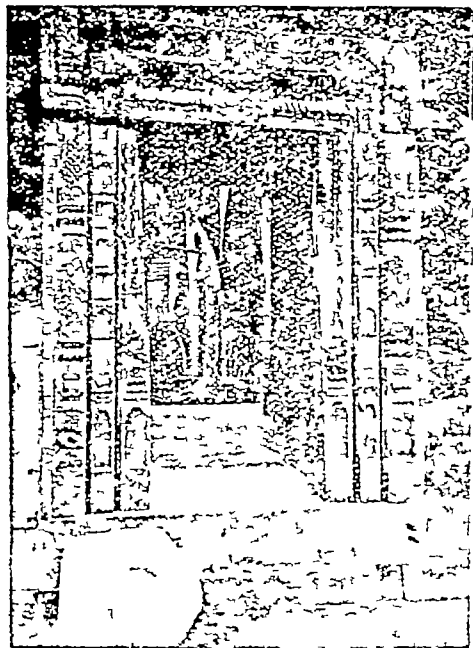
अदीना मस्जिद का एक दरवाजा [ भा० पु० वि० ]

हिन्दू राज्यो मे पुराना शिल्प बदस्तूर मौजूद रहा। मूर्ति-कला के लिए मुस्लिम दरबारों मे कोई स्थान न था, और हिन्दू राज्यों मे भी वह अवनति पर थी। चित्तौड के कीर्ति-स्तम्भ की मूर्त्तियाँ भद्दी हैं, किन्तु दक्खिन की नटराज की मूर्त्तियाँ अत्यन्त सुन्दर और सजीव हैं। इस युग की मूर्त्ति-कला का बहुत बढ़िया नमूना जावा से पायी गयी राजा रजससग अमुर्वभूमि ( १२२०–२७ ई० ) के समय की प्रज्ञापारमिता की प्रतिमा है, जो उस राजा की सुन्दरी रानी देदेस की प्रतिकृति मानी जाती है। पारमिता का अर्थ है बडप्पन

नटराज ( ताण्डव करते हुए शिव ) दक्खिन भारत १५वीं सदी का कांस्य। [ म्युज़े गुइमे, पेरिस ]

या परम उत्कर्ष। बौद्ध कला में भिन्न-भिन्न पारमिताओं को भी मूर्त्त रूप दिया गया है।

९८ साहित्य—चौदहवीं-पन्द्रहवीं सदी में देशी भाषाओं के साहित्यों को एक तरफ तो प्रादेशिक राज्यों ने प्रोत्साहन मिला, दूसरी तरफ उन्हें सन्त-सुधारकों ने अपना कर पुष्ट किया। देशी भाषाओं को उत्साहित करने का श्रेय मुसलमानों को अधिक है, क्योंकि हिन्दू विद्वान् तब तक प्रायः संस्कृत में ही लिखते थे। मलिक खुसरो (१२५३–१३२५ ई०) ने खड़ी बोली में सबसे पहले कविता की। बंगला साहित्य का उदय राजा गणेश के समय में हुआ। चण्डीदास के पद उसमें सब से पहली प्रसिद्ध रचना हैं। उसी प्रकार के पद विद्यापति ने मैथिली में लिखे। हुसेन-शाह, उसके पुत्र और सरदारों ने बंगला में भागवत और महाभारत के अनुवाद करवाये। बंगाली कवियों ने भी 'श्रीयुत हुसेन जगतभूषण' के नाम को अपने गीतों में चिरस्थायी किया। द्राविड भाषाओं में से तामिल और कन्नड में पहले भी साहित्य था। तेलुगु में राजा गणपति और उसके सामन्तों तथा मध्य काल के भक्तों के प्रोत्साहन और प्रयत्न से शुरू हुआ। १३वीं सदी के तामिल कवि कम्बन की रामायण तथा कवयित्री आण्डाल के गीत भारतीय साहित्य के उज्ज्वल रत्न हैं। कम्ब-रामायण के नमूने पर पीछे दूसरी भाषाओं में भी रामायणें लिखी गयीं।

सब मुस्लिम दरबारों के इतिहास फारसी में लिखे जाते थे। भारतीय तुर्कों की साहित्यिक भाषा फारसी थी। वे इतिहास महत्त्वपूर्ण हैं। आसाम के अहोम राजाओं के वृत्तान्त असमिया भाषा में बराबर लिखे गये। वे बुरजी कहलाते हैं।

९९ मध्य काल का ज्ञान और अर्वाचीन काल का आरम्भ—हम कह चुके हैं कि गुप्त युग में भारतवर्ष का ज्ञान और सभ्यता जहाँ तक पहुँच गये थे, उसके आगे प्रायः एक हजार बरस तक संसार ने विशेष उन्नति न की। इस बीच में पहले अरबों और फिर मंगोलों द्वारा भारत और चीन का ज्ञान पच्छिमी युरोप की जातियों तक पहुँचता रहा। दशगुणोत्तर गणना अरब लोगों ने भारत से सीखी, इसी कारण उन्होंने हमारे अंकों को हिन्दसे कहा। युरोप वालों ने वह गणना अरबवालों से सीखी। लकड़ी के ठप्पों (ब्लाकों) से कागज पर छापने की विद्या चीनवालों से सीख कर अरबों ने युरोप तक पहुँचायी। मंगोलों ने युरोप में बारूद पहुँचाया। इसी प्रकार और अनेक बातों का ज्ञान युरोप में पूरब से गया। रोम के पतन के समय से जब युरोप की जातियों ने ईसाई मत को अपनाया, तब से वे

अज्ञान की निद्रा में रहीं। अब धीरे-धीरे यह ज्ञान पा कर उनमें एक गहरी जागृति पैदा हुई। प्राचीन यूनान की विद्याओं के लिए वे तरसने लगीं। १४५३ ई० में तुर्कों के कुस्तुन्तुनिया जीत लेने पर प्राचीन यूनानी विद्याओं के अनेक विद्वान् भाग कर युरोप के देशों में पहुँचे।

पूरब और यूनान के ज्ञान से युरोप में एक नयी जागृति पैदा हो गयी। वहाँ की तरुण आर्य जातियों के विचार जहाँ एक बार उस ज्ञान से जाग उठे कि उन्होंने स्वयम् नयी नयी खोजें करना शुरू कर दिया। नये देशों की खोज की बात पीछे कही जा चुकी है। गुट्टनबर्ग नामक एक जर्मन ने इसी समय सीसे के चल टाइप से छापने की कला निकाली ( १४५४–५६ ई० ), जिससे नयी पुस्तकें छापने में बड़ी सुविधा हो गयी। इस प्रकार दुनियाँ में एक नया युग उपस्थित हुआ। उस नये युग को लाने में तीन वस्तुओं के ज्ञान का विशेष प्रभाव हुआ। एक नाविकों के दिग्दर्शक यन्त्र का, दूसरे बारूद का, और तीसरे पुस्तक छापने की कला का। ज्ञान के क्षेत्र में भारतवासी अब भी वैसे ही सोये रहे जैसे गुप्त युग के बाद से सोये थे। लेकिन पच्छिमी लोगों के जाग जाने का प्रभाव हमारे देश पर भी हुए बिना न रह सकता था। नयी जागृति के जोश में स्पेन वालों ने अपने दक्खिनी और रूसियों ने अपने पूरबी प्रान्त से मूरों और मगोलों को निकाल दिया।

---

# नवाँ प्रकरण

# मुगल साम्राज्य

( १५०६—१७२० ई० )

## अध्याय १

## साम्राज्य के लिए पहली जद्दोजहद

( १५०६—१५३० ई० )

§१ राणा साँगा—पच्छिमी मण्डल की राजनीतिक जद्दोजहद १५०६–२० ई०—उसी साल जब दीव का युद्ध हुआ, मेवाड़ में रायमल का बेटा साँगा और विजयनगर में वीर-नरसिंह का भाई कृष्णदेवराय गद्दी पर बैठे। दोनों योग्य और शक्तिशाली राजा थे। साँगा ने अपने दादा की नीति को पुनरु-

ज्जीवित कर मारवाड, बीकानेर, आम्बेर आदि सहित समूचे राजपूताने पर प्रभुत्व जमा लिया। वह दिल्ली के इलाकों पर भी हाथ साफ करने लगा। तब सिकन्दर लोदी के बेटे इब्राहीम लोदी ने उसपर दो चढाइयाँ की ( १५१७–१८ ई० ), जिनमें हार कर इब्राहीम को चम्बल की दून में धौलपुर तक का इलाका देना पडा। सिकन्दर और इब्राहीम ने ग्वालियर राज्य जीता था वह अब साँगा के हाथ आ गया, आगरा के पास पीलिया खाल उसके राज्य की सीमा बनी। दिल्ली और मालवे के बीच साँगा ने यों एक पच्चर ठोक दिया।

१५१० ई० में महमूद २य मालवे की गद्दी पर बैठा। उसके भाई ने सरदारों से मिल कर विद्रोह किया, और दिल्ली और गुजरात से मदद मँगवायी। गुजरात का मुजफ्फरशाह २य ( १५११–२६ ई० ) खुद फौज के साथ आया। चन्देरी के जागीरदार मेदिनीराय ने, जो महमूद का मन्त्री था, दिल्ली, मालवा और गुजरात की सम्मिलित सेनाओं को हरा कर विद्रोह मिटा दिया। पीछे उन्हीं अमीरों के बहकाने से महमूद ने मेदिनी को धोखे से मरवाना चाहा, और उस प्रयत्न में निष्फल हो कर वह मुजफ्फरशाह के पास गुजरात भाग गया। मेदिनी-राय ने राणा साँगा से मदद ली। पर साँगा से पहले मुजफ्फरशाह ने माडू जीत लिया, और गुजराती फौज की मदद से महमूद मेवाड की तरफ बढा। गागरौन की लड़ाई में वह साँगा का कैदी हुआ। तीन महीने बाद साँगा ने आधा राज्य वापिस दे कर उसे छोड दिया। रणथम्भोर, गागरौन, भेलसा, चन्देरी और कालपी के प्रदेश अर्थात् उत्तरी इलाके राणा के पास रहे, जिससे दिल्ली और मालवा की सल्तनतें एक-दूसरे से बिलकुल अलग हो गयीं, और चित्तौड राज्य की सीमा बुन्देलखण्ड और गढकटका से जा लगी। गढकटका का राजा संग्राम-शाह राणा संग्रामसिंह का समकालीन था, और उसने अपने आधी शताब्दी ( लग० १४६१–१५४१ ई० ) के शासन में भोपाल से मंडला तक—अर्थात् मालवा और छत्तीसगढ के बीच के—सब किले जीत कर एक मजबूत राज्य खडा कर दिया। साँगा ने उसके उत्तर तरफ बघेलखण्ड में बान्धोगढ के पास तक अपना प्रभुत्व फैला लिया। गागरौन की जीत के बाद साँगा ने गुजरात पर भी चढ़ाई की ( १५२० ई० )।

**§२. कृष्णदेवराय—दक्खिनी मण्डल की राजनीतिक जद्दोजहद १५०९–३० ई०**—नरस नायक अपने बेटों से कह गया था कि बीजापुर

से रायचूर दोआब तथा उडीसा से उदयगिरि जरूर वापिस लेना। १५१५ ई० तक कृष्णराय ने वे दोनों काम पूरे कर लिये, और कृष्णा नदी तक अपनी सीमा पहुँचा दी। १५१७ ई० में उसने कृष्णा पार कर बेजवाडा और कोंडपल्ली ले लिये, और तब विजगापट्टम तक चढाई की। खम्मामेट और नलगोंडा जिलों सहित कृष्णा-गोदावरी दोआब उसने प्रतापरुद्र से ले लिया। १५१२ ई० से गोलकुण्डा का प्रान्त बिदर से अलग हो कर स्वतन्त्र रियासत बन गया था। गोलकुण्डा के सुल्तान कुली कुतबशाह* ने गोदावरी-कृष्णा-दोआब को तथा बीजापुर के इस्माइल आदिलशाह* ने रायचूर दोआब को वापिस लेने की बहुत कोशिश की, पर कृष्णराय के मुकाबले में उनकी एक न चली। हारे हुए शत्रुओं के साथ कृष्णराय का बर्ताव बडी उदारता का होता और जीते हुए शहरों में वह कभी लूट-मार न होने देता था।

कृष्णदेवराय और उसकी रानियाँ
तिरुपति (जि० चित्तूर) के मन्दिर की समकालीन कांस्य मूर्तियाँ [भा० पु० वि०]

§३ बाबर का पूर्व चरित (१४६४-१५१२ ई०)—उत्तरी मंडल में राजनीतिक कशमकश—हम्मीर का वंशज साँगा जब पच्छिमी भारत में अपनी शक्ति स्थापित कर रहा था, तभी उत्तर-पच्छिमी पंजाब में, जिसे दिल्ली के सुल्तान कभी अधीन न कर पाये थे, तैमूर का एक वंशज, जो आयु और वीरता में साँगा के जोड का था, अपने पैर जमाने की कोशिश में लगा था (१५०६–२० ई०)।

**(अ) तुर्किस्तान**—तैमूर ने काशगर से ईजियन सागर तक सब देशों को जीता था, पर उसके वंशजों के हाथ में अब केवल खुरासान अर्थात् उत्तरी ईरान, आमू-सीर के प्रदेश और काबुल-गजनी बचे थे। खुरासान की राजधानी हरात

* अहमदनगर, बीजापुर और गोलकुण्डा के सुल्तान-वंशों के नाम क्रमश निजामशाह, आदिलशाह और कुतुबशाह थे। बराड के सुल्तानों का पद इमादशाह तथा बिदर वालों का बरीदशाह था।

थी। आमू-सीर प्रदेश में तीन छोटे-छोटे राज्य थे। एक समरकन्द का, दूसरा हिसार-बदख्शाँ का जिसकी राजधानी हिसार (आधुनिक स्तालिनाबाद के १२ मील दक्खिन-पच्छिम) थी, तथा तीसरा फरगाना का, जिसकी राजधानी अन्दिजान थी। फरगाना के शासक उमरशेख के १४८३ ई० मे एक बेटा हुआ जो इतिहास में बाबर के नाम से प्रसिद्ध हुआ। राणा साँगा इससे एक साल पहले पैदा हुआ था। तैमूर के पीछे मध्य एशिया मे मगोल सरदारों ने फिर जहाँ-तहाँ सिर उठा लिया था। फरगाना के नीचे सीर के काँठे मे ताशकन्द तब चगेजखाँ के वशजो की राजधानी थी। बाबर की माँ वहाँ के राजा की बेटी थी। इसी कारण न केवल बाबर और उसके वशज, प्रत्युत उनके सरदार भी भारत मे मुगल अर्थात् मगोल कहलाते रहे। अगली तीन सदियों मे भारत के जो मुगल बादशाह हुए, वे असल मे तूरानी (तुर्क) थे। मध्य एशिया के मगोल भी इस समय तक मुसलमान हो चुके और तुर्कों तथा तुर्किस्तान के पुराने आर्य निवासी ताजिकों मे घुल-मिल चुके थे। उनकी शकलें-सूरतें भी बदल कर ताजिकों की सी हो चुकी थीं। पर १४६५ ई० में खालिस मगोलों की एक नयी शाखा सीर के निचले काँठे मे आ गयी। वह अब तैमूरी राज्यो के दिगन्त पर काले बादलों की तरह मडरा रही थी। इतिहास मे वह उज्बग नाम से प्रसिद्ध है।

जब ११ बरस का कुमार बाबर फरगाना की गद्दी पर बैठा, तो तैमूर के वशज इस उज्बग आतक के बावजूद आपस के तुच्छ झगडों मे उलझे हुए थे। १५०३ ई० तक उज्बगों के नेता मुहम्मद शैबानी ने समरकन्द और फरगाना मे तैमूरियो की सत्ता मिटा दी। बाबर को उसने समरकन्द के पास जरफशाँ नदी के पुल पर ऐसा हराया कि शैबानी का नाम सुन कर बाबर काँप उठता था। उसे अपना देश छोड भागना पडा। हरात या काबुल जाने के इरादे से वह बदख्शाँ से गुजर रहा था कि खबरें आने लगीं कि शैबानी उधर भी चढाई करेगा। बदख्शाँ में खलबली मच गयी। वहाँ के अनेक भगोडे भी बाबर के साथ हो गये। रास्ते के 'ईल-ओ-उलूज' (पहाडी जगली लोगों) की उस सेना के साथ वह काबुल की ओर बढा।

(इ) काबुल—इधर काबुल का शासक बाबर का चाचा मर चुका था (१५०१ ई०)। कन्दहार में तब भी चगेजखाँ के वशजों का राज था। उन मगोलों ने काबुल ले लिया। हिन्दूकुश को पार कर बाबर काबुल की दून में उतरा, और बात की बात में मगोल शासक से काबुल छीन लिया (१५०४ ई०)।

(उ) उज़्बग—इसके १० बरस बाद तक भी बाबर का ध्यान पीछे (फरगाना) की तरफ रहा। इस बीच शैबानी आमू के निचले कॉठे—ख्वारिज़्म—को जीत चुका और अराल और बदख्शॉ के बीच सीर और आमू के सब प्रदेशों को अधीन करने के बाद खुरासान भी ले चुका था (१५०७ ई०)। यों सोलहवीं सदी के शुरू में मध्य एशिया से तैमूरी राजवश का नाम निशान मिट गया, केवल काबुल की गद्दी पर बाबर के रूप में उसका एक दीपक टिमटिमा रहा था। उसी बरस शैबानी कन्दहार पहुँचा। बाबर उसके आने की खबर सुनते ही काबुल से भाग खडा हुआ और जलालाबाद पहुँचा। शैबानी के लौटने की खबर पा वह वहाँ से लौटा और काबुल पहुँचने के बाद उसने बदख्शा को भी अधीन कर लिया। ये सब घटनाऍ १५०६ ई० से पहले की हैं। उस बरस से ईरान और मध्य एशिया के इतिहास में भी एक नया प्रकरण शुरू हुआ। १५१० ई० में बाबर को खबर मिली कि ईरान के सफावी राजवश के सस्थापक शाह इस्माइल से हार कर उज़्बग आमू का मैदान छोड़ कुन्दूज-दून तक हट गये हैं। इसी बीच मर्व के युद्ध मे मरते हुए उज़्बग योद्धाओं और उनके घोड़ों के बीच शैबानी कुचल कर मर गया। बाबर शाह के सामन्त रूप में समरकन्द की गद्दी पर बैठा, पर १५१२ ई० में उज़्बगों ने उसे फिर हरा कर बदख्शॉ की पच्छिमी सीमा (कुन्दूज नदी) तक अधिकार कर लिया। अपने देश से अन्तिम विदाई ले १५१३ या १४ ई० में वह फिर काबुल आया और तब से उसने अपना मुँह भारत की तरफ फेरा।

(ऋ) बाबर की पजाब पर चढ़ाइयॉ—अगले पाँच बरस में बाबर ने काबुल के राज्य को सुसगठित किया। १५१६ ई० में उसने भारत पर पहली चढाई की। प्राचीन कपिश देश का नाम अब काफ़िरिस्तान पड चुका था। उसकी पूरबी सीमा कुनार नदी है। कुनार के पूरब बाजौर के लोग भी बाबर के समय तक 'इस्लाम के विद्रोही' (हिन्दू) थे। बाबर ने उनपर चढाई की (१५१६ ई०)। बाजौरियों ने कभी बन्दूक न देखी थी। बाबर के पास बन्दूक के साथ तोपें भी थीं। परिणाम निश्चित था। बाजौर के बाद स्वात पार कर बाबर ने बुनेर जीता, और सिन्ध पार कर नमक की पहाड़ियाँ लाँघते हुए भेरा पर, जो तब जेहलम के दाहिने तट पर था, अधिकार कर लिया।

इस रास्ते में उसकी गक्खड सरदारों से अनेक मुठभेड़ें हुईं। तीर-कमान के मुकाबले में बन्दूकों की जीत होनी ही थी। बाबर के मुँह फेरते ही गक्खड़ों ने

विद्रोह किया। उनके दमन के लिए उसने पंजाब पर दो और चढ़ाइयाँ कीं। इन चढ़ाइयों में वह स्यालकोट तक पहुँच गया। उधर उसने कन्दहार भी जीत लिया। तब कन्दहार के मगोल शासकों ने, जो अरगून कहलाते थे, सिन्ध आ कर सम्मों से वह प्रान्त जीत लिया (१५२१ ई०)। सात बरस बाद उन्होंने पठानों से मुलतान भी ले लिया।

बाबर हिन्दुस्तान की गद्दी पर—सामने हुमायूँ

"तारीख़े-ख़ानदाने तैमूरिया" की हस्तलिखित प्रति से। [ खुदाब० पु० ]

§४. दिल्ली और पूरब की राजनीति १५१७–२५ ई०—इस बीच दिल्ली के पठान राज्य की बड़ी दुर्दशा रही। दुरभिमानी इब्राहीम लोदी ने अपने

अनेक सरदारों को बिगाड लिया। पूरब मे लोहानी अफगानों ने विद्रोह कर बिहार में एक स्वतन्त्र राज्य की नींव डाली ( १५२१ ई० )। इसी सीमान्त राज्य में फरीद उर्फ शेरखाँ सूर नाम के एक प्रतिभाशाली पठान को बहारखाँ लोहानी के मन्त्री की हैसियत से अपनी शासन-नीति परखने का अवसर मिला। उसी समय हुसेनशाह बगाली के बेटे नसरतशाह ( १५१९-३२ ई० ) की सेनाओं ने मिथिला के हिन्दू राज्य की अन्तिम सफाई कर हाजीपुर में छावनी डाली।

§५ उत्तर भारत का सम्राट् बाबर ( १५२६-३० ई० ) ( अ ) पंजाब और पानीपत—उधर पंजाब के हाकिम दौलतखाँ लोदी ने भी विद्रोह कर बाबर को बुला भेजा। तभी इब्राहीम लोदी का चचा अलाउद्दीन बाबर के पास पहुँचा और दिल्ली की गद्दी पाने के लिये उससे मदद माँगी। राणा साँगा के दूतों ने भी काबुल पहुँच कर यह प्रस्ताव किया कि दिल्ली राज्य पर बाबर और साँगा एक साथ हमला करें, बाबर दिल्ली तक ले ले और साँगा आगरे तक। इस दशा मे बाबर ने पंजाब पर फिर चढाई कर लाहौर और दीपालपुर तक जीत लिया। दूसरे बरस वह जमना तक चढ आया। इब्राहीम ने पानीपत पर उसका सामना किया। बाबर के पास ७०० युरोपी तोपें थीं, जिनकी गाडियों की पाँतो को चमडे के रस्सों से बाँध दिया गया था। प्रत्येक जोडी के बीच तूरे अर्थात् बडी ढालें थीं, जिनके पीछे बन्दूकची तैनात थे। उन तोपों की पंक्तियाँ सेना के आगे आगे बीच मे थी तोपों को यों बाँधने का तरीका १५१४ ई० मे कुस्तुन्तुनियाँ के उस्मानली तुर्कों ने ईरानियों के विरुद्ध युद्ध मे बरता था, और बाबर ने यह उन्हीं से सीखा था। पहले-पहल युरोप मे बोहीमिया के लोगों ने जर्मन रिसालो का हमला तोडने को यह तरीका निकाला था, और उनकी नकल उस्मानली तुर्कों ने की थी। बाबर का सेना-सचालन और साधनो के सामने अफगानों की वीरता किसी काम न आयी। चार-पाँच घंटों की लडाई में दिल्ली की फौज तहस-नहस हो गयी ( २१-४-१५२६ )।

( इ ) हिन्दुस्तान—पानीपत की हार का समाचार पा बहारखाँ लोहानी ने अपना नाम सुल्तान मुहम्मदखाँ रक्खा, और उसकी नायकता में पूरबी अफगान, तुर्कों की बाढ रोकने के लिए कन्नौज तक चढ आये। पच्छिमी अफगानों का नेता हसनखाँ मेवाती था, उसने इब्राहीम के भाई महमूद लोदी को दिल्ली का सुल्तान बना कर खड़ा किया। गरमी के मौसम में तुर्कों को आगे बढता न देख

मुहम्मदखाँ विहार लौट गया। उसके बाद पठानों मे अपने घर की फूट प्रकट होने लगी। बाबर के दिल्ली-आगरा दखल कर लेने पर दोआब, अवध और जौनपुर के बहुत से अफगान सरदारों ने भी उसे अपनी-अपनी सेवाएँ सौंप दीं। उनकी मदद के भरोसे उसने अपने बेटे हुमायूँ को उसी चौमासे मे पूरब की चढाई पर भेजा। हुमायूँ ने पाँच महीने मे अवध, जौनपुर और गाजीपुर तक जीत लिया।

( उ ) खानवा का युद्ध—हसनखाँ मेवाती और महमूद लोदी राणा साँगा से जा मिले। बाबर ने जमना के दक्खिन ज्योंही कदम रक्खा कि साँगा से उसकी लडाई ठन गयी। वह प्रदेश साँगा का वह उत्तरी सीमान्त था जिसे वह दिल्ली के सुल्तान से छीन चुका था। तो भी वहाँ के किलों के किलेदार सब पुराने ही थे। बाबर ने उनसे मिल कर बयाना, धौलपुर और ग्वालियर के किले ले लिये और बदले मे उन्हे दोआब में बडी-बडी जागीरें दे दीं। साँगा ने तेजी से बढ कर बाबर की फौज से बयाना छीन लिया। साँगा को इस प्रकार बढता देख बाबर भी आगरा से बढा और सीकरी पर डेरा डाल दिया ( ११-२-१५२७ ई० )। एक मुगल सेना-पति सीकरी से खानवा की ओर बढा, और राजपूतों से बुरी तरह हारा। बयाना की लडाई और इस मुठभेड़ के तजरबे से मुगल सेना मे त्रास फैल गया। इस विपत्ति ने बाबर की अन्तरात्मा को जड तक हिला दिया। उसने शराब छोड़ने का प्रण किया और अपनी सेना के धर्मभावों को उत्तेजित किया। उधर उसने साँगा से सन्धि की बातचीत भी शुरू की। साँगा ने पहली जीत के बाद एकाएक हमला न कर सुलह की बातों में बाबर को महीना भर तैयारी का मौक़ा दे दिया। बाबर ने इस बीच पानीपत की तरह खाई-खन्दकें खुदवा लीं और तोपों को गाडियों को रस्सों से बँधवा लिया।

१७ मार्च १५२७ ई० को खानवा के तग मैदान में लडाई हुई। बाबर ने एक अच्छी खासी रक्षित सेना अपने व्यूह के पीछे दोनों किनारों पर अलग रख ली थी। राजपूत सवारों के दल बाबर की आग बरसाने वाली दीवार पर टूटते और कई बार उसके पासों को पीछे ठेल ले जाते थे। इसी समय सिर में एक तीर खा कर राणा मूर्च्छित हो गया, और उसी बेहोशी में उसे पालकी पर पीछे ले जाया गया। उसका स्थान झाला अज्जा ने ले लिया, और लड़ाई वैसे ही जारी रही। जब सारी राजपूत सेना पूरी तरह लड़ाई मे जुट गयी तो बाबर की रक्षित सेना ने तेजी से घूम कर चन्दावल ( पिछले हिस्से ) को घेर कर पीछे से हमला किया। यह मगोलों
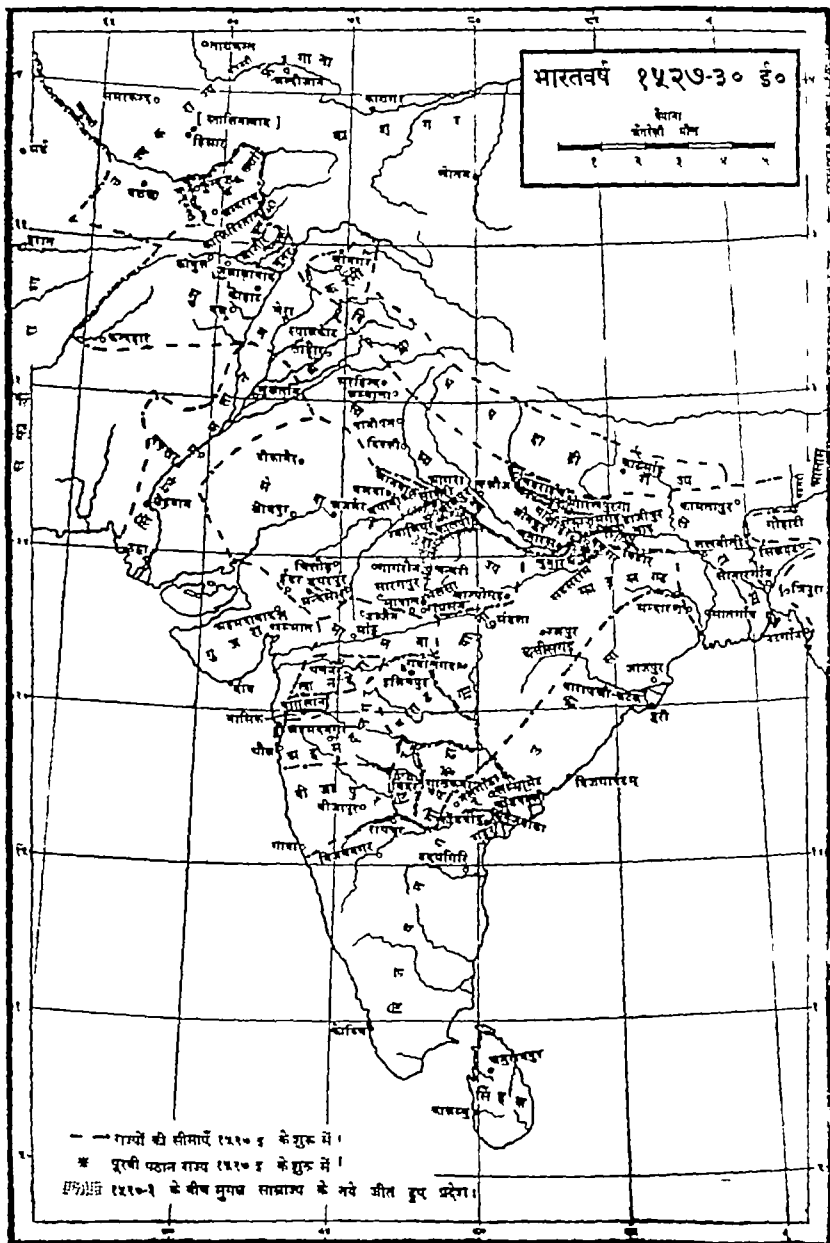
भारतवर्ष १५२७-३० ई०
पैमाना
अंग्रेज़ी मील
— — राज्यों की सीमाएँ १५२७ ई के शुरू में।
* पूरबी पठान राज्य १५२७ ई के शुरू में।
१५२७-३ के बीच मुग़ल साम्राज्य के नये जीते हुए प्रदेश।

की खास चाल थी, जिसे वे तुलुगमा कहते थे। बाबर ने जरफशाँ के पुल वाली लडाई में शैबानी की इसी चाल से हार कर समरकन्द का मुकुट खोया था। अब इसकी बदौलत हिन्दुस्तान का मुकुट मिला।

सागा की तरफ इस युद्ध में राजपूताने और मालवे के प्रत्येक हिस्से के अतिरिक्त अन्तर्वेद तक के राजपूत लडने आये थे। उन सभी प्रदेशों में इस हार का धक्का पहुँचा। झाला अज्जा, हसनखाँ मेवाती, मीराबाई का पिता रत्नसिंह राठौर आदि इस युद्ध में खेत रहे। साँगा को जब बसवा गाँव में (बाँदीकुई के पास) होश आया तब वह इस बात पर बहुत खीझा कि उसे लडाई के मैदान से दूर क्यों लाया गया। उसने प्रण किया कि बाबर को जीते बिना चित्तौड न लौटूँगा, और रण-थम्भोर में डेरा डाल कर फिर युद्ध की तैयारी शुरू की।

(ऋ) राजपूताना-मालवा—जनवरी १५२८ ई० में बाबर मालवा-राजपूताना की चढाई के लिए निकला और सबसे पहले मेदिनीराय के चन्देरी किले की तरफ चला। साँगा भी उसी तरफ बढा, पर कालपी के पास उसके साथियों ने, जो युद्ध के विरोधी थे, उसे विष दे दिया। चन्देरी के राजपूतों ने वीरता से लड कर अपना बलिदान किया।

(लृ) पूरब के प्रदेश—उसके आगे बाबर का इरादा मालवे के दूसरे प्रमुख सरदार सलहदी के किलों—रायसेन, भेलसा और सारंगपुर—को ले कर मेवाड पर चढाई करने का था। किन्तु उसी समय उसे खबर मिली कि अवध और पूरब के अफगानों ने विद्रोह कर कन्नौज से मुगल सेना को निकाल दिया है। दूसरे, जब बाबर का ध्यान राजस्थान की ओर था, तभी नसरतशाह बगाली ने आजमगढ और बहराइच तक अधिकार कर लिया था। बाबर चन्देरी से कालपी के रास्ते सीधा कन्नौज की तरफ बढा। अफगान विद्रोही उसके आने पर भाग गये। उसी गरमी और चौमासे के शुरू में उसने जौनपुर और बक्सर तक के प्रदेशों को पूरी तरह काबू में कर लिया।

राणा साँगा की मृत्यु के बाद महमूद लोदी पूरब की ओर चला आया। बाबर के पीठ फेरते ही वहाँ फिर विद्रोह की आग सुलगी। लोदी ने लोहानियों से बिहार छीन कर उसी को अपनी राजधानी बनाया, तथा मुगलों से गाजीपुर, बनारस छीन कर चुनार और गोरखपुर को घेर लिया। १५२९ ई० के शुरू में बाबर को फिर पूरब लौटना पडा। उसके आते ही विद्रोही सेना तितर-बितर हो गयी, और

लोहानी नेता जलाल ने उसे एक करोड कर दे कर बिहार की गद्दी पर बैठने की स्वीकृति पायी।

मुगलों की इस तीसरी पूरबी चढाई के समय बंगाली सेना गंडक के चौबीस घाटों को रोके खडी थी, और घाघरा-गंडक-दोआब के लिए भी लडने को तैयार थी। बाबर जौनपुर से घाघरा की ओर बढा। शत्रु चुस्त बन्दूकची थे, इसलिए उसने सावधानी से तैयारी की। घाघरा पार कर पानीपत और खानवा की तरह उसने बंगालियों को भी पीछे से घेर कर पूरी तरह हरा दिया। एक मास के बाद बाबर और नसरतशाह ने सन्धि कर ली।
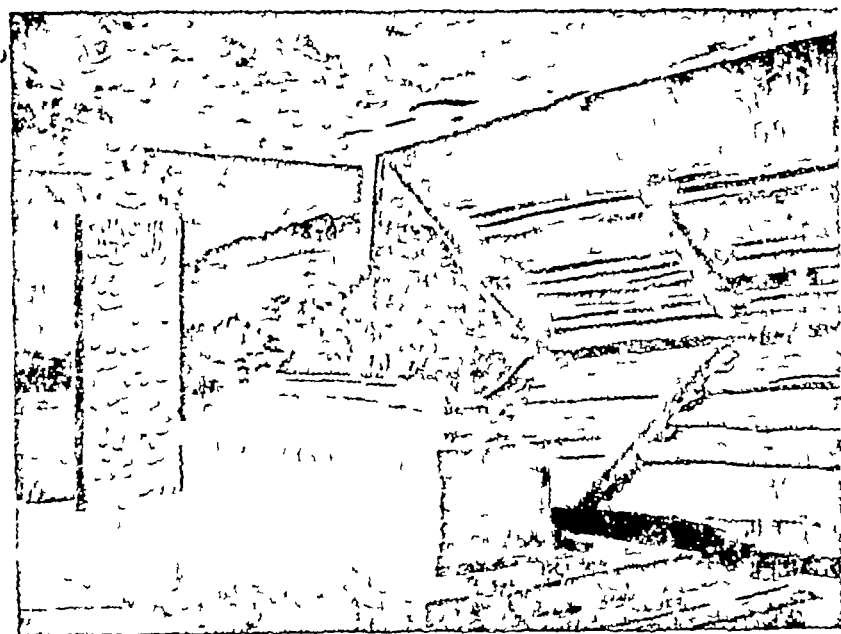
काबुल में बाबर का मकबरा [ फादर हेरस के सौजन्य से ]

पानीपत, खानवा और घाघरा की विजयों से बाबर उत्तर भारत का सम्राट् बन गया, और उसका साम्राज्य बदख्शाँ से बिहार तक फैल गया। १५३० ई० में उसका आगरा में देहान्त हुआ और शरीर काबुल ले जा कर दफनाया गया।

## अध्याय २

### साम्राज्य के लिए दूसरी जद्दोजहद और सूर साम्राज्य

### ( १५३०—१५५८ ई० )

§१. बादशाह हुमायूँ—पहली परिस्थिति—हुमायूँ को जब हिन्दुस्तान की गद्दी मिली, तो उसे अपने भाई कामरान को बदख्शाँ काबुल, कन्दहार और पंजाब सौंपना पड़ा। यों उसके राज्य में केवल अन्तर्वेद बचा। उसका पिता उसके लिए दो काम अधूरे छोड़ गया था—एक पच्छिम की तरफ राजपूताना-मालवा को जीतना और दूसरे पूरब में अफगानों का विद्रोह दबाना।

मेवाड़ में साँगा के पीछे उसका छोटा बेटा रत्नसिंह राणा हुआ। रत्नसिंह का बड़ा भाई भोजराज—मीराबाई का पति—साँगा से पहले मर चुका था। खानवा की हार से मेवाड़ के गौरव को भारी धक्का लगा, तो भी उसकी सीमा आगरा के पास से केवल बसवा गाँव तक हटी थी। मालवे के महमूद खिलजी ने अब अपने छिने हुए इलाकों को वापिस लेना चाहा। रत्नसिंह ने मालवे पर चढ़ाई कर उसे उज्जैन से भगा दिया। गुजरात के मुजफ्फरशाह २य का बेटा बहादुर अपने भाइयों के डर से भाग कर राणा साँगा की शरण में रहता था। साँगा की माँ उसे बहुत प्यार करती और 'बहादुर बेटा' कह कर पुकारती थी। १५२६ ई० में उसने गुजरात की गद्दी पायी। रत्नसिंह से भी उसकी अच्छी मैत्री रही। रत्नसिंह जब उज्जैन से लौट रहा था, उसी समय बहादुरशाह ने भी महमूद पर चढ़ाई की। रत्नसिंह ने सलहदी आदि सरदारों के साथ अपनी बहुत सी सेना उसके साथ कर दी। बहादुरशाह ने महमूद को कैद कर दक्खिनी मालवा ( उज्जैन और माडू ) भी उससे छीन लिया ( १५३० ई० )।

बाबर के मरने से पहले इधर तो पच्छिम में बहादुरशाह का सितारा चमक उठा, उधर पूरब में उससे भी योग्य एक व्यक्ति प्रकट हुआ। १५२६ ई० में जलालखाँ लोहानी को जब बिहार की सल्तनत वापिस मिली, तो उसने अपने बाप के भूतपूर्व मन्त्री और अपने शिक्षक शेरखाँ सूर को फिर अपना मन्त्री बनाया। बाबर की अन्तिम बीमारी के समय शेरखाँ ने चुनार का किला ले लिया।

§२ बहादुरशाह गुजराती—१५३१ ई० मे राणा रत्नसिंह को उसके एक सरदार ने मार डाला, और १५३२ मे नसरतशाह बंगाली भी चल बसा। तब बहादुरशाह और शेरखाँ को अपने-अपने मंडल मे प्रमुख शक्ति बनने का अवसर मिल गया। उसी समय मालदेव मारवाड की गद्दी पर बैठा। मालदेव के पुरखा बदायूँ के राठौड थे, जो १३वीं सदी के अन्त में मारवाड़ में आ बसे थे। अब वे राजपूताना में एक राजशक्ति बनने लगे। गुजरात का पुर्तगालियों से सीधा सम्पर्क होने के कारण बहादुरशाह को तोपें और तोपची पाने की मुगलों से भी अधिक सुविधा थी। उसके पडोसी राज्य अब सब पस्त पड़े थे। रत्नसिंह के बाद उसका भाई विक्रमाजीत १४ बरस की उम्र मे मेवाड का राणा बना। उसके छिछोरे स्वाभाव से उकता कर मेवाड और मालवे के अधिकाश सरदारों ने उसका साथ छोड दिया। उनमें से बहुतों ने अपनी सेवाएँ बहादुरशाह को सौंप दीं। बहादुर ने पूरबी और उत्तरी मालवा (रायसेन, भेलसा, रणथम्भोर आदि) मेवाड से ले लिये। मालदेव ने भी उसी समय मेवाड के पच्छिमोत्तर के इलाके—अजमेर, नागोर आदि—ले लिये। अन्त में बहादुरशाह ने चित्तौड पर चढाई कर उसे भी लूटा। अलाउद्दीन के बाद यह चित्तौड़ का दूसरा "साका" हुआ। उत्तरी मालवे के जिन प्रदेशों को खानवा-युद्ध के बाद से मुगल अपने मुँह का कौर समझे हुए थे, उन्हें हुमायूँ के देखते-देखते बहादुरशाह ने ले लिया। इसलिए दोनों मे युद्ध ठन गया।

§३ हुमायूँ का मालवा गुजरात जीतना—बहादुरशाह चित्तौड घेरे हुए था जब हुमायूँ कालपी, चन्देरी, रायसेन होता हुआ उज्जैन पहुँचा (फरवरी १५३५ ई०)। चित्तौड लेकर बहादुरशाह उसकी तरफ बढा। मन्दसोर पर दोनों का सामना हुआ। दो महीने अपनी मोर्चाबन्दी मे घिरे रहने के बाद एक रात गुजराती सुल्तान अपनी सेना को किस्मत के हवाले छोड कुछ साथियों के साथ भाग निकला। इस तरह गुजरात और मालवा हुमायूँ के हाथ आये, किन्तु अपने भाई अस्करी के विद्रोह के कारण उसे जल्द उत्तर को लौटना पडा। उसका पीठ फेरना था कि बहादुरशाह और उसके साथियों ने गुजरात, मालवा और खानदेश को फिर वापिस ले लिया (१५३६ ई०)।

§४. पुर्तगालियो का तट-राज्य—बहादुरशाह ने पुर्तगालियों की मदद के बदले उन्हे मुम्बई, साष्टी† और बसई के द्वीप दिये। किन्तु उन्हे किलाबन्दी करते

†साष्टी का बिगड़ कर अँगरेजी में साल्सेट बन गया है।

देख कर उसने उन्हे निकालना चाहा और अहमदनगर और बीजापुर के शाहों को भी वैसा करने को लिखा। वे चिट्ठियाँ पुर्तगालियों के हाथ पड़ गयीं। उनका मुखिया नूनो-दा-कुन्हा एक बार दीव आकर बीमार पड़ा था तो बहादुरशाह उसे देखने उसके जहाज पर गया। बहादुरशाह जब लौट रहा था तो पुर्तगालियों ने उसकी नाव पर हमला कर उसे मार डाला (१५३७ ई०)। महमूद बेगडा पुर्तगालियों की समुद्र पर प्रभुता न रोक पाया था, अब उसका पोता उन्हें तट-प्रदेश से भी निकालने में विफल हुआ। करंजा से बुलसाड तक कोंकण के उपजाऊ तट को काबू कर पुर्तगालियों ने उसे अपना 'उत्तरी प्रान्त'* बनाया और उसकी राजधानी बसई में रक्खी। इसी समय स्पेनवालों ने मेक्सिको और दक्खिन अमेरिका में अपना साम्राज्य स्थापित किया (१५१६-३६ ई०)।

§५ बिहार का बेताज बादशाह शेरखाँ—नसरतशाह की मृत्यु पर उसका भाई महमूद उसके बेटे को मार कर बंगाल की गद्दी पर बैठा। नसरतशाह का दामाद मखदूम-ए-आलम उसकी तरफ से हाजीपुर का सर-ए-लश्कर था, उसने महमूद को बादशाह न माना। मखदूम ने शेरखाँ को अपना मित्र बना लिया था। महमूदशाह ने उन दोनों से लड़ाई छेड़ी। मखदूम मारा गया। बिहार के सब जागीरदार अब शेरखाँ के विरोधी हो गये थे, क्योंकि उसने उनकी जमीनें नाप कर उन्हें राज्य-कर का ठीक हिस्सा देने को मजबूर किया, उनके सब कोटले ढहा दिये, और उनके लिए प्रजा पर जुल्म करना असम्भव कर दिया था। फल यह हुआ कि प्रजा तो शेरखाँ के शासन को राम राज्य मानने लगी, पर सरदार उसके जानी दुश्मन बन गये। बिहार में उसको वही हालत हो गयी जो मेदिनीराय की मालवे में हुई थी। शेरखाँ के खिलाफ सरदारों ने सुल्तान जलाल लोहानी के कान भरने शुरू किये। जलाल लोहानी अपने मन्त्री के शिकंजे से बचने के लिए महमूदशाह बंगाली की शरण में भाग गया। वहाँ से बंगाली फौज के साथ उसने शेरखाँ पर चढ़ाई की। बंगाल-बिहार के बीच के तंग पहाड़ी रास्ते के पच्छिमी मुँह पर किऊल नदी के किनारे सूरजगढ पर थोड़ी सी सवार सेना से शेरखाँ ने बंगाली फौज को हरा दिया (१५३४ ई०)। उस जीत से वह बिहार का बेताज बादशाह हो गया। बादशाह बनने के प्रलोभन से बच कर वह हुमायूँ का खुतबा पढ़ता रहा। किसानों की खुशहाली के लिए सावधान रहने और सेना

* दक्खिनी प्रान्त गोवा का था।

को नियम से वेतन देने के विषय में उसकी दूर-दूर तक प्रसिद्धि हो गयी। उसकी सेना शुरू में अफगान सवारों की थी। अब उसने बिहार में किसानों की एक पैदल सेना तैयार करके उसे बन्दूकों से सुसज्जित किया। शेरखाँ के ये बक्सरिये बन्दूकची १८वीं सदी के अन्त तक प्रसिद्ध रहे, और फिर उन्हीं की भरती से अँगरेजों की वह सेना बनी जिसने उन्हें समूचा भारत जीत दिया।

§६ शेरखाँ का बगाल जीतना—हुमायूँ की मालवा की चढाई के समय शेरखाँ ने अपना राज बढाने का अच्छा अवसर देखा। मुँगेर और भागलपुर ज़िलों पर धीरे-धीरे कब्जा कर उसने गौड पर चढाई की। महमूदशाह ने १३ लाख अशर्फियाँ दे कर उसे विदा किया। इस रकम से वह नयी फौज तैयार हुई जिससे दो बरस पीछे उसने महमूद को बगाल से निकाल भगाया।

रोहतासगढ—कथूटिया दरवाजा और बुर्ज [ भा० पु० वि० ]

§७ हुमायूँ की शेरखाँ पर चढाई और बगाल जीतना—हुमायूँ के मालवे से लौट आने पर शेरखाँ चुप बैठ गया। पर इसी बीच महमूद ने गोवा के पुर्तगाली गवर्नर से मदद माँगी। पुर्तगाली लोग पहले-पहल सन् १५२३ ई० में

चटगाँव में उतरे थे। शेरखाँ का अब यह जरूरी मालूम हुआ कि पुर्तगाली मदद आने से पहले वह अपने शत्रु से निपट ले। उसने गौड का किला घेर कर अपनी सेना की टुकडियों से बगाल के प्रत्येक जिले पर दखल कर लिया।

इस दशा में हुमायूँ शेरखाँ के खिलाफ रवाना हुआ। शेरखाँ गौड पर विश्वस्त सेनापतियों को छोड झट चुनार आया और उस किले में खूब रसद-बारूद जमा करके उसने मुगलों को जब तक बने वहीं रोकने का प्रबन्ध किया। हुमायूँ शेरखाँ के फन्दे में फँस चुनार को सर करने में लग गया। उधर शेरखाँ अपने लिए एक नया आधार और नया रास्ता बनाने लगा। सहसराम से और ऊपर सोन के किनारे रोहतास का विकट पहाडी गढ था। शेरखाँ ने रोहतास के राजा से शरण माँगी, और शरण पाने पर धोखे से उस गढ को हथिया लिया। तब उसने झाडखड के राजा से लड कर बिहार के दक्खिन का पहाडी प्रदेश ले लिया। अप्रैल ( १५३८ ई० ) में शेरखाँ के सेनापतियों ने गौड़ ले लिया और मई में चुनार मुगलों के हाथ आया। उधर हुमायूँ गौड को रवाना हुआ, इधर शेरखाँ गौड की अतुल सम्पत्ति ले झाडखड के रास्ते रोहतास को चल दिया। गौड के महलों को वह हुमायूँ के आराम के लिए सजा कर छोडता आया। बिहार-बगाल दोनों अब हुमायूँ के हाथ में थे, और शेर झाडखड में जा छिपा था।

**६८. बंगाल और जौनपुर का बादशाह शेरशाह**—उसी साल जाडे में शेरखाँ ने झाडखड से निकल कर समूचे बिहार और जौनपुर पर कब्जा कर लिया। प्रजा और किसानों को लूटने के बजाय उसने मालगुजारी की दो किस्तें ठीक समय पर उगाह लीं। दिल्ली-आगरे का बगाल से सम्बन्ध टूट गया। हुमायूँ गौड से रवाना हुआ, तो शेरखाँ ने अपनी सेनाएँ रोहतास में समेट लीं। कर्मनाशा नदी पर चौसा गाँव के पास उसने हुमायूँ का रास्ता रोका। शेरखाँ का चरित्र उस समय की एक घटना से प्रकट होता है। एक दिन जब मुगल दूत उसके डेरे में गया तो वह अपने साधारण सिपाहियों के साथ फावडा लिये खन्दक खोदने में लगा था। उसी हालत में जमीन पर बैठ कर उसने दूत से बातचीत की। सन्धि की बातचीत विफल हुई। शेरखाँ ने एक रात चुपके से कर्मनाशा पार कर बडे सवेरे, जब मुगल सेना सो रही थी, उसपर हमला कर दिया। हजारों मुगल अफगानों के हाथ मारे गये और गंगा की धार में डूब गये। हुमायूँ एक भिश्ती की मदद से मुश्किल से बच कर भागा। बगाल, बिहार, जौनपुर और अवध पर शेरखाँ का पूरा अधिकार हो गया। अब वह

शेरशाह के नाम से गौड की गद्दी पर बैठा ( १५३९ ई० )। हुमायूँ के पास सिर्फ़ दोआब, सम्भल तथा जमना का दाहिना काँठा बच गया।

§९. **शेरशाह का हिन्दुस्तान और पजाब जीतना**—सन् १५३३ ई० में बाबर के मौसेरे भाई मिर्जा हैदर ने काशगर के सुलतान के साथ उत्तर की तरफ से कश्मीर पर चढाई की थी। उन दोनों को हार कर भागना पडा था। मिर्ज़ा हैदर अब हुमायूँ के पास आ गया। हुमायूँ ने अपने भाई कामरान से बड़ी मिन्नत की कि वह भी उसे शेरशाह के खिलाफ मदद दे। लेकिन कामरान ने उसकी एक न सुनी। उन्हें आपस मे झगड़ते देख शेरशाह ने तमाम मुगलों को भारतवर्ष से निकालने की ठानी। हुमायूँ उसके मुकाबले को एक भारी फौज ले कर आया। कन्नौज पर दोनों दल आमने-सामने हुए। हुमायूँ ने गगा पार कर पानीपत और खानवा की तरह अपनी सेना का व्यूह बनाया। जजीरों से बँधी तोपगाडियों की विकट पाँत मिर्ज़ा हैदर के नेतृत्व में सामने बीचोंबीच थी। शेरशाह ने तोपों के जमने से पहले ही मुगल सेना के दोनों पार्सों पर ज़ोर का धावा बोल दिया। जैसे ही वे पासे टूटे कि उसके रिसाले ने उन्हें घेर कर मुगल चन्दावल के साथ उनके केन्द्र की तरफ ढकेला। यह भागती हुई भीड तोपखाने की जजीरों पर जा पडी और उनकी पक्ति को तोड़ती-फोड़ती आगे निकल गयी। मुगलों की डरावनी तोपों को एक भी गोला फेंकने का अवसर न मिला। अफगानों के हमले के पहले वे जमने भी न पायी थीं, और अब उनके सामने अपनी ही सेना के भगोडे थे। हुमायूँ जान बचा कर आगरे की तरफ भागा ( १७-५-१५४० ई० )।

शेरशाह ने पजाब तक मुगलों का पीछा किया। ग्वालियर के मुगल सेनापति ने वह किला न छोडा, इसलिए उसपर घेरा डाल दिया गया। पजाब से कामरान ने काबुल की राह ली और हुमायूँ सिन्ध की तरफ भाग गया। मिर्जा हैदर कश्मीर में घुसा, और इस बार वहाँ के एक दल के साथ मिल कर राज्य पर अधिकार कर लिया। कश्मीर और काबुल दोनों से पजाब उतरने वाले रास्ते नमक-पहाड़ियों में मिलते हैं। इसलिए शेरशाह ने गक्खड़ों के इस देश को पूरी तरह काबू करने के विचार से उसके ठीक केन्द्र में रोहतास नाम का गढ बनवाना शुरू किया। वह काम उसने टोडरमल को सौंपा, जो लाहौर में उसकी सेवा में आया था।

§१०. **राजस्थान में मालदेव का प्रबल होना**—शेरशाह के विस्तृत साम्राज्य का दक्खिनी छोर—राजपूताना, मालवा और बुन्देलखण्ड की तरफ़—

बिल्कुल अरक्षित था। बहादुरशाह की मृत्यु के बाद से गुजरात-मालवा में कई छोटे-छोटे सुल्तान और राजा उठ खड़े हुए थे। मेवाड़ की हालत और भी खराब थी। वहाँ कई घरेलू लड़ाइयों के बाद राणा साँगा के छोटे बेटे उदयसिंह को गद्दी मिली थी। पच्छिमी भारत की प्रमुख शक्ति अब मालदेव के हाथ में थी। राज पाने के पाँच बरस के अन्दर उसने दक्खिन की तरफ आबू तक, उत्तर की तरफ आधुनिक बहावलपुर नागोर, बीकानेर और झज्झर तक तथा पूरब की तरफ अजमेर को लेते हुए बनास नदी और कछवाड़ा (आम्बेर राज्य) के अन्दर तक अपना राज्य फैला लिया था। हुमायूँ जब बिहार-बंगाल में उलझा था, तब मालदेव ने टोंक में चम्बल के काँठे की तरफ बढ़ना शुरू किया। अब उसने हुमायूँ के पास सिन्ध में निमन्त्रण भेजा कि उससे मिल कर वह मालवे की तरफ से हिन्दुस्तान पर चढ़ाई करे। ग्वालियर के किले में तब तक कुछ मुगल फौज थी ही। पर हुमायूँ के दिमाग में सिन्ध और गुजरात को जीत कर गुजरात से फिर हिन्दुस्तान जीतने की धुन समायी थी। चुनाँचे साल भर वह सिन्ध के किलों से टक्करें मारता रहा।

§११ **शेरशाह की साम्राज्य-वृद्धि (अ) मालवा**—इसी बीच ग्वालियर की मुगल सेना ने आत्म-समर्पण किया, और शेरशाह ने मालवे पर पूरा अधिकार कर लिया। उधर सिन्ध में विफल होने पर हुमायूँ को मालदेव के निमन्त्रण की याद आयी, और उत्तरी सिन्ध से वह फलोदी आ पहुँचा। खबर पाते ही शेरशाह फौज ले कर मालदेव के राज्य में डीडवाणे तक घुस आया, और सन्देश भेजा कि या तो हमारे शत्रु को स्वयम् निकालो, नहीं तो हमें निकालने दो। मालदेव को अब हुमायूँ को खदेड़ना पड़ा और उसके उमरकोट को रवाना हो जाने पर शेरशाह वापिस हुआ।

**(इ) पूरबी मालवा और मुलतान सक्खर**—किन्तु मालदेव की शक्ति अभी टूटी न थी। पूरबी मालवा में रायसेन का सरदार अब सलहदी का बेटा पूरण-मल चौहान था। मालदेव और पूरणमल कभी साँगा और मेदिनीराय की तरह आपस में मिल सकते थे। शेरशाह ने रायसेन पर चढ़ाई की, और सात महीने के सख्त घेरे के बाद उसे ले लिया। उधर उसके सेनापतियों ने मुलतान और सक्खर भी जीत लिये। मालवा, मुलतान और सक्खर जीते जाने से मालदेव तीन तरफ से घिर गया। अब से शेरशाह का ध्येय यह रहा कि उसे जीत कर सिन्ध को मालवे से और फिर बुन्देलखंड जीत कर मालवे को रोहतास-झाड़खंड से मिला दिया जाय।

(उ) **राजपूताना**—इसी उद्देश से उसने पहले मालदेव पर चढाई की (१५४४ ई०)। दिल्ली से सीधे जोधपुर जाने के लिए उसने मरुभूमि की राह पकडी। मेड़ताँ के नाके पर उसे रुकना पडा। मालदेव ने राणा साँगा की तरह शत्रु के तोपखाने पर अपने सवारों को झोंक नहीं दिया। वह इतना सावधान था कि शेरशाह कोई भी चाल न चल सका। लडाई में जीतने का कोई रास्ता शेरशाह को न दीखा, तो उसने मालदेव के सरदारों के नाम जाली चिट्ठियाँ लिख कर उसके वकील के खेमे में डलवा दीं, जिनसे उसे भ्रम हो कि उसके सरदार शत्रु से मिल रहे हैं। इस तुच्छ चाल से मालदेव वहक गया और अपनी परछाहीं से डर कर भाग निकला। उसके सरदारों ने बहुत मनाया, पर सब व्यर्थ। तब १२ हजार राजपूत केसरिया बाना पहन कर लडाई में उतरे और अपने खून से उस कलक को धो डाला। उनकी वीरता देख कर शेरशाह के मुँह से अनायास निकला—"मैं मुट्ठी भर बाजरे के लिए हिन्दुस्तान की बादशाहत खोने लगा था!" अजमेर, आबू, जोधपुर, जहाजपुर बिना युद्ध के शेरशाह के हाथ आये, और चित्तौड ने अधीनता मानी। राजपूताने में शेरशाह ने अपना बन्दोबस्त करने या स्थानीय सरदारों को उखाडने का जतन न किया, केवल अजमेर आदि नाकों को अपने काबू में रख कर राजपूत राज्यों को एक दूसरे से अलग कर दिया।

(ऋ) **बुन्देलखड**—राजपूताने से छुट्टी पाकर उसने कालजर पर चढाई की और उस किले को घेर लिया। अपने एक सेनापति को वहाँ से पूरब रीवाँ के इलाके पर काबू करने के लिए भेजा। ७ महीने के घेरे के बाद एक दिन बारूद में आग लगने से शेरशाह की देह जल गयी। उसी साँझ को किला लिये जाने के बाद उसने अपने प्राण छोड दिये (१५४५ ई०)।

§१२ **शेरशाह के समकालीन भारतीय राज्य**—शेरशाह की मृत्यु के समय उसका साम्राज्य कन्दहार, काबुल और कश्मीर की सीमाओं से कूचबिहार की सीमा तक पहुँच गया था। पूरबी मालवे के जीत जाने पर सूर साम्राज्य की सीमा गढ-कटका राज्य से जा लगी थी। यदि पूरा उत्तरी बुन्देलखड भी जीता जाता तो उस तरफ भी दोनों की सीमाएँ मिल जातीं। वहाँ संग्रामशाह के बाद उसका बेटा दलपतिशाह गद्दी पर बैठ चुका था (लगभग १५४१ ई०)। उसी समय उडीसा के राजा प्रतापरुद्रदेव की मृत्यु हुई और वहाँ सूर्य वश का अन्त

हो कर एक नया वंश शुरू हुआ। विजयनगर में कृष्णदेवराय के बाद उसके भाई अच्युतदेव ने राज्य किया (१५३०-४२ ई०), उसके समय में भी विजयनगर की शक्ति और समृद्धि ज्यों की त्यों बनी रही। दक्खिनी रियासतें यथापूर्व थीं, पर गुजरात में अराजकता छायी हुई थी।

§१३ शेरशाह का शासन व्यवस्था—अनेक शताब्दियों बाद शेरशाह के शासन में भारतवर्ष ने वह शान्ति देखी जो उसे राजा भोज के बाद से न मिली थी। शेरशाह की विजयिनी सेनाएँ जिस देश से लौट जातीं, वहीं छः महीने के अन्दर भूमि का माप-बन्दोबस्त हो जाता, सड़कें निकल जातीं, टकसालें खुल जातीं, और अमन-चैन स्थापित हो जाता। तुर्क विजेताओं ने जैसे हिन्दू मन्दिरों के शिखर तोड़ कर कुछ ऊपरी फेरफार कर अपनी मस्जिदें और इमारतें खड़ी की थीं, वैसे ही उन्होंने हिन्दू शासन के जीर्ण ढाँचे के ऊपर अपना आधिपत्य बैठा दिया था। वह ढाँचा उसके बोझ से दब कर बैठ रहा था। शेरशाह ने उसमें फिर जान फूँकी, और जड़ से एक नयी शासन-योजना खड़ी की। उस योजना की बुनियाद उसने परगनों को बनाया। परगने या प्रतिजागरणक मध्य युग की हिन्दू शासन-योजना के पुराने विभाग थे। शेरशाह ने अपने सारे साम्राज्य को परगनों में बाँट कर प्रत्येक परगने में एक शिकदार और एक आमिन नियुक्त किया। शिकदार का काम शान्ति रखना और आमिन का काम कर वसूल करना था। प्रत्येक परगने में अनेक गाँवों की पचायतें थीं, जिनके अन्दर की स्वतन्त्रता में शेरशाह ने दखल नहीं दिया। अनेक परगनों को मिला कर एक सरकार बनती थी जो आजकल के जिले की तरह होती थी। प्रत्येक सरकार में एक हजार से पाँच हजार तक सेना के साथ एक शिकदार-ए-शिकदारान और एक मुन्सिफ-ए-मुन्सिफान रहता था। वह मुख्य मुन्सिफ दीवानी मामलों को देखता था, मालगुजारी के मामले में परगने के आमिन का सीधा सम्बन्ध बादशाह से रहता था। फौजदारी मामलों का निपटारा शिकदार-ए-शिकदारान करता था। परगनों और सरकारों के हाकिमों की दूसरे बरस बदली हो जाती थी। बंगाल के सब सरकारों के ऊपर केवल निरीक्षक रूप से एक आमिन रक्खा गया था, किन्तु पंजाब, मालवा आदि सीमा पर के प्रान्तों में फौजी हाकिम रक्खे गये थे।

शेरशाह का सब से बड़ा सुधार मालगुजारी-विषयक था। पहले सुल्तान अपने सेनानायकों को जागीरें बाँट देते थे और उन जागीरों से कर वसूल कर

अपने सैनिकों को पालने का जिम्मा उन पर छोड देते थे। कर प्राय अनुमान से लिया जाता था। शेरशाह ने सैनिकों को सीधा नकद वेतन देना शुरू किया। उसके अमले सब जगह जमीनों को नाप कर उनकी माल-गुजारी निश्चित करते थे। यह नाप और बन्दोवस्त हर साल होता था। पैदावार का चौथाई भाग कर के रूप में लिया जाता था। किसानों को अधिकार था कि कर जिन्स या रुपया किसी भी रूप में दें। किसानों के साथ सीधा बन्दोवस्त करने की यह पद्धति समूचे मुगल युग में 'टोडरमल के बन्दोबस्त' के नाम से जारी रही।

आगरा टकसाल का शेरशाह का रुपया। चित, कलमा और टकसाल का नाम, पट, फ़ारसी में बादशाह का नाम, नीचे नागरी में स्री सीरसाह। [श्री० सा० स०]

कर की वसूली नियमित करने के लिए देश की मुद्रा-प्रणाली को सुधारना भी जरूरी था। शेरशाह ने पेचीदा गणना के और मिश्रित धातुओं के अनेक सिक्कों को वन्द कर दिया, तथा सोने चाँदी और ताँवे के ठीक अनुपातों का निश्चय कर एक नयी सरल मुद्रा-प्रणाली शुरू की, और उसके प्रचार के लिए जगह-जगह टकसालें स्थापित कीं। इस तरह सिन्ध से बंगाल तक एक सा सिक्का चलने लगा। हमारा आजकल का रुपया शेरशाह के रुपये के नमूने पर बना है। उसके सिक्कों पर नागरी और फारसी में उसका नाम खुदा रहता था। उसके कई सिक्के स्वस्तिका के चिह्न वाले भी पाये गये हैं। सिक्कों के इस सुधार से व्यापारियों को बडी सुविधा हो गयी। इसके अलावा देश के रास्तों और घाटों पर जगह-ब-जगह जो अनेक किस्म की चुंगियाँ उन्हें देनी पडती थीं, उन सब को शेरशाह ने उठा दिया। केवल सीमान्त तथा बिक्री के स्थान पर चुंगी बाकी रह गयी।

व्यापार की उन्नति को वैसा ही प्रोत्साहन शेरशाह की सडकों और सरायों से मिला। उसकी बनवायी हुई सडकें प्रसिद्ध हैं। उनमें सब से मुख्य—"सडके आज़म"—वह थी जो सोनारगाँव से रोहतास हो कर अटक तक चली गयी थी।

दूसरी आगरे से माड़ हो कर बुरहानपुर तक पहुँचती थी—अर्थात् हिन्दुस्तान को दक्खिन से मिलाती थी। तीसरी आगरे को जोधपुर और चित्तौड से मिलाती तथा चौथी लाहौर से मुल्तान को जाती थी। सब सड़कों पर सराये बनायी गयी थीं। प्रत्येक सराय में हिन्दू और मुस्लिम यात्रियों के लिए भोजन और पानी का इन्तजाम रक्खा जाता था। वे सराये डाक-चौकियों का भी काम देती थीं। सडकों और डाक के इस प्रबन्ध से साम्राज्य के कोने-कोने की खबरें लगातार शेरशाह को मिलती रहती थीं, और सेनाओं के आने-जाने में बडी सुविधा होती थी।

शेरशाह का स्वस्तिका छाप वाला रुपया [दिल्ली म्यू०, भा० पु० वि०]

शेरशाह का न्याय प्रसिद्ध था। एक साधारण स्त्री की फरियाद पर अपने बेटे को उसने कडा दंड दिया था। न्याय करने वाले हाकिमों की रहनुमाई के लिए उसने कई कानून और आईन भी बनाये थे। उसके बेटे इस्लामशाह के शासनकाल में राजकीय कानून और भी अधिक बने। इस प्रकार शेरशाह ने कानून और आईन को शरीयत के बन्धन से मुक्त कर दिया।

शेरशाह का सेना-संगठन भी अत्यन्त पूर्ण था। सेनानायकों को नकद वेतन नियमित रूप से मिलता था। साधारण सैनिकों की नियुक्ति भी बादशाह की तरफ से होती थी। सैनिकों को वेतन भी बादशाह के द्वारा ही मिलता था। अकबर ने शेरशाह की शासन-व्यवस्था की प्रायः सब बातों में नकल की, पर वह सेना-नायकों ( मनसबदारों ) की नियुक्ति खुद करता था और सैनिकों की नियुक्ति उन पर छोड़ देता था। सैनिकों का वेतन भी अकबर के जमाने में मनसबदार की मारफत दिया जाता था। यह प्रथा अकबर के बाद समूचे मुगल युग में जारी रही। इसमें यह दोष था कि सैनिक मनसबदार को अपना सब कुछ समझते थे और यदि कभी वह बलवा करे तो उसके साथ वे भी बलवे में शामिल हो जाते थे। शेरशाह की पद्धति में यह दोष न था। सेनाएँ छावनियों में रहती थीं। छावनियों के फौजदारों का अपने इलाकों के शासन से कोई वास्ता न था, हाँ, कुछ सीमान्त

प्रदेशों के फौजदारों को शिकदार का काम भी सौंपा गया था। शेरशाह की पैदल बन्दूकची सेना सब भोजपुरी (बक्सरिये) किसानों की थी। उसका एक तोपची दल भी था, और बहुत सी तोपे उसने स्वयम् ढलवायी थीं।

शेरशाह का अपनी फौज पर कड़ा नियन्त्रण रहता था। झगड़ालू खूँख्वार पठानों को सुश्रृखल सैनिक बनाना उसी का काम था। सेना के प्रयाण के समय क्या मजाल कि प्रजा को जरा भी कष्ट पहुँचे। ऐसी सख्ती होने पर भी शेरशाह के सैनिक उससे बड़ा स्नेह करते थे। इसका कारण यह था कि वह उनकी मेहनत और मुसीबत में उनका शरीक होता था, उनसे भाई का सा बर्त्ताव करता था और उनके गुणों को तुरन्त पहचान कर उन्हें उचित पुरस्कार देता था।
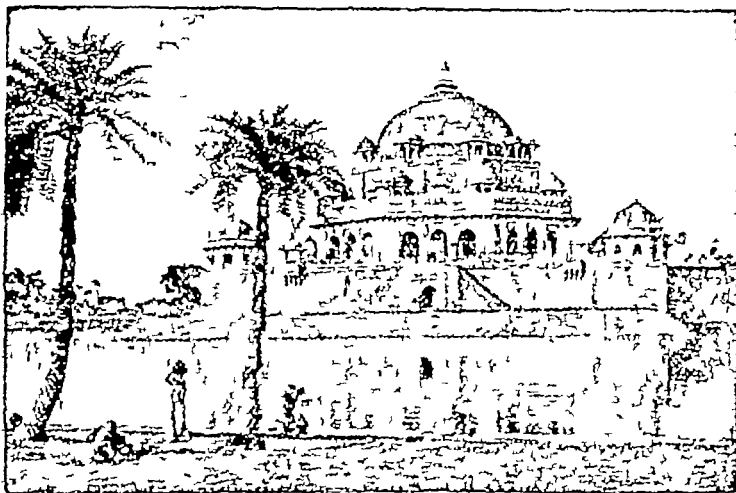
शेरशाह का मक़बरा, सहसराम

शेरशाह के चरित्र की छाप उसकी इमारतो पर भी है। सहसराम में उसका मक़बरा, जो उसके आदेशानुसार बना था, उसकी सुरुचि का सुन्दर नमूना है। शेरशाह ने कई नये शहर भी आबाद किये। उसने पटना का पुनरुद्धार किया और शेरगढ नाम से पाण्डवों के इन्दरपत गाँव में अपनी नयी दिल्ली बसायी। हिन्दी साहित्य को उसके राज्य में विशेष प्रोत्साहन मिला। मलिक मुहम्मद जायसी ने अपना प्रसिद्ध काव्य पदुमावति 'सेरसाहि देहिली सुलतानू' के समय में लिखा। शेरशाह की गिनती भारतवर्ष के सच्चे राष्ट्र-निर्माताओं में है।

§१४. **इस्लामशाह सूर** ( १५४५-५४ ई० )—शेरशाह की मृत्यु पर अफगान नेताओं ने उसके दूसरे बेटे जलालखाँ को इस्लामशाह या सलीमशाह के नाम से गद्दी पर बैठाया। उसने अपने बड़े भाई को कैद करना चाहा। तब शेरशाह के समय के अनेक सरदार उसके विरुद्ध उठ खड़े हुए। उनके दमन के लिए इस्लामशाह को अनेक लड़ाइयाँ लड़नी पड़ीं। उसी सिलसिले में उसने शिवालक और कुमाऊँ तराई के कई हिन्दू राजाओं को भी अधीन किया। इस्लामशाह के नौ बरस के शासन में शेरशाह की शासन-नीति जारी रही।

कश्मीर में मिर्जा हैदर ने दस बरस राज किया। १५५१ ई० में प्रजा ने उसे और उसके मुगलों को निकाल भगाया, और फिर पुराने राजवंश को स्थापित किया।

---

## अध्याय ३

### साम्राज्य के लिए तीसरी जद्दोजहद

### ( १५५५-७६ ई० )

§१. **हुमायूँ की वापिसी** ( १५५५ ई० )—हुमायूँ सिन्ध से कन्दहार की तरफ भागा था और वहाँ से भी उसे अपने भाई के डर से ईरान जाना पड़ा था। शेरशाह की मृत्यु के ४ महीने बाद ईरान के शाह की मदद से उसने कन्दहार जीत लिया, और कामरान से काबुल भी छीन लिया। १५५० ई० तक वह फिर दो बार काबुल खो कर पा चुका तथा बदख्शाँ पर भी अधिकार कर चुका था।

इस्लामशाह के बाद उसके नाबालिग बेटे को मार कर शेरशाह का एक भतीजा मुहम्मदशाह आदिल या अदालीशाह के नाम से सुल्तान बन बैठा। इस घटना से सूर साम्राज्य में खलबली मच गयी। बिहार-बंगाल के पठान शासकों ने स्वतन्त्रता की घोषणा कर दी। उसी जाड़े में हुमायूँ ने लाहौर जीत लिया। अदाली ने हेमचन्द्र नामक एक मेवाती को अपना मन्त्री बना कर उसकी मदद से विद्रोह दबाने की चेष्टा की। हेमू पूरबी विद्रोह को दबाने में लगा था जब दूसरे सूर-वंशजों ने दिल्ली-आगरा ले लिए। अदाली ने चुनार को अपनी राजधानी बनाया।

हुमायूँ ने दिल्ली पर दखल कर लिया, और अपने १३ बरस के बेटे **अकबर** को सेनापति बैरामखाँ की संरक्षकता में पंजाब का हाकिम नियुक्त किया। फिर से दिल्ली में ६ महीने शासन करने के बाद वह चल बसा।

§२. **अकबर का राज पाना, सूर साम्राज्य का अन्त (१५५६–५८ ई०)**—हुमायूँ की वसीयत के अनुसार पंजाब और दिल्ली अकबर को मिले, और काबुल उसके छोटे भाई मुहम्मद हकीम को। हुमायूँ के मरने की खबर पा अदाली ने हेमू को दिल्ली जीतने भेजा। ग्वालियर, आगरा और दिल्ली से मुगलों को भगा और स्वयम् अपना राजतिलक करवा हेमू पंजाब की तरफ बढा। मुगल अब फिर भागने लगे, पर बैरामखाँ मुकाबले के लिए डट गया। पानीपत की भूमि पर युद्ध हुआ

अकबर—समकालीन चित्र

"तारीख़े खानदाने तैमूरिया" की हस्तलिखित प्रति से [ खुदा० पु० ]

(५–११–१५५६ ई०)। हेमू ने मुगल सेना के दोनों पासे तोड दिये, पर सिर में तीर लगने से वह घायल हो कर कैद हो गया। दिल्ली और आगरा इस जीत से अकबर के हाथ आये। उधर अदाली सूर बिहार और बंगाल के अपने 'विद्रोही' सरदारों से लड़ता हुआ मारा गया। ग्वालियर और जौनपुर तक तब मुगलों ने फिर दखल कर लिया।

§३. **अन्य भारतीय राज्य, १५४२-५८ ई०**—बिहार बंगाल और मालवे में सूर साम्राज्य के खण्ड अब भी बाकी थे। मालवे में शेरशाह के हाकिम शुजाअतखाँ का बेटा बाजबहादुर स्वतन्त्र सुल्तान बन बैठा था ( १५५५ ई० )। उसने रूपमती नाम की एक सुन्दरी से ब्याह किया। बाजबहादुर और रूपमती युद्ध और शिकार में साथ-साथ यात्रा करते थे। उनके पड़ोस में, गोंडवाना के राज्य में, जिसकी राजधानी अब मंडला थी, दलपतिशाह मर चुका ( १५४८ ई० ) और उसकी विधवा रानी दुर्गावती अपने बेटे के नाम पर शासन करती थी। बाजबहादुर ने उसपर अनेक हमले किये, और प्रत्येक लड़ाई में हारा। राजपूताने में उदयसिंह ने रणथम्भोर और अजमेर वापिस ले लिये, आमेर और आबू से फिर मेवाड़ का आधिपत्य मनवाया, और उदयपुर की स्थापना की। गुजरात का राज्य छिन्न-भिन्न ही रहा। बहमनी रियासतें भी दुर्बल रहीं। विजयनगर में अच्युतदेव के बाद उसका भतीजा सदाशिव राजा हुआ ( १५४२ ई० )। उसने पहले अहमदनगर की मदद से बीजापुर को हरा कर उसका बहुत सा इलाका छीना, फिर १५५८ ई० में बीजापुर की सहायता से अहमदनगर पर चढ़ाई की। पिछली दो पुश्तों में जो विजयनगर का रोबदाब तमाम बहमनी राज्यों पर जम गया था, उससे सदाशिव का दिमाग फिर गया था। अहमदनगर की चढ़ाई में पराजित शत्रुओं का अपमान करते समय उसने अपने मित्र-पक्ष की सेना के भावों का भी ख्याल न रक्खा।

§४ **मालवा, उत्तरी राजपूताना और गोंडवाना की विजय ( १५६०–६४ ई० )**—अकबर की विचार-शक्ति इस समय तक जाग चुकी थी। १५६० ई० में उसने बैरामखाँ को हज को भेज स्वयम् राज सँभाल लिया और उसी बरस उसने साम्राज्य-निर्माण की चेष्टा शुरू कर दी। सब से पहली लड़ाई मालवा पर की गयी। अकबर के सेनापतियों ने बाजबहादुर को हरा कर भगा दिया, उसने चित्तौड़ जा कर शरण ली। रानी रूपमती ने विष खाकर प्राण दे दिये। १५६२ ई० में अकबर ने आमेर के राजा भारमल की बेटी से विवाह किया और उसके पोते मानसिंह को अपने दरबार में रखा। इस तरह आमेर का राज उदयसिंह के बजाय अकबर की अधीनता में आ गया। उसी बरस मेड़ता का किला जीता गया, जिससे उत्तरी मारवाड़ भी अकबर के अधीन हो गया।

मालवे के बाद बुन्देलखंड-गोंडवाने की बारी आयी। कड़ा-मानिकपुर के हाकिम आसफखाँ ने पन्ना के राजा को अधीन करने के बाद रानी दुर्गावती पर

चढ़ाई की। वह बहादुरी से लड़ती हुई मारी गयी (१५६४ ई०)। उसके पड़ोसी छत्तीसगढ के राजा कल्याणसिंह ने भी डर कर दिल्ली के दरबार में उपस्थित हो अकबर की अधीनता स्वीकार कर ली।

§५ अकबर के पहले सुधार—एक ओर तो शस्त्रों द्वारा देश विजय किये जा रहे थे और दूसरी ओर एक नयी उदार नीति के द्वारा साम्राज्य की नींव पक्की की जा रही थी। १५६२ ई० में अकबर ने युद्ध के कैदियों को दास बनाने की
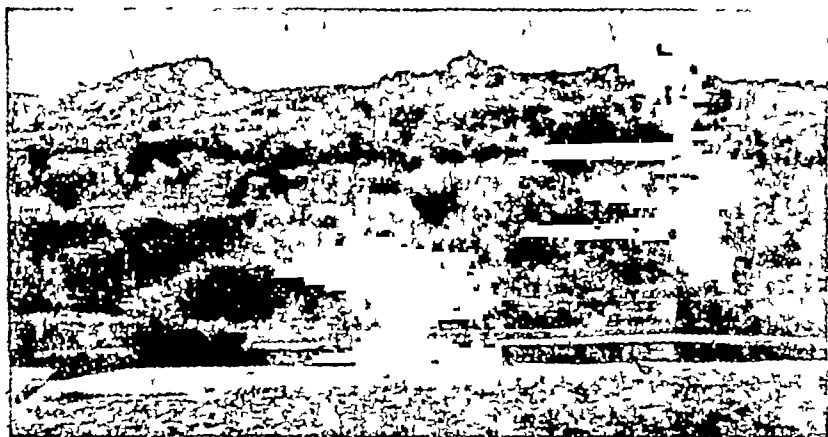
विजयनगर के खँडहर—विहगम दृश्य, हाम्पी, जि० बेल्लारि [ भा० पु० वि० ]

प्रथा अपने फरमान द्वारा रोक दी। अगले बरस उसने हिन्दू तीर्थ-यात्रियों से जो कर लिया जाता था, वह भी उठा दिया। कहते हैं उस कर को छुड़वाने वाले, नानक के प्रशिष्य सिक्खों के तीसरे गुरु अमरदास थे। १५६४ ई० में अकबर ने हिन्दुस्तान पर से जजिया कर भी उठा दिया।

§६ विजयनगर का पतन (१५६५ ई०)—इसी समय दक्खिन में भी एक भारी परिवर्तन हो गया। १५५८ ई० की लाञ्छना के बाद बीजापुर, बिदर, गोलकुंडा और अहमदनगर ने मिल कर विजयनगर का मुकाबला किया। १५६५ ई० में कृष्णा के उत्तर तालीकोट के पास युद्ध हुआ जिसमें सदाशिव अपनी १ लाख सेना के साथ मारा गया। इस हार का समाचार पा कर विजयनगर किले के भीतर की मुस्लिम सेना ने भी विद्रोह किया और विजेताओं ने राजधानी पर कब्जा कर उसे

उजाड़ दिया। सदाशिव के भाई वेङ्कटाद्रि ने तब विजयनगर के १२० मील दक्खिन पेनुकोंडा को अपनी राजधानी बनाया।

§७. मेवाड़ और उड़ीसा का पतन—१५६४ ई० में बिहार के पठान शासक सुलेमान करांनी ने बंगाल पर अधिकार कर लिया। इसी समय कूचबिहार का राज्य भी शक्तिशाली हो उठा। राजा नरनारायण का भाई शुक्लध्वज उर्फ चीलराय उसका सेनापति था। उसने आसाम, कछार, मणिपुर, त्रिपुरा, सिलहट और जयन्तिया को जीत कर कूच-बिहार को उत्तर-पूरबी सीमान्त की एकमात्र शक्ति बना दिया। १५६५ ई० में अकबर के उज्बक अमीरों ने जौनपुर में विद्रोह करके अवध के पच्छिम तक शाही फौजों को खदेड़ दिया। अकबर को गुमान था कि उन्हें कहीं सुलेमान करांनी से मदद न मिलती हो, इसलिए उसने उड़ीसा के राजा से सन्धि कर मदद ली। राजा मुकुन्द हरिचन्दनदेव ने बंगाल पर हमला कर सातगाँव ले लिया। इस प्रकार सुलेमान का ध्यान उधर खिंच गया और अकबरने विद्रोह दबा दिया। किन्तु अकबर के भाई मुहम्मद हकीम ने पूरबी विद्रोह की बात सुन कर पंजाब पर चढाई कर दी। उसे भगाने के बाद सन् १५६७ ई० में उड़ीसा से काबुल तक शान्ति हुई।

चित्तौड़ का घेरा १५६७ ई०। "तारीख़-ए-ख़ानदान-ए-तैमूरिया" की हस्तलिखित प्रति से [ खुदा० पु० ]

इधर से निश्चिन्त हो जाने पर अकबर ने भारी तैयारी के साथ मेवाड़ पर चढ़ाई की। मेवाड के सरदार निश्चित हार देखते हुए भी आहुति दिये बिना

अपना देश देने को तैयार न हुए। उन्होंने राणा उदयसिंह को पहाड़ों में भेज दिया और उसकी भावज मीराबाई के चचेरे भाई जयमल राठोड़ को अपना मुखिया चुना। दूसरा दर्जा पत्ता सीसोदिया को दिया गया। अकबर ने चित्तौड घेर लिया। तोपों के तीन मोर्चे किले के सामने लगाये गये, जिनमें एक स्वयम् अकबर की और एक टोडरमल की देखरेख में था। साबातें और सुरगें तैयार होने लगीं। साबात चमडे के लम्बे छाजन होते थे जिनसे ढके हुए रास्तों से भाला लिए सवार मजे में गुजर सकते थे। उनकी रक्षा के बावजूद अकबर के कारीगरों की लाशें कई बार ईंटों की तरह चुनी गयीं। एक दिन किले की दीवार पर जयमल को मरम्मत का आदेश देते देख कर अकबर ने उसपर गोली चलायी। अकबर ने जाना कि वह मर गया पर असल में वह लँगडा हो गया था। किले की रसद चुक जाने पर जयमल ने जौहर की आज्ञा दी। लँगडा जयमल अपने एक कुटुम्बी के कन्धों पर चढ कर शत्रु दल को काटता हुआ बढा। चित्तौडगढ के सबसे नीचे के दरवाज़ों के बीच जहाँ वह मारा गया, वहाँ ईंटों की एक सीधी-सादी समाधि आज तक खड़ी है। पत्ता सूरजपोल (सूर्यद्वार) पर लड़ता हुआ काम आया। मेवाड़ के किसानों ने भी अकबर को इस युद्ध में खूब सताया था। अकबर ने उन्हें कठिन दंड दिया। जब मेवाड़ पर पूरा अधिकार हो गया तो उसने अपने वीर शत्रु जयमल और पत्ता की हाथियों पर चढ़ी मूर्तियाँ बनवा कर आगरे के किले
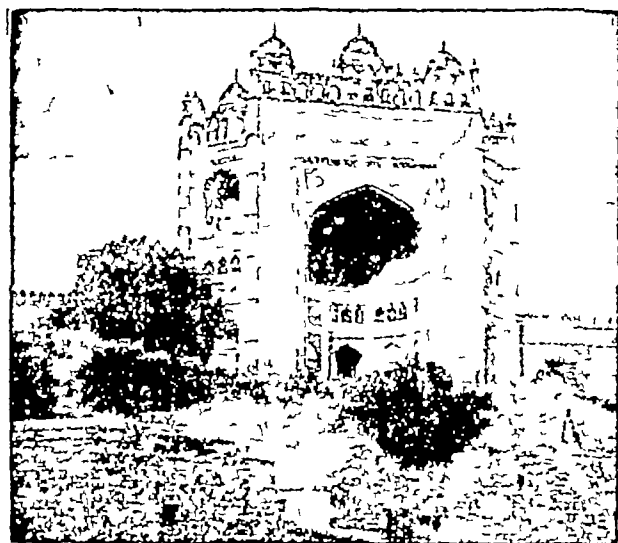
बुलन्द दरवाजा, फ़तहपुर सीकरी

के बाहर स्थापित करायीं। अकबर के चले जाने पर उदयसिंह ने कुम्भलगढ को अपनी राजधानी बनाया।

अकबर के चित्तौड में व्यस्त रहने पर सुलेमान करांनी को उडीसा पर हमला करने का मौका मिला। उसने मुकुन्द हरिचन्दनदेव को गंगा से दामोदर तक हटा दिया। पिछली तरफ से उसके सेनापति राज कालापहाड ने दलभूम, मयूरभंज के पहाडी रास्ते से कटक पर चढाई की। हरिचन्दनदेव शीघ्र उधर लौटा, पर उसके एक सरदार ने विद्रोह कर उसे मार डाला। कालापहाड ने कटक और पुरी को उजाड दिया। पीछे से चीलराय का हमला होने से कालापहाड को लौटना पडा। उडीसा में उसके बाद अव्यवस्था मची रही। उत्तरी और दक्खिनी उड़ीसा में दो राज्य खडे हुए, जिनकी राजधानियाँ खर्दा और गंजाम थीं। लेकिन वे दोनों कमजोर थे। उत्तरी उडीसा मे २४ वर्ष तक पठान और स्थानीय सरदार मारकाट करते रहे। गंजाम का राज्य १६ वीं सदी के अन्त तक गोलकुंडा का मुकाबला करता रहा।

राणा प्रताप
( ब्रिटिश म्यूजियम में रक्खा एक पुराना चित्र )

उधर चित्तौड के बाद रणथम्भोर भी अकबर के हाथ आया, और तभी बघेलखंड ( रीवाँ ) के राजा का कालंजरगढ भी फतह हो गया। उसी समय सीकरी में आम्बेर की राजकुमारी से अकबर का बेटा पैदा हुआ, जिसका नाम सलीम रक्खा गया। तब से फतेहपुर सीकरी को अपनी राजधानी बना कर अकबर ने वहाँ अनेक महल तैयार कराये।

**§८. गुजरात और बंगाल पर विजय ( १५७२–७६ ई० )**—१५७२-७३ ई० में अकबर ने गुजरात को, जो तब कई छोटे-छोटे राज्यों में बँटा था, जीत लिया। उसी समय मेवाड का राणा उदयसिंह और बिहार-बंगाल का प्रजाप्रिय शासक सुलेमान चल बसे। उदयसिंह का बेटा प्रताप उजडे मेवाड़ का राणा हुआ और सुलेमान का बेटा दाऊद बिहार और बंगाल की गद्दी पर बैठा। १५७६ ई०

तक बंगाल भी अकबर ने जीत लिया। बंगाल जीतने के लिए कूचबिहार के राजा नरनारायण से मदद ली गयी। गुजरात और बंगाल की विजय से अकबर उत्तर भारत का एकच्छत्र सम्राट् हो गया। दक्खिन में इसी समय अहमदनगर के राज्य ने बराड़ को जीत लिया।

१५७६ ई० में अकबर के साम्राज्य के बराबर दुनियाँ में और कोई भी राज्य न था, तो भी मेवाड के अकिञ्चन राणा प्रताप ने उससे लोहा लेने की हिम्मत की। उसने कुम्भलगढ़ और गोघूदा के पहाडी प्रदेश को अपना केन्द्र बना कर मालवा और गुजरात जाने-आने वाली मुगल सेनाओं, काफिलों, खजानों आदि पर आक्रमण करने शुरू किये। इस गुरिल्ला-युद्ध से तङ्ग आ कर अकबर ने मानसिंह को उसके खिलाफ भेजा। गोघूदा के रास्ते में हल्दीघाटी पर दोनों की मुठभेड हुई (१५७६ ई०)। हकीम सूर नामक एक पठान सरदार भी प्रताप की तरफ था। लड़ाई का फल अनिश्चित रहा। प्रताप ने आगे बीस बरस तक स्वाधीनता की जद्दोजहद जारी रक्खी और मेवाड का बहुत सा हिस्सा वापिस ले लिया।

---

## अध्याय ४

### मुगल साम्राज्य का वैभव

### (१५७६—१६६६ ई०)

§१ अकबर की शासन-व्यवस्था—अकबर की शासन-नीति एक उदार राष्ट्रीय राजा की थी। अपनी हिन्दू और मुस्लिम प्रजा को उसने एक ही दृष्टि से देखा। उससे पहले जैनुल-आबिदीन, हुसेनशाह बङ्गाली और शेरशाह वैसी नीति के लिए रास्ता बना चुके थे।

अकबर ने सुशासन के लिए जो अनेक सुधार किये, उनमें मुख्य स्थान अर्थनीतिक सुधारों का है। उस अंश में उसने शेरशाह का अनुसरण किया। गुजरात जैसे प्रान्त जो शेरशाह के अधीन न हुए थे, उनमें भी अकबर ने माप-बन्दोबस्त करवाया। टोडरमल इस कार्य में उसका मुख्य सहायक था। माप के लिए लम्बाई और क्षेत्रफल की इकाइयों—गज और बीघा—का ठीक मान निश्चित किया गया। मालगुजारी-बन्दोबस्त से सम्बन्ध रखने वाले तीन सुधार और थे। पहला,

सरकारी कर्मचारियों को जागीर के बजाय नकद वेतन देना, और जागीरों की ज़मीनों को भरसक "खालसा" ( राजकीय सम्पत्ति ) बनाना। दूसरा, कुल कर्मचारियों की दर्जाबन्दी करना। यह दर्जाबन्दी बिलकुल सैनिक दृष्टि से की गयी थी, क्योंकि राज्य के सभी कर्मचारी सैनिक माने जाते थे। प्रत्येक कर्मचारी का पद और वेतन इस बात पर निर्भर होता था कि वह कितने सवारों का नायक है। सब कर्मचारी मनसवदार कहलाते थे और उनके मनसब १० से १० हजार तक के होते थे। ये सख्याएँ उनके वास्तविक सवारों की नहीं, केवल उनकी हैसियत की सूचक होती थीं। तीसरा सुधार घोड़ों को दागने का था। उसका प्रयोजन था मनसवदारों को धोखा देने से रोकना।

१५८० ई० मे अकबर के साम्राज्य मे दिल्ली, आगरा, इलाहाबाद, अवध, बिहार, बगाल, अजमेर, गुजरात, मालवा, लाहौर, मुलतान और काबुल, कुल १२ सूबे थे। पीछे कश्मीर जीत लिये जाने पर लाहौर या काबुल में, सिन्ध मुल्तान में और उड़ीसा बगाल में मिलाया गया। दक्खिन विजय होने पर तीन नये सूबे बराड, खानदेश और अहमदनगर बने, जिससे कुल १५ सूबे हो गये। प्रत्येक सूबे का शासक सिपहसालार कहलाता था। बाद में वह सूबेदार कहलाने लगा। उसके साथ एक दीवान, एक बख्शी ( वेतन बाँटने वाला ), एक मीर आदिल ( न्यायाधिकारी ), एक सदर ( धर्माधिकारी ), एक मीर-बहर ( मौर्य युग का नावध्यक्ष, यानी जहाज़ों, बन्दरगाहों, घाटों आदि का प्रबन्धक ), एक वाक़यानवीस ( मौर्य युग का प्रतिवेदक ), और हर शहर में एक कोतवाल तथा हर सरकार में एक फौजदार रहता था। केन्द्रीय शासन में सम्राट् के नीचे एक वकील अर्थात् प्रधानमन्त्री, एक वजीर या दीवान, एक मीर बख्शी और एक सदर-ए-सुदूर ( मुख्य धर्माधिकारी ), ये चार मुख्य तथा अनेक गौण अधिकारी रहते थे।

अकबर की सेना तीन तरह की थी। एक अधीन राजाओं की, दूसरी मनसबदारों की और तीसरी खास अपनी। मुख्य सेना मनसबदारों वाली थी। शेरशाह की तरह मुगल बादशाहों की स्थिर वैतनिक, सधी हुई सेना नहीं रही।

§७. अकबर की धर्म-सम्बन्धी नीति—अकबर स्वभाव से ही विचारशील था। उसके अन्दर सचाई की खोज की उत्कट चाह थी, जिसे ज़माने की लहर ने और पुष्ट कर दिया था। मुस्लिम बादशाह को इस्लाम की शरीयत के अनुसार चलना चाहिए; किन्तु इस्लाम में अनेक फ़िरके हैं, और इस कारण प्रश्न उठता

था कि कौन सा फ़िरका सच्चा है और किसके आदेश माने जाँय। इस जिज्ञासा से प्रेरित होकर अकबर ने फतहपुर-सीकरी में एक इबादतखाना (प्रार्थनागृह) बनवाया, जिसमें विभिन्न फ़िरकों के विद्वान् जमा हो कर विचार कर सकें। शुरू मे उसमें केवल मुस्लिम विद्वान् बुलाये गये। उनके परस्पर विवाद के ढंग से बादशाह का चित्त इस्लाम की तरफ से फिरने लगा। गुजरात की विजययात्रा से अकबर को पहले-पहल ईसाई, पारसी और जैन मतों का परिचय मिला। उसके बाद उसके दरबार में शेख मुबारक नामक एक सूफ़ी तथा उसके दो बेटे अबुलफज़्ल और फैज़ी उपस्थित हुए। अकबर पर उनका बड़ा प्रभाव पड़ा। तब इबादतखाने में इस्लाम के सिवा दूसरे मतों के विद्वान् भी बुलाये जाने लगे। जब एक बार विचार से सचाई का निर्णय करने की नीति मान ली गयी, तब यह बात होनी ही थी। दूसरे, जब दीन के मुखिया आपस में झगड़ते और बादशाह उनके बीच मध्यस्थ बनता, तब मजहबी मामलों में भी बादशाह की स्थिति उन सब से ऊँची प्रकट होने लगी। १५७६ ई० में अकबर ने खुद साम्राज्य के प्रमुख इमाम की हैसियत से मसजिद के मिम्बर से खुतबा पढ़ा। तभी राज्य के प्रमुख उलमाओं के हस्ताक्षरों से यह घोषणा की गयी कि इमाम-ए-आदिल (प्रमुख इमाम) सब मुजतहिदों (मजहब के व्याख्याकारों) से बड़ा है, और विवादग्रस्त मामलों में उसका फैसला सबको मान्य होगा, जो न माने उसे दण्ड देना उचित होगा।

इस घोषणा से कट्टर मुसल्मान भड़क उठे। वे अकबर के उन शासन-सुधारों से चिढ़े हुए थे, जो उसने जागीरदारों की जागीरें ज़ब्त करने और घोड़ों पर दाग लगाने आदि के सम्बन्ध में जारी किये थे। उन्होंने बिहार और बङ्गाल में बलवा कर दिया, और अकबर के भाई मुहम्मद हकीम से मिल कर षड्यन्त्र रचा। जौनपुर के एक काज़ी ने फतवा दे दिया कि अकबर के खिलाफ बलवा करना जायज़ है। अकबर ने बलवा दबाने के लिए टोडरमल को भेजा। उधर मुहम्मद हकीम फौज के साथ पञ्जाब पर चढ़ आया। रोहतास के किलेदार ने उसे वह किला न दिया, और लाहौर के शासक कुँवर मानसिंह ने शहर के दरवाज़े न खोले। मुहम्मद हकीम की इस आशा पर कि सारी प्रजा उसका साथ देगी, पानी फ़िर गया और वह लस्टमपस्टम पीछे भागा। अकबर ने बड़ी तैयारी के साथ काबुल पर चढ़ाई की। टोडरमल को बङ्गाल में सफलता हुई और बलवा पूरी तरह कुचल दिया गया।

उसके बाद मज़हबी मामलों में अकबर को पूरी स्वतन्त्रता मिल गयी। अब इबादतखाने की ज़रूरत न रह गयी थी। अकबर दूसरे धर्मों की तरफ झुकने लगा और उसने घोषणा कर दी कि उसके बेटे चाहे जो मज़हब मानें। जरथुस्त्रियों की तरह वह अपने घर में पवित्र आग रखने और सूर्य को प्रणाम करने लगा और जैनों और हिन्दुओं के प्रभाव से उसने गो-हत्या की मुमानियत कर दी और विशेष अवसरों पर उसने कैदियों को छोड़ना शुरू किया। ईसाइयों का एकपत्नीव्रत भी उसे भाया। इस प्रकार सब धर्मों का सामञ्जस्य कर अकबर ने एक व्यापक धर्म बनाने की कोशिश की। उसने लिखा, "एक साम्राज्य में जिसका एक शासक हो, यह अच्छा नहीं है कि प्रजा एक दूसरे के विरोधी विभिन्न मतों में बँटी रहे, इसलिए हमें उन सब को मिला कर एक करना चाहिए; किन्तु इस प्रकार कि वे एक भी हो जायँ और अनेक भी बने रहें।"

अकबर ने अपने नये धर्म का नाम तौहीदे-इलाही रक्खा। उसका उद्देश्य अत्यन्त उदार और ऊँचा था, तो भी तौहीदे-इलाही सौ पन्थो को एक करने के बजाय एक नया पन्थ बन गया और अकबर के साथ ही समाप्त हो गया। १५९३ ई० में अकबर ने धार्मिक स्वतन्त्रता के लिए कई आज्ञाएँ निकालीं—( १ ) कोई ज़बरदस्ती मुसलमान बनाया गया हिन्दू अगर फिर हिन्दू बनना चाहे तो उसे कोई न रोके, ( २ ) किसी व्यक्ति को वाध्य कर दूसरे मजहब में न लाया जाय, ( ३ ) प्रत्येक व्यक्ति को अपना धर्म-मन्दिर बनाने की स्वतन्त्रता रहे, ( ४ ) अनिच्छुक हिन्दू विधवा को सती न किया जाय, इत्यादि। अकबर की यह नीति अनेक मुल्लाओं को न रुची। उनके कट्टरपन से खीझ कर पिछले जीवन में अकबर को इस्लाम का बहुत कुछ दमन भी करना पड़ा; परन्तु इस्लाम की सब से मुख्य बात तौहीद अकबर के पन्थ में मौजूद थी।

§३. **अकबर के पिछले युद्ध और विजय**—१५७६ ई० के बाद भी अकबर के दिल में दो तरफ साम्राज्य बढ़ाने की अभिलाषा बनी रही, और यह उसके वशजों को भी विरासत में मिली। एक तो वह उत्तर-पच्छिम की तरफ बदख्शाँ और बलख के आगे आमू पार तूरान तक अपने पुरखों की भूमि लेना चाहता था; दूसरे दक्खिन की तरफ वह अपना साम्राज्य बढ़ाने का इच्छुक था। दक्खिन में "सीमान्त के शासकों की बेपरवाही से तट के अनेक शहर और बन्दरगाह फिरंगियों के हाथ में चले गये थे", उन्हें वापिस लेना भी अकबर का ध्येय था।

गुजरात के तट से पुर्त्तगालियों को निकाल देने के अनेक जतन उसने किये, पर सब व्यर्थ। उनकी विफलता का कारण था समुद्र-विषयक ज्ञान और शक्ति का न होना। उधर पुर्त्तगाल देश स्पेन-सम्राट् के अधीन हो गया था ( १५८० ई० ), जिसका साम्राज्य तब पच्छिम जगत् में सब से बड़ा था। अमेरिका से पाये हुए धन के जोर से युरोप के कई देशों को भी स्पेन ने अधीन कर लिया था। स्पेन और पुर्त्तगाल के एक हो जाने से संसार के सब समुद्रों पर उनका अधिकार हो गया। उनकी शक्ति इतनी बढी-चढी थी कि अपने परवाने के बिना वे किसी मुस्लिम जहाज़ को मक्का भी न जाने देते थे। सन् १५९७ ई० में सिंहल द्वीप स्पेन-साम्राज्य में मिला लिया गया। उसका समूचा तट पुर्त्तगालियों ने जीत लिया। हिन्दू राज्य केवल अन्दर के पहाड़ों में रह गया।
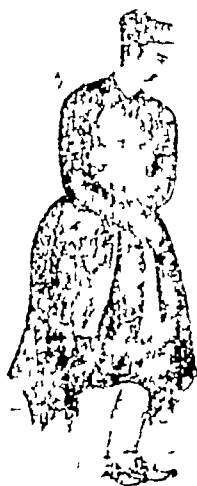
बीरबल

[ भारत कलाभवन, काशी ]

अकबर ने काबुल तो जीत लिया, पर तूरान के उज़्बग शासक अब्दुल्लाखाँ ने, जो अकबर के साथ-साथ गद्दी पर बैठा था, बदख़शाँ को जीत लिया। अकबर को डर था कि कहीं वह भारत पर भी हमला न करे। इसलिए अकबर ने मानसिंह को काबुल भेजा और अब्दुल्ला उज़्बग की मृत्यु तक खुद भी लाहौर में ही रहा। सीमान्त के पठान तथा स्वात-बाजौर के लोग उसी समय विद्रोह कर उठे। स्वातियों से लड़ता हुआ अकबर का मित्र बीरबल मारा गया। राजा टोडरमल ने उस हार का बदला लिया, परन्तु पठानों के ठेठ इलाकों ने अकबर के वंशजों के समय तक मुगलों की अधीनता कभी न मानी। उन चढ़ाइयों के सिलसिले में कश्मीर जीता गया। ठट्ठा अर्थात् दक्खिनी सिन्ध जीतने के लिए मुलतान का शासन बैरामखाँ के बेटे अब्दुर्रहीम खानखाना को सौंपा गया। खानखाना को इसमें सफलता मिली। पीछे सिबी, कन्दहार और मकरान भी अकबर के अधिकार में आ गये।

राजा भारमल के बेटे भगवानदास की और टोडरमल की मृत्यु के बाद मानसिंह को बिहार-बंगाल के सूबे सौंपे गये। उसने उत्तरी उड़ीसा को भी जीत

लिया। दक्खिनी राज्यों में से खानदेश ने सन्देश पा कर अधीनता मान ली। दूसरों पर फौज भेजी गयी। अहमदनगर मे उस फौज का चाँदबीबी ने मुकाबला किया। वह अहमदनगर के सुल्तान की बुआ और बीजापुर के बालक सुल्तान की माँ थी। अन्त मे अहमदनगर ने अधीनता मानी और बराड़ का प्रान्त सोंप दिया (१५९६ ई० )। सन् १५९७ में राणा प्रताप और १५९८ ई० मे अब्दुल्ला उज़बग
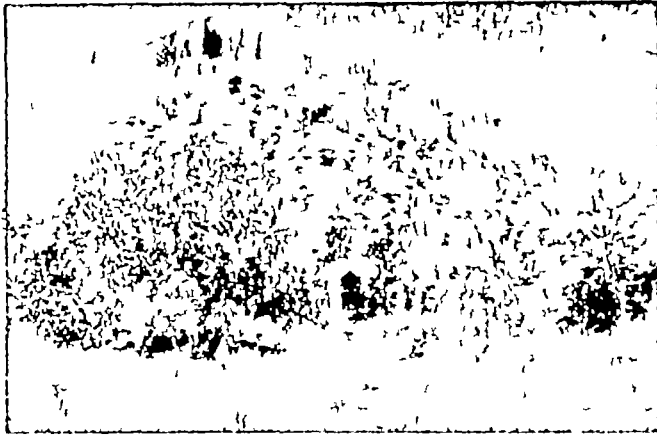
असीरगढ़ [ भा० पु० वि० ]

का देहान्त होने पर अकबर स्वयम् दक्खिन गया। १६०० ई० में अहमदनगर तथा खानदेश का असीरगढ, जो तब भारत भर में सब से विकट किला माना जाता था, उसके हाथ आये।

उधर सलीम ने विद्रोह किया और इलाहाबाद में स्वतन्त्र हो बैठा। अकबर को अपनी विजय-योजनाएँ छोड़ कर आगरा लौटना पड़ा। अहमदनगर सल्तनत पूरी तरह मुगल साम्राज्य में न मिल पायी, तथा बीजापुर और गोलकुण्डा तो ज्यों के त्यों बने रहे। उन दोनों के दबाव से कर्णाटक के राजा वेंकटाद्रि के बेटे को पेनुकोंडा भी छोड़ना पडा और तब तामिल देश के उत्तरी छोर पर चन्द्रगिरि को उसने अपनी राजधानी बनाया ( लगभग १६०० ई० )।

विद्रोह के सिलसिले में सलीम ने अकबर के मित्र अबुलफज़्ल को ओरछा के राजा वीरसिंहदेव बुन्देले के हाथों मरवा डाला। पीछे बड़ी मुश्किल मे उसने अपने पिता से समझौता किया। १६०५ ई० में अकबर बीमार हुआ। तब दरबारियों

-का एक दल सलीम की बजाय उसके बेटे खुसरो को गद्दी पर बैठाने का जतन करने लगा, किन्तु अन्तिम समय अकबर ने सलीम को उत्तराधिकारी बनाया।

§४. अकबर-युग मे साहित्य और कला—अकबर ने हिन्दू और मुस्लिम संस्कृतियों को मिला कर एक करना चाहा था। इस विचार से उसने वेद, रामायण और महाभारत के फारसी अनुवाद करवाये। उसके समय में फारसी में बहुत से इतिहास-ग्रन्थ भी लिखे गये। उनमें अबुलफज्ल के लिखे अकबर-नामे के अन्तर्गत आईने-अकबरी एक अनमोल ग्रन्थ है। संगीत और चित्रण-कला को भी अकबर ने प्रोत्साहन दिया। १६वीं सदी के शुरू मे राजा मानसिंह तोमर ने ग्वालियर मे एक संगीत-विद्यालय स्थापित किया था। वहाँ के गायक तानसेन को अकबर ने अपने दरबार में जगह दी। ईरान के शिया शाहों के आश्रय में तेरहवीं सदी से चित्रणकला का एक सम्प्रदाय चला आता था। अकबर ने दसवन्थ और बसावन आदि भारतीय चितेरों के साथ शीराज के चितेरे अब्दुस्समद को अपने दरबार मे रक्खा। हिन्दी और ईरानी क़लमों के मिलने से एक नयी शैली चल पड़ी। अकबर की इमारतों में आगरा और इलाहाबाद के किले तथा फतहपुर-सीकरी के सुन्दर महल उल्लेखनीय हैं। उसके आश्रित हिन्दू राजाओं ने भी वृन्दावन मे कई मन्दिर बनवाये।

दरबारी साहित्य से कहीं अधिक महत्त्व का सन्तों का साहित्य था। सूरदास, तुलसीदास और गुरु अर्जुनदेव तथा रामानन्द के अनुयायी दादू, मलूक, रयिदास आदि सन्त कवि अकबर के समय में हुए। अब्दुर्रहीम खानखाना ने रहीम नाम से हिन्दी में जो कविता की, उसपर भी स्पष्ट वैष्णव छाप है। तुलसीदास का रामचरितमानस तो हिन्दी-भाषी जनता का धर्म-ग्रन्थ बन गया।

दादू अहमदाबाद का धुना था और रयिदास चमार। पंजाब में गुरु नानक ने अपने 'उदासी' ( विरक्त ) बेटे के बजाय अपने एक शिष्य को अपना पद और गुरु अंगद का नाम दिया था। अंगद ने नानक की वाणी का संकलन किया। पंजाब में तब महाजनों के कारबार में काम आने वाले टूटे-फूटे अक्षरों के सिवाय कोई लिपि न थी। अंगददेव ने कश्मीर की शारदा लिपि को गुरमुखी नाम से अपना लिया। गुरुओं की वाणियाँ उसी में लिखी गयीं। तीसरे गुरु अमरदास ने अपने दामाद रामदास के वंश में गुरु-गद्दी स्थायी कर दी। रामदास ने अमृतसर की स्थापना की। पाँचवें गुरु अर्जुनदेव ( १५८२–१६०६ ई० ) ने गुरुओं की वाणियों तथा रामानन्द, नामदेव, कबीर, फरीद, रयिदास, सूरदास आदि भक्तों के

वचनों का सकलन कर एक 'ग्रन्थ' तैयार किया जो 'सिक्खों' का धर्म ग्रन्थ बना। अर्जुन ने अपने शिष्यों को तुर्किस्तान से घोड़ों का व्यापार करने को भी प्रेरित किया, जिससे उनका दूर देश जाने का डर जाता रहे तथा वे अच्छे सवार बन सकें।

§५. जहाँगीर बादशाह—अकबर के पीछे सलीम जहाँगीर के नाम से हिन्दुस्तान के तख्त पर बैठा। उसका बेटा खुसरो बलवा कर आगरे से पजाब
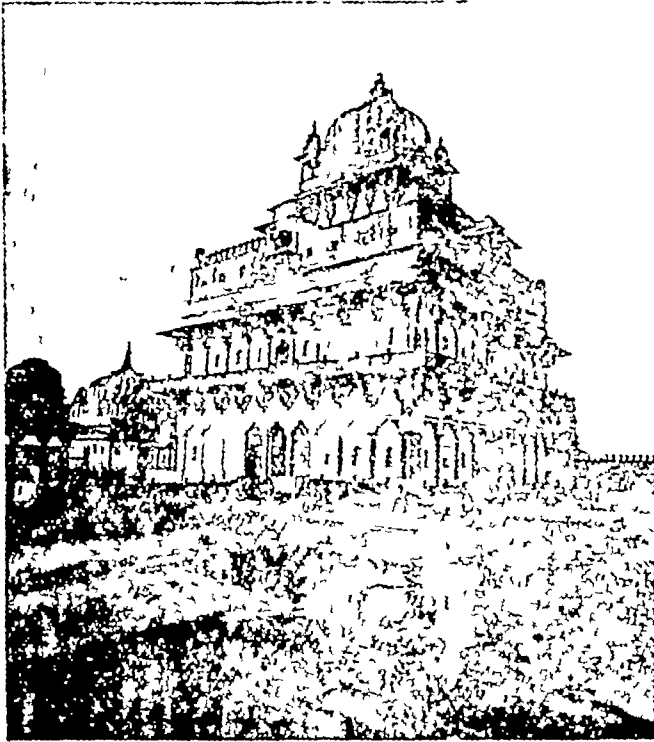
दतिया में वीरसिंहदेव का महल

१७वीं सदी के वास्तु-शिल्प का नमूना [ भा० पु० वि० ]

की ओर बढा। चनाब के किनारे वह पकड़ा गया। उसके साथी और सहायक, जिनमें गुरु अर्जुन भी था, क्रूरता से मारे गये ( १६०६ ई० )। अर्जुन के बेटे हरगोविन्द ने बदला लेने का प्रण किया, और अपने 'सिक्खों' को शस्त्र धारण करने को कहा। इस जुर्म में उसे १२ बरस ग्वालियर के किले में कैद रक्खा गया।

मुगल साम्राज्य की सेवा में बगाल मे शेर अफगन नामक एक ईरानी मनसबदार था। उसकी स्त्री मेहरुन्निसा प्रसिद्ध सुन्दरी थी। जहाँगीर ने बंगाल की सूबेदारी कुतुबुद्दीन को दे कर उसे शेर अफगन को कैद करने का हुक्म दिया। कुतुबुद्दीन के शेर अफगन को पकड़ने की कोशिश में उन दोनों की जान गयी ( १६०६ ई० )। मेहरुन्निसा सम्राट् के दरबार मे भेजी गयी। चार बरस पीछे उसने जहाँगीर से शादी करना कबूल कर लिया, और उसे नूरजहाँ का खिताब मिला। वह चतुर स्त्री थी, जहाँगीर उसके काबू में था और सब राज-काज वही चलाती थी। उसका भाई आसफ-खाँ सल्तनत का वज़ीर बना। आसफखाँ की बेटी शाहज़ादा खुर्रम को ब्याही गयी और उसे मुमताज-महल का खिताब दिया गया।

जहाँगीर शेर का शिकार करते हुए

[ भा० क० भ०, काशी ]

§६. मेवाड, बुन्देलखंड कामरूप और कॉगडा मे साम्राज्य-वृद्धि, दक्खिन मे पीछे हटना—जहाँगीर के गद्दी पर बैठते ही ईरानियों ने कन्दहार पर हमला किया जो निष्फल रहा।

मेवाड़ और दक्खिन की समस्याएँ अकबर के समय से चली आती थीं। जहाँगीर ने राणा प्रताप के बेटे अमरसिंह के खिलाफ पहले शाहजादा परवेज़ को, फिर महाबतखाँ को और अन्त में शाहज़ादा खुर्रम को भेजा। अमरसिंह को अन्त में हार माननी पड़ी ( १६१४ ई० )। मेवाड़ ने इस शर्त पर अधीनता मानी कि महाराणाओं को स्वयम् मुगलों की सेवा में न जाना पड़े, तथा

'डोला' न देना पड़े। जहाँगीर ने अपने वीर शत्रु अमरसिंह और उसके बेटे करण की हाथियों पर चढ़ी हुई मूर्तियाँ आगरे में स्थापित कीं।

बुन्देलखंड का राजा वीरसिंहदेव जहाँगीर का विशेष कृपापात्र था। मंडला (गोंडवाना) राज्य का जो कुछ भाग बाकी था, वह उसे जीतने दिया गया।

कोचबिहार और कामरूप में विश्वसिंह कोच के दो वंशजों का राज था। आपस की लड़ाई में कोचबिहार ने ढाका में मुगल साम्राज्य के अधिकारियों से मदद माँगी। साम्राज्य की सेनाओं ने कामरूप जीत लिया (१६१२ ई०), तब से आसाम का आहोम राज्य मुगल साम्राज्य को छूने लगा।

दक्खिन से अकबर के लौटते ही वहाँ की अवस्था बदल गयी थी। मलिक अम्बर नाम का एक सुयोग्य हब्शी अब अहमदनगर का वजीर था। उसने टोडरमल की पद्धति से अपनी रियासत में पैमाइश और बन्दोबस्त कराया, मुगलों से अहमदनगर वापिस ले लिया और उन्हें बुरहानपुर तक खदेड़ दिया। इसी समय ठेठ कर्णाटक (मैसूर) में एक सरदार ने श्रीरंगपट्टम् का नया राज्य खड़ा किया (१६०६ ई०)। मलिक अम्बर के खिलाफ शाहजादा खुर्रम को भेजा गया (१६१७ ई०)। उसने जो सन्धि की शर्तें भेजीं, उन्हें अहमदनगर के निजामशाह ने स्वीकार कर मुगलों का सब इलाका वापिस कर दिया। खुर्रम को इस सफलता पर शाहजहाँ की पदवी मिली।

पंजाब में काँगड़ा के हिन्दू राज्य को अकबर ने जीतना चाहा था, पर वह विफल हुआ था। जहाँगीर के समय में वह जीत लिया गया (१६२० ई०)।

§७. **अराकानी और पुर्तगाली**—१६वीं सदी में अराकान के तट पर अनेक पुर्तगाली बस गये थे। उनकी दोगली सन्तान ने समुद्र और नदियों में लूट-मार करना अपना धन्धा बना लिया था। वे गोवा के शासन में न थे। अराकान के राजा ने अब उनका दमन कर उन्हें अपनी सेवा में ले लिया और वे लूट में आधा हिस्सा राजा को देने लगे। चटगाँव इन फिरंगियों का अड्डा था। इनकी मदद से अराकान के राजा ने बाकरगंज जीत लिया (१६२० ई०) और ढाका को लूटा (१६२५ ई०)। उसके बाद अराकानियों और फिरंगियों के धावे बंगाल पर बराबर होते रहे। उनकी नावों के 'हरमद' (Armada) को देखकर बंगाली नव्वारा (बेड़ा) भाग जाता। वे असहाय जनता को पकड़ ले जाते और उनके एक-एक हाथ में छेद कर एक रस्सी पिरो कर पशुओं की तरह अपनी नावों में भर

ले जाते थे। अराकानी उन्हें दास बना कर काम लेते थे। फिरंगी उन्हें दक्खिन के बन्दरगाहों पर या फिलिपाइन आदि द्वीपों में दूसरे फिरंगियों के हाथ बेच देते थे। प्रजा की लूटमार और विध्वंस का यह सिलसिला साल-ब-साल जहाँगीर और उसके बेटे शाहजहाँ के शासन-काल में जारी रहा।

§८. भारतीय समुद्र में ओलन्देज, अँगरेज और फ्रांसीसी—नयी और पुरानी दुनिया में स्पेन का साम्राज्य कैसे फैल गया था, यह हम देख चुके हैं। स्पेन ने अपने अधीन छोटी जातियों को कुचलना चाहा, परन्तु १५७६ ई० में छोटे से हालैण्ड राष्ट्र ने उसके विरुद्ध विद्रोह किया।

युरोप में मानसिक जागृति के बाद धार्मिक सुधार की लहर उठी। लूथर और काल्विन नामक सुधारकों ने १६वीं सदी के शुरू में पोप की महन्ती का प्रतिवाद किया। उनके अनुयायी 'प्रतिवादी' (प्रोटेस्टेंट) कहलाये और पोप के अनुयायी 'रोमन सनातनी' (रोमन कैथोलिक)। स्पेन-सम्राट् ने पोप का साथ दिया। युरोप के कई राज्यों में आधे से भी अधिक सम्पत्ति गिर्जों के हाथों में थी, और गिर्जों के पुजारी नियत करना पोप के हाथ में था। स्वाधीन-वृत्ति राष्ट्र अब प्रतिवादी बनने लगे। इंग्लैण्ड के राजा ने पोप से सम्बन्ध तोड़ कर अनेक गिर्जों की जागीरें जब्त कर लीं। स्पेन ने इंग्लैण्ड को भी दबाना चाहा। जिस फिलिप (१५५६–६८ ई०) के नाम से फिलिपाइन द्वीपों का नाम पड़ा था, वह तथा इंग्लैण्ड की रानी एलिजाबेथ (१५५८–१६०३ ई०) अकबर के समकालीन थे। फिलिप ने इंग्लैण्ड पर जङ्गी बेड़ा भेजा, जिसे अंगरेज़ों ने हरा कर फूँक दिया (१५८८ ई०)। इससे पहले कई अंगरेज नाविक भी पृथ्वी-परिक्रमा कर आये थे। उधर ४० बरस की घोर कशमकश के बाद हालैण्ड ने भी स्पेन से स्वतन्त्रता पा ली।

ओलन्देज़ और अंगरेज सुदूर समुद्रों पर भी स्पेन-पुर्तगाल के एकाधिकार को तोड़ने लगे। ओलन्देजों ने पुर्तगालियों को चीन सागर से निकाल दिया। १६०० ई० के अन्तिम दिन इंग्लैण्ड में पूरब के व्यापार के लिए 'ईस्ट इंडिया कम्पनी' बनी, जिसे राज्य की तरफ से उस व्यापार का एकाधिकार मिला। ईसाई मत के प्रचार के लिए पुर्तगाली जो जोर-ज़ुल्म करते थे, उससे भारत के शासक परेशान थे। अंगरेज़ और ओलन्देज 'प्रतिवादी' होने के कारण वैसे कट्टर न थे। उन्हें केवल अपने व्यापार से मतलब रहता था। भारतवर्ष के शासकों ने पुर्तगालियों के मुकाबले में उनका स्वागत किया। अंगरेज़ों ने सूरत में व्यापारी कोठी खोली, और सूरत के

पास पुर्तगाली बेडे को हराया। उनके राजा जेम्स १म का दूत सर टामस रो अजमेर में जहाँगीर से मिला। अंगरेजों को भारत में व्यापार करने की इजाजत तो मिली ही, साथ ही अपनी बस्तियों में अपने कानून के अनुसार स्वयम् शासन करने का अधिकार भी उन्हें मिल गया। १६१६ ई० में ओलन्देज व्यापारी वान डर ब्रोक सूरत आया। तब ओलन्देजों को भी सूरत, बड़ोदा, अहमदाबाद और आगरे में कोठियाँ खोलने की आज्ञा मिल गयी। १६२० ई० में फ्रांसीसी व्यापारी भी सूरत आये।

§९. कन्दहार का पतन तथा शाहजहाँ और महाबतखाँ के विद्रोह—१६२२ ई० में ईरान के शाह अब्बास ने कन्दहार को फिर घेरा। शाहजहाँ के नेतृत्व में एक बडी फौज उसके खिलाफ जाने वाली थी, पर शाहजहाँ उस समय विद्रोह कर बैठा। ईरानियों ने कन्दहार ले लिया। चार वर्ष बाद शाहजहाँ ने पिता से सुलह की। इसकी बगावत का मुख्य कारण नूरजहाँ की ईर्ष्या थी। इसी से महाबतखाँ भी बिगड उठा। बादशाह लाहौर से काबुल जाता था। जेहलम पर महाबतखाँ ने अपने ५००० राजपूतों द्वारा उसे कैद कर लिया। नूरजहाँ की कुशलता से वह कैद से छूटा। दूसरे बरस ( १६२७ ई० ) उसकी मृत्यु हो गयी।

§१० शाहजहाँ बादशाह—जहाँगीर के बेटों में शाहजहाँ सब से योग्य था। जोधपुर की राजकुमारी उसकी माँ थी। अपने सब प्रतिद्वन्द्वियों का आसानी से अन्त कर वह हिन्द का बादशाह बना। जहाँगीर की मृत्यु के एक बरस आगे-पीछे ईरान के शाह अब्बास, ओरछा के राजा वीरसिंहदेव तथा मलिक अम्बर की भी मृत्यु हुई। शाहजहाँ के प्राय: साथ ही बीजापुर में मुहम्मद आदिलशाह, और गोलकुंडा में अब्दुल्ला कुतुबशाह गद्दी पर बैठे।

यद्यपि शाहजहाँ ने अपने को इस्लाम का पक्का अनुयायी प्रकट किया, और अपने दादा और पिता की उदार नीति को अंशतः बदल दिया, तो भी अपनी समूची प्रजा के प्रति उसका बर्ताव अच्छा रहा, और हिन्दुओं को उसपर विश्वास बना रहा।

§११. बुन्देलखंड, ब्रज और पंजाब में युद्ध और विद्रोह—वीरसिंहदेव का बेटा जुझारसिंह नये बादशाह का रुख अपने खिलाफ देख आगरे से बुन्देलखंड भाग गया। शाहजहाँ ने आगरा, कन्नौज और मालवा से उसके खिलाफ फौजें भेजीं। बेतवा नदी के तट पर उसका किला इरिच ले लिया गया, तब जुझार ने

अधीनता मानी (१६२६ ई० )। पांच बरस पीछे फिर युद्ध छिड़ गया। छिन्दवाड़ा से २४ मील दक्खिन देवगढ़ में गोंडों की एक राजधानी थी। जुझारसिंह ने नर्मदा के दक्खिन उस देवगढ़ राज्य का चौरागढ़ किला छीन लिया। शाहजहाँ ने जुझार से चौरागढ़ तलब किया। उसके न देने पर शाहज़ादा औरंगज़ेब तथा उसके मामा शाइस्ताखाँ को फिर बुन्देलखंड की चढ़ाई पर भेजा गया। ओरछा पर दखल कर वहाँ का राज्य वीरसिंहदेव के भतीजे देवीसिंह को दिया गया। मुगल सेनाएँ बुन्देलखंड के आर पार चांदा तक जा निकलीं। जुझार और उसका बेटा नगराज जंगलों में गोंडों के हाथ मारे गये। जुझार की रानी पार्वती घायल हो कर मरी। उनका बेटा उदयभान और मन्त्री श्यामदेव क़ैद हो कर मारे गये।

चम्पतराय नाम के सरदार ने जुझार के बेटे पृथ्वीराज को राजा घोषित कर फिर स्वाधीनता की लड़ाई छेड़ी। पृथ्वीराज को मुगलों ने क़ैद कर लिया, तब भी चम्पत जंगलों में भाग कर लड़ता रहा। जुझार के भाई पहाड़सिंह ने मुगलों की सेवा में जा कर चम्पत और उसके बन्धुओं को नष्ट करने का वचन दिया। उससे लड़ना उचित न जान कर चम्पत ने भी सन्धि की ( १६४२ ई० )। उसके बाद भी पहाड़सिंह ने उसे विष दे कर मारना चाहा, पर चम्पत के एक मित्र ने उसका प्याला बदल कर स्वयम् पी लिया। तब चम्पतराय ने अपनी माँ की सलाह से शाहजहाँ के बड़े बेटे दाराशिकोह की सेवा स्वीकार कर ली।

पंजाब में गुरु हरगोविन्द ने, जो क़ैद से छूट चुका था, साम्राज्य से मुठभेड़ जारी रक्खी ( १६२८–३४ ई० )। अन्त में उसे कीरतपुर के पहाड़ों में भागना पड़ा और वहीं उसकी मृत्यु हुई ( १६४४ ई० )।

१६३७ ई० में मथुरा के जाटों ने विद्रोह किया, जो शीघ्र कुचल दिया गया।

§१२. दक्खिन (१६२८–४५ ई०)—शाहजहाँ ने तख्त पर बैठते ही दक्खिन की रियासतों को दबाना शुरू किया। मलिक अम्बर के बेटे फतहखाँ ने अहमदनगर के निज़ामशाह को क़ैद कर मार डाला और दौलताबाद मुगल सम्राट को सौंप दिया, परन्तु शाहजी भोंसले नामक अहमदनगर के एक सरदार ने एक नये निज़ामशाह को खड़ा कर लड़ाई जारी रक्खी। १६३६ ई० में शाहजहाँ ने दक्खिन में चार सूबे—खानदेश, बराड़, दौलताबाद और तेलंगाना—बनाये, तथा औरंगज़ेब को उनके शासन के लिए भेजा। स्वयम् शाहजहाँ भी भारी फौज ले कर दौलताबाद आया। गोलकुंडा ने इससे डर कर सालाना खिराज देना स्वीकार

किया। बीजापुर पर साम्राज्य की सेनाओं ने चढाई की, तब उसने भी नाम को आधिपत्य माना। भूतपूर्व अहमदनगर रियासत के ५० परगने उसे दिये गये। शाहजी ने अपने बादशाह को सौंप दिया और बीजापुर राज्य की सेवा स्वीकार की ( १६३६ ई० )। १६४५ ई० तक औरंगजेब दक्खिन में रहा और वहाँ बहुत अच्छा बन्दोबस्त किया।

बीजापुर और गोलकुंडा उत्तर की तरफ रोके गये तो भूतपूर्व विजयनगर राज्य के इलाकों पर दखल करने लगे। बीजापुरी अपने सेनापति अफजलखाँ के नेतृत्व में बेदनोर, सेरा और बेंगलूर को विजय करते हुए कावेरी तक जा पहुँचे। गोलकुंडा वालों ने समुद्र-तट के साथ-साथ उत्तर तरफ शिकाकोल और चिलिका तक तथा कृष्णा के दक्खिन नल्लमलै के प्रदेशों तक अधिकार कर लिया।

§१३. कन्दहार बलख, बदख्शाँ ( १६३७-५३ ई० )—शाहजहाँ ने बीजापुर और गोलकुंडा से अधीनता मनवाने के एक बरस पीछे कन्दहार के ईरानी हाकिम से साजिश कर उसपर भी अधिकार कर लिया ( १६३८ ई० )। हिन्दूकुश के उस पार बलख और बदख्शाँ के सूबे बुखारा के उज्बग सुलतान के अधीन थे। बुखारा सल्तनत की अव्यवस्था से लाभ उठा कर उन्हें भी हिन्दुस्तान की फौजों ने जीत लिया, पर वहाँ उनका अधिकार केवल दो बरस ( १६४६-४७ ई० ) तक रह पाया। कन्दहार को भी शाह अब्बास २य ने वापिस ले लिया ( १६४८ ई० ), क्योंकि शाहजहाँ अपनी घिरी हुई फौज के पास वक्त पर कुमुक न भेज सका। इसके बाद उसने तीन बार कन्दहार वापिस लेने का जतन किया, पर व्यर्थ। इस विफलता का मुख्य कारण था हिन्दुस्तानी तोपचियों का निकम्मापन। हिन्दुस्तानियों पर ईरानियों की धाक बैठ गयी, और आगे एक सदी तक ईरानी हौआ हिन्दुस्तानी शासकों के दिमाग पर मँडराता रहा।

§१४ शाहजहाँ के शासन-काल में पुर्तगाली, ओलन्देज और अँगरेज—बंगाल में पुर्त्तगालियों की करतूतों का हाल कहा जा चुका है। १६३१ ई० में शाहजहाँ की फौज ने उनके हुगली के किले पर चढाई कर दस हजार आदमियों का संहार किया, और ४-५ हजार को कैद कर लिया। उनके युरोपियन शत्रु ओलन्देजों ने १६५८ ई० तक उनसे समूचा सिंहल और आशा अन्तरीप की बस्तियाँ भी छीन लीं। शाहजहाँ के शासन-काल में अगरेज़ों ने पूरबी तट पर भी बसना शुरू किया। मसुलीपट्टम्, बालेश्वर और हुगली में कोठियाँ बनायीं, और

मुगल साम्राज्य का विकास
दीव
बम्बई
पुरी
गंजाम
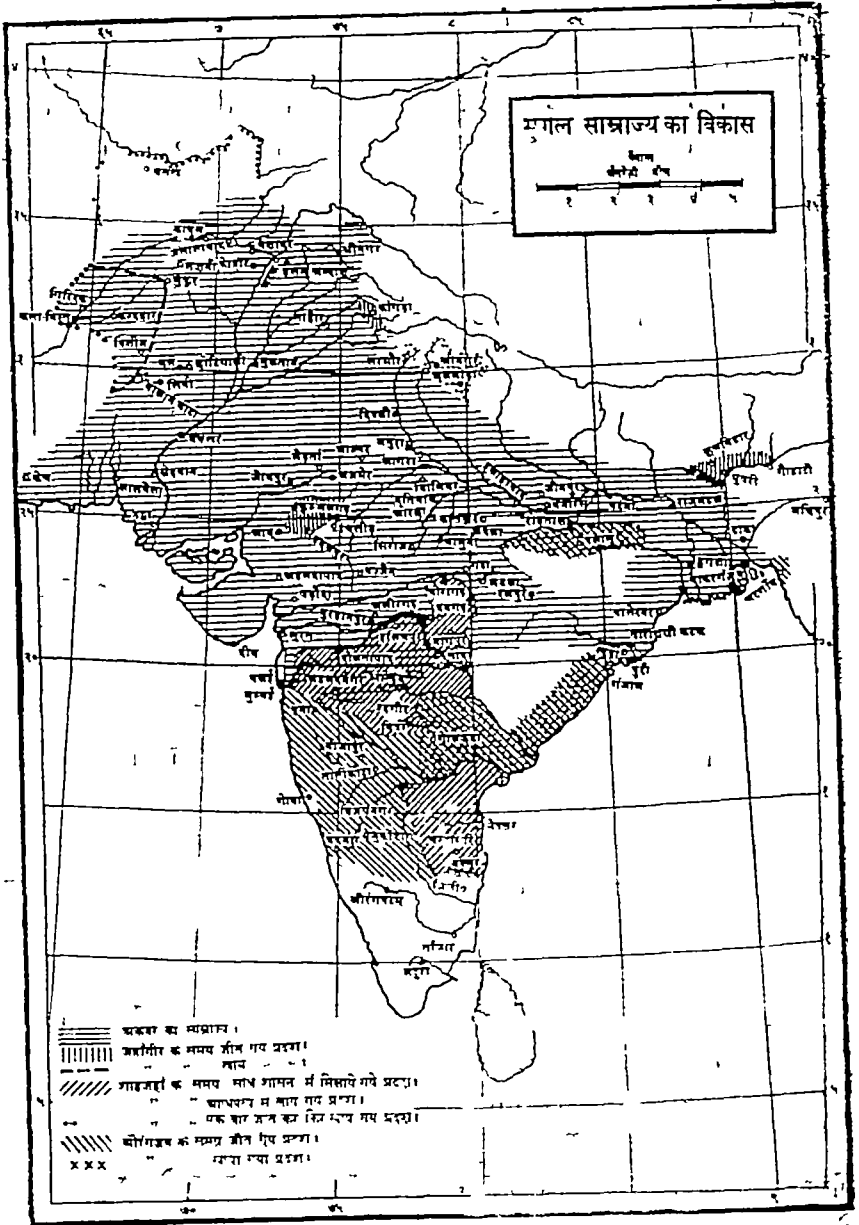
चन्द्रगिरि के राजा से मद्रास का वह स्थान पाया जहाँ पहले-पहल अँगरेज़ों ने किला-बन्दी की। इसी समय पुर्त्तगाल स्पेन से स्वतन्त्र हो गया ( १६४० ई० ), और तब से पुर्त्तगाल की नीति इंग्लैंड से मैत्री रखने की रही। हुगली के अंगरेज़ों ने बंगाल के सूबेदार शाहजादा शुजा से विशेष सुविधाएँ प्राप्त कीं। ३०००) वार्षिक एकमुश्त दे कर उन्हें बंगाल में बिना चुंगी व्यापार करने का अधिकार मिल गया। वे शोरा, खांड और रेशम बिहार-बंगाल से बाहर ले जाते, और बदले में सोना-चाँदी लाते थे, जो तब दक्खिनी अमेरिका की खानों से आ रहा था। फ्रान्सीसियों ने भी १६४२ ई० में सूरत में अपनी कोठी खोली।

उधर इन जातियों के बदमाशों ने भारतीय समुद्र में डकैती भी शुरू की। जहाँगीर के समय में भी एक ऐसी घटना हुई थी। सन् १६३५ और ३८ ई० में इंग्लैंड के राजा से परवाना पाये हुए जहाजों ने भी वैसी ही हरकतें कीं। मुगल सरकार ने इसपर सूरत के सब अँगरेजों को कैद कर लिया, और भारी हरजाना ले कर छोड़ा।

§११५. शिवाजी का उदय और दक्खिन की राजनीति, (१६४६-५८ ई०)—जिस साल जहाँगीर की मृत्यु हुई, उसी साल शाहजी भोंसले की पत्नी जीजाबाई ने जुन्नर के पास शिवनेरी के किले में शिवाजी को जन्म दिया था। शाहजी जब बीजापुर की सेवा में कर्णाटक और तामिलनाड में लड़ रहा था, तब शिवाजी उसकी पूना की जागीर में जीजाबाई से ऊँचे आदर्शों की शिक्षा पाता था। उस शिक्षा से उसके हृदय में स्वतन्त्र होने की अदम्य प्रेरणा जाग उठी।

उन्नीस बरस की उम्र से उसने अपनी उमंगों को चरितार्थ करना शुरू कर दिया। तीन किले उसकी जागीर में थे। १६४६ ई० से उसने दूसरे बीजापुरी किले छीन कर कोंकण जीतना शुरू किया। सह्याद्रि की मावलों ( दूनों ) और कोंकण को उसने अपना आधार बनाया। बीजापुर दरबार ने इसपर शाहजी को क़ैद कर लिया ( १६४८ ई० ), और एक बरस बाद इस शर्त पर छोड़ा कि शिवाजी आगे ऐसा न करे। इसलिए छः बरस तक शिवाजी को चुप रहना पड़ा। इस समय उसने अपने राज्य और सेना का संगठन किया।

इस बीच मुगल साम्राज्य के दक्खिन के सूबे अव्यवस्थित थे; बीजापुर और गोलकुंडा का दक्खिन की तरफ़ फैलना जारी था। गोलकुंडा वाले कृष्णा से उत्तरी पैण्णार तक जीत कर चन्द्रगिरि राज्य की सीमा पर जा पहुँचे। बीजापुर वाले

कावेरी की दून से तामिल-तट में उतरे, और जिंजी का किला जीत कर दक्खिन से
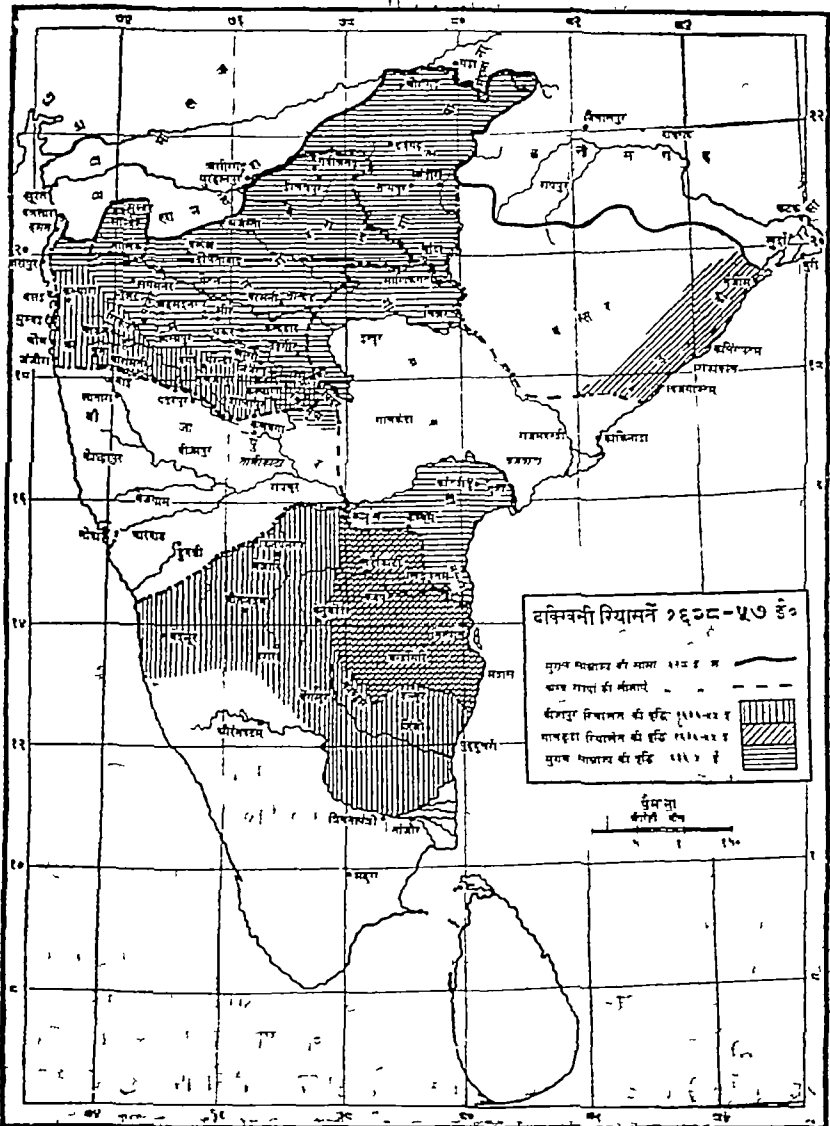
चन्द्रगिरि को दबाने लगे। तब चन्द्रगिरि के राजा ने शाहजहाँ से शरण माँगी।

इस प्रकार चोलमंडल के उपजाऊ मैदान के लिए तीन शक्तियों में स्पर्द्धा पैदा हुई। बाद में तट की दो नयी शक्तियाँ, शिवाजी और युरोपियन, भी इस छीना-झपटी में कूद पड़ीं। इस मैदान की डेढ सौ बरस की यह पेचीदा कशमकश भारतीय इतिहास में भाग्यनिर्णायक सिद्ध हुई। यह तामिल मैदान पहले विजयनगर या चन्द्रगिरि के कर्णाटकी राजाओं के अधीन था, इस कारण इस युग मे बाहर के लोग इसे कर्णाटक कहने लगे थे। असल में इसे कर्णाटक कहना गलत है। कर्णाटक तो वह ऊँचा पठार है जिसमें कन्नड भाषा बोली जाती है और जिसका केन्द्र मैसूर है।
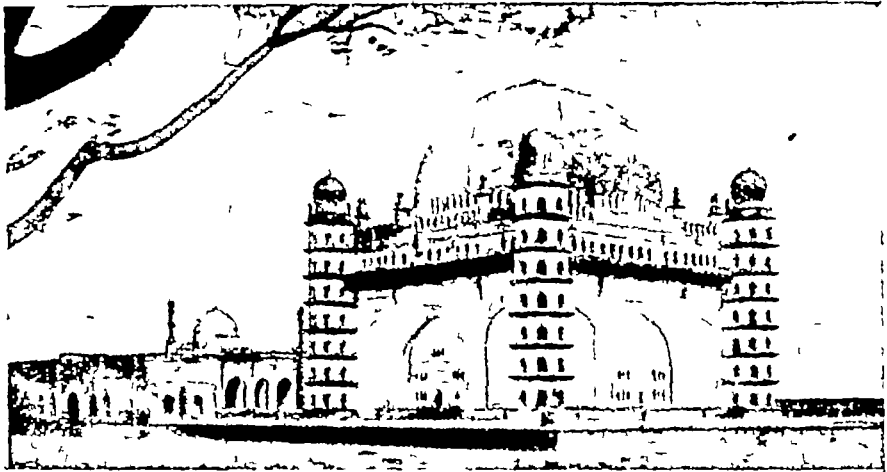
बीजापुर की सर्वोत्तम इमारत, मुहम्मद आदिलशाह का मकबरा, जो गोल गुम्बज नाम से प्रसिद्ध है [ भा० पु० वि० ]

मीर जुमला नाम का एक ईरानी सौदागर इस समय अब्दुल्ला कुतुबशाह का मन्त्री बन गया था। तामिल मैदान को जीतने में उसने विशेष भाग लिया और अब वह इसका बेताज बादशाह बन बैठा। बीजापुर और गोलकुंडा ने मिल कर उसपर चढाई करना तय किया, तब मीर जुमला ने शाहजहाँ से शरण माँगी।

औरंगजेब कन्दहार से सीधा दक्खिन के शासन पर भेजा गया था (१६५३ ई०)। उसके आने से दक्खिन के मुगल सूबों में फिर सुव्यवस्था आ गयी। उसने गोलकुंडा पर एकदम चढाई कर उसे घेर लिया और भारी हरजाना ले कर सन्धि की (१६५६ ई०)। मीर जुमला शाहजहाँ की सेवा में

आया, और उसकी तामिलनाड की जागीर भी मुगल साम्राज्य में शामिल हो गयी। उसी बरस मुहम्मद आदिलशाह की मृत्यु होने से बीजापुर में गोलमाल होने लगा। औरंगजेब जब गोलकुंडा घेरे हुए था, उस समय शिवाजी ने रत्नागिरि तक सब कोंकण जीत लिया। इधर औरंगज़ेब ने भी बीजापुर पर चढाई की (१६५७ ई०)। तब शिवाजी ने बीजापुर से सहयोग किया और मुगलों के अधीन जुन्नर के किले में एकाएक घुस कर उसे लूट लिया, और अहमदनगर तक हमले करते हुए उत्तरी रास्ते बन्द कर दिये। औरंगजेब बीजापुर तक न बढ सका और सीमान्त के किले—बिदर, कल्याण, परेन्दा—ले कर उसने बीजापुर से सन्धि कर ली। मुगल-बीजापुर-सन्धि से उत्तरी कोंकण, जो शिवाजी की जागीर था, मुगल साम्राज्य के हिस्से में आ गया। इसी समय शाहजहाँ की बीमारी की खबर आयी और औरंगज़ेब उत्तर को बढा। मीर जुमला को दक्खिन में छोडते हुए उसने उसे शिवाजी से सावधान रहने को लिखा।

§१६ मुगल साम्राज्य का वैभव—शाहजहाँ के शासन-काल में मुगल साम्राज्य का वैभव खूब चमका। उसे देख कर विदेशी चकित होते थे। शाहजहाँ ने तख्त ताऊस और ताजमहल बनवाये। ताजमहल में उसने अपनी सुन्दरी और साध्वी स्त्री मुमताजमहल की स्मृति अमर की। उसकी अन्य रचनाओं में आगरा के किले की मोती-मसजिद तथा आधुनिक दिल्ली शहर उर्फ शाहजहाँनाबाद विशेष प्रसिद्ध हैं।

शाहजहाँ तख्ते-ताऊस पर—समकालीन चित्र
[ रौथशील्ड-संग्रह, पैरिस, पर्सी ब्रौन के ग्रन्थ से ]

मुगल बादशाहत के जागीरदार, मनसबदार और रईस भी बड़े समृद्ध थे। मनसबदारों को बड़ी तनख्वाहें मिलती थीं, किन्तु उनकी मृत्यु के बाद उनकी सब सम्पत्ति का वारिस बादशाह होता था, इससे वे अपनी कमाई को खुले दिल से खर्च करते थे। बादशाह की और उनकी ऐयाशी के कारण प्रजा का रुपया फिर प्रजा के पास लौट आता था। देश के कारीगर उससे लाभ उठाते थे। बादशाह और प्रान्तीय सूबेदारों के अनेक कारखाने देश के कारीगरों का बड़ा सहारा थे। बादशाह को प्रजा के सुख-दुःख का ध्यान रहता था। १६३०–३१ ई० में गुजरात, खानदेश और दक्खिन में घोर दुर्भिक्ष पड़ा। शाहजहाँ ने उस समय उन प्रान्तों के लगान में बहुत सी छूट कर दी, और जनता में अनाज मुफ्त बँटवाया।

मोती मस्जिद, आगरा

देश की कारीगरी का उल्लेख करते समय यह याद रखना चाहिए कि भारतवासी पच्छिमी जातियों से इस समय ज्ञानक्षेत्र में पिछड़ गये थे। जहाज़रानी और सामुद्रिक व्यापार में, भूमण्डल के ज्ञान में तथा तोपें बनाने और चलाने की कला में, पच्छिमी जातियाँ हमसे बहुत आगे बढ़ गयी थीं। गोवा में पुर्त्तगाली पुस्तकें छापते थे, पर भारतवासियों को कभी उनसे वह कला सीखने की न सूझी। पच्छिम से कुछ नये व्यसन और रोग भी इस युग में आये। सन् १६०५ में बीजापुर में पहले-पहल पुर्त्तगाली तमाकू लाये, जिसको युरोप वालों ने अमेरिका में पाया। १६१६ ई०
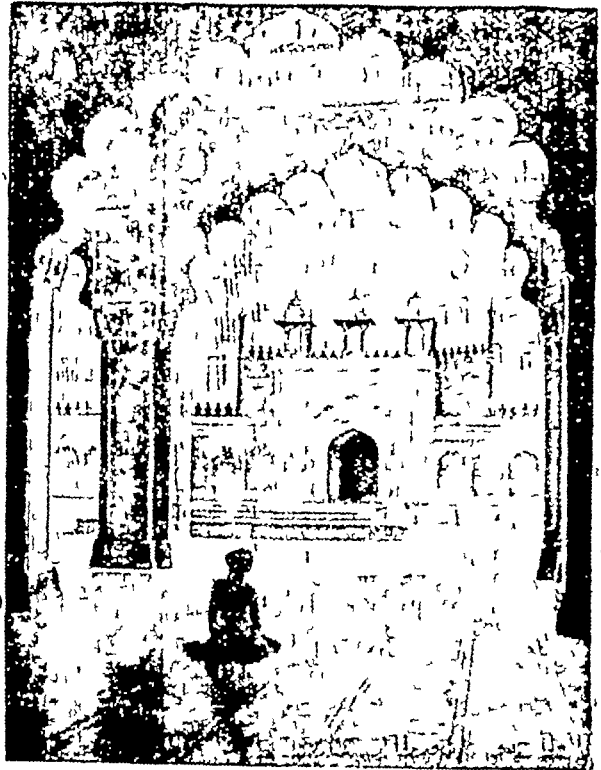
में पंजाब में और १६१८–१९ ई० में दिल्ली-आगरा में ताऊन या प्लेग पच्छिम से आयी।

स्थापत्य, चित्रकला, संगीत और साहित्य के लिए यह समृद्धि का युग था; पर देशी भाषाओं के साहित्य में उस समय काव्य के अतिरिक्त और कुछ न था और काव्य भी भक्तों के उद्‌गारों के सिवाय सब कृत्रिम शैली के थे। हिन्दी कवि बिहारी ( १६०२–६३ ई० ) की 'सतसई' में मुगल-वैभव-युग की ऐयाशी का पूरा प्रतिबिम्ब है। आसाम की भाषा में बुरजी नाम के इतिहास-ग्रन्थ लिखे जाते थे। भारतीय राज्यों के इतिहास सब फारसी में ही लिखे जाते रहे। इस युग के भक्त कवियों में से सब से उज्ज्वल नाम महाराष्ट्र के तुकाराम ( १६०७–४९ ई० ) और समर्थ रामदास ( १६०८–८१ ई० ) के हैं। तुकाराम के कीर्त्तनों में शिवाजी शामिल होते थे और रामदास को तो शिवाजी का गुरु ही कहना चाहिए।

§१७. मुगलों का भ्रातृ-युद्ध ( १६५८–६० ई० )—शाहजहाँ की बीमारी की खबर से चारों तरफ अव्यवस्था फैलने लगी। आसाम के आहोम राजा जयध्वज ने कामरूप और गौहाटी ले लिये। कोचबिहार के राजा प्राणनारायण ने उत्तरी बंगाल पर धावे किये। बंगाल में शुजा ने मुकुट धारण कर बनारस पर चढाई की। गुजरात में उसके भाई मुराद ने भी बादशाह बन कर सूरत लूट लिया। औरंगज़ेब ने नर्मदा के घाट ऐसे रोके कि उसकी तैयारी की कोई खबर उस पार न जा सके। बादशाह ने सब राजकाज दाराशिकोह को सौंप रक्खा था। दारा ने शुजा के खिलाफ अपने बेटे सुलेमान को भेजा और मुराद के खिलाफ मारवाड के राजा जसवन्तसिंह को। औरंगज़ेब मुराद से मिल गया। जसवन्त के पास दोनों से लडने की शक्ति न थी। उज्जैन के पास धर्मट में वह हार कर भागा। सुलेमान शुजा को हरा कर मुँगेर भगा चुका था। तब उसने धर्मट की हार की खबर सुनी। इधर औरंगजेब ने चम्बल पार कर सामूगढ पर दारा को हराया और आगरा को घेर कर किले से जमना का रास्ता बन्द कर दिया। उसके बूढे बाप को पानी के लिए गिडगिडाते हुए किला सौंप कर कैदी बनना पडा। दारा दिल्ली से पंजाब की ओर भागा और औरंगज़ेब ने उसका पीछा किया। मथुरा के पास औरंगज़ेब ने मुराद को शराब पिला कर कैद कर लिया और दिल्ली में अपने को बादशाह घोषित किया। दारा पंजाब से सिन्ध और सिन्ध से कच्छ भगा दिया गया।

शुजा अपने पिता को कैद से छुडाने को बढा। दारा ने अपने मित्रों को उसकी मदद करने को लिखा। पजाब से औरंगजेब उसके मुकाबले को लौटा और इलाहाबाद के पच्छिम खजवा पर दोनों का सामना हुआ। शुजा हार कर बगाल की तरफ भागा। मीर जुमला को उसका पीछा करने भेजा गया। सुलेमान ने श्रीनगर (गढवाल) के राजा के यहाँ शरण ली। उधर गुजरात में औरगजेब के ससुर शाहनवाज ने दारा को शरण दी और जसवन्तसिंह ने उसे अजमेर आने को कहा। खजवा से औरगजेब उधर लौटा। अजमेर के पास दोराई में लडाई हुई, जहाँ शाहनवाज मारा गया और दारा फिर हार कर भागा। राजा जयसिंह उसके पीछे भेजा गया। दर्रा बोलान के पास एक पठान ने उसे पकडा दिया। सुलेमान की खातिर गढवाल के राजा पृथ्वीसिंह पर चढाई की गयी, पर वह व्यर्थ हुई। तब जयसिह ने उसके बेटे को रिशवत दे कर सुलेमान को पकडवा लिया। शुजा को अराकान भागना पडा, जहाँ उसका अन्त हुआ। औरंगज़ेब का बेटा मुहम्मद सुलतान शुजा से मिल गया था, वह पकडा गया और अपने बाप की कैद में मरा। दारा, मुराद और सुलेमान भी मारे गये।

§१८. **औरंगज़ेब बादशाह, आरम्भिक शान्ति-स्थापना (१६५६-६१ ई०)**—औरगज़ेब आलमगीर नाम से गद्दी पर बैठा और उसने उन प्रान्तों में शान्ति स्थापित की जिनमें भ्रातृ-युद्ध के समय अव्यवस्था मच गयी थी। मथुरा के पास जाटों के नेता नन्दराम ने लगान देना बन्द कर दिया था। उसे अब दबना पडा। चम्पतराय बुन्देला ने मालवे के रास्ते रोक लिये थे। उसके खिलाफ दतिया और ओरछा के बुन्देले राजा भेजे गये। वीरता से लड़ते हुए और अनेक विपत्तियाँ झेलते हुए चम्पत और उसकी स्त्री कालीकुमारी ने मालवे में प्राण दिये (१६६१ ई०)। उनका बेटा छत्रसाल बच कर भाग गया। सिक्ख गुरु हरगोविन्द के पोते हरराय ने दारा की मदद की थी। उसे सफ़ाई देने को बुलाया गया, उसने अपने बेटे रामराय को भेजा। रामराय ने दरबार में चापलूसी से काम लिया, तब हरराय ने अपनी मृत्यु से पहले छोटे बेटे को उत्तराधिकारी बनाया। वह बालक दिल्ली बुलाया गया, और वहीं चेचक की बीमारी से मर गया। तब उसका चचा तेगबहादुर सिक्खों का गुरु बना (१६६४ ई०)।

§१९. **शिवाजी के खिलाफ़ अफजलखाँ और शाइस्ताखाँ, सूरत की लूट (१६५८-६४ ई०)**—औरगज़ेब के लौट जाने पर बीजापुर सरकार ने विद्रोही

शिवाजी को कुचलने का निश्चय किया। सेनापति अफ़ज़लखाँ बड़ी सेना के साथ पच्छिम भेजा गया। उसने शिवाजी को अपने पास हाज़िर होने का हुक्म भेजा। शिवाजी के मन्त्रियों ने अधीनता मानने की सलाह दी, पर जीजाबाई ने यह बात न मानी। प्रतापगढ के पहाड़ी किले के नीचे दोनों का मिलना तय हुआ। अफ़ज़ल ने शिवाजी को छाती लगाते हुए उसका गला घोंट कर छुरी मारनी चाही, तब शिवाजी ने अपने हाथ और आस्तीन में छिपाये बघनखे और बिछुए से उसका पेट फाड दिया ( १६५६ ई० )। छिपे हुए मावलियों ने बीजापुरी फौज को तहस-नहस कर दिया। तब शिवाजी ने दक्खिन कोंकण, कोल्हापुर जिला और पन्हाला का किला जीत लिये।

मीरजुमला के बाद शाइस्ताखॉं दक्खिन में मुगल सूबेदार बन कर आया था। अब उसने और बीजापुर के शाह ने मिल कर शिवाजी को दबाना चाहा। शाइस्ताखॉं और उसके सहायक राजा जसवन्तसिंह ने, जो अब औरंगजेब की सेवा में आ गया था, उत्तरी कोंकण के अतिरिक्त शिवाजी की असल जागीर पूना पर भी दखल कर लिया। उधर बीजापुर के अली आदिलशाह ने दक्खिनी इलाके छीन कर शिवाजी को पन्हाला के क़िले में घेरना चाहा ( १६६० ई० )। शिवाजी पन्हाला से निकल गया। उसके विश्वस्त सरदार बाजो प्रभु ने अपनी जान दे कर बीजापुरी फौज का रास्ता तब तक छेंके रक्खा, जब तक शिवाजी विशालगढ न पहुँच गया। बीजापुरी पन्हाला से आगे न बढे। अब शिवाजी के पास वही थोडा सा इलाका बच गया।

शाइस्ताखाँ और जसवन्तसिंह ने पूना में छावनी डाल दी। शिवाजी एक रात अपने चुने साथियों के साथ छावनी में जा घुसा, और ठीक शाइस्ताखाँ के मकान में पहुँच कर मारकाट शुरू कर दी ( १६६३ ई० )। शाइस्ताखॉं खिडकी से निकल भागा। इससे पहले कि मुगल फौज सँभले, शिवाजी निकल गया। शाइस्ताखाँ पूने में जसवन्तसिंह को छोड़ स्वयम् औरंगाबाद चला गया। उधर बीजापुर के सुल्तान से शिवाजी ने दक्खिनी कोंकण ( रत्नागिरि ) और उत्तरी कनाडा तट जीत लिये।

उत्तरी कोंकण को वापिस लेकर दूसरे बरस शिवाजी ने सूरत पर चढाई की ( जनवरी १६६४ ई० )। वह मुगल-साम्राज्य का सबसे समृद्ध बन्दरगाह था। मुगल फ़ौज किले में जा छिपी। चार दिन में एक करोड़ रुपया ले कर शिवाजी

लौट गया। फिर बरसात में उसने अहमदनगर और उसी जाड़े में कनाडा के समृद्ध शहर हुबली और कारवार को लूटा।

§२०. आसाम और चटगाँव की विजय (१६६०–६६ ई०)—शुजा को अराकान भगाने के बाद मीरजुमला ने कोचबिहार, कामरूप और आसाम पर चढाइयाँ कीं। वहाँ से लौट कर उसकी शीघ्र मृत्यु हो गयी (१६६३ ई०)। तब शाइस्ताखाँ दक्खिन से बगाल भेजा गया। बगाल में उसने खूब नेकनामी कमायी। चटगाँव को जीत कर १६६६ ई० में उसने पुर्त्तगाली और अराकानी डकैतों का अड्डा तोड दिया। सारे बगाल में इस पर खुशियाँ मनायी गयीं। आगे २१ बरस तक शाइस्ताखाँ के न्यायपूर्ण शासन में बगाल ने मुगल साम्राज्य का पूरा वैभव देखा।

§२१. पुरन्दर की सन्धि, शिवाजी का कैद होना और भागना (१६६५-६६ ई०)—दक्खिन में शाइस्ताखाँ और जसवन्तसिंह की जगह शाहजादा मुअज्जम और राजा जयसिंह कछवाहा को भेजा गया। जयसिंह ने शिवाजी के सब शत्रुओं को मिलाया और पूना के चारों तरफ उसके इलाके उजाडना शुरू किया। फिर उसने पुरन्दर के किले पर चढाई की। शिवाजी कनाडा से लौट आया, पर पुरन्दर का घेरा न उठा सका। तब उसने जयसिंह से भेंट कर सन्धि की बात शुरू की, और अपने ३५ किलों में से २३ दे कर दक्खिन में बादशाह की सेवा करना स्वीकार किया।

अब शिवाजी और जयसिंह मिल कर बीजापुर की चढाई पर चले, पर वहाँ से वे विफल लौटे। जयसिंह की सलाह से शिवाजी ने आगरे जाना तय किया। इस बहाने उसे मुगल बादशाहत तथा उत्तर भारत की हालत अपनी आँखों देखने का मौका मिला। जीजाबाई को शासन-सूत्र सौंप कर वह आगरा गया। जयसिंह के बेटे रामसिंह ने उसे औरगजेब के दरबार में पेश किया (१२-५-१६६६ ई०); लेकिन दरबारियों का सा बरताव शिवाजी से न बन पडा। औरगजेब ने उसे कैद में डाल दिया। तीन महीने पीछे मिठाई के टोकरे में अपने को छिपा कर वह उस कैद से निकल भागा, और भेस बदल कर मथुरा, प्रयाग, बुन्देलखंड, गोंडवाने के रास्ते महाराष्ट्र पहुँचा। दूसरे वर्ष दक्खिन से लौटते हुए बुरहानपुर में जयसिंह मर गया।

शिवाजी का भागना मुगल-वैभव-युग के अन्त का सूचक था। पानीपत के दूसरे युद्ध के बाद से सौ बरस तक मुगल बादशाहत का गौरव बढ़ता ही गया था।

मुगलों के शस्त्र तब अजेय समझे जाते थे और उनके साम्राज्य की सीमाएँ अनुल्लङ्घनीय। शिवाजी ने उस धाक को तोड़ दिया। औरंगज़ेब जैसे पराक्रमी प्रतिभाशाली कर्त्तव्यपरायण संयमी सजग सुशासक के गद्दी पर बैठने पर यह आशा की गयी थी कि साम्राज्य का वैभव और बढ़ेगा। बेशक साम्राज्य की सीमाएँ औरंगजेब ने बहुत बढ़ा दीं, पर उसकी आँखों के सामने ही वह साम्राज्य बोदा और दिवालिया हो गया। विरोधी शक्तियाँ अब इतनी जाग उठीं कि औरंगजेब की अनुपम दृढ़ता भी उनसे लड़ते-लड़ते चूर हो गयी। एक अंश तक उसकी अपनी धर्मान्धता उन विरोधी शक्तियों को जगाने और भड़काने का कारण थी किन्तु सच बात यह है कि शिवाजी की स्वाधीनता-चेष्टा औरंगजेब के राज्य से पहले प्रकट हो चुकी थी।

सन् १६६६ ई० में ही कैदी शाहजहाँ का देहान्त हुआ।

---

## अध्याय ५

### मुगल साम्राज्य का अन्तिम विस्तार

### ( १६६७–१७२० ई० )

§१ सीमान्तों पर अशान्ति—मुगल साम्राज्य के इतिहास का यह नया पन्ना खुलते ही सीमान्तों की अशान्ति और औरंगज़ेब की हिन्दू-विरोधी नीति सामने आती है। शिवाजी दक्खिन पहुँच कर अपनी तैयारी में लग गया, इससे दक्खिनी सीमान्त पर फिलहाल शान्ति रही। किन्तु आहोम राजा चक्रध्वज ने धुबड़ी तक समूचा आसाम वापिस ले लिया ( १६६७ ई० )। राजा रामसिंह कछवाहा को आसाम भेजा गया, जो आठ बरस के निरन्तर युद्धों के बाद अन्त में विफल लौटा। तब साम्राज्य के अधिकारियों ने रिशवत दे कर गौहाटी पर कब्जा कर लिया; पर राजा गदाधरसिंह ने उसे वापिस ले लिया और साथ ही कामरूप भी छीन लिया ( १६८१ ई० )। यह स्थिति अन्त तक बनी रही।

उत्तर पच्छिमी सीमान्त पर भी वही दशा थी। पुराने जमाने में काबुल नदी के काँठे और उसके उत्तर में पठान लोग न रहते थे। बाबर ने जब स्वात और बाजौर जीता, तब यूसुफजई पठान पहले-पहल कन्दहार से स्वात के काँठे में आये थे। अब वे सिन्ध पार कर पखली ( आजकल के हजारा जिले ) पर दखल

करने लगे। इस प्रवास के सिलसिले मे उन्होंने काबुल, पेशावर और अटक मे लूट मचा दी। तीन बरस की चढाइयों के बाद मुगल सरकार उन्हें सिन्ध के पूरब से निकाल सकी। उसी सिलसिले मे राजा जसवन्तसिंह को जमरूद का थानेदार नियत किया गया।

किन्तु पठानों और मुगलो मे बाबर के समय से अस्थिर्वैर चला आता था। सन् १६७२ में अकमल के नेतृत्व में अफरीदी उठ खड़े हुए। उन्होंने मीर जुमला के बेटे से, जो काबुल की सूबेदारी पर जाता था, दो करोड रुपया लूट लिया, और खैबर का रास्ता बन्द कर दिया। खटक अफगानों का नेता खुशालखाँ नामक कवि था। वह भी अकमल से जा मिला और कन्दहार से अटक तक सब पठान विद्रोह में शामिल हो गये। शाहजादा अकबर को कोहाट के रास्ते काबुल भेजा गया। आगरखाँ तुर्क और जसवन्तसिंह को कई घमासान लडाइयाँ लडनी पड़ीं। औरंगज़ेब खुद हसन-अब्दाल तक आया। पाँच वर्ष बाद पठानों को घूँस दे कर खैबर का रास्ता खुलवाया गया। तब अमीरखाँ को काबुल की सूबेदारी दी गयी। वह पठान फिरकों को एक दूसरे के खिलाफ उभाडने मे सिद्धहस्त था। इस नीति से उसने २१ वर्ष तक शासन किया ( १६७७-९८ ई० )। इस बीच में अकमल मर गया और खुशाल को उसके बेटे ही ने पकडवा दिया ( १६९० ई० )।

§२ शिवाजी की शासन-व्यवस्था—शिवाजी ने तीन वर्ष मुगलों से शान्ति रक्खी। इस बीच उसने एक बार पुर्त्तगालियों से गोवा छीनने की विफल चेष्टा की। शाहजादा मुअज़्ज़म अब दक्खिन का सूबेदार था। शिवाजी ने अपने बेटे सम्भाजी और सेनापति प्रतापराय गूजर को उसके दरबार में रक्खा। इस बीच शिवाजी का ध्यान अपने 'स्वराज्य' का सुप्रबन्ध करने में लगा था। उसकी शासन-व्यवस्था मे निम्नलिखित विशेषताएँ थीं—

( १ ) लगान वसूल करने वाले ठेकेदारों को हटा कर उसने कृषकों के साथ राज्य का सीधा सम्बन्ध कर दिया।

( २ ) सैनिक और मुल्की कर्मचारियों का कार्य बहुत अंश तक अलग-अलग कर दिया, और कर की वसूली तथा देश-प्रबन्ध मुल्की कर्मचारियों को सौंप दिया।

( ३ ) कर्मचारियों को जागीर के बजाय नकद वेतन देने का प्रबन्ध किया।

( ४ ) 'अष्ट प्रधान' नाम की मन्त्रियो की एक समिति स्थापित की। इसकी कोई स्वतन्त्र शक्ति न थी तथा इसका मुख्य नेता पेशवा कहलाता था।

( ५ ) सुनियन्त्रित सेना और किलों की सुशृंखल व्यवस्था की।

( ६ ) अपने शासन में उदार धार्मिक नीति से काम लिया। लूट के समय भी शिवाजी की सेना को सख्त ताकीद थी कि बच्चों और स्त्रियों को कभी न पकड़ें, और मन्दिरों-मसजिदों तथा धर्मपुस्तकों को कभी न बिगाड़ें।

( ७ ) अपने "स्वराज्य" के बाहर "मुगलाई" के इलाकों से "चौथ" और "सरदेशमुखी" तलब की। चौथ अर्थात् मालगुजारी का चौथाई माँगने में उसकी दलील यह होती थी कि "तुम्हारे बादशाह ने मुझे अपने राष्ट्र की रक्षा के लिए फौज रखने को बाधित किया है। उसका खर्चा तुम्हें देना होगा।" चौथ न देने वालों को लूटा जाता था, देने वालों की रक्षा का भार लिया जाता था। वह एक किस्म का खिराज था। ज़मीन के जमींदार, देशमुख या वतनदार का मालगुज़ारी मे १० रुपया सैकड़ा का हक सरदेशमुखी कहलाता था। यह लगान वसूल करने की ज़िम्मेदारी के बदले में था। इस प्रकार शिवाजी का दावा था कि वह सारे दक्खिन की मालगुजारी स्वयम् वसूल करेगा और उसकी रक्षा का ज़िम्मा अपने ऊपर लेगा।

§२ औरंगजेब की धर्मान्ध नीति—औरंगज़ेब अपनी धर्मान्धता का प्रमाण पहले ही दे चुका था। प्रसिद्ध सन्त मियाँमीर के शिष्य शाह मुहम्मद को बुला कर उसने डाँटा, तथा सरमद नामक सूफी को फाँसी दिला दी थी। अब उसकी नीति उग्र रूप में प्रकट हुई। बिक्री के माल पर अढाई रुपया सैकडा चुगी लगती थी। हिन्दुओं पर वह चुगी पाँच रुपये सैकडा कर दी गयी। इसके बाद मुसलमानों के माल पर से महसूल बिलकुल उठा दिया गया। मुसलमान बनने वालों को सरकारी ओहदे, तरक्की तथा कैद की माफी आदि मिलने लगी। दिल्ली और अन्य बडे-बडे शहरों में सगीत बन्द करा दिया गया। शहरों में होली, दिवाली और मुहर्रम के जुलूस निकालना तथा स्त्रियों का कब्रें पूजना रोका गया। 'काफ़िरों' के मन्दिर और विद्यालय ढहा देने का हुक्म निकाला गया ( १६६९ ई० )। उसके बाद सब हिन्दू पेशकारों और दीवानों को राजकीय सेवा से निकालने का हुक्म हुआ, पर पीछे आधे पद हिन्दुओं को देने पडे। इसके बाद मूर्तिपूजा रोकने का फरमान निकाला गया। अन्त में औरंगज़ेब ने गैर-मुस्लिमों पर फिर से जज़िया

शिवाजी

( मीर मुहम्मद कृत १६८६ ई० मे पहले का चित्र जो अब पैरिस के राष्ट्रीय पुस्तकालय में है )

लगा दिया (१६७६ ई०)। जजिया एक किस्म का मुंड-कर था, इसलिए गरीबों पर उसका बोझ अधिक पड़ता था।

§४ शिवाजी का पिछला चरित (१६७०–८० ई०)—सन् १६७० ई० से शिवाजी ने फिर लड़ाई छेड़ दी। पुरन्दर की सन्धि के अनुसार जो किले उसने मुगलों को दे दिये थे, उनको एक-एक कर के फिर छीन लिया। उसने सूरत को फिर लूटा और बराड तथा बागलान (नासिक और सूरत के बीच के पहाड़ी इलाके) पर चढाई कर साल्हेर का गढ ले लिया (१६७० ई०)। सन् १६७१ के अन्त में बहादुरखाँ को दक्खिन का सूबेदार बना कर भेजा गया। दिलेरखाँ पठान उसका सहायक था। उन्हें कोई स्थायी सफलता न हुई। शिवाजी ने बागलान का दूसरा बडा गढ मुल्हेर भी ले लिया। इसके बाद उसने सूरत के ठीक दक्खिन के कोंकण के प्रदेश—कोलवन—और नासिक जिले के कुछ अंश पर भी दखल कर लिया (१६७२ ई०)। फिर बराड और तेलगाना तक कई धावे मारे। सन् १६७२ से १६७७ ई० तक शिवाजी मुगल इलाकों पर बराबर धावे मारता रहा। बहादुरखाँ और दिलेरखाँ ने उसे किसी और इलाके पर दखल न करने दिया, पर वे उसके धावे न रोक पाते थे। सन् १६७२ में बीजापुर का अली आदिलशाह मर गया। तब शिवाजी ने दक्खिन की ओर बढ कर पन्हाला और सतारा ले लिये, तथा हुबली और कनाडा पर भी धावे किये।

सन् १६७४ के शुरू में दिलेरखाँ ने कोंकण पर और बीजापुरियों ने पन्हाला तथा सतारा पर एक साथ चढाई की, पर उन्हें कोई सफलता न मिली। उसी समय दिलेरखाँ को अपने पठान भाइयों से लडने के लिए उत्तरी सीमान्त पर बुला लिया गया। उसी बरस शिवाजी ने रायगढ में अपना अभिषेक कराया और तब से वह शिव छत्रपति कहलाने लगा। अब वह एक विद्रोही सरदार नहीं बल्कि स्वतन्त्र राजा हो गया। अभिषेक के एक महीना पीछे उसने बहादुरखाँ की छावनी पर धावा बोल कर एक करोड़ रुपया लूट लिया। दूसरे बरस बहादुरखाँ को सन्धि की बातों में बहका कर उसने बीजापुर से फोंडा (गोवा के पास) का किला, कोल्हापुर और कनाडा का तट (कारवार, अकोला) छीन लिये। इसी समय बेदनूर की रानी ने शिवाजी की अधीनता मान कर वार्षिक कर देना शुरू किया।

तांजोर में शाहजी की जागीर का उत्तराधिकारी उसका छोटा बेटा व्यकोजी हुआ था। उसका मन्त्री रघुनाथ नारायण हनुमन्ते था। हनुमन्ते व्यकोजी को

छोड़ कर शिवाजी की तरफ़ चला आया, और रास्ते में गोलकुंडा के वज़ीर मदन्न पण्डित से मिला। उनकी योजना के अनुसार कुतुबशाह ने एक लाख होन ( सोने का सिक्का ) वार्षिक शिवाजी को देना कबूल कर के मुग़लों से गोलकुंडा की रक्षा का भार उसे सौंप दिया ( १६७६ ई० )। शिवाजी का दूत प्रह्लाद नीराजी गोलकुंडा में रक्खा गया। बहादुरखाँ अब बीजापुर को दबाने

सेनापति अक्कन्न—एक समकालीन ओलन्देज़ चित्र [ भा० पु० वि० ]

में लगा था, और शिवाजी को भी दूर जाना था, इसलिए दोनों ने समझौता कर लिया। शिवाजी ने महाराष्ट्र का राज्य-कार्य पेशवा मोरो पिंगले को सौंप के और स्वयम् सन् १६७७ के शुरू में रायगढ से सीधे हैदराबाद की ओर प्रस्थान किया। वहाँ उसका खूब स्वागत किया गया। कुतुबशाह ने पाँच हज़ार सेना, तोपख़ाना तथा चढ़ाई का तमाम ख़र्चा दे कर शिवाजी को विदाई दी। कृष्णा नदी पार कर शिवाजी ने "कर्णाटक" पर चढाई की और वेल्लूर से ताजोर की सीमा
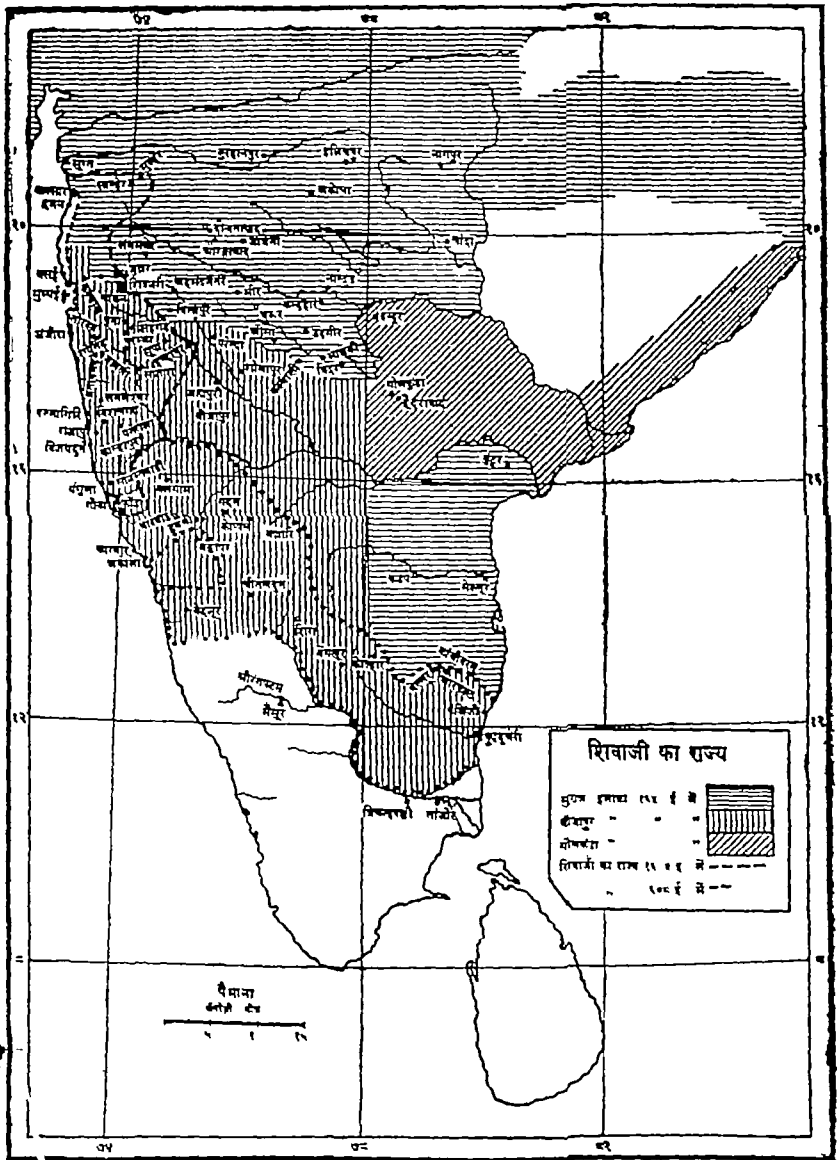
तक सब देश जीत कर महाराष्ट्र के ढंग पर उसका फौजी और माली बन्दोबस्त किया। हनुमन्ते के हाथ में उसका प्रबन्ध छोड़ कर असल कर्णाटक के पूरबी छोर

से वह वापिस लौटा। कर्णाटक में कोल्हार, बेंगलूर, सेरा, बेल्लारि, कोप्पल और धारवाड़ को अधीन करके और उसका एक प्रान्त बना कर वह पन्हाला लौट आया (१६७८ ई०)। उसके बाद उसने पन्हाला से तुगभद्रा तक बीजापुर का इलाका जीत कर अपने कर्णाटक के प्रान्त को महाराष्ट्र से जोड दिया।

इस बीच दिलेरखाँ फिर दक्खिन लौट आया था। शिवाजी को मदद देने के दड मे उसने कुतुबशाह से एक करोड रुपया तलब किया, जिससे दोनों में युद्ध छिड गया। गोलकुडा के सेनापति अकन्न ने उसे हराया। यह वजीर मदन्न का भाई था। शिवाजी ने 'कर्णाटक' की विजयों मे से कुतुबशाह को कुछ भी न दिया। इससे कुतुबशाह ने अब उससे लड़ना चाहा, पर वह कुछ न कर सका।

शिवाजी का वडा बेटा सम्भाजी दुश्चरित्र था। उसके एक अपराध के कारण उसे पन्हाला में नजरबन्द किया गया था, वह भाग कर दिलेरखाँ से जा मिला। किन्तु कुछ समय बाद वह ऊब कर वापिस आ गया।

जब औरगज़ेब ने जजिया लगाया, तो शिवाजी ने एक पत्र लिख कर उसका प्रतिवाद किया। दूसरे वर्ष, कुछ दिन की बीमारी के बाद, एकाएक शिवाजी का देहान्त हो गया (५-४-१६८० ई०)।

§५ ब्रज बुन्देलखड, पजाब के विद्रोह (१६६६-७६ ई०)—औरगजेब के हुक्म के मुताबिक जब मथुरा में मन्दिर तोडे गये, तब गोकला जाट के नेतृत्व में वहाँ के किसान बिगड उठे (१६६६ ई०)। मथुरा का फौजदार उनसे लड़ता हुआ मारा गया। दोआब और आगरा तक बलवा फैल गया, जिसे दबाने के लिए बादशाह को स्वयम् जाना पडा। अन्त में तोपों के मुकाबले में जाट हार गये तथा गोकला कैद हुआ और मार डाला गया।

उज्जैन में जो शाही कर्मचारी मन्दिर तोड़ने गये, उन्हें प्रजा ने मार डाला। ओरछा में उन्हें बुन्देलों ने मार भगाया। दिल्ली के पच्छिम नारनौल का ज़िला सतनामी पन्थ का केन्द्र था। वह पन्थ राजपूत, बनिये इत्यादि सभी जातों के मिश्रण से बना था। १६७२ ई० में सतनामियों ने विद्रोह किया और वे दिल्ली के पास तक जा पहुँचे। अन्त में तोपों और बड़ी फौजों के मुकाबले मे वे भी परास्त हुए।

तेगबहादुर जब सिक्खों के गुरु बने तो औरगजेब ने उन्हें दिल्ली बुलाया। वहाँ से राजा रामसिंह उन्हें आसाम ले गया। आसाम से लौट कर गुरु ने पजाब

में फिर छेड़-छाड़ शुरू कर दी और कश्मीर के हिन्दुओं को उत्साहित किया कि वे मुसलमान न बनें। बादशाह ने तेगबहादुर को दिल्ली बुला कर मुसलमान होने को कहा, परन्तु उसका हुक्म न मानने पर उन्हें अपनी जान देनी पड़ी ( १६७५ ई० )। दिल्ली में सीसगंज गुरुद्वारा उस घटना का स्मारक है।

§६ छत्रसाल का उदय—( १६७१-७६ ई० )—अपने माता-पिता की मृत्यु पर छत्रसाल बुन्देला केवल ग्यारह बरस का था। अपने देश मे तब उसे कोई शरण न देता था। उस दशा में उसने राजा जयसिंह की सेवा स्वीकार कर ली थी। जयसिंह के साथ वह पुरन्दर और बीजापुर गया, और फिर दिलेरखाँ के साथ गोंडवाने की चढ़ाई में। वहाँ से वह एक दिन अपनी स्त्री कमलावती के साथ खिसक गया और महाराष्ट्र मे पहुँच कर शिवाजी से मिला ( १६७१ ई० )। शिवाजी ने उसे अपने देश में जा कर सिर उठाने की सलाह दी। छत्रसाल तब दतिया के राजा शुभकर्ण बुन्देला से मिला, जो मुगलों की तरफ से दक्खिन में लड़ रहा था। छत्रसाल के राष्ट्रीय विद्रोह के प्रस्ताव को शुभकर्ण ने पागलपन कहा और उसे एक अच्छा मनसब दिलाना चाहा। छत्रसाल ने वह मंजूर न किया। ५ सवारों और २५ पियादों की अपनी सेना लिये वह बुन्देलखंड पहुँचा, और पूरबी बुन्देलखंड को आधार बना कर धामुनी ज़िले पर धावे करने लगा। वहाँ के कई फौजदारों को उसने बारी-बारी से हराया।

§७ राजपूताने का युद्ध ( १६७९–८१ ई० )—१६७८ ई० के अन्त में राजा जसवन्तसिंह जमरूद में ही मर गया। उसके पीछे कोई सन्तान न थी। औरंगज़ेब ने मारवाड़ राज्य को जब्त करना तय कर तुरन्त शाही फौजदार भेज दिये और स्वयम् बड़ी फौज के साथ अजमेर पहुँच गया। उधर जसवन्त की विधवा ने लाहौर में एक पुत्र को जन्म दिया, जिसका नाम अजित रक्खा गया। दुर्गादास राठौड राजपरिवार को दिल्ली ले आया। मारवाड़ से औरंगज़ेब जिस दिन दिल्ली पहुँचा ( २-४-७९ ई० ), उसी दिन उसने सारे साम्राज्य में जज़िया लगा दिया। उसने दुर्गादास से अजित को तलब किया और उसे मुसलमान बनने की शर्त पर राज्य देना स्वीकार किया। मुट्ठी भर साथियों के साथ दुर्गादास रानियों और उस बालक को लेकर निकल भागा। मुगल फौज ने तब मारवाड़ पर चढ़ाई की। बादशाह ने खुद अजमेर में डेरा जमाया। पुष्कर घाटी की लड़ाई

में राजपूतों का भारी संहार हुआ। मारवाड़ के मैदान पर शाही फौज ने कब्जा कर लिया और राजपूतों ने पहाड़ों और जंगलों की शरण ली।

मेवाड़ के राणा राजसिंह ने अजित का पक्ष लिया। तब औरंगजेब ने उदयपुर पर भी चढ़ाई की। राणा पहाड़ों में और अन्दर चला गया। शाही फौज ने चित्तौड को अपना आधार बनाया। राजसिंह का आधार तब आडावला की चोटी पर कुम्भलमेर का गढ था। उसके पच्छिम मारवाड में और पूरब मेवाड में दोनों
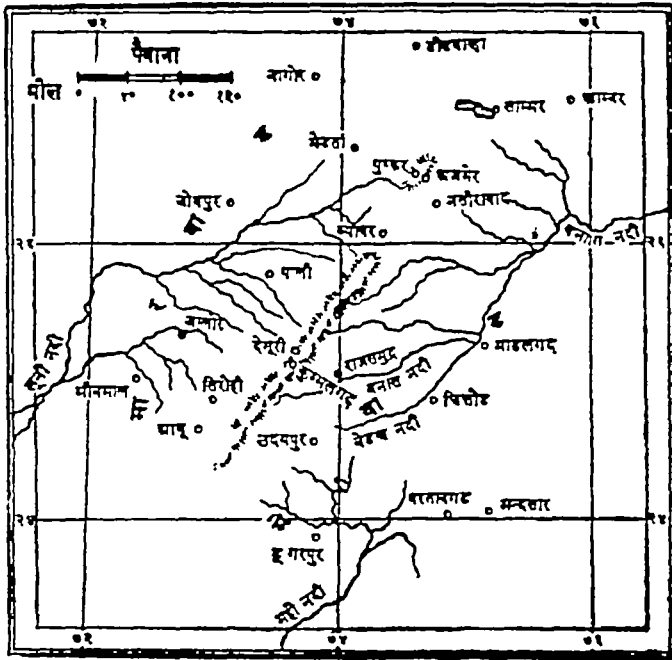
राजपूत युद्ध

तरफ मुगल फौजें थीं। औरङ्गजेब ने तीन तरफ से राणा के केन्द्र तक घुसने की योजना की। शाहजादा अकबर को मारवाड से देसूरी और झीलवाडा घाटियों द्वारा, शाहजादा मुअज़्ज़म उर्फ़ शाहआलम को उत्तर से राजसमुद्र के रास्ते, तथा शाहजादा आज़म को उदयपुर के रास्ते कुम्भलमेर पहुँचने का आदेश मिला। मुअज़्ज़म और आजम एक पग भी न बढ़ सके। अकबर ने अपने हरावल को झीलवाड़ा तक पहुँचा दिया। आगे आठ मील पर कुम्भलमेर था। राजसिंह और दुर्गादास ने तब अकबर को फोड़ लिया। उन्होंने उसे समझाया कि तुम्हारा बाप अपनी धर्मान्धता

से साम्राज्य को नष्ट किये डालता है, तुम अपनी बपौती को बचाओ। बात पक्की हुई, पर उसी समय राजसिंह का देहान्त हो गया और एक मास शोक मनाने में टल गया।

१ जनवरी सन् १६८१ को अकबर ने अपने को बादशाह घोषित किया। चार मुल्लाओं ने औरगज़ेब के खिलाफ फतवा दे दिया। पर एकाएक अजमेर पर टूटने के बजाय अकबर ने वहाँ तक पहुँचने में १५ दिन लगा दिये। इस बीच में सब फौजें वहाँ आ जुटी थीं। राजपूत सेना के निकट आने पर औरगज़ेव ने झूठी चिट्ठी वाली वही चाल चली जिससे शेरशाह ने मेड़ताँ पर सफलता पायी थी। गलती मालूम होने पर दुर्गादास ने अकबर को शरण दी। राजपूताने मे उसे सुरक्षित न जान, उसने मुगल सूबों को चीरते हुए उसे सम्भाजी के दरबार में रायगढ पहुँचा दिया।

इधर कुछ मास बाद राजसिंह के बेटे जयसिंह ने बादशाह से सन्धि कर ली। जज़िये की माँग के बदले में उसने तीन परगने सौंप दिये। मारवाड़ बादशाह के कब्जे में रहा।

§८ मुगल साम्राज्य का अन्तिम विस्तार ( १६८१-८६ ई० )—शिवाजी की मृत्यु के बाद अष्ट प्रधान ने रायगढ मे उसके छोटे बेटे राजाराम को राजा घोषित किया, पर सम्भाजी ने तुरन्त रायगढ पर चढाई कर उसे कैद में डाल दिया और उसके साथियों का दमन किया। उसने अष्ट प्रधान की परवा न की, और प्रयाग के एक कनौजिया पडे 'कविकुलेश' को, जो मन्त्र-तन्त्र और कृत्या-अभिचार में कुशल था, अपना सलाहकार बनाया। महाराष्ट्र के लोग इस कारण उससे और भी घृणा करने लगे।

मराठों और अकबर का मेल खतरनाक था, इसलिए राणा जयसिंह से सन्धि कर औरगज़ेब सीधा दक्खिन आया। उसने महाराष्ट्र के खिलाफ बीजापुर से भी मदद लेनी चाही। परन्तु बीजापुर और गोलकुडा के सुल्तान अब यह अनुभव करने लगे थे कि उनके राज्य यदि मुगलों के हाथ में जाने से बचे हैं तो केवल मराठा राज्य की बदौलत, इसलिए उन्होंने मराठों को मदद दी।

औरंगजेब दक्खिन पहुँचा तो सम्भाजी जजीरा द्वीप के सिद्दियों से लड़ने में लगा था। एक मुगल फौज ने उत्तरी कोंकण से घुस कर कल्याण का किला ले लिया (१६८२ ई०)। तब वह जजीरा छोड़ कर उधर मुड़ा और मुगलों को

कोंकण से निकाल कर उसने कल्याण को घेर लिया। मुगल इलाकों पर धावे मारने ही में उसने अपनी रक्षा का उपाय माना, और औरंगाबाद, बिदर, नान्देड और चाँदा तक धावे किये। १६८३ ई० में मुगलों को कल्याण भी छोड़ना पड़ा। तब सम्भाजी ने कोंकण की विजय पूरी करने के लिए अकबर के साथ गोवा पर चढ़ाई की।

किन्तु मुगलों ने फिर युद्ध छेड़ दिया। शाहआलम एक फौज ले कर दक्खिनी कोंकण में घुसा, तब गोवा सम्भाजी के हाथ जाते-जाते बच गया (१६८४ ई०)। उत्तरी कोंकण में भी एक मुगल फौज घुस आयी। इन दोनों फ़ौजों को कोंकण से निकाल कर सम्भाजी विलास में डूब गया।

औरंगजेब ने अब यह समझ लिया था कि महाराष्ट्र का दमन करने के लिए बीजापुर और गोलकुंडा को लेना आवश्यक है। इसलिए बीजापुर पर चढ़ाई कर घेरा डाला गया। मदन्न पंडित ने बीजापुर को मदद भेजी, तब शाहआलम को गोलकुंडा भेजा गया। उसने हैदराबाद ले लिया। कुतुबशाह गोलकुंडा के क़िले में भाग गया। उससे भारी हरजाना, बहुत सा इलाका तथा मदन्न और अकन्न को पदच्युत करने का वचन ले कर शाहआलम वापस आया। डेढ़ बरस तक घिरे रहने के बाद इधर बीजापुर भी औरंगजेब के हाथ आ गया (१६८६ ई०)। अकबर तब कोंकण से ईरान चला गया।

बीजापुर के बाद गोलकुंडा की बारी आयी। कुतुबशाह ने शाहआलम से मिन्नत की कि पिछले बरस की सन्धि के अनुसार उसे बचा रहने दिया जाय। पर औरंगजेब ने इस बातचीत के अपराध में ही अपने बेटे को उसके बेटों सहित कैद में डाल दिया। मीर शहाबुद्दीन नामक एक तूरानी सेनापति ने मेवाड़-युद्ध में बहादुरी दिखायी थी और फिर मराठा युद्ध में फीरोजजंग का पद पाया था। शाह-आलम की अनुपस्थिति में उसे गोलकुंडा का घेरा सौंपा गया। अन्तिम समय कुतुबशाह ने बड़ी वीरता दिखायी। एक बरस के घोर युद्ध के बाद गोलकुंडा का पतन हुआ (१६८७ ई०)।

मुगल सेना तब कर्णाटक और तामिल प्रान्तों की ओर बढ़ी और मसुलीपट्टम से पलार नदी तक उसने सब इलाका ले लिया, पर वहाँ उसे जिंजी के मराठों ने रोक दिया। उधर एक मुगल सेना फिर कोंकण भेजी गयी। बदहोश

सम्भाजी सगमेश्वर पर पकडा गया ( जनवरी १६८६ ई० ) और औरगज़ेब ने उसे अन्धा करवा कर मरवा डाला।

महाराष्ट्र के अष्ट प्रधानों ने राजाराम को कैद से छुटा कर रायगढ में सभा की। सम्भाजी के बेटे शिवाजी २य ( उर्फ शाहु ) का अभिषेक किया गया। उसकी मा येसूबाई के प्रस्ताव पर राजाराम स्थानापन्न राजा बना। वजीर आसादखा के बेटे इत्तिक़ादखाँ ने तब रायगढ को आ घेरा। राजाराम वहाँ से निकल कर पन्हाला चला गया और रायगढ फतह हो गया। येसूबाई शाहु के साथ कैद हुई। इत्तिक़ाद को इसके उपहार मे जुल्फ़िक़ारखाँ का पद मिला। येसूबाई के लिखने से राजाराम ने राजमुकुट धारण किया। उसने मराठा शासन का पुन सघटन किया स्वयम् अपने मन्त्रियों के साथ, जिनमे प्रल्हाद नीराजी मुख्य था, जिजी जाना तय किया और महाराष्ट्र की रक्षा एक 'हुकूमतपनाह' ( अधिनायक ) के हाथ मे सौंप दी जिसे राजा के सब अधिकार दिये गये। उस अधिनायक का नाम था रामचन्द्र नीलकठ बावडेकर। शकर मल्हार उसका सचिव था। पन्हाला से राजाराम की मडली अनेक जगह बाल-बाल बचती हुई जिजी जा निकली ( १६६० ई० )।

दक्खिनी छोर के सिवाय समूचा भारत अब औरंगजेब के अधिकार मे आ चुका था, पर तेईस बरस पहले जैसे शिवाजी उसके हाथ से निकल गया था, वैसे ही इस बार राजाराम निकल गया।

§६ महाराष्ट्र का स्वतन्त्रता-युद्ध ( १६६०–१७०७ ई० )—राजाराम जिजी पहुँचा तो उसके पास न कोई इलाका था, न कोष और न सेना। तो भी उसने अपने शासन का फिर से सघटन किया। उसने पेशवा से भी ऊँचा 'प्रतिनिधि' का एक नया पद बनाया और उसपर प्रह्लाद नीराजी को नियुक्त किया। जागीर न देने की शिवाजी वाली नीति अब उसने छोड दी और मराठा सरदारों को मुगल इलाकों मे जागीरें बाँट कर उन्हें जीतने की इजाज़त और प्रेरणा दी। सेनापति सन्ताजी घोरपडे और धनाजी जादव राजाराम को जिजी पहुँचा कर महाराष्ट्र लौट आये। जुल्फ़िक़ारखाँ ने जिजी का घेरा डाल दिया।

महाराष्ट्र मे केवल तीन किले मराठों के पास बचे थे, पर रामचन्द्र ने तीन और वापस ले लिये। उधर जिजी का घेरा और मजबूत किया गया। वजीर आसादखाँ और शाहज़ादा कामबख्श भी वहाँ भेजे गये। रामचन्द्र ने महाराष्ट्र से ३० हज़ार सेना जमा कर सन्ताजी और धनाजी को उधर भेजा। सन्ताजी ने

तामिलनाड में पहुँचते ही दो मुगल फौजदार पकड़ लिये और कडप से कांची तक सब मुगल थाने उठा कर अपने फौजदार बैठा दिये। जुल्फिक़ार को अपनी फौज समेटनी पड़ी। अब सन्ताजी ने उल्टा उसे घेर लिया ( १६६२ ई० )। औरगजेब ने यह देख कर घिरी हुई फौज को कुमुक भेजी। सन्ताजी का स्वभाव उग्र था, अत राजाराम ने अब मुख्य सेनापति का पद धनाजी को दिया ( १६६३ ई० )। इससे सन्ताजी रूठ कर महाराष्ट्र चला आया। इधर उसने हैदराबाद तक धावे मारे और जुल्फिक़ार ने फिर जिजी को घेर लिया।

दक्खिन के सब सूबों में मराठों ने अपने सूबेदार, कामविशदार और राहदार नियत कर दिये। कामविशदार मालगुजारी की चौथाई वसूल करते और राहदार चुगी लेते थे, सूबेदार उनकी मदद के लिए ७ हज़ार सेना के साथ रहते थे। हर सूबे के दुर्गम स्थानों में उन्होंने गढ़ियाँ बना लीं, जहाँ वे कठिनाई के समय शरण ले सकें। अनेक गाँवों के मुखियों ने मराठों से मिल कर मुगलों को कर देना बन्द कर दिया, अनेक मुगल हाकिम खुद चौथ देने लगे। स्थानीय प्रजा दुहरे हाकिमों से तग आ कर सभी जगह मुगलों के खिलाफ लडने को तैयार हो गयी। उत्तर भारत पर भी दक्खिन का प्रभाव पड़ने लगा। औरगज़ेब ने देखा कि वह दक्खिन पर काबू नहीं कर सकता तो उसने जल्दी लौटने का इरादा छोड़ कर भीमा के किनारे ब्रह्मपुरी पर अपनी स्थायी छावनी डाल दी, और शाहआलम को कैद से छोड कर उत्तर-पच्छिमी सीमान्त की रक्षा के लिए भेजा ( १६६५ ई० )।

इसी वर्ष के अन्त में सन्ताजी बीजापुर जिले में और धनाजी भीमा पर प्रकट हुआ, कई मराठे सरदार बराड़ और खानदेश पर टूट पडे। धनाजी ने भीमा से जिजी पहुँच कर वहाँ का घेरा फिर उठवा दिया। सन्ताजी ने चीतलद्रुग ज़िले में एक फौजदार को बडी सफाई से पकड़ कर और दूसरे को मार कर उनकी फौजों को कुचल दिया। मुगल फौज में उसकी ऐसी धाक जम गयी कि जब कोई घोडा पानी पीने में अटकता तो उससे कहते—'क्या तुझे पानी में सन्ताजी दिखायी देता है ?'

दक्खिन में युद्ध की प्रगति का अब यह रूप हो गया था कि उसका आरम्भ हमेशा सन्ताजी की ओर से होता, और मुगल नेताओं को अपनी रक्षा का ढग सोचना पडता। ब्रह्मपुरी के पड़ोस तक उसके दल धावे मारते थे। अपनी इन विजयों के बाद सन्ताजी जिजी गया और उसने फिर सेनापति बनना चाहा। प्रह्लाद

-नीराजी अब मर चुका था। धनाजी और सन्ताजी में परस्पर लड़ाई हो गयी। राजाराम ने धनाजी का पक्ष लिया। धनाजी हार कर भागा, राजाराम को सन्ताजी ने पकड़ लिया और फिर उसके आगे हाथ जोड़ कर कहा, "मैं अब भी तुम्हारा सेवक हूँ!" दोनों नेताओं के महाराष्ट्र पहुँचने पर फिर घरेलू युद्ध हुआ। सन्ताजी के कठोर नियन्त्रण से तंग आ कर उसकी सेना धनाजी से जा मिली, तब उसे अकेले भागना पडा। पीछे उसके एक शत्रु ने बदला चुकाने के लिए उसे मार डाला (१६९७ ई०)।

उसी साल जिंजी का घेरा फिर कसा गया। तब सात साल पीछे अन्त को जुल्फ़िक़ार उसे ले पाया (१६९८ ई०)। इस विजय के उपहार में उसे नसरत-जंग का पद मिला। किन्तु राजाराम फिर निकल गया था और अब वह विशालगढ जा पहुँचा।

औरंगज़ेब ने अब महाराष्ट्र के गढ ले कर मराठों के दमन का अन्तिम यत्न शुरू किया। ब्रह्मपुरी में अपना बुगा (आधार) रख कर वह मराठा गढों को जीतने खुद रवाना हुआ (१६९९ ई०)। राजाराम ने बदले में बराड़, खानदेश और नर्मदा पार चढाई करना तय किया। देवगढ के गोंड राजा ने मुसलमान हो जाने के बावजूद एक तरफ राजाराम और दूसरी तरफ छत्रसाल को गोंडवाना आने का निमन्त्रण दिया। पर राजाराम ने गोदावरी काँठे और बराड़ पर चढ़ाई की। उसे कुछ सफलता न मिली, तो भी मराठे इस बार नर्मदा पार तक जा निकले, और उन्होंने माडू और धामुनी को लूट लिया। उस धावे की थकान से बीमार हो कर राजाराम ने प्राण त्याग दिये (१७०० ई०)।

उसकी मृत्यु से स्वतन्त्रता-युद्ध में तिल भर फरक न पडा। उसकी स्त्री तारा बाई अपने नन्हे बच्चे को गद्दी पर बिठा कर राजकार्य चलाने लगी। उसने अपने पति से बढ कर पराक्रम और दृढता दिखायी। औरंगजेब एक गढ को जा घेरता, तो गढ की मराठा सेना अरसे तक उसका मुकाबला करती, बाहर से मराठों के धावे शाही शिविर पर होते रहते, अन्त में गढ की सेना बादशाह से भरपूर इनाम पा कर, इज्जत और सामान के साथ निकल जाने का वचन ले, किला छोड़ देती। तब बादशाह दूसरे किले पर चढाई करता और मराठे दिये हुए किले को फिर ले लेने की ताक में रहते। यों साढे पाँच बरस में बारह किले बाद-

शाह ने जीते; किन्तु महाराष्ट्र के मुख्य किले ले लेने पर भी वह मराठों की शक्ति न तोड सका। सन् १७०२ में नसरतजग को मराठा धावे मारने वालों के पीछे ६ हज़ार मील दौडना पडा। दूसरे बरस निमाजी शिन्दे नामक एक स्वतन्त्र मराठा सरदार ने बराड के फौजदार को कैद कर लिया। फिर छत्रसाल का निमन्त्रण पा उसने नर्मदा पार की, और दोनों ने मिल कर सिरोंज तथा मन्दसोर तक धावा मारा। नर्मदा के सब घाट रुक गये और बादशाह के पास हिन्दुस्तान की डाक का आना बन्द हो गया। फीरोजजग तब निमाजी के पीछे भेजा गया और निमाजी हार कर बुन्देलखड के रास्ते वापस भाग आया।

औरंगजेब [ भा० क० भ०, काशी ]

अन्त मे औरगजेब ने दिल्ली लौटने का निश्चय किया ( १७०५ ई० )। लौटती फौज को घेरे हुए विजयोन्मत्त मराठा दल भी साथ-साथ बढने लगा। कभी-कभी तो वे बादशाह की पालकी तक आ पहुँचते। बडी मुश्किलों से वह सवारी अहमदनगर पहुँची, जहाँ अठासी बरस बूढे औरगजेब को अपनी 'यात्रा का अन्त' दिखायी पडने लगा। धनाजी ने तभी गुजरात पर चढाई कर नर्मदा पर तीन मुगल फौजों को बारी-बारी से तहस-नहस किया, और दक्खिनी गुजरात से चौथ वसूल की। दूसरे बरस अहमदनगर में अल्लाह का नाम जपते हुए औरगजेब ने अन्तिम साँस ली ( २०-२-१७०७ ई० )।

चौबीस बरस के दक्खिन के युद्ध में उसकी फौज के एक लाख आदमी और तीन लाख जानवर सालाना मरते रहे। साम्राज्य की वार्षिक आमदनी शुरू में ही कम होने लगी थी, इसलिए दिल्ली और आगरे के पुराने खज़ाने खाली हो गये।

अन्त में बंगाल की मालगुज़ारी का एक मात्र सहारा रह गया और फौज की तनख्वाह तीन-तीन साल पिछड़ने लगी। जब अन्त में वह दिल्ली लौटने लगा तब दक्खिन के खेतों और मैदानों में मीलों तक सफेद हड्डियों के ढेर बरफ की तरह छाये हुए दिखायी पड़ते थे।

§१० बुन्देलखंड, व्रज और पंजाब में स्वाधीनता की चेष्टाएँ—(१६८१-१७०७ ई०)—शिवाजी की सफलता ने दूसरे प्रान्तों में भी स्वाधीनता की भावनाएँ जगा दी थीं। शिवाजी की मृत्यु के समय तक छत्रसाल भी बुन्देलखंड के एक अंश में उसकी तरह अपना 'स्वराज्य' स्थापित कर चुका था और उस आधार से 'मुगलाई' (मुगल साम्राज्य) पर धावे कर चौथ वसूल करता था।

व्रजभूमि में भरतपुर के पास सिनसिनी और सोगर गाँवों के मुखिया राजाराम और रामचेहरा ने जाट किसानों की सेना संगठित की और गढ़ियाँ बना कर सिर उठाया (१६८५ ई०)। आगरे का सूबेदार उन्हें न दबा सका तब औरंगजेब ने दक्खिन से बहादुरखाँ को, जिसे अब खानेजहाँ का पद मिल चुका था, उनके दमन के लिए भेजा। आगरे में खानेजहाँ के रहते हुए राजाराम ने सिकन्दरा पर चढ़ाई की, और अकबर के मकबरे से सारा कीमती माल लूट लिया (१६८८ ई०)। उसी वर्ष रेवाड़ी के पास मेवात के फौजदार से लड़ता हुआ वह मारा गया। तब उसका भाई भज्जा और भज्जा का बेटा चूड़ामन व्रज के नेता हुए। औरंगजेब ने रामसिंह कछवाहा के बेटे बिशनसिंह को, जिसने सतनामियों को दबाने में भी भाग लिया था, मथुरा का फौजदार बनाया। उसने सिनसिनी और सोगर की गढ़ियाँ छीन लीं (१६९०-९१ ई०)। तब चूड़ामन भाग कर जंगलों में जा छिपा।

जोधपुर रियासत में सन् १६८१ से १६८६ ई० तक मुगलों और राठोड़ों की कशमकश चलती रही। जैसलमेर के भाटी भी राठोड़ों से मिल गये थे (१६८२ ई०)। "सूर्यास्त के बाद मुगल राज केवल थानों में रह जाता, और मैदान पर अजित का राज होता था।" अकबर को महाराष्ट्र से बिदा कर दुर्गादास मारवाड़ लौटा (१६८७ ई०)। तब फिर युद्ध शुरू हुआ। उसने मारवाड़ के सब मुगल थाने उठा दिये, और रोहतक-रेवाड़ी पर धावा कर दिल्ली के करीब तक जा निकला। वहाँ उस समय राजाराम जाट भी बलवा किये था। फिर उसने अजमेर पर धावा बोला (१६९० ई०)। मुगल सरकार ने राठोड़ों को राह-चुंगी की चौथ देना स्वीकार कर कुछ शान्त किया और सन्धि की बातें शुरू कीं जो

बरसों तक चलती रहीं। अजित भी ढीला पड गया। दुर्गादास ने स्वयम् ब्रह्मपुरी पहुँच कर सन्धि की ( १६६८ ई० )। उसे पाटन की फौजदारी दी गयी, मगर अजित को राज नहीं मिला। शाहजादा आजम के गुजरात के सूबेदार बनने पर दुर्गादास को दरबार मे बुला धोखे से मारने का यत्न किया गया ( १७०१ ई० ), पर उसको इसका पता लग गया और वह भाग निकला। इसके बाद फिर विद्रोह छिड़ा पर अजित के मतभेद मे वह विफल हुआ। गुजरात की चढाई में धनाजी जादव की जीतने की खबर मिलने पर मारवाड में भी फिर बलवा हुआ और औरगजेब के मरते ही अजितसिंह ने जोधपुर ले लिया।

सन् १६८९ से १६९२ ई० तक मुगल साम्राज्य अपने चरम उत्कर्ष पर था। खुशालखाँ खटक, सम्भाजी और राजाराम जाट मारे जा चुके थे, छत्रसाल दबा हुआ था। महाराष्ट्र के ६-७ गढों और जिंजी के सिवाय समूचा भारत मुगलों के पैरों तले था। पर रामचन्द्र ने जब उस दशा मे भी महाराष्ट्र से ३० हजार सेना खडी कर ली, और सन्ताजी ने उस सेना से जिंजी पर मुगल शक्ति तोड दी, तो १६९३ ई० से पासा पलट गया। सन्ताजी की विजयों की प्रतिध्वनि उत्तर भारत में भी हुई। बुन्देलखड और ब्रज के लोग फिर उठ खडे हुए। पजाब में सिक्खों ने भी शिवाजी के ढग पर युद्ध छेडना चाहा। छत्रसाल ने धामुनी और कालंजर के किले ले लिये और भेलसा को लूटा। वह सारे मालवे पर भी धावे मारता था। बराड़ में निमाजी शिन्दे और गोंडवाने का राजा बख्तबुलन्द उसे सहयोग देते थे। १७०५ ई० में फीरोजजग ने औरगजेब से छत्रसाल की सन्धि करवा दी। ब्रज के नये बलवे को दबाने के लिए शाहआलम आगरे का सूबेदार बनाया गया ( १६९५ ई० )। चूडामन तब फिर जगलों मे भाग गया और नयी गढियाँ बनाता रहा। १७०४ ई० मे उसने सिनसिनी फिर वापिस ले ली, पर १७०५ और १७०७ ई० में उसपर चढाई कर मुगलों ने हज़ारों जाटों का सहार किया।

अपने पिता तेगबहादुर की मृत्यु के बाद तरुण गुरु गोविन्द ने जमना और सतलज के बीच शिवालक की दूनों में शरण ली और वहीं अपनी तैयारी की। पौराणिक इतिहास की वीर गाथाओं से वह बहुत प्रभावित हुआ। उसने स्वयम् वीर-रस-पूर्ण कविताएँ रचीं। उसने सिक्खों को एक सैनिक सम्प्रदाय बना दिया ( १६९५ ई० ), और प्रत्येक सिक्ख के लिए पाँच ककार—केश, कघा, कृपाण, कडा और कच्छ—धारण करने तथा सिंह नाम रखने का नियम कर दिया; जात-

पाँत का भेद भूल जाने को कहा और अपने पीछे ग्रन्थ को ही गुरु मानने तथा 'खालसा' ( सिक्ख जनता ) की पचायत के 'गुरमत' के अनुसार चलने का आदेश दिया। इसके बाद उसने शिवाजी के रास्ते पर क़दम रक्खा। उन्हीं पहाड़ों में दो तीन गढियाँ बना कर उसने पहाडी राजाओं को अपने साथ मिलाना चाहा, परन्तु शिवाजी का मावलियों पर जैसा प्रभाव था, गुरु गोविन्दसिंह का इन पहाडियों पर वैसा कभी न हुआ। सभी सिक्ख अनुयायी पजाब के मैदान के रहने वाले थे। राजाओं ने पहले गुरु की उपेक्षा की, फिर दबाव से साथ मिल कर मुगलों को कर देना छोड दिया, और अन्त में मुगलों से हार कर वे गुरु के शत्रु बन गये। इसी समय शाहआलम ब्रज का विद्रोह दबा कर पजाब को शान्त करने पहुँचा। गुरु गोविन्दसिंह बिलासपुर रियासत में आनन्दपुर के गढ में घिर गये ( १७०१ ई० ) और अन्त में केवल ४५ साथी रह जाने पर वहाँ से निकल भागे। साथियों में से केवल ५ ही बच कर निकल सके, और भेस बदल कर छिपे रहे। गोविन्दसिंह के दो लड़के फतहसिंह और जोरावरसिंह सरहिन्द के फौजदार वजीरखाँ के हाथ पड गये, जिसने उन्हें मरवा डाला।

§११ **औरगजेब के समय में फिरगी व्यापारी और डकैत**—स्पेन से अलग होने के बाद पुर्तगाल ने इगलैंड से मैत्री रक्खी। पुर्तगाल की एक राजकुमारी अँगरेज़ राजा को ब्याही थी। उसके दहेज में पुर्तगाल के 'भारतीय उत्तरी प्रान्त' का मुम्बई द्वीप दिया गया ( १६६१ ई० )। राजा ने वह द्वीप पीछे ईस्ट इडिया कम्पनी को दे दिया। कम्पनी अपना मुख्य केन्द्र सूरत से हटा कर मुम्बई ले आयी। मुम्बई में अँगरेजों का व्यापार-केन्द्र बन जाने से बसई की अवनति होने लगी। औरगजेब के समय मे फ्रान्सीसियों ने भी पूरबी तट पर चन्द्रनगर और मसुलीपट्टम में तथा जिंजी नदी के मुहाने पर पुद्दुचेरी ( पाडिचेरी ) में ज़मीनें खरीद कर अपनी बस्तियाँ बसा लीं ( १६६६-७४ ई० )। अँगरेज़ों ने हुगली नदी में भी अपने किराये के जहाज चलाना शुरू किया ( १६७६ ई० )।

जब गैर-मुस्लिमों पर जजिया लगाया गया, तब उसके बदले में फिरगियों के व्यापार पर एक रुपया सैकडा चुगी बढाना तय हुआ। अँगरेज कम्पनी के लन्दन के मुखिया जोशिया चाइल्ड ने यह बढी हुई चुंगी न देने और साथ ही सूरत से सब कारबार हटा कर मुम्बई ले जाने का हुक्म दिया। उसने समुद्र में मुगल जहाज़ पकड कर बदला लेना चाहा। बगाल के अँगरेजों को भी मुगलों से बहुत सी

'शिकायतें" थीं। बंगाल में शुजा ने अपनी सूबेदारी के समय में चुंगी के बदले एकमुश्त वार्षिक रकम लेना तय कर दिया था। अँगरेज चाहते थे कि बाद के सूबेदार भी वही रकम लेते जाँय, यद्यपि उनका व्यापार १६६८ ई० से १६८० ई० तक ३४ हजार पौंड के बजाय डेढ़ लाख पौंड हो गया था, और यह भी सन्देह था कि वे अँगरेज झंडे के नीचे दूसरों का माल भी ले जाते हैं।

कासिमबाजार कोठी के मुखिया जौब चारनाक को हिन्दुस्तानी व्यापारियों का रुपया देना था। अदालत ने उसके खिलाफ फैसला दिया, तब वह हुगली भाग गया और वहाँ की कोठी का मुखिया बनाया गया। उसके नेतृत्व में अँगरेजों ने हुगली शहर लूट लिया ( १६८६ ई० ), और वहाँ से अपना सब सामान समेट कर सुतनती गाँव ( कलकत्ता ) पर डेरा डाल दिया। फिर वहाँ से भी हट कर उन्होंने मेदिनीपुर के हिजली द्वीप पर दखल कर लिया और बालेश्वर का किला छीन लिया। इन दोनों स्थानों से निकाले जाने पर वे मद्रास चले गये। उधर मुम्बई का मुखिया जौन चाइल्ड सूरत से सब कारबार हटा कर मुम्बई ले जा चुका था और मुगल जहाजों को पकड़ने लगा था। इसपर औरंगजेब ने सब अँगरेजों की गिरफ्तारी का हुक्म दिया। तेलगाना में बहुत से अँगरेज पकड़े गये। जजीरा के सिद्दी ने मुम्बई द्वीप पर दखल कर वहाँ के अँगरेजों को किले में घेर लिया। तब जौन चाइल्ड ने सन्धि के लिए प्रार्थना की। औरंगजेब ने उनसे हरजाना ले कर उन्हें माफ कर दिया और कलकत्ता की जमीन खरीदने की इजाजत दे दी ( १६९० ई० )।

सन्ताजी घोरपडे की विजयों ( १६९३-९६ ई० ) से जब समूचे भारत में सनसनी मची, उसी समय बंगाल में दो विद्रोही जमीन्दारों ने बर्दवान, हुगली, माल्दा और राजमहल पर दखल कर लिया। उस खलबली में बंगाल के फिरंगियों को अपनी बस्तियों—कलकत्ता, चन्द्रनगर, चिंचुड़ा ( चिन्सुरा )—की किलाबन्दी करने की इजाजत मिल गयी। मुगल साम्राज्य में ये फिरंगियों के पहले किले थे।

भारतीय समुद्र में भी अब फिरंगी डकैतों का उत्पात क्रमशः बढ़ता गया। किसी जहाज में वे मुसाफिर या नौकर बन कर चढ़ जाते और राह में उसे छीन डकैती का साधन बना लेते। इस धन्धे में अँगरेज मुख्य थे। १६८९ ई० में अमेरिका से समुद्री डकैतों ने आकर हिन्द महासागर को घेर लिया। कुछ मलबार तट पर घूमने लगे और कुछ ने ईरान की खाड़ी और लाल सागर के मुहाने

को अपना केन्द्र बनाया। एक दल मोज़ाम्बिक जलग्रीवा में और एक सुमात्रा पर मँडराने लगा। ब्रिगमैन उर्फ एवोरी नामक अँगरेज ने एक जहाज छीन कर उसका नाम फेन्सी रक्खा, और उससे कई मार्के की डकैतियाँ डालीं। सूरत के बन्दरगाह पर सब से बडा शाही जहाज गजे-सवाई था, जो हर साल हाजियों को मक्का ले जाता था। दमन और मुम्बई के बीच फैन्सी ने उसका रास्ता रोका, उसकी तोपों को बेदम करके उसे तीन दिन जी खोल कर लूटा, और मक्का से लौटी हुई अनेक सैयद स्त्रियों पर मनमाना अत्याचार किया (१६६५ ई०)। गजे-सवाई के सूरत पहुँचने पर सारे साम्राज्य में सनसनी मच गयी। बादशाह के हुक्म से सब अँगरेज कैद कर लिये गये। फिरंगियों का व्यापार बन्द कर उनके शस्त्र और झंडे छीन लिये गये; तोपों के चबूतरे ढा दिये गये, कोठियों की दीवारें नीची की गयीं और गिरजों में घंटे बजना रोक दिया गया। औरंगज़ेब चाहता था कि फिरंगी व्यापारी मेहनताना ले कर अपने जंगी जहाजों द्वारा हाजी जहाज़ों की रखवाली करने का ज़िम्मा ले लें। सूरत की अँगरेज़ कोठी के मुखिया ऐन्स्ले ने अन्त में बादशाह को इकरारनामा लिख दिया, तब सब कैदी छोडे गये (१६६६ ई०)।

दूसरे वर्ष किड और शिवर्स नामक दो 'महान् बदमाश' हिन्द महासागर में आये। इन में से एक अँगरेज था, दूसरा ओलन्देज। अब तक डकैत लोग पराये जहाज छीन लेते थे, पर किड जिस जहाज का कप्तान था, उसे अँगरेज सरदारों की एक मंडली ने इसी धन्धे के लिए तैयार करके भेजा था। किड का आधार मदगास्कर में था। उसके बेडे पर १२० तोपें थीं। इन डाकुओं की करतूतों के कारण फिरंगी व्यापारियों को फिर कैद होना पड़ा और आगे से ओलन्देज़ों ने लाल सागर की, फ्रान्सीसियों ने ईरान की खाड़ी की तथा अँगरेज़ों ने दक्खिनी समुद्र की रखवाली करने का ज़िम्मा लिया (१६६८ ई०)।

परन्तु इतने पर भी समुद्री डकैती नहीं रुकी और औरंगजेब को अन्त में व्यापारियों का इकरारनामा रद्द करना पड़ा, क्योंकि वह जानता था कि समुद्री डकैतों की पूरी रोक-थाम करना व्यापारी मंडलियों के लिए असम्भव है। भारतीय समुद्र की रक्षा करना भारतवर्ष के सम्राट् का कर्त्तव्य था। विदेशी व्यापारियों पर उसकी कोई जिम्मेदारी न थी। भारत-सम्राट् ने अपने को उस कर्त्तव्य-पालन में अशक्त देख कर स्वयम् उन व्यापारियों को जंगी बेड़े रखने को

उत्साहित किया। उन व्यापारियों के वंशजों ने भारत-सम्राट् के वंशजों को न केवल समुद्र की, प्रत्युत स्थल की भी रक्षा की चिन्ता से मुक्त कर दिया।

§१२. सम्राट् बहादुरशाह—औरंगजेब यह वसीअत छोड गया था कि उसके तीनों बेटों में साम्राज्य बँट जाय। शाहआलम ने भी इसपर अमल करना चाहा, क्योंकि वह चाहता था कि 'खुदा के बन्दों का खून न बहे।' परन्तु आजम को कुछ सूबों के राज्य से सन्तोष न था। उसने कहा, उसे चाहिए "तख्त या तख्ता।" धौलपुर के पास जाजऊ पर लडाई हुई, जिसमें आजम मारा गया और शाहआलम बहादुरशाह के नाम से हिन्दुस्तान का बादशाह हुआ।

दक्खिन से इस युद्ध के लिए चलते वक्त आजम ने शाहू को इस शर्त पर भाग जाने दिया था कि वह बादशाह की अधीनता माने, पर उसकी माँ और भाई को नहीं छोडा था। बहादुरशाह ने वह स्थिति स्वीकार की। उसने गुरु गोविन्दसिंह को भी अपनी सेवा में ले लिया था। अब वह राजपूताने को शान्त करने चला। उसने आमेर के नये राजा सवाई जयसिंह की रियासत जब्त की, क्योंकि जयसिंह ने आजम का साथ दिया था। अजित को महाराजा बनाया, तो भी जोधपुर में काजी और मुफ्ती फिर रक्खे। इसी समय बीजापुर में कामबख्श बादशाह बन बैठा। अजमेर से शाही सवारी सीधी दक्खिन की ओर बढी और हैदराबाद के पास कामबख्श का अन्त हुआ।

मेवाड़, मारवाड और आमेर के राजा पुष्कर में मिले (१७१० ई०)। उन्होंने प्रण किया कि अब से वे मुगल सम्राट् की अधीनता न मानेंगे, शाही खानदान में अपनी बेटियाँ न देंगे और बादशाह यदि एक पर हमला करेगा तो दूसरे सब उसकी मदद करेंगे। इसके आधार पर उन्होंने आमेर और जोधपुर से मुगलों को निकाल कर मेवात पर चढाई की। बहादुरशाह ने दक्खिन से राजपूताना वापस आ कर राजाओं से फिर सन्धि की। वहीं उसने छत्रसाल और चूडामन को बुला कर अपनी सेवा में लिया। यों औरंगजेब के समय के सभी हिन्दू विद्रोहियों से समझौता हो गया। परन्तु इसी समय पंजाब से सिक्खों के नये विद्रोह की खबरें आने लगीं।

§१३. बन्दा वैरागी और सिक्खों का विद्रोह (१७१० ई०)—शाही फौज के साथ हैदराबाद जाते हुए गोदावरी के तट पर गोविन्दसिंह का देहान्त हुआ। मृत्यु से पहले एक पंजाबी वैरागी माधोदस से उनकी भेंट हुई। गुरु ने

उसे अपने अधूरे काम को आगे बढाने के लिए अपनी तलवार दे कर पंजाब भेजा। माधोदास गुरु का 'बन्दा' बना। पूरबी पंजाब पहुँच कर बन्दा ने एक फौज जमा की और सरहिन्द पर धावा बोल दिया। फौजदार वज़ीरखाँ को मार कर सिक्खों ने गुरु गोविन्दसिंह के पुत्रों के कत्ल का जी खोल कर बदला लिया। सरहिन्द से वे दक्खिन, पूरब और पच्छिम की ओर बढे। जमना और सतलज के बीच उनका पूरा दखल हो गया। तब सहारनपुर लूट कर वे दोआब में बढे और सतलज पार कर द्वावे में। जीते हुए इलाकों में वे सिक्ख फ़ौजदार नियम करते गये। बहादुरशाह अजमेर से सीधा बन्दा के दमन के लिए बढा। उसके आने पर सिक्खों ने सरमौर के पहाड़ों में शरण ली, जहाँ वे लोहगढ़ नामक किले में घिर गये। गढ जीता गया, पर बन्दा भेस बदल कर निकल भागा।

उसी समय लाहौर में बहादुरशाह चल बसा ( २७-२-१७१२ ई० ) और उसके चार बेटों में वहीं परस्पर लडाई हुई। सबसे बड़े बेटे की जीत हुई और वह जहाँदारशाह के नाम से गद्दी पर बैठा। बन्दा ने तब साधौरा और लोहगढ़ फिर ले लिये।

§१४ फ़र्रुख़सियर और सैयद बन्धु—जहाँदारशाह का भतीजा फ़र्रुख़-सियर इस समय पटने में था। बिहार और इलाहाबाद के सूबेदार अब्दुल्ला और हुसेनअली दो सैयद भाई थे। उनकी मदद से फर्रुखसियर ने आगरे के पास सामूगढ में जहाँदारशाह को हरा दिया ( १०–१–१७१३ ई०)। वह पकड़ा और मारा गया। उसका वज़ीर जुल्फिकारखाँ भी कत्ल किया गया।

फर्रुखसियर ने अब्दुल्ला को अपना वजीर और हुसेनअली को मीर-बख्शी बनाया। उनकी प्रेरणा से उसने पहला फरमान जज़िया हटाने का निकाला। औरगज़ेब के पिछले समय से हिन्दुस्तानी मुसलमानों और "मुगलों" की स्पर्द्धा चली आती थी। सैयद बन्धु हिन्दुस्तानी मुसलमान थे, वे हिन्दुओं के होली आदि त्यौहारों में भाग लेते थे। 'मुगलों' में ईरानी और तूरानी ( तुर्क ) सम्मिलित थे। जुल्फिक़ार की हत्या से ईरानी दल टूट गया। तूरानियों के अब दो मुख्य नेता थे—एक फीरोजजंग का बेटा गाजिउद्दीन फीरोजजंग (२य), जो बाद में निजामुल्मुल्क बना और जिसे हम सुविधा के लिए अभी से निजाम कहेंगे, तथा दूसरा निजाम का चचा मुहम्मद अमीनखाँ। मुहम्मद अमीन अब दूसरा बख्शी बनाया गया और दक्खिन की सूबेदारी निजाम को दी गयी। फर्रुखसियर कृतघ्न और कमजोर था।

उसने सैयदों से छुटकारा पाना चाहा, पर उसमें स्वयम् दृढता न होने से तूरानी दल ने भी उसे सहयोग न दिया।

§१५. मराठों का गृह-युद्ध ( १७०८-१३ ई० )—शाहू के छूट आने पर ताराबाई ने कहा—'वह सम्भाजी का बेटा नहीं, औरंगजेब का पाला हुआ नकली शाहू है।' किन्तु ताराबाई का अपना बेटा भी पगला था और महाराष्ट्र को एक राजा की जरूरत थी। धनाजी जादव का एक विश्वस्त कर्मचारी बालाजी विश्वनाथ भट्ट था। उसने धनाजी को शाहू की असलियत की तसल्ली करा दी तो
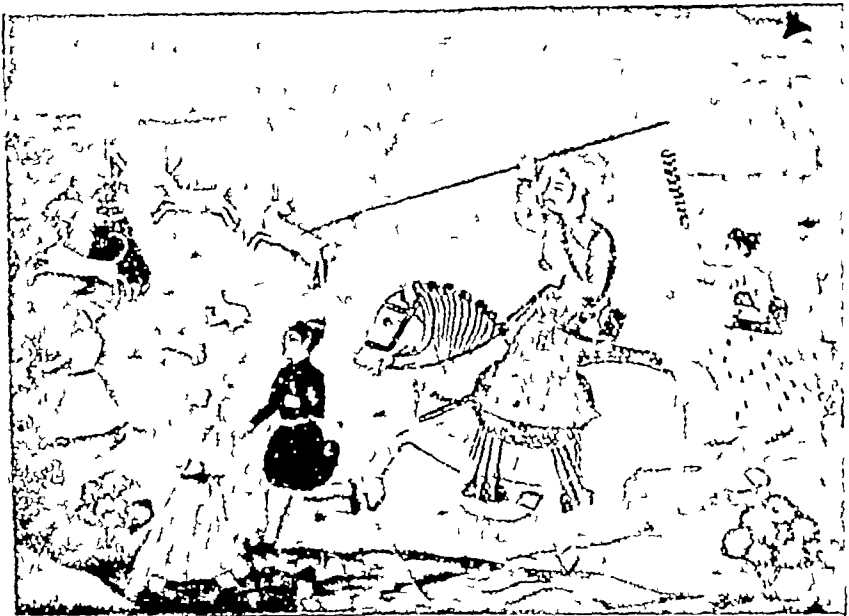
छत्रपति शाहू, शिकार खेलते हुए [ भारत-इतिहास-संशोधक मंडल, पूना ]

धनाजी ने शाहू का पक्ष लिया। सतारा का गढ शाहू के हाथ आ गया। इन घटनाओं से महाराष्ट्र में घरेलू लड़ाई शुरू हुई। धनाजी १७१० ई० में मर गया, तो भी बालाजी ने धीरे-धीरे शाहू का पक्ष दृढ किया। अन्त में उसने ताराबाई की सौत रजसबाई से ताराबाई को कैद करा दिया ( १७१२ ई० ) और रजसबाई के बेटे सम्भाजी को कोल्हापुर में राजा बना रहने दिया। शाहू ने बालाजी को अपना पेशवा बनाया ( १७१३ ई० )।

घरेलू युद्ध के कारण महाराष्ट्र में राजा की शक्ति खडित होने से तथा मुगल बादशाहत की कमज़ोरी से लाभ उठा कर मराठे जागीरदार या सरजामदार शक्तिशाली होते गये। बराड़ में कान्होजी भोंसले और दक्खिनी गुजरात में धनाजी के कर्मचारी खडेराव दाभाडे ने पैर जमा लिये। धनाजी के बाद खडेराव शाहू का सेनापति बना। कान्होजी आँग्रे ने कोंकण और समुद्र में अपनी शक्ति बना ली थी। वह शाहू का सरखेल अर्थात् जलसेनापति नियुक्त हुआ।

§ १६ राजपूताना, पंजाब और ब्रज में विद्रोह-दमन (१७१२—१८ ई०)—बहादुरशाह के मरते ही अजितसिंह ने मुगल हाकिमों को निकाल कर अजमेर ले लिया। तब हुसेन अली ने उसपर चढाई की। अजित ने बिना लड़े ही सन्धि कर ली, अपने बेटे अभयसिंह को मुगल दरबार में भेजा और अपनी बेटी फर्रूखसियर को ब्याह देना स्वीकार किया (१७१४ ई०)।

लाहौर और जम्मू का शासन मुहम्मद अमीन के सम्बन्धी अब्दुस्समद और उसके बेटे जकरिया को सौंप कर उन्हें बन्दा के खिलाफ भेजा गया। साधौरा और लोहगढ उन्होंने ले लिये, लेकिन बन्दा फिर भाग गया। बाद में वह गुरदासपुर-मढ़ी के किले में घिर गया। लोग समझते थे कि वह जादूगरी से निकल भागता है, इसलिए साम्राज्य की सेना ने तम्बू से तम्बू सटा कर घेरा पूरा किया और चारों तरफ दीवार बना दी। इस प्रकार घिरी हुई सेना नौ मास तक वीरता से लड़ती रही। रसद खतम होने पर वे अपने जानवर खाते रहे। फिर उन्होंने घास-पत्ती खाना शुरू किया। जब यह सहारा भी न रहा तो हड्डियों का चूरा, और कहते हैं कि अन्त में अपनी जाँघों का माँस तक खा कर वे लड़ते रहे। बन्दा के ७४० साथी पकड कर पिंजरों में बन्द किये और दिल्ली लाये गये। वहाँ वे बीभत्स क्रूरता से मारे गये (१७१६ ई०)।

बन्दा ने सिक्ख सम्प्रदाय के दो-एक बाहरी चिन्हों पर ज़ोर न दिया था, इसलिए कट्टर सिक्खों का एक दल, अपने को 'तत्व खालसा' कहता उससे अलग हो गया। मुगल सरकार ने इस फूट से लाभ उठाया और अगले आठ बरस तक अब्दुस्समद ने सिक्खों का जोर से दमन किया। सिक्खों को तब जगलों के सिवाय और कहीं शरण न रही।

मामूगढ की लड़ाई में चूडामन जाट ने निष्पक्ष हो कर दोनों तरफों को लूटा था। बाद में वह दरबार में हाज़िर हुआ और उसे दिल्ली से चम्बल तक के रास्तों

की रक्षा का भार सौंपा गया ( १७१३ ई० )। उसने इस इलाके पर पूरा अधिकार जमाना और आगे अपना इलाका बढ़ाना शुरू किया। उसने बादशाह को कर देना भी छोड़ दिया तथा डीग के आगे जंगल में एक थूण गढ बना लिया। उस गढ को लेने के लिए सवाई जयसिंह को भेजा गया। पर वजीर अब्दुल्ला दिल से चूड़ामन की तरफ था। पौने दो साल के घेरे के बाद गढ लेने के पहले ही अब्दुल्ला ने चूड़ामन से सन्धि करा दी ( १७१८ ई० )।

§१७ हुसेनअली की दिल्ली चढ़ाई और फर्रुखसियर का अन्त—फर्रुखसियर और सैयदों का बिगाड़ बढता गया। अन्त में समझौता हुआ, जिससे दक्खिन के सूबों का पूरा अधिकार हुसेन अली को मिला ( १७१५ ई० )। फर्रुखसियर ने मराठा सरदारों को गुप्त पत्र लिखे कि वे हुसेन से लड़ें, लेकिन इस खेल मे हुसेन उससे बाजी ले गया। रामचन्द्र बावडेकर का सचिव शंकर मल्हार ताराबाई के समय में सन्यासी हो कर बनारस में रहने लगा था। वह हुसेन का मन्त्री बन कर अब उसके साथ दक्खिन लौटा। शंकर मल्हार के द्वारा हुसेन अली ने मराठा दरबार से सन्धि की और उनकी सब माँगें पूरी कराने का वचन दिया।

उधर फर्रुखसियर ने सैयद अब्दुला को पकड़ने का विफल यत्न किता, फिर उसके विरोध के बावजूद जजिया लगा दिया ( १७१७ ई० )। थूण के मामले से विरोध और बढा। फर्रुखसियर ने अपना पक्ष दृढ करने को अजितसिंह को दिल्ली बुलाया, पर वह भी अब्दुल्ला की तरफ हो गया। फिर समझौता हुआ और गुजरात की सूबेदारी अजित को दी गयी।

अपने बेटे आलिम अली और शंकर मल्हार को दक्खिन में छोड़ हुसेन अली अब एक बड़ी फौज के साथ दिल्ली की ओर चला। पेशवा बालाजी विश्वनाथ और सेनापति खंडेराव दाभाडे मराठा सेना सहित उसके साथ थे। दिल्ली पहुँच कर सैयद बन्धुओं ने अपने मित्रों की सब फौजें शहर और क़िले में रख लीं। मुगल नेता तटस्थ रहे। येसूबाई और मदनसिंह मराठों को सौंप दिये गये। तब फर्रुखसियर को कैद कर बहादुरशाह के एक पोते को गद्दी पर बैठाया गया। जज़िया फिर हटा दिया गया। अजितसिंह को अजमेर की सूबेदारी दी गयी और उसकी बेटी—फर्रुखसियर की विधवा—भी लौटा दी गयी। अजित ने उसे मारवाड़ ले जा कर फिर हिन्दू बना लिया। सवाई जयसिंह को सोरठ ( काठियावाड़ ) और निज़ाम को

मालवे का सूबा मिला। मराठों का शिवाजी के 'स्वाराज्य' पर तथा समूचे दक्खिन की चौथ और सरदेशमुखी पर अधिकार माना गया।

अवसर अनुकूल देख कर छत्रसाल ने भी विद्रोह किया। बुन्देले आगरा, इलाहाबाद और मालवा सूबों की सीमाओं को लूटने लगे। इसी बीच बादशाह तपेदिक से मर गया था। उसका एक भाई बादशाह बना, पर वह भी उसी रोग का शिकार हुआ। तब सैयदों ने बहादुरशाह के एक और पोते को गद्दी दी और वह मुहम्मदशाह कहलाया।

§१८ निज़ाम का दक्खिन भागना और सैयदों का पतन ( १७२० ई० )—निज़ाम मालवा जाते समय दिल्ली से अपना परिवार और सम्पत्ति सब साथ लेता गया। मालवा में उसने एक बड़ी फौज खड़ी की। उसे मालवे से वापस आने का हुक्म दिया गया, किन्तु उसने उलटे दक्खिन की राह ली और असीरगढ-बुरहानपुर के किलों पर अधिकार कर लिया। सैयद दिलावरअली और भोपाल रियासत का संस्थापक दोस्त मुहम्मद रुहेला उसके पीछे भेजे गये और खडेराव दाभाडे के साथ आलिम अली औरंगाबाद से बढा। तापी के उत्तर और दक्खिन खडवा और बालापुर में दोनों फौजों को निज़ाम ने बारी-बारी से हराया। दिलावर और आलिम अली मारे गये। 'बेदोस्त' रोहेला भाग गया और शकर मल्हार कैद हुआ।

ये समाचार पा कर हुसेन अली बादशाह के साथ दक्खिन की तरफ बढा। निज़ाम के चचा मुहम्मद अमीन ने रास्ते में उसका काम तमाम कर दिया। तब वह फौज वापस लौटी। दिल्ली के पास लड़ाई में अब्दुल्ला भी कैद हुआ। उधर दिल्ली से लौट कर पेशवा बालाजी विश्वनाथ का भी उसी समय देहान्त हुआ।

§१९. अंगरेज़ों की प्रमुख सामुद्रिक शक्ति ( १७०१–१८ ई० )—फ्रान्स का राजा लुई चौदहवाँ ( १६४३-१७१५ ई० ) औरंगज़ेब का समकालीन था। दोनों का शासन भी बहुत कुछ एक सा था। लुई ने भी अपने पूर्वज का धार्मिक स्वतन्त्रता फरमान रद्द कर दिया था। १७०० ई० में स्पेन-सम्राट् का देहान्त हुआ था। उसके कोई सन्तान न थी। उसकी बहन लुई को ब्याही थी, इसलिए मृत्यु से पहले उसने वसीयत कर दी थी कि लुई का पोता उसका उत्तराधिकारी हो। इस प्रकार फ्रान्स के साथ स्पेन भी लुई के कब्ज़े में आ जाता और अमेरिका में स्पेन का विशाल साम्राज्य फ्रान्स को मिल जाता। इसपर युरोप के दूसरे अनेक देश गुट्ट बना कर लुई से लड़े। अन्त में लुई की हार हुई ( १७१४ ई० ) और स्पेन का बन्दरगाह

जिब्राल्टर, जो रोम-सागर का द्वार है, इंग्लैंड को मिला। उसके अलावा, इंग्लैंड को स्पेन की अमेरिकन बस्तियों में आफ्रिका से हब्शी गुलाम ले जा कर बेचने का ठेका भी मिला। वह बडे नफे का व्यापार था, पहले वह फ्रान्स के हाथ मे था, और उससे पहले हालैंड के। इस प्रकार अब इंग्लैंड समुद्री शक्ति मे सब देशो से आगे बढ गया।

बगाल के योग्य सूबेदार मुर्शिदकुलीखाँ ने अँगरेजों के व्यापार पर चुगी बढा दी थी। तब उनके दूत फर्रुखसियर के पास गये। अजितसिंह की बेटी से फर्रुखसियर का विवाह होने के समय अगरेज डाक्टर हैमिल्टन ने फर्रुखसियर की बवासीर की तकलीफ दूर कर दी ( १७१५ ई० )। फर्रुखसियर ने उसे इनाम देना चाहा, तब उसने स्वयम् कुछ लेने के बजाय यह प्रार्थना की कि बगाल मे अगरेज जो विलायती माल लावें उस पर चुगी न ली जाय। इसी समय दक्खिन मे मुम्बई के अगरेजों ने कान्होजी आँग्रे को कुचलना चाहा। विजयदुर्ग और खडेरी किलों पर उनके बेडों ने चढाइयाँ कीं ( १७१७-१६ ई० ), पर वे दोनो जगह विफल हुए।

---

# दसवाँ प्रकरण

# मराठा प्रमुखता

( १७२०-१७६६ ई० )

## अध्याय १

### पेशवा बाजीराव

( १७२०-४० ई० )

**§१. मुहम्मदशाह—बुन्देलखड, ब्रज और राजपूताने की घटनाएँ ( १७२०-२४ ई० )**—मुहम्मदशाह ने मुहम्मदअमीन को अपना वजीर बनाया और खानेदौरान शम्सामुद्दौला नामक एक हिन्दुस्तानी मुसलमान को मीर बख्शी। बुन्देलखड का दूसरा स्वाधीनता-युद्ध अभी जारी था और छत्रसाल ने कालपी पर दखल कर लिया था ( १७२० ई० )। उधर अजितसिंह ने विद्रोह किया और अजमेर में नये सूबेदार को न घुसने दिया। चूडामन जाट ने अजित और छत्रसाल दोनों को मदद भेजी। छत्रसाल को दबाने के लिए मुहम्मदखाँ बगश पठान को इलाहाबाद की सूबेदारी सौंपी गयी। इसने हाल ही में अपने फिरके को फर्रुखाबाद के इलाके

में बसाया था। बंगश ने कालपी से बुन्देलों को निकाल दिया। १७२१ ई० में मुहम्मदअमीन की मृत्यु हुई और महाराष्ट्र में खण्डेराव दाभाडे की। तब निजाम को दक्खिन से बुला कर वजारत सौंपी गयी। चूडामन के बेटे आपस में झगड़ते थे, उन्हें वह न मना सका तो उसने आत्मघात कर लिया। उसके भतीजे बदनसिंह ने तब सवाई जयसिंह की अधीनता मान ली ( १७२२ ई० ), पर उसका बेटा मारवाड भाग गया। सवाई जयसिंह और बंगश दोनों अजित के खिलाफ भेजे गये। उसने भी अधीनता मानी ( १७२३ ई० )। दूसरे साल उसके छोटे बेटे बख्तसिंह ने उसे मार डाला। मारवाड से निपट कर बंगश ने जमना पार की ( १७२४ ई० ) और छ महीने में छत्रसाल को बाँदा के पास तक खदेड दिया।

मराठों को रोकने के लिए निजाम ने गुजरात और मालवा में अपने भाई सूबेदार नियुक्त किये। उसी समय ईरान से सफावी राज्य के अन्त होने की खबर आयी। सन् १७०८ में कन्दहार के गिलजई अफगान स्वतन्त्र हो गये थे। अब उन्होंने समूचा ईरान जीत लिया। इधर अब भारत का सीमान्त अरक्षित रहने लगा था। पठानों को 'सहायता' देने के लिए काबुल के सूबेदार को जो रक़म भेजी जाती थी, उसे अब खानेदौरान हजम कर लेता था। काबुल की सेना का वेतन ५–५ बरस तक पिछड़ने लगा था। निज़ाम इस कुशासन को ठीक न कर सका, तो छुट्टी ले कर दिल्ली से हट गया ( १७२३ ई० )।

पेशवा बाजीराव [ भा० इ० स० म० ]

§७ बाजीराव की तैयारी ( १७२०–२४ ई० )—बालाजी की मृत्यु पर शाहू ने उसके बेटे बाजीराव को पेशवा बनाया। मराठा राज्य की नीति अब क्या हो, इसपर शाहू की सभा में विचार हुआ। महाराष्ट्र में एक दक्खिनी दल था जिसका कहना था कि हम पहले अपने 'स्वराज्य' को सशक्त बना लें और समूचे दक्खिन को जीत लें, तब दिल्ली

की तरफ बढने की सोचें। बाजीराव का रुख दूसरा था। वह और उसका भाई चिमाजी अप्पा अपने पिता के साथ दिल्ली हो आये थे। उसने कहा, "मुगल साम्राज्य समृद्ध और क्षीण है; उसकी जड पर चोट करो तो शाखाएँ स्वयम् गिर पडेंगी। हमें भारत में हिन्दू साम्राज्य स्थापित करना है। मेरी बात मानों तो मैं मराठा झडा अटक की दीवारों पर गाड दूँगा।" शाहू ने अनुमोदन करते हुए कहा, "उसे किन्नरखड पर जा गाडो।"

अगले ७५ साल तक मराठा राज्य की यही नीति रही। मुगल साम्राज्य यद्यपि इस बीच में बना रहा, किन्तु बडी घटनाओं का आरम्भ अब मराठा दरबार से होता था और मुगल दरबार को अपने बचाव की चिन्ता करनी पडती थी। बाजीराव ने पहले अपनी सेना को सुसगठित किया। मराठे सरदार अब काफी शक्तिशाली थे, अपनी स्वतन्त्र जागीरें होने के कारण वे बहुत उच्छृखल भी थे। उन्हें जागीरों से वचित कर नियन्त्रित करना बाजीराव के लिए सम्भव न था। राजकीय सेनापति स्वयम् एक बड़ा जागीरदार था। उस पद पर खडेराव का बेटा त्र्यम्बकराव नियुक्त हुआ। बाजीराव ने अपनी स्वतन्त्र सेना खडी की, जिसके बल से वह दूसरे सरदारों पर नियन्त्रण रख सके। उस सेना के मुख्य नेता रानोजी शिन्दे, मल्हार होल्कर और उदाजी पँवार आदि थे। बाद में इनके वशज भी बडे-बडे जागीरदार बन गये।

सन् १७२३ ई० में बाजीराव ने मालवा की स्थिति का अन्दाज़ा करने के लिए एक चढाई की।

तभी से पजाब में भी सिक्ख जत्थे दिखायी देने लगे। उन्हें दबाने के लिए सूबेदार जकरियाखाँ ने एक गश्ती सेना नियुक्त की।

§३. निज़ाम का स्वतन्त्र होना, गुजरात, कर्णाटक, मालवा और बुन्देलखड में युद्ध (१७२४–२८ ई०)—निजाम फिर दक्खिन को भागा। बादशाह ने मुहम्मदअमीन के बेटे कमरुद्दीन को वज़ीर बनाया और हैदराबाद के हाकिम को दक्खिन की सूबेदारी दे कर निज़ाम का मुकाबला करने को लिखा। छत्रसाल का बेटा कुँवरचन्द निजाम के साथ था। बाजीराव भी उससे जा मिला। शकरखेडा (बराड़) की लडाई में दक्खिन का सूबेदार मारा गया (१७२४ ई०) और निजाम दक्खिन का बेताज बादशाह बन गया। मुहम्मदशाह ने तब उसका दिल्ली आने का रास्ता रोकने को गुजरात का सूबा उसके चचा हमीदख़ाँ के बजाय

सरबुलन्दखाँ को तथा मालवा गिरिधरबहादुर नागर को सौंपा, और बगश को बुन्देल-खड से बुला कर ग्वालियर भेजा।

हमीदखाँ ने गुजरात देने स इनकार किया, और दाभाडे के अधीन सरदार कन्ताजी कदम बन्दे तथा पिलाजी गायकवाड़ से मदद ली। उन्होंने सरबुलन्द के दो नायबों को मार डाला ( १७२४-२५ ई० )। हमीदखाँ ने उन्हें गुजरात की चौथ दी। तब सरबुलन्द ने स्वयम् दिल्ली से आ कर हमीदखाँ को गुजरात की सूबेदारी से निकाला, पर उसे भी मराठों को चौथ देने की बात माननी पडी। पिलाजी ने बडोदा और दाभोई पर दखल कर लिया ( १७२७ ई० )।

शकरखेडा की जीत के बाद निज़ाम और बाजीराव एक दूसरे का रुख देखते रहे। निजाम ने दक्खिन की तरफ अपनी शक्ति बढ़ायी और कई छोटे-छोटे सरदारों को दबाया। उसने शिवाजी के भतीजे ताजोर के राजा सर्फोजी से त्रिचना-पल्ली छीन ली। सर्फोजी ने शाहू से मदद माँगी, तब दक्खिनी दल के नेताओं के साथ बाजीराव बेदनूर, गदग और श्रीरगपट्टम् तक गया ( १७२५-२६ ई० )। पर वह चढाई विफल रही।

मालवा में गिरिधरबहादुर से बराबर मुठभेड जारी रही। बगश के लौट आने से बुन्देलों को फिर छुट्टी मिली। छत्रसाल ने इस बीच बिहार की सीमा तक का इलाका जीत लिया। किन्तु १७२७ ई० के शुरू में बगश और उसके बेटे कायमखाँ ने प्रयाग पर फिर जमना पार की, और दो साल तक बुन्देलों को दबाते हुए पूरबी बुन्देलखड पूरा ले कर, महोबा, कुलपहाड, जैतपुर तक छत्रसाल को ढकेल दिया। ब्रज से जाटों को मदद आने के बावजूद भी १७२८ ई० के अन्त में जैतपुर भी छिन गया। तब छत्रसाल ने सन्धि की बातचीत से बगश को बहकाना शुरू किया।

§४ बाजीराव का पहली विजयें ( १७२८–३० ई० )—निजाम ने अब हैदराबाद को अपनी राजधानी बनाया और शाहू को चौथ देना बन्द कर दिया। बाजीराव झट सेना के साथ औरगाबाद पर जा चढा और निज़ाम का पीछा करके दौलताबाद के २० मील पच्छिम पालखेड पर उसे घेर लिया। निजाम ने तब सन्धि-भिक्षा की और चौथ की सब बाक़ी रकम दे दी। यह मुँगी शेवगाँव की सन्धि कह-लाती है ( मार्च १७२८ ई० )।

मालवे के किसानों और जमींन्दारों ने मुगल सरकार के जुल्म के खिलाफ सवाई जयसिंह से प्रार्थना की थी। जयसिंह ने कहा—बाजीराव को लिखो। मालवे

के किसानों ने अपनी एक सेना खडी कर ली और बाजीराव को बुलाया। चिमाजी खानदेश हो कर और बाजी बराड के रास्ते मालवा की ओर बढे। अमझरा पर चिमाजी अप्पा और उदाजी पँवार ने गिरिधरबहादुर और उसके भाई दयाबहादुर कों घेर कर मार डाला ( नव० १७२८ ई० ।

इसी समय बूढा छत्रसाल जैतपुर के पास सकट में पडा था। कहते हैं, उसने बाजीराव को लिखा—

जो गति ग्राह-गजेन्द्र की सो गति भई है आज !
बाजी जात बुन्देलाँ की, राखो बाजी लाज !

गढा-मडला के रास्ते बाजीराव बुन्देलखड की ओर बढा। अमझरा की जीत के तीन महीने बाद मराठों ने बगश को घेर लिया, परन्तु बगश बहादुरी से लडता रहा। चार महीने बाद उसके डेरे में अनाज सौ रुपये सेर भी न मिलता था। छत्रसाल ने तब उसे जाने दिया पर उससे लिखवा लिया कि वह फिर जमना को पार न करेगा।

सरबुलन्दखाँ ने राजा शाहू को गुजरात की चौथ देना स्वीकार कर लिया, तो उसे सूबेदारी से हटाकर राजा अभयसिह राठोड को उसकी जगह भेजा गया ( १७३० ई० )। मालवे की सूबेदारी बगश को सौंपी गयी। तीन मास के अन्दर बंगश ने अधिकाश मराठों को नर्मदा पार निकाल दिया। मल्हार होल्कर जयपुर भाग गया।

**§५. गुजरात, मालवा, बुन्देलखंड में मराठों की स्थापना ( १७३१-३३ ई० )**—निजाम ने अब पेशवा के सब शत्रुओं का गुट्ट बनाया। गुजरात को त्र्यम्बकराव दाभाडे के आदमियों ने जीता था, बाजीराव के नियन्त्रण से वे असन्तुष्ट थे। दाभाडे ने कहा—बाजीराव ने राजा शाहू को कैदी बना रक्खा है मैं उसे मुक्त करूँगा। उसने अहमदनगर पर निजाम से मिल कर दक्खिन की ओर बढना तय किया। उधर कोल्हापुर के सम्भाजी को निजाम ने अपनी ओर मिला लिया। तब नर्मदा के घाट पर निजाम और बगश मिले, और चौमुखा षड्यन्त्र पूर्ण हुआ। ठिकाने की दो चोटों से बाजीराव ने उसे तोड दिया।

सम्भाजी के खिलाफ दक्खिनी दल भेजा गया, जिसने उसे पूरी तरह हरा दिया। सम्भाजी ने आगे से शाहू के अधीन रहना मान लिया।

त्र्यम्बकराव के निज़ाम से मिलने पर उतारू हो जाने पर शाहू ने लाचार हो बाजीराव को उसपर आक्रमण करने की आज्ञा दी। साथ ही आदेश दिया कि भरसक उसे मना लो या पकड लाओ। इससे पहले कि दाभाडे निजाम से मिल पाय, बाजीराव गुजरात पर टूट पड़ा। दाभोई पर दाभाडे बहादुरी से लडा। सफेद झंडा दिखा कर बाजीराव ने कहा, 'ऐसी वीरता महाराजा के शत्रुओं के विरुद्ध दिखानी चाहिए।' पर त्र्यम्बकराव ने एक न सुनी और उसे पकडने के यत्न विफल हुए। उसी की तरफ से उसके मामा ने उसकी पीठ में गोली मार दी। निजाम और बगश के जुदा होने के चौथे दिन यों निज़ाम का षड्यन्त्र धूल में मिल गया। दाभाई से बाजीराव सीधा निजाम की ओर बढा। निजाम ने तब उससे यह गुप्त सन्धि की कि वह उत्तर की तरफ बेरोकटोक बढे, निज़ाम उसे पीछे से न छेड़ेगा।

इस घरेलू युद्ध का धक्का समूचे महाराष्ट्र को लगा। त्र्यम्बकराव की माँ उमाबाई ने शाहू के पास आकर बाजीराव से बदला लेने के लिए कहा। शाहू ने उमाबाई के गाँव में जा कर बाजीराव को उसके पैरों गिराया, और तब उमा के हाथ में तलवार दे उसे बाजीराव का सिर काटने को कहा। उमा ने बाजीराव को क्षमा किया। तब उसका छोटा बेटा यशवन्तराव सेनापति नियुक्ति किया गया। पर वह शराबी था, उसकी शक्ति धीरे-धीरे गायकवाडों के हाथ चली गयी।

उसी वर्ष (१७३१ ई०) छत्रसाल परलोक सिधारा। बुन्देलखंड का पूर्वार्द्ध तब उसके हाथ आ चुका था। उसने बाजीराव को अपना बेटा बना कर तीन बेटों में अपना राज बाँट दिया। इस प्रकार हृदयशाह के हिस्से पन्ना, जगतराज के हिस्से में जैतपुर और बाजीराव के हिस्से में सागर-दमोह आये। बाकी बेटों को जागीरें मिलीं। मराठों और बुन्देलो में पूरे सहयोग की सन्धि हुई।

राजा अभयसिंह ने पिलाजी गायकवाड से बडौदा छीन लिया और सन्धि की बात करने के बहाने पिलाजी को डाकोर तीर्थ में बुला कर धोखे से मार डाला (१७३२ ई०)। तब कोली आदि जातियाँ, जो मराठों के पक्ष में थीं, भडक उठीं, और पिलाजी के बेटे दमाजी ने गुजरात का बडा अंश जीत कर अभयसिंह को जोधपुर भगा दिया।

अब बगश बाकी रह गया। १७३१ ई० में उसने मराठों को निकाल दिया था, पर दूसरे वर्ष वे फिर दक्खिन और बुन्देलखंड से मालवा चढ आये। सिरोंज

पर वगश चारों तरफ से घिर गया। दिल्ली और निजाम से व्यर्थ मदद माँगने के बाद उसने मराठों से सन्धि कर ली। तब दिल्ली से हुक्म आया कि वगश के बजाय सवाई जयसिंह मालवे का सूबेदार नियुक्त किया गया।

अगले वर्ष रानोजी शिन्दे और मल्हार होल्कर ने गुजरात में चाँपानेर जीतने के बाद मालवा आकर जयसिंह को घेर लिया। उसने हार मानी और छः लाख रुपया तथा २८ परगने दे कर छुटकारा पाया।

इस प्रकार गुजरात, मालवा और बुन्देलखंड में मराठे स्थापित हो गये।

§६ उत्तर भारत पर मराठों की चढ़ाई (१८३५-३६ ई०)—जयसिंह ने बूँदी के राजा बुधसिंह हाडा से राज छीन कर अपने एक दामाद को दे दिया था। बुधसिंह की स्त्री ने मल्हार होल्कर के पास राखी भेज कर उससे मदद माँगी। यों मराठों ने राजपूताने में पहले पहल हस्तक्षेप किया। बादशाह ने खानेदौरान को उनके खिलाफ भेजा। जयसिंह और अभयसिंह भी उसके साथ बढ़े। मुकुन्दरा घाटी के आगे रामपुरा के इलाके में उन सब को मराठों ने घेर लिया और जयपुर जोधपुर के अरक्षित इलाकों पर हमले शुरू किये। जयसिंह और खानेदौरान ने तब मराठों को मालवा की चौथ दिला देने का प्रस्ताव कर सन्धि की बात शुरू की जिससे युद्ध रुक गया।

लेकिन बादशाह ने यह प्रस्ताव मजूर नहीं किया और जयसिंह से आगरा और मालवा के सूबे लेकर वजीर कमरुद्दीन को दिये। इस पर बाजीराव ने जयसिंह का सन्देश पाकर फिर युद्ध जारी किया। चिमाजी अप्पा के नेतृत्व में मराठा सेना की हरावल ने राजपूताना, मालवा और बुन्देलखंड के रास्ते एक साथ उत्तर भारत पर चढ़ाई की। खानेदौरान, कमरुद्दीन तथा बंगश को उनके खिलाफ भेजा गया। तो भी वे चम्बल तक बढ आये और उनकी एक टुकड़ी जमना पार कर इटावे के भी इलाके में घुसी।

पीछे से बाजीराव स्वयम् चला आ रहा था। मेवाड़ की सीमा पर महाराणा उसे उदयपुर लिवा ले गया और उसने वार्षिक कर देना स्वीकार किया। किशन-गढ़ पहुँचने पर जयसिंह ने उससे भेंट की। इससे पहले खानेदौरान और बंगश भी सन्धि की प्रार्थना कर रहे थे। बाजीराव ने युद्ध रोक दिया और मालवे के रास्ते लौटते हुए सन्धि की बातचीत जारी रक्खी।

१७३५ ई० तक पंजाब में सिक्खों ने बूढ़ा दल और तरुण दल नाम से अपने दो दल खड़े कर लिये। उनका केन्द्र अमृतसर प्रदेश था।

§ बाजीराव की दिल्ली पर चढ़ाई (१७३७-३८ ई०)—बाजीराव की पहली शर्तें ये थीं—(१) मालवे का सूबा किलों और पुरानी जागीरों के सिवाय उसे सौंप दिया जाय, तथा (२) दक्खिन के छः सूबों की मालगुजारी का ५% राजा शाहू को दिया जाय। मुहम्मदशाह ने इनपर "मंजूर" लिख दिया। लेकिन मुगल साम्राज्य को कमजोर पाकर बाजीराव ने अपनी शर्तें पीछे बहुत बढ़ा दीं। मुहम्मद शाह ने उनमें से कुछ मान लीं, पर सब मानने से इनकार किया। बाजीराव ने जयसिंह का गुप्त सन्देश पाकर फिर चढ़ाई की। जैतपुर के रास्ते वह आगरे के दक्खिन भदावर प्रदेश में जमना पर आ निकला। मल्हार होल्कर वहाँ से दोआब में घुस कर शिकोहाबाद आदि लूटता हुआ, जलेसर पर अवध के सूबेदार सआदत-खाँ से हार कर, ग्वालियर पर बाजीराव से आ मिला। दिल्ली के तीन सेनापति—खानेदौरान, बख्शी, सआदतखाँ—मथुरा पर जमा हुए। इसी समय रेवाड़ी पर एक मराठा हमले की खबर सुनकर वजीर क़मरुद्दीन उधर बढ़ा, और उधर से मथुरा की ओर लौटने लगा।

बाजीराव चम्बल पार कर इन दोनों फौजों को एक एक दिन की राह पर दाहिने बाएँ छोड़ता हुआ एकाएक दिल्ली पर आ पहुँचा (६-४-१७३७ ई०)। सन्धि की बातचीत होने लगी, जिससे बाजीराव ने अपना इरादा बदल दिया। "हम दिल्ली जलाना चाहते थे, परन्तु फिर देखा कि वैसा करने और बादशाह की गद्दी नष्ट करने में लाभ नहीं है। क्योंकि बादशाह और खाने-दौरान हमसे सन्धि करना चाहते हैं, पर मुगल नहीं करने देते। हमारी तरफ से कोई अत्याचार होने से राजनीति का सूत्र टूट जाता, इसलिए जलाने का इरादा छोड़ कर बादशाह और राजा बख्तमल को पत्र भेजे।" इसी बीच दूसरे दिन दिल्ली की फौज बाजीराव के मुकाबले को निकली और रिकाबगंज पर बुरी तरह हारी।

बाजीराव का दिल्ली पहुँचना सुन कर शाही सेनापति 'खीझ की अँगुली शर्म के दाँत पर रक्खे हुए' एकाएक लौटे। बाजीराव ने भी जब देखा कि बड़ी-बड़ी सेनाएँ चली आ रही हैं तो वह पच्छिम की ओर हट कर अजमेर जा निकला। वहाँ से वह फिर दिल्ली पर चढ़ाई करने या अन्तर्वेद में घुसने का इरादा कर ग्वालियर लौटा। चिमाजी को उसने लिखा—"इधर किसी का डर नहीं है, उधर

निजाम की एड़ियों में रस्से डाले रक्खो।" किन्तु बाजीराव के दिल्ली पहुँचने के के तीन दिन पहले मराठों की बडी सेना कोंकण में पुर्त्तगालियों के खिलाफ बढ चुकी थी, और खानदेश की मराठा टुकडी को भगा कर निजाम नर्मदा पार निकल आया था, इसलिए बाजीराव को एकाएक लौटना और कोंकण जाना पडा।

शाही दरबार में अब सब का यह मत था कि निजाम ही बाजीराव को रोक सकता है। इसलिए उसे फिर बुला कर वजीर बनाया गया। आगरा और मालवा के सूबे जयसिंह और बाजीराव के बजाय उसके बेटे गाजिउद्दीन को दिये गये। निजाम मालवे को वापस लेने चला। अपने दूसरे बेटे नासिरजंग को उसने लिखा कि वह बाजीराव को दक्खिन से न निकलने दे। पर बाजीराव नर्मदा पार कर आया, और उसने भोपाल पर निजाम का सामना किया। पालखेड और जैतपुर वाली बात दोहरायी गयी। निजाम पूरी तरह घिर गया, परन्तु तोपों के सहारे कुछ आगे बढा। अन्त मे उसने दुराहासराय पर सन्धि की प्रार्थना की। उसने नर्मदा से चम्बल तक के प्रान्त पर मराठा आधिपत्य मनवाने और उन्हे ५० लाख की खडनी देने का वचन दिया ( जनवरी १७३८ ई० )।

§८. अँगरेज और आँग्रे, पुर्तगालियों से युद्ध (१७२१-३६ ई०)— अपने ही देश के डकैतों को दबाने तथा कान्होजी आँग्रे की जलशक्ति तोडने मे अपने को अशक्त देख ईस्ट इंडिया कम्पनी ने अपने बादशाह से मदद माँगी। तब इंगलैंड से एक जंगी बेडा इस प्रयोजन के लिए मुम्बई आया। गोवा और बसई के पुर्त्तगाली गवर्नरों ने भी उसका साथ दिया। पर आँग्रे के कोलाबा किले से वे सब हार कर लौटे ( १७२२-२३ ई० )। दूसरे वर्ष विजयदुर्ग पर ओलन्देज भी वैसे ही हारे। १७२६ ई० मे आँग्रे की मृत्यु हुई। तब उसके बेटे आपस में झगड़ने लगे और उन झगडों मे पुर्तगाली भी दखल देने लगे। बाजीराव ने उधर ध्यान दिया और पुर्तगालियों को दबना पडा। किन्तु उसके बाद पुर्तगाली वाइसराय के अभिमानी भतीजे ने मराठा दूत के सामने बाजीराव को 'नेगर' ( हब्शी ) कह दिया। चिमाजी अप्पा के नेतृत्व में महाराष्ट्र ने तब अपनी सारी शक्ति पुर्तगालियों के खिलाफ लगा दी। दो वर्ष तक घोर युद्ध होता रहा ( १७३७-३९ ई० ), दुराहासराय से लौट कर बाजीराव की सारी सेना कोंकण चली आयी और पुर्तगालियों का समूचा 'उत्तरी प्रान्त' मराठों के हाथ आया। बहादुरशाह गुजराती और अकबर जो काम करने को तरसते रहे, वह दो शताब्दी

बाद पूरा हुआ। पुर्तगालियों से बसई छीनने के लिए मराठों को भारी बलिदान करना पड़ा। चिमाजी का प्रस्ताव बसई के बाद मुम्बई लेने का था। इसलिए अँगरेजों ने चिमाजी और शाहू के पास अपने दूत भेजे। शाहू ने उनके साथ मैत्री रखना तय किया।

§६. नादिरशाह की चढ़ाई ( १७३८-३६ ई० )—गिलजई पठानों का ईरान का राज्य दो वर्ष में टुकडे-टुकड़े हो गया। अन्तिम सफावी शाह के बेटे तहमास्प ने सिर उठाया, खुरासान में एक तुर्कमान सैनिक नादिरकुली ने उसका सेवक बन कर ईरान को स्वतन्त्र किया और उसे गद्दी पर बैठाया ( १७२६ ई० )। किन्तु तहमास्प मूर्ख और दुर्बल था। जब सेना ने देखा कि वह अपने देश को फिर गँवा देगा तो उसने उसे हटा कर उसके बेटे को बादशाह बनाया। उसके मर जाने पर नादिरकुली नादिरशाह बना। उसने कन्दहार के अफगानों पर चढाई की ( १७३७ ई० ), और मुहम्मदशाह को लिखा कि वह भगोड़ों को अपनी सीमा में न घुसने दे। किन्तु अफगान जब कन्दहार से गज़नी और काबुल भागने लगे, तब उस प्रान्त में उन्हें रोकने को कोई सेना न थी। नादिरशाह ने इसका जवाब तलब किया। दिल्ली से उसे साल भर तक कोई जवाब न मिला।

नादिरशाह
[ श्रीयुत शहाबुद्दीन खुदाबख्श के निजी संग्रह में से ]

तब नादिर ने काबुल ले लिया ( १७३८ ई० ), और पेशावर ले कर वह पंजाब की ओर बढा। दिल्ली से कमरुद्दीन, निज़ाम और खाने-दौरान को बढने का हुक्म हुआ। शाहदरा जा कर वे एक महीना वहीं पड़े रहे। इस बीच नादिर ने

ज़करियाखाँ से लाहौर भी ले लिया और पंजाब में उसकी सेना ने अकथनीय अत्याचार किये। दिल्ली दरबार ने राजपूत राजाओं को मदद के लिए लिखा और बाजीराव से भी प्रार्थना की। जयसिंह आदि ने तो उसे टाल दिया, पर बाजीराव ने लिखा "हमारे राज्य के लिए दिल्ली के बादशाह को ऐसे समय मदद देना बडे गौरव की बात होगी। मल्हार होल्कर, रानोजी शिन्दे और उदाजी पँवार को भेजता हूँ।" किन्तु वे सब सेनानायक पुर्तगालियों के साथ उलझे हुए थे और किसी तरह कोंकण से न निकल सके। पानीपत पहुँच कर दिल्ली के सेनापतियों ने बादशाह को बुलाया और उसके आने पर वे करनाल तक आगे बढ़े। वहाँ उन्होंने मोर्चाबन्दी कर अपने को दीवार से घेर लिया। चुस्त और सजग शत्रु ने चारों तरफ से उनके रास्ते बन्द कर दिये।

नादिर की सेना मुख्यतः सवारों की थी और वे जिजैल नामक लम्बी बन्दूकों से लड़ते थे। भारतीय सवारों के मुख्य शस्त्रास्त्र भाला, तलवार और तीर थे। इसके सिवाय नादिर की सेना में एक अच्छी संख्या ऊँट सवारों की थी जो ज़म्बुरक अर्थात् हलकी लम्बी तोपों से लडते थे। इस 'दस्ती तोपखाने' के मुकाबले में भारतीयों के पास कुछ भी न था, उनका भारी 'जिन्सी तोपखाना' एक जगह टिका रहता था। नादिर के शब्दों में हिन्दुस्तानी मरना जानते थे, लड़ना नहीं।

सआदतखाँ पीछे से कुमुक ला रहा था, परन्तु वह ईरानियों के हाथ कैद हुआ। खानेदौरान उसकी मदद को गया और मारा गया। कैदी सआदत के द्वारा सन्धि की बातें शुरू हुईं, ५० लाख खडनी तय हुई, जैसी एक बरस पहले बाजीराव के लिए हुई थी। उसी समय मुगल दरबार में यह प्रश्न उठा कि खानेदौरान की जगह मीर बख्शी कौन बने। इस प्रसंग में सआदत निजाम से रूठ बैठा। उसने नादिर से कहा, ५० लाख क्या लेते हो, दिल्ली चलो तो २० करोड मिलेंगे। नादिर ने निज़ाम, वजीर और मुहम्मदशाह को बातचीत के लिए बुला कर धोखे से पकड़ लिया। उन कैदियों के साथ ईरानी सेना दिल्ली की ओर बढी। बिना नेताओं की हिन्दी सेना तितर-बितर हो गयी।

नादिरशाह के दिल्ली पहुँचने पर जनता ने विद्रोह किया। तब नादिर ने क़त्ले-आम का हुक्म दिया। एक दिन में २० हजार जानें ली गयीं। उसके बाद वह दो मास तक प्रजा और अमीरों को लाञ्छित करता और निचोडता रहा। उसने अजमेर-यात्रा की इच्छा प्रकट की तो जयसिंह आदि ने अपने परिवार उदयपुर

भेज दिये। बाजीराव ने चम्बल के घाटों को अपने काबू में रखना तय किया। उसने लिखा, "पुर्त्तगाली युद्ध कुछ नहीं है, दक्खिन की सब शक्ति, हिन्दू और मुस्लिम, एक करनी होगी। मैं मराठों को नर्मदा से चम्बल तक फैला दूँगा।" पर बसई के ढहते ही (१४-५-१७३६) जब होल्कर और शिन्दे बाजीराव से मिलने बुरहानपुर की तरफ बढ़े, तब नादिरशाह को दिल्ली से लौटे ६ दिन हो चुके थे।

दिल्ली से नादिरशाह कुल १५ करोड़ रुपये नकद और ५० करोड़ के रत्नाभूषण और सामान, जिनमें तख्ते-ताउस भी शामिल था, ले गया। मुहम्मद-शाह को उसने उसकी जान और बादशाहत बख्शीं, किन्तु ठठ्ठा (दक्खिनी सिन्ध) तथा सिन्ध नदी के पार के प्रान्त ले लिये और पंजाब में जकरियाखाँ को अपनी ओर से नियुक्त किया। लौटते हुए नादिर का कुछ माल-असबाब दिल्ली के पास ही जाटों ने लूट लिया। पंजाब में सिक्खों ने रावी पर दुल्लेवाल किला बना लिया था। उन्होंने भी उसका बोझा कुछ हलका किया।

§१०. बाजीराव का अन्त—१७३६ ई० में बराड़ के रघुजी भोंसले ने गोंडवाने में देवगढ का राज्य जीत लिया। इसके बाद शाहू की प्रेरणा से उसने दक्खिनी प्रान्तों पर चढाई की। तभी बाजीराव और चिमाजी दोनों भाइयों का बीमारी से देहान्त हो गया (१७४० ई०)। खबर पा कर रघुजी, जो पुद्दुचेरी में था, सतारा लौट आया, क्योंकि उसे पेशवा बनने की आशा थी।

तभी निज़ाम भी दक्खिन को लौट गया।

## अध्याय २

### पेशवा बालाजीराव

### ( १७४०–६१ ई० )

§ १ मराठों की तामिलनाड और बंगाल पर चढ़ाइयाँ, "भारतीय सिपाही का आविष्कार" ( १७४०–४३ ई० )—बाजीराव की मृत्यु पर शाहू ने उसके नौजवान बेटे बालाजी को पेशवा बनाया और रघुजी भोंसले को, जो उसके विरोधी दक्खिनी दल का नेता था, फिर तामिलनाड की चढाई पर भेजा।

राजाराम के जिंजी छोड़ने के बाद से तामिल देश पर दिल्ली-साम्राज्य का बराबर प्रभुत्व था। पहले जुल्फिकारखाँ ने, फिर फ़र्रुखसियर ने, सआदतुल्लाखाँ को 'कर्णाटक' का शासन सौंपा था। शकरखेड़ा-युद्ध के बाद निजाम ने भी उसे बना रहने दिया। लम्बे सुशासन के बाद १७३१ ई० में उसकी मृत्यु हुई। तब उसका भतीजा दोस्तअली 'कर्णाटक का नवाब' बना। अब वह दमलचेरी घाट पर रघुजी से लड़ता हुआ मारा गया। रघुजी तामिल मैदान की ओर बढा। दोस्तअली का दामाद चन्दासाहेब त्रिचनापल्ली में लडता हुआ कैद हुआ ( १७४१ ई० )। रघुजी ने उसे सतारा भेज दिया और कृष्णा के दक्खिन गुत्ती में बसे हुए मराठा सरदार मुरारीराव घोरपडे को त्रिची का हाकिम बनाया। चन्दा ने अपना परिवार पुद्दुचेरी के फ्रान्सीसी हाकिम द्यूमा ( Dumas ) के पास भेज दिया था।

रघुजी ने पुद्दुचेरी पहुँच कर द्यूमा से खिराज के बक़ाये और चन्दा साहब के परिवार को तलब किया। द्यूमा ने इनकार करते हुए कहला भेजा कि फ्रान्सीसी जाति ने कभी किसी को खिराज नहीं दिया। रघुजी ने अपने दूत को यह देखने भेजा कि द्यूमा किस बूते पर ऐसा लिखता है। द्यूमा ने अपनी रसद, तोपें और कवायद सीखे हुए सिपाही दिखाये। १२०० फ्रान्सीसी सैनिकों के सिवाय वहाँ ५,००० भारतीय सिपाही फ्रान्सीसी नियन्त्रण में कवायद सीखे हुए तैयार थे।

उनसे प्रभावित हो कर रघुजी लौट गया। उसे लौटा देने के लिए निजाम ने द्यूमा को भेट भेजी और मुहम्मदशाह ने उसे नवाब का पद दिया।

१८ वीं सदी में युरोप ने स्थल-युद्ध-कला में भी बड़ी उन्नति कर ली थी। बन्दूक का प्रयोग बढ जाने से अब वहाँ पैदल बन्दूकचियों की पाँतें तैयार हो गयीं थीं जो युद्ध का मुख्य साधन बन गयीं थीं। ये पाँतें एक साथ एक आदेश पर गोली दागतीं और इनकी सारी गति नेताओ के आदेशों पर नियमित रहती थी। इनके सामने ढीले अनुशासन पर चलने वाले रिसाले किसी काम के न थे। सेनाओं और युद्ध-शैली में केन्द्रीय नियन्त्रण बढ जाने से युरोप की शासनसस्था में भी राजाओं का नियन्त्रण बढ गया, क्योंकि इन सुनियन्त्रित पैदल सेनाओं से राजाओं ने अपने उच्छृखल सरदारों के कोटले ढहा कर उन्हें काबू में कर लिया। युरोप वाले यदि अब भारत में अपनी सेनाएँ ला सकते तो उसे आसानी से जीत लेते, पर इतनी दूर बड़ी फौजें लाना सम्भव न था। इस दशा में द्यूमा ने भारतीय सिपाहियों को कवायद सिखा कर उन्हें नयी युद्ध-कला में दीक्षित किया। उसने यह अनुभव किया कि भारतवर्ष के लोगों में, एक पुरानी सभ्यता के वारिस होने के कारण, इतनी समझ और मौतिक वीरता है कि वे अच्छे सैनिक बन सकते हैं। आफ्रिका आदि की दूसरी जिन जातियों से युरोप वालों को वास्ता पड़ा था, वे ऐसी न थीं। साथ ही उसने देखा कि भारतवासियों में राष्ट्रीयता का इतना अभाव है कि उन्हें किसी के भी भाडे के सैनिक बन कर अपने भाइयों पर गोली दागने में कोई ग्लानि नहीं होती। इसके अलावा वे महात्त्वाकाक्षा और जिज्ञासा से भी इतने शून्य हैं कि जितनी बातें उन्हें सिखा दी जायँ उतनी सीख लेते हैं, पर उससे आगे बढ कर समूचे ज्ञान को अपनाने की उत्कठा उनमें नहीं जागती। इसलिए जहाँ वे दूसरों के अच्छे हथियार बन सकते हैं वहाँ इस बात का खटका नहीं है कि वे स्वयम् युरोपी ढग की सेनाएँ सगठित कर लें। द्यूमा को जो यह नयी बात सूझी, इसे युरोप वाले "भारतीय सिपाही का आविष्कार" कहते है। १८ वीं सदी का यह सब से बडा सामरिक आविष्कार था। युरोप वालों के हाथ में इससे एक ऐसा साधन आ गया जिससे उन्होंने पृथ्वी का नक्शा पलट दिया।

अठारहवीं सदी के शुरू में औरगज़ेब ने मुर्शिदकुलीख़ाँ को बंगाल और उडीसा का नाज़िम और दीवान नियत किया था। उसके बाद उसका पद तथा बिहार की सूबेदारी भी उसके दामाद को मिली। अब अलीवर्दीख़ाँ ने उसके बेटे

को मार कर वह पद छीन लिया और बादशाह से भी इसके लिए स्वीकृति ले ली (१७४० ई०)। दूसरे पक्ष के बुलाने से पहले रघुजी भोंसले के मन्त्री भास्कर कोल्हटकर ने और फिर खुद रघुजी ने रामगढ (आधुनिक हजारीबाग राज्य) और बाँकुड़ा के रास्ते बर्दवान पर चढाई की और कटवा में छावनी डाल कर राजमहल से मेदिनीपुर तक जीत लिया।

दुराहासराय की सन्धि को पक्का कराने के लिए पेशवा बालाजीराव ग्वालियर तक बढ आया था। बादशाह की तरफ से सवाई जयसिंह ने धौलपुर में उससे मिल-कर उसे मालवे का सूबा दे दिया। उसके बाद बादशाह ने उससे प्रार्थना की कि वह बगाल से रघुजी को निकाल दे। तदनुसार फरवरी १७४३ ई० में बालाजी प्रयाग, बनारस, गया, मुंगेर, बीरभूम के रास्ते बगाल की राजधानी मुर्शिदाबाद की तरफ बढा। कटवा के उत्तर पलाशी गाँव पर अलीवर्दी ने उससे मिलकर बगाल की चौथ देना स्वीकार किया। रघुजी बीरभूम की तरफ हट गया था, बालाजी ने पीछा कर उसे भगा दिया।

इसी समय तामिलनाड में भी रघुजी के किये कराये पर पानी फिर गया। निजाम ने वह प्रान्त फिर से जीत कर अनवरुद्दीन को नवाब नियत किया और मुरारीराव घोरपडे को भेट-पूजा से खुश कर लौटा दिया। इस दशा में राजा शाहू ने बालाजी और रघुजी के बीच समझौता करा दिया (३१-८-१७४३)। मालवा, आगरा, इलाहाबाद के सूबे बालाजी के अधिकार-क्षेत्र माने गये तथा बिहार, बगाल, उड़ीसा और अवध रघुजी के। इसके बाद तुरन्त ही रघुजी ने नागपुर के गोंड राज्य को जीत लिया।

§७ उडीसा पर दखल, बगाल-बिहार पर आधिपत्य—सन् १७४४ में भास्कर पन्त ने फिर बगाल पर चढाई की। इस बार अलीवर्दीखाँ ने उसे सन्धि की बातचीत के बहाने बुला कर उसके २१ नायकों सहित कत्ल कर डाला (३१-३-१७४४)। अगले वर्ष अलीवर्दी के अफगान सेनिकों ने, जो दरभगा में बसे हुए थे, विद्रोह किया। उनके बुलाने से रघुजी भोंसले ने फिर चढाई की, उडीसा पर दखल कर लिया और पच्छिमी बगाल में छावनियाँ डाल कर बिहार में अफगानों को मदद दी। बादशाह ने पेशवा से सन्धि करके बिहार की १० लाख चौथ पेशवा के लिए तथा बगाल की २५ लाख बराड के भोंसले के लिए नियत कर दी। लेकिन बूढे अली-वर्दी ने भोंसले को चौथ देना स्वीकार न किया और वह आगे ५ वर्ष तक लड़ता

रहा। अन्त में सन् १७५१ में उसने सन्धि की, जिसके अनुसार उसने उड़ीसा प्रान्त, मेदिनीपुर जिले के सिवाय, रघुजी को "जागीर के रूप में" दे दिया, और बगाल की चौथ १२ लाख रुपया वार्षिक देना स्वीकार किया।

§३ **राजपूताना और महाराष्ट्र के भीतरी झगड़े ( १७४३–५२ ई० )—** सन् १७४३ में सवाई जयसिंह की मृत्यु हुई, उसी वर्ष राजा शाहू को असाध्य रोग हुआ और छ बरस बीमार रह कर वह परलोक सिधारा ( १४-१२-१७४६ )। ९-६-१७४७ को नादिरशाह कत्ल किया गया तथा १५-४-१७४८ को मुहम्मदशाह और २१-५-१७४८ को निजाम चल बसा। १७४६ ई० में मारवाड का राजा अभय-सिंह मरा। इन सब मृत्युओं से उत्तराधिकार के अनेक झगडे खडे हुए।

जयसिंह का बडा बेटा ईश्वरीसिंह जयपुर की गद्दी पर बैठा तो उसके छोटे भाई माधोसिंह ने राज्य का बडा हिस्सा माँगा। माधोसिंह के मामा उदयपुर के महाराणा जगतसिंह ने उसका पक्ष लिया। राजपूतों के इन तुच्छ झगडों में उलझ कर मराठा सरकार भी पथभ्रष्ट हो गयी। पहले वह ईश्वरीसिंहके पक्ष में थी, तो भी महाराणा ने मल्हार को अपने पक्ष मे खींच लिया। बाद में मराठा सरकार ने भी माधोसिंह का पक्ष ले लिया। ईश्वरीसिंह ने पेशवा को याद दिलायी कि उसके पिता और बाजीराव की कैसी दाँतकाटी रोटी थी, लेकिन बालाजीराव ने एक न सुनी और १७४८ ई० में जयपुर राज्य पर चढाई कर दी। ईश्वरीसिंह को झुकना पडा। दो बरस बाद वह हरजाने की रकम न चुका सका और मराठों ने फिर चढाई की तो उसने और उसकी रानियों ने आत्महत्या कर ली। इन घटनाओं से राजपूत मराठों के शत्रु बन गये। माधोसिंह जयपुर का राजा बना, पर अब उसका रुख बदल गया, और समूचे राज्य मे मराठों के विरुद्ध विद्रोह हुआ जो कठिनाई से दबाया गया।

अभयसिंह के मरने पर उसका भाई बख्तसिंह तथा उसका बेटा रामसिंह आपस में लडने लगे। बख्तसिंह ने १७५१ ई० में राज छीन लिया, पर अगले वर्ष वह मर गया और उसका बेटा विजयसिंह उत्तराधिकारी हुआ।

राजा शाहू के कोई सन्तान न थी। उसकी बीमारी के छः वर्षों में उत्तरा-धिकार के अनेक प्रस्ताव पेश हो कर रद्द होते रहे। ताराबाई ने कहला भेजा कि उसका एक पोता मौजूद है जिसे उसने रजसबाई से बचाने को छिपा दिया था। बडी जाँच-पडताल के बाद यह बात ठीक मानी गयी। शाहू की मृत्यु के बाद बालाजी और अन्य प्रधानों ने शाहू की इच्छानुसार ताराबाई के पोते रामराजा को

सतारा की गद्दी दी। रघुजी भोंसले ने बालाजी का साथ दिया। किन्तु ताराबाई की आकांक्षा अपने पोते के नाम पर स्वयम् शासन करने की थी। उसने उमाबाई दाभाडे से मिल कर षड्यन्त्र रचा और अपने पोते को भी षड्यन्त्र में मिलाना चाहा, पर उसके न मानने पर सतारा का किला छीन कर उसे कैद कर लिया। यशवन्तराव दाभाडे और दमाजी गायकवाड ने महाराष्ट्र पर चढ़ाई कर दी। बालाजी तब हैदराबाद के इलाके में गया हुआ था। उसे एकाएक लौटना पड़ा (एप्रिल १७५१)। विद्रोह को कुचल कर उसने दाभाडे और गायकवाड को कैद कर लिया और सतारा का किला और रामराजा ताराबाई के हाथ में रहने दिये। दमाजी गायकवाड ने गुजरात के कर का पिछला सब बकाया और आगे से वार्षिक कर और सब विजयों का आधा हिस्सा देना तथा राजकीय सेवा में अपनी सेना भेजना स्वीकार किया। ताराबाई ने भी पेशवा से समझौता किया, पर उसका किला और कैदी उसके हाथ में रहने दिये गये।
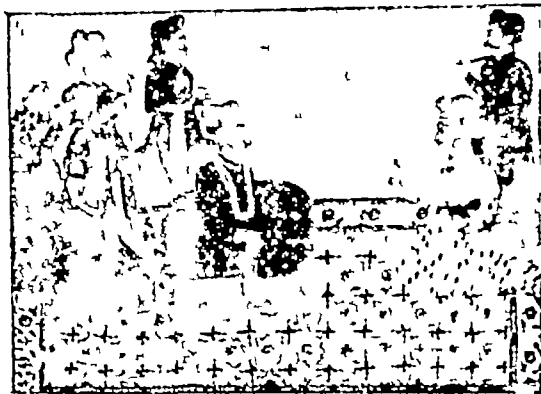
बालाजीराव पेशवा, दाहिने उसका पुत्र विश्वासराव, सामने नरोशंकर दानी (तीनों बैठे हुए)

[ भा० इ० स० म० ]

गुजरात में अहमदाबाद और खम्भात में अब तक दिल्ली की बादशाहत बनी हुई थी। इस समझौते के बाद बालाजी के भाई रघुनाथराव (राघोबा) के नेतृत्व में सम्मिलित मराठा सेना ने समूचा गुजरात जीत लिया (१७५२-५३ ई०)।

§४. **उत्तर भारत में अफगान और मराठे** (१७४१–५२ ई०)— १७वीं शती के उत्तरार्ध और १८वीं के शुरू में प्राचीन पंचाल देश में अनेक अफगान आ बसे थे। फर्रुखाबाद और शाहजहाँपुर में तथा बरेली जिले के आँवला और बानगढ कस्बों में उनकी खास बस्तियाँ थीं। अफगानिस्तान में पहाड़ को रोह कहते हैं, इससे ये लोग रुहेले कहलाये। पुराने जमीन्दारों से छीन खसोट कर रुहेलों ने बहुत सी जागीरें बना लीं। १७४१ ई० में उनके नेता अलीमुहम्मद

ने कटहर के फौजदार को मार डाला। कमज़ोर मुगल दरबार ने अलीमुहम्मद को ही फौजदार बना दिया, और कटहर या सम्भल का इलाका ( उत्तर पंचाल ) अब रुहेलखंड कहलाने लगा। रुहेलों की छीनाखसोटी तब और भी बढ गयी। १७४५ में खुद बादशाह ने बानगढ पर चढाई की और अलीमुहम्मद को रुहेलखड से हटा कर सरहिन्द का फौजदार बना दिया।

उसी वर्ष पंजाब के जबर्दस्त सूबेदार जकरियाखाँ की मृत्यु हुई और उसके बेटे आपस में लड़ने लगे। नादिरशाह के अधीन अहमद अब्दाली नामक पठान उसका सब से योग्य सेनापति था। नादिर के मारे जाने पर उसने मुकुट धारण किया और कन्दहार आ कर वह अफगानों का शाह बना। उसी साल जाडे में उसने भारत पर चढाई की। जकरिया के बेटे से लाहौर छीन कर वह आगे बढा। दिल्ली से वजीर कमरुद्दीन और शाहजादा अहमद उसके मुकाबले को चले। सरहिन्द के पास मानुपुर पर लड़ाई हुई जिसमे कमरुद्दीन तो मारा गया, पर उसके बेटे मुईनुल्मुल्क तथा सआदतखाँ के भतीजे अवध के सूबेदार सफ्दरजग ने अब्दाली को हरा कर लौटा दिया ( ११-३-१७४८ ई० )।

अब्दाली की इस चढाई के समय उत्तर भारत के अफगान फिर से मुगल साम्राज्य के अन्त और अफगान साम्राज्य की स्थापना के सपने देखने लगे। अलीमुहम्मद सरहिन्द से भाग आया और उसके रुहेलों ने रुहेलखड पर दखल कर लिया।

मानुपुर की लड़ाई के एक मास बाद मुहम्मदशाह की मृत्यु हुई। उसका बेटा अहमदशाह दिल्ली की गद्दी पर बैठा। मुईनुल्मुल्क को पजाब की सूबेदारी दी गयी थी, सफ़्दरजग को अब वज़ीर का पद दिया गया।

तभी अलीमुहम्मद भी मर गया। उसके पीछे चार रुहेले सरदार मिल कर रुहेलखड का शासन चलाने लगे। सफ्दरजग ने अपने इन लडाकू पड़ोसियों से छुटकारा पाने को उन्हें परस्पर लड़ाने की युक्ति सोची। इसीलिए उसने फर्रुखाबाद के कायमखाँ बगश को रुहेलखड का सूबेदार बना कर भेजा। कायमखाँ मारा गया, तब सफ्दर ने उसकी जागीर जब्त कर ली।

सन् १७४९ के अन्त में अब्दाली ने फिर पजाब पर चढाई की। मुईन ने चनाब पर उसका सामना किया, पर उसे दिल्ली से कोई मदद न मिली और लाचार हो कर उसने अब्दाली को वार्षिक कर का वचन दे कर लौटाया।

कायमखाँ के भाई अहमद बगश के नेतृत्व में फर्रुखाबाद के पठानों ने विद्रोह किया। उनसे लडता हुआ सफ्दरजग बुरी तरह हारा (१३-६-१७५० ई०)। तब उसने मराठों तथा ब्रज के जाटों की मदद ली। मल्हार होल्कर और रानोजी शिन्दे (मृत्यु १७५० ई०) का बेटा जयप्पा शिन्दे जयपुर में थे। वहाँ से वे पेशवा
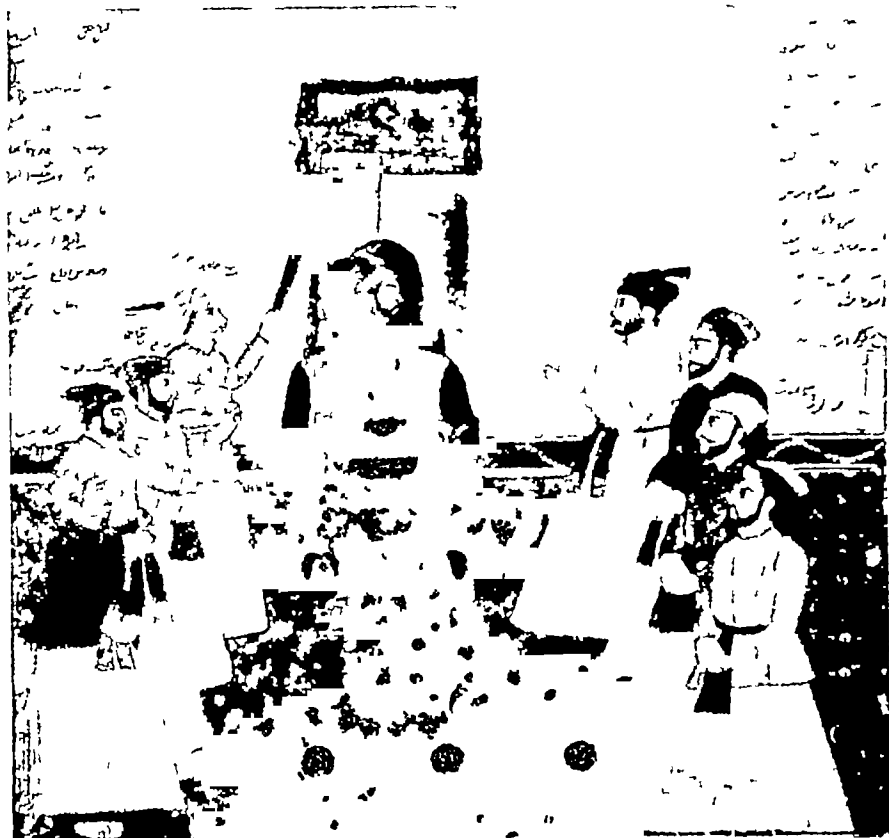
अहमदशाह दरबार में
बादशाह के बायें सब से आगे मुईनुलमुल्क, दाहने दूसरे गाजीउद्दीन
[ दिल्ली म्यू०, भा० पु० वि० ]

की आज्ञा से दोआब आये। ब्रज के नेता ठाकुर बदनसिंह ने जयपुर के सामन्त के रूप में बडी शक्ति बना ली थी। सिनसिनी, थूण आदि पुराने किलों की जगह उसने अब भरतपुर, डीग और कुम्भेर आदि गढ बना लिये थे। बदनसिंह अब बूढा था, और उसका दत्तक पुत्र सूरजमल अब ब्रज का नेता था।

मराठों और ब्रज की सेना ने पठानों को हरा कर फर्रुखाबाद का क़िला फतहगढ ले लिया ( १६-४-१७५१ ई० )। अहमद बगश ने आँवले में शरण ली। तब मराठों ने रुहेलखड पर चढाई की और रुहेलों को कुमाऊँ की तराई तक ढकेल दिया। मार्च १७५२ ई० में सन्धि हुई जिससे दोआब में इटावा आदि इलाके मराठों को मिले।

इधर दिसम्बर सन् १७५१ में अब्दाली ने पजाब पर फिर चढाई की, क्योंकि मुईन ने उसके पास कर न भेजा था। मुइन का दीवान राजा कौडामल लडता हुआ मारा गया (५-३-१७५२ ई०), तब मुईन को अब्दाली का आधिपत्य स्वीकार करना पड़ा। बादशाह सफ्दरजग को बुलाता रहा कि वह रुहेलों से सन्धि करके शीघ्र लौटे, पर सफ्दर मुईन का नाश चाहता था इससे वह ढील डालता रहा। अब्दाली के लाहौर ले लेने पर सम्राट् ने उसे लिखा कि वह अब्दाली के खिलाफ मराठों की मदद लावे। इसलिए सफ्दर ने मराठों से सन्धि की जिसकी मुख्य शर्तें ये थीं—पेशवा को दिल्ली साम्राज्य के सब भीतरी विद्रोहियों और बाहरी शत्रुओं के दमन का भार सौंपा गया, जिसके बदले में उसे अजमेर और आगरे की सूबेदारी, पजाब और सिन्ध की चौथ, हिसार, सम्भल, मुरादाबाद, बदाऊँ ज़िलों की जागीर तथा पजाब के चार महालों की मालगुजारी दी गयी। मतलब यह कि अवध और इलाहाबाद के सिवाय समूचे भारत का आधिपत्य पेशवा को सौप दिया गया। सफ्दर मराठों की मदद से काबुल भी वापस लेने की बातें करने लगा।

लेकिन वह जब ढील डाल रहा था, तभी अब्दाली ने लाहौर से अपना दूत दिल्ली भेज कर पजाब का मुतालबा किया था, और कमजोर बादशाह ने उसे पजाब दे दिया था। सफ्दर ने दिल्ली पहुँच कर जब यह सुना तो वह मराठों के साथ फौरन पजाब पर चढाई करने को तैयार हो गया। लेकिन पेशवा मराठों को तभी दक्खिन आने को पुकार रहा था। घरेलू विद्रोह को तो वह दबा चुका था, पर एक और भयकर शत्रु से उसे वास्ता पड़ा था।

ज़करियाखाँ की मृत्यु के बाद से सिक्ख पजाब में प्रबल होते जाते थे। अब्दाली की पिछली चढाई के समय उन्होंने अमृतसर से पहाडों तक कब्ज़ा कर लिया था। मुईन ने अब्दाली के लौटने पर अदीना बेग को उन्हें दबाने भेजा। अदीना ने उन्हें हरा कर उनसे यह समझौता किया कि उनसे मालगुज़ारी नाम को ली जायगी और वे दूसरी प्रजा से चुंगी वसूल कर सकेंगे। उस वर्ष के

अन्त में मुईन की मृत्यु हुई। उसकी विधवा मुगलानी वेगम पजाव का शासन करने लगी।

§५. दक्खिन मे फ्रान्सीसी और अँगरेज शक्ति का उदय (१७४४-५२ ई० )—सन् १७४४ मे इग्लैंड और फ्रान्स में युद्ध छिडा, तव द्यूमा के उत्तराधिकारी द्यूप्ले ने चोलमडल की मद्रास आदि सब अँगरेजी वस्तियाँ छीन लीं। केवल एक देवनपटम् ( फोर्ट सेन्ट डेविड ) की वस्ती अँगरेजों के पास वची।

द्यूप्ले ने नवाव अनवरुद्दीन से मदद ली थी और वदले में उसे मद्रास देने को कहा था। अब वह उस वचन को भूल गया। अनवरुद्दीन ने अपने वेटे को १० हजार फौज के साथ मद्रास पर भेजा। २३० फ्रान्सीसियों और ७०० भारतीय सिपाहियों की सेना ने अडयार नदी पर उस फौज को हरा कर उसकी तोपें छीन लीं ( १७४६ ई० )। इस लडाई से पहले-पहल यह प्रकट हुआ कि युरोपी तरीके पर तैयार की हुई सेना के सामने भारतीय सेना किसी काम की न थी। इग्लैंड और फ्रान्स ने १७४८ ई० में सन्धि करके एक दूसरे की वस्तियाँ लौटा दीं।

द्यूप्ले ने अव द्यूमा के इस नये हथियार द्वारा भारतीय राजनीति में दखल दे कर फ्रान्सीसी सम्राज्य खड़ा करना चाहा। चन्दासाहव का परिवार पुद्दुचेरी मे ही था, द्यूप्ले ने सोचा, यदि वह चन्दा को कैद से छुड़ा कर तामिल देश का नवाव वना सके तो वह वहाँ का सर्वेसर्वा हो जाय। उसने राजा शाहू को सात लाख रुपया दे कर चन्दासाहव को छुड़ा लिया ( १७४८ ई० )।

तभी निजामुल्मुल्क भी चल वसा और उसके दूसरे वेटे नासिरजग तथा उसके दोहते मुजफ्फरजंग में युद्ध छिड़ा। नासिर ने मराठों से मदद पायी। चन्दासाहव मुजफ्फरजग से जा मिला तथा दोनो पहले तामिलनाड गये। सीमा पर पहुँचते ही फ्रान्सीसी सेना उनसे आ मिली। नवाव अनवरुद्दीन ने तामिल देश की राजधानी आरकाट से ५० मील पच्छिम आम्बूर के पास दमलचेरी घाट पर उनका सामना किया। अनवरुद्दीन मारा गया और उसका वेटा मुहम्मदअली वची-खुची सेना के साथ कावेरी पार त्रिचनापल्ली भाग गया।

द्यूप्ले ने कहा, फौरन त्रिची पर चढाई की जाय, लेकिन मुजफ्फर और चन्दासाहब ने महीनों जश्न-जुलूसों में विता दिये, और वे ताजोर तक ही पहुँचे थे कि नासिरजग एक वडी फौज ले कर उनपर आ पडा ( दिस० १७४६ ई० )। फ्रान्सीसी सेना के अनेक अफसर तभी इस्तीफे दे कर चले गये थे। मुजफ्फर ने अपने को

मामा के हाथ सौंप दिया। चन्दासाहब पुद्दुचेरी भागा। द्यूप्ले ने भी सन्धि का सन्देश भेजा, पर साथ ही नासिरजंग के पठान सरदारों से षड्यन्त्र शुरू किया। नासिर आरकाट जा कर ऐश में डूब गया।

तब द्यूप्ले अपनी ताकत परखने लगा। थोड़ी सी सेना समुद्र के रास्ते भेज उसने मसुलीपटम ले लिया। फिर तामिलनाड के सबसे मजबूत किले जिंजी पर एक टुकड़ी भेज कर एक रात में उसे छीन लिया। नासिर ने तब द्यूप्ले से सन्धि कर ली। लेकिन तब तक पठान सरदारों वाला षड्यन्त्र भी पक चुका था और एक सरदार की गोली से नासिरजंग का काम तमाम हो गया (५-१२-१७५० ई०)।

मुज़फ्फर कैद से छूट कर पुद्दुचेरी गया। उसने द्यूप्ले को कृष्णा से कन्याकुमारी तक का नाजिम तथा चन्दासाहब को उसका नायब बनाया। मुहम्मदअली फिर त्रिची भागा, और अँगरेज़ों, मराठों तथा मैसूर के राजा से मदद माँगने लगा। सेनापति बुसी मुज़फ्फरजंग को दक्खिन के सूबेदार की गद्दी पर बैठाने गोलकुंडा ले चला। रास्ते में एक बलवा दबाते हुए मुज़फ्फर मारा गया। उसके तीन मामा वहीं मौजूद थे। बुसी ने उनमें से बड़े, सलाबतजंग, को सूबेदार बना कर प्रयाण जारी रक्खा।

नासिरजंग की मृत्यु पर बादशाह ने पेशवा की प्रेरणा से उसके बड़े भाई गाज़िउद्दीन को, जो दिल्ली में ही था, दक्खिन की सूबेदारी दी। गाज़िउद्दीन ने पेशवा को अपना नायब नियत किया। सलाबतजंग जब कृष्णा पर पहुँचा तो पेशवा वहाँ उसका रास्ता रोके खड़ा था। लेकिन तभी पेशवा को महाराष्ट्र के घरेलू विद्रोह की खबर मिली और अपनी कठिनाई का पता लगने दिये बिना वह सलाबत से एक बड़ी रकम लेना ठीक करके लौट गया। बुसी ने सलाबतजंग को औरंगाबाद पहुँचा कर सूबेदार घोषित किया (२०-६-१७५१ ई०)।

उधर चन्दासाहब ने त्रिची को घेर लिया था। अँगरेजों ने भी अब भारतीय सिपाहियों की सेना तैयार कर ली थी और यह समझ कर कि मुहम्मदअली को बचाने में ही उनका बचाव है, वे उसकी मदद करने लगे थे। इस प्रसंग में क्लाइव नामक एक अँगरेज ने यह प्रस्ताव किया कि आरकाट पर हमला किया जाय तो चन्दा उसे बचाने के लिए त्रिची का घेरा खुद ढीला कर देगा। तदनुसार क्लाइव ने आरकाट ले लिया (११-९-१७५१ ई०)। परिणाम वही हुआ। चन्दासाहब ने अपने बेटे राजूसाहब के साथ अपनी आधी सेना आरकाट भेजी। उधर

मुहम्मदअली की मदद में मैसूरी सेनापति नन्दिराज तथा मुरारीराव घोरपडे भी आ गये थे। राजूसाहेब ने आरकाट को आ घेरा। उस फूटे कोटले में मुट्ठी भर सेना के साथ क्लाइव बहादुरी से डटा रहा। मुरारीराव उसकी मदद को आया, तब राजूसाहेब को घेरा उठाना पडा (२५-११-१७५१ ई०)। क्लाइव तब मैदान में निकल कर लड़ता रहा।

घर का विद्रोह दबा कर बालाजी ने फिर औरंगाबाद पर चढाई की। इसपर बुसी गोलकुंडा से बढा और मराठों को हराता हुआ पूना से १६ मील कोरेगाँव तक आ पहुँचा (२८-११-१७५१ ई०)। इस युद्ध में युरोपी शैली की चुस्त और नियमित गोलाबारी को पहली बार देख कर मराठे दंग रह गये। तो भी उन्होंने जी-जान से मुकाबला किया और वे चारों तरफ छापे मार कर शत्रु को सताने लगे। उनके एक दल ने त्रिम्बक किला ले लिया। रघुजी भोंसले ने पेनगंगा और गोदावरी के बीच का निज़ाम का पूरबी प्रदेश दबा लिया। सलाबतजंग ने तब अहमदनगर लौट कर लड़ाई बन्द कर दी। पेशवा के बुलाने से उत्तर भारत की मराठा सेना गाजिउद्दीन को साथ ले कर (४-५-१७५२ ई०) को दिल्ली से रवाना हुई। बुरहानपुर और औरंगाबाद के मुसलमान गाजिउद्दीन के पक्ष में थे। उसने उनकी मदद से औरंगाबाद ले लिया।

इस बीच त्रिची के मोर्चे पर मुहम्मद अली का पलड़ा भारी होते देख तांजोर के राजा ने भी उसकी मदद की। चन्दासाहब योग्य शासक था, वह सफल होता तो मैसूर, तांजोर आदि दक्खिन के सब छोटे राज्यों को जीतने की कोशिश करता। इसीसे वे उसके विरोधी थे। अन्त में चन्दासाहब और फ्रान्सीसी सेना को श्रीरंगम् द्वीप में हटना पड़ा, जहाँ वे खुद घिर गये। तांजोरी सेनापति ने चन्दासाहब को धोखे से पकड कर मार डाला (जून १७५२ ई०)।

मुहम्मद अली ने मैसूरियों को त्रिचनापल्ली देने का वचन दिया था। अब उसने धोखा दिया और किले में अँगरेजी सेना डाल दी। इस पर नन्दिराज और मुरारीराव फिर घेरा डाल कर पडे रहे और फ्रान्सीसियों का पक्ष लेने लगे।

गाज़िउद्दीन की एक सौतेली माँ ने उसे जहर दे दिया (१६-१०-१७५२ ई०)। तब सलाबतजंग के राज्य में झगड़ा खतम हुआ और उसने फ्रान्सीसियों को बड़े पुरस्कार दिये। दूप्ले ने राजूसाहब को तामिलनाड का नवाब घोषित किया। गाज़िउद्दीन ने मराठों को बुरहानपुर, औरंगाबाद के इलाके देने को कहा था,

पेशवा ने उनका मुतालबा न छोड़ा। अन्त में सलावतजंग ने भालकी पर पेशवा से सन्धि की ( २५-११-१७५२ ई० ), और बराड के पच्छिम के ताप्ती-गोदावरी के बीच के प्रदेश दे दिये।

यों पाँच बरस के युद्ध का परिणाम यह निकला कि हैदराबाद में, जिसे मराठे अपने मुँह का कौर समझे हुए थे, फ्रान्सीसी शक्ति स्थापित हो गयी, पर उसकी थोड़ी-बहुत रोकथाम पेशवा कर पाया। तामिलनाड में जिंजी फ्रान्सीसियों के हाथ, और आरकाट और त्रिची अँगरेजों के हाथ चले गये, तथा मैदान में दोनों का युद्ध चलता रहा जिसमें मैसूरी और मुरारीराव अब फ्रान्सीसियों का साथ दे रहे थे।

**§६. उत्तर और दक्खिन भारत पर मराठा चढ़ाइयाँ (१७५३-५६ ई०)**—भालकी की सन्धि के बाद पेशवा को फुरसत थी। यदि वह परिस्थिति को ठीक समझ सकता तो वह देखता कि दक्खिन से समुद्र पार के विदेशियों को निकालना तथा उत्तर भारत को सरहद्दी लुटेरों से बचाना, ये दो उसके प्रमुख कर्त्तव्य थे। इन्हें वह निभा सकता तो भारत का साम्राज्य तो उसके हाथों में आया हुआ था। दक्खिन से युरोपियों को निकालने के लिए वह मैसूर आदि छोटे राज्यों का सहयोग पा सकता था। उत्तर भारत की रक्षा के लिए राजपूतों, जाटों, सिक्खों का सहयोग लिया जा सकता था तथा दिल्ली साम्राज्य की बची-खुची शक्ति का उपयोग किया जा सकता था। लेकिन पेशवा अपने पुराने रास्ते पर ही चलता गया! उसकी दृष्टि में दिल्ली साम्राज्य की जड़ पर चोटें लग चुकीं थीं, और उसे गिरा कर उसकी शाखाएँ बटोरने का काम ही बाकी था। अब मराठा दरबार और सेना में यह मुख्य चर्चा थी कि सब से पहले समूचा दक्खिन मराठा साम्राज्य में आ जाना चाहिए। और चूँकि फ्रान्सीसी इस काम में आडे आ गये थे, इसलिए उन्हें उखाड़ फेंकना बालाजी ने अपना मुख्य ध्येय मान लिया। उसने यह भी सोचा कि उन्हें निकालने के लिए वह अँगरेजों का उपयोग कर सकता है। वह स्वयम् दक्खिन में उलझा रहा और उत्तर भारत में अपने भाई रघुनाथराव ( राघोबा ) या अपने सेनापतियों को भेजता रहा।

**अ. उत्तर भारत**—इसी समय दिल्ली में बादशाह और सफ्दरजंग के बीच घरेलू युद्ध छिड गया। बादशाह ने कमरुद्दीन के बेटे इन्तिजामुद्दौला को वज़ीर बनाया। पिछले साल जब गाजिउद्दीन की हत्या की खबर आयी थी तो

उसके बेटे शिहाब ने सफ्दर के पास फूट-फूट कर रो कर कहा था कि मुझ अनाथ के तुम्हीं बाप हो। सफ्दर का दिल पिघल गया और उस १५ साल के लड़के को उसने इमादुल्मुल्क का पद दे कर साम्राज्य का मीर बख्शी बनवा दिया था। वही इमाद अब सफ्दर का जानी दुश्मन हो गया। मराठे भी उसकी तरफ हो गये, लेकिन सूरजमल ने सफ्दर का साथ दिया। नजीबखाँ रुहेला अपनी सेना के साथ शाही पक्ष में आ मिला। सफ्दर की सेना धीरे-धीरे दिल्ली से ढकेली गयी। पीछे बादशाह और इन्तिजाम इमाद से स्पर्धा और सफ्दर से समझौते की बात करने लगे। समझौता होने पर सफ्दर अवध चला गया। इस घरेलू युद्ध में दिल्ली सरकार दिवालिया हो गयी और उसकी रही-सही सैनिक शक्ति भी चूर-चूर हो गयी।

पेशवा ने मुख्य मराठा सेना को तब तक रोके रक्खा जब तक दोनों पक्ष क्षीण न हो जाँय। जब रघुनाथ दादा के नेतृत्व में मराठा सेना उत्तर भारत पहुँची तो बादशाह और इमाद के बीच उसे अपनी-अपनी तरफ मिलाने की होड़ लग गयी। मराठों ने इमाद का साथ दिया, क्योंकि एक तो उन्हें उसके द्वारा दक्खिन में सुविधाएँ पाने की आशा थी, दूसरे वे और इमाद दोनों ब्रज के राजा को दबाना चाहते थे। परन्तु बादशाह और वजीर इस ख्याल से सूरजमल का पक्ष करते थे कि इमाद प्रबल न होने पाये। राजपूताने से राघोबा ने सीधे ब्रज पर चढाई की ( जनवरी १७५४ ई० )। सूरजमल ने कुम्भेरगढ की शरण ली। कुम्भेर के मुहासरे में मल्हार होल्कर का बेटा खडेराव मारा गया। मई में सूरजमल ने समझौता किया और अधीनता मानी।

इसी बीच बादशाह और इमाद में खुला झगड़ा हो गया था। वजीर इन्तिजाम ने यह योजना बनायी कि मराठों और इमाद के खिलाफ़ सफ्दरजग, सूरजमल और राजपूतों से मदद ली जाय। इस उद्देश से वह बादशाह को ले कर दिल्ली से सिकन्दराबाद तक आया, जहाँ सफ्दर और सूरजमल को भी बुलाया गया था। परन्तु अब यह खबर मिली कि सूरजमल से सन्धि करके मराठे मथुरा आ पहुँचे। मल्हार और करीब आ गया। अहमदशाह के डेरे में भगदड मच गयी। २६ मई को प्रातः दो बजे गहरे अँधेरे में सब लोग दिल्ली भागने लगे। शाही बेगमों की बड़ी दुर्गति हुई। उनमे से अधिकाश मराठों के हाथ पड़ी, जिन्हें मल्हार ने इज्जत के साथ पहरे में रख दिया।

मल्हार ने जो कुछ कहा, अहमदशाह को मानना पड़ा। २-६-१७५४ को बादशाह ने इमाद को वज़ीर बनाया। इमाद ने कुरान हाथ में ले कर शपथ ली कि वह उससे कभी दगा न करेगा। दरबार से बाहर आ कर उसने बहादुरशाह के एक पोते को शाही महल की कैद से मँगवाया, उसे आलमगीर के नाम से गद्दी पर बैठाया, और अहमदशाह को कैद में डलवा दिया। तैमूरी वंश की बची खुची शक्ति और इज्जत तो यों धूल में मिली ही, साथ ही मराठा सरकार की नीति भी राजपूताने के झगडों की तरह दिल्ली के झगड़ों के बीच केवल क्षणिक लाभ को देखने के कारण पथभ्रष्ट हो गयी। व्रज के लोग भी मराठों से चिढ गये, और सफ्दरजंग के तजुरबे से लोगों को मालूम हो गया कि मराठा सरकार की मैत्री में कितना पानी है।

दिल्ली से राघोबा ने जयप्पा शिन्दे को मारवाड़ भेजा, जहाँ रामसिंह विजयसिंह के खिलाफ मदद माँग रहा था। जयप्पा से हार कर विजयसिंह ने नागोरगढ में शरण ली। जयप्पा ने घेरा डाल दिया। पेशवा का आदेश था कि विजयसिंह को बहुत न दबाया जाय। पर जयप्पा अड गया। इस बीच सफ्दरजंग की मृत्यु हो गयी। पेशवा ने जयप्पा को फिर लिखा कि मारवाड़ का मामला निपटा कर अवध जाओ और प्रयाग-बनारस पाने की कोशिश करो। लेकिन हठी जयप्पा रेगिस्तान में अटका रहा। उसके अभिमानी बर्ताव से चिढ कर राजपूतों ने उसे कत्ल कर दिया ( २४-७-१७५५ )। तब उसका भाई दत्ताजी उसकी जगह डट गया और उसने विजयसिंह को पूरी तरह हरा कर बीकानेर भगा दिया। फरवरी १७५६ में सन्धि हुई जिसके अनुसार अजमेर मराठों को मिला।

मुख्य मराठा सेना साल भर पहले दक्खिन चली गयी थी। इस बार पेशवा ने मल्हार को भी दक्खिन की चढाई के लिए बुला लिया।

पंजाब में मुगलानी बेगम के शासन की अव्यवस्था हटाने के लिए अब्दाली ने अपना प्रतिनिधि भेज दिया था। इमाद ने अदीना बेग को भेज कर उसे भगा दिया ( जनवरी १७५६ )। पीछे उसने मुगलानी को भी पकड़ मँगाया और अपना सूबेदार लाहौर में रख दिया।

इ. दक्खिन भारत—भालकी की सन्धि से मराठा और निज़ाम के बीच शान्ति हुई, पर तामिलनाड में युद्ध जारी था और त्रिची का घेरा पड़ा हुआ था।

सलाबतजंग के भाइयों और दीवान से षड्यन्त्र करके पेशवा ने बुसी की शक्ति तोड़नी चाही, पर व्यर्थ। सन् १७५३ के अन्त में सलाबत ने आन्ध्र तट के चार उत्तरी सरकार (जिले)—कोंडपल्ली, एलोर, राजमहेन्द्री, शिकाकोल—फ्रान्सीसी कम्पनी को जागीर रूप में दे दिये।

दोनों पक्ष अब युद्ध से ऊब गये थे। फ्रान्सीसी कम्पनी की आर्थिक दशा अँगरेजी कम्पनी से बहुत कमजोर थी, उसमें जनता का उत्साहपूर्ण सहयोग न था, वह बहुत-कुछ सरकारी सहायता से चलती थी और उस समय की फ्रान्सीसी सरकार की तरह कुव्यवस्था का नमूना थी। उसके सञ्चालकों ने अब दूप्ले को पदच्युत कर उसके स्थान में दूसरे व्यक्ति को भेजा (अगस्त १७५४), जिसने युद्ध रुकवा कर मुहम्मदअली को तामिलनाड का नवाब मान लिया। दोनों पक्षों ने एक आरजी सन्धि का मसविदा तैयार कर स्वीकृत के लिए विलायत भेजी। पर मैसूरियों ने मुहम्मदअली से युद्ध बन्द नहीं किया।

ठीक इसी समय बालाजीराव ने अपनी दक्खिन की चढाई शुरू की। उसने सलाबतजंग के दीवान को अपने साथ मिला कर यह प्रस्ताव किया कि मराठे और निजाम मिल कर मैसूर और अन्य छोटे दक्खिनी राज्यों को जीत लें। मैसूर की सेना त्रिचनापल्ली में अँगरेजों को घेरे हुए थी, तो भी बुसी को उनके देश पर चढाई करनी पड़ी। पेशवा और सलाबत की सेना के श्रीरंगपट्टम् पहुँचने पर मैसूरी सेना को त्रिची से लौटना पडा, जिससे मुहम्मदअली और अँगरेजों को निजात मिली। मैसूर के साथ ही बेदनूर पर भी चढाई की गयी। कृष्णा नदी के दक्खिन, मैसूर और तामिलनाड की उत्तरी सीमा पर सावनूर, कानूंल और कडप के पठान सरदारों के तथा गुत्ती के सरदार मुरारीराव घोरपडे के इलाके थे। नासिरजंग की मृत्यु के बाद से ये बहुत कुछ स्वतन्त्र हो गये थे। इनके इलाकों का बडा अंश ले कर इन्हे अधीन किया गया (मई १७५६)। निजाम की सेना इसके बाद लौट गयी, पर मराठों की दक्खिनी चढाई अगले साल भर जारी रही।

इसी बीच महाराष्ट्र के भीतरी शासन में भी पेशवा ने एक भारी भूल की। कोंकण के आंग्रे भाइयों में से तुलाजी ने विद्रोह कर अनेक अत्याचार किये थे। बालाजी ने अपने उस प्रजाजन के खिलाफ विदेशी अँगरेजों से मदद ली। तुलाजी का सुवर्णदुर्ग छिन गया (एप्रिल १७५५) और वह विजयदुर्ग भाग गया। अँगरेजी बेडा लौट गया, पर मराठा सेना ने तुलाजी को घेर कर सन्धि के लिए विवश किया।

इसी बीच अमेरिका में अँगरेज़ और फ्रान्सीसी उपनिवेशों में युद्ध छिड गया था (१७५५ ई०)। इंग्लंड के प्रधान मन्त्री पिट ने वाटसन और क्लाइव को फ्रान्सीसियों से लड़ने के लिए मुम्बई भेजा। उनका यह प्रस्ताव था कि अँगरेज़ मराठों के साथ मिल कर हैदराबाद पर चढाई करें और बुसी को वहाँ से निकाल दें। ऐसा न हुआ तो क्लाइव और वाटसन ने विजयदुर्ग पर चढाई करके तुलाजी का सब बेडा डुबा दिया (१२-४-१७५६ ई०)। तीस वर्ष पहले जिस आंग्रे से अँगरेज़ सदा डरते रहे, उसके मराठा बेड़े को मराठा सरकार ने उनसे स्वयम् डुबवा दिया! क्लाइव और वाटसन वहाँ से मद्रास गये और क्लाइव मद्रास का गवर्नर नियुक्त हुआ।

§७ अब्दाली की दिल्ली-मथुरा-चढाई, अँगरेजों का बगाल-बिहार तथा मराठों का पजाब जीतना (१७५६–५८)—विजयदुर्ग पर अँगरेजी झडा फहराने के दो दिन पहले बगाल में बूढे अलीवर्दी का देहान्त हुआ और उसका दोहता सिराजुद्दौला नवाब बना। अँगरेज़ अपना कलकत्ते वाला किला बढ़ाने लगे। वे पहले से ही नवाब के खिलाफ षड्यन्त्र कर रहे थे। सिराज ने हुक्म दिया कि बगाल में कोई विदेशी युद्ध की तैयारी न करे। अँगरेजों के न मानने पर सिराज ने चढाई कर कलकत्ता ले लिया, और बगाल भर में अँगरेजों की कोठियों पर दखल कर लिया। अँगरेज़ कलकत्ते के दक्खिन फल्ता भाग गये। सिराज ने उन्हें वहाँ बना रहने दिया, क्योंकि वह उन्हें तुच्छ समझता था। उसके ख्याल से युरोप कोई छोटा सा टापू था, जिसके कुल बाशिन्दे १०-१२ हजार थे, जिनमें से चौथाई अँगरेज़ थे! चन्द्रनगर के फ्रान्सीसी सिराज की मदद के लिए तैयार थे। बालाजी ने देखा कि बगाल मे भी फ्रान्सीसी हैदराबाद की तरह सर्वेसर्वा हो जायेंगे, इसलिए उसने वहाँ के अँगरेजों के मुखिया ड्रेक को सन्देश भेजा कि नवाब से न दबो, वह मदद को मराठा सेना भेज सकता है। ड्रेक ने यह मदद न ली, तो भी बालाजी ने अपनी सारी शक्ति इस ओर लगा दी कि बुसी बगाल न पहुँचने पाय। उसने आन्ध्र तट की फ्रान्सीसी जागीर में बलवा करा दिया, जिसे दबाने में बुसी को तीन मास लग गये। इसी बीच में वाटसन और क्लाइव ने मद्रास से जा कर कलकत्ता ले लिया (२-१-१७५७)।

इसी बीच पजाब में भी भयकर स्थिति पैदा हो गयी थी। इमाद का पजाब लेना फकत अब्दाली को चिढाना था। सन् १७५६ के जाडे मे अब्दाली ने पजाब पर चढाई की। जनवरी में वह दिल्ली की तरफ बढा। इमाद को कुछ न सूझा कि

क्या करे। गृह-युद्ध के बाद के दिवालियापन मे दिल्ली की सेना तितर-बितर हो चुकी थी। मराठे दक्खिन चले गये थे। इमाद ने नजीबखाँ से, सूरजमल से और सफ्दर के बेटे शुजाउद्दौला से व्यर्थ मदद माँगी। ग्वालियर मे अन्ताजी माणकेश्वर अपनी ३ हजार की टुकडी के साथ उसकी मदद को आया। अब्दाली के नजदीक आने पर रुहेले उससे जा मिले।

कायर इमाद चुपके से दिल्ली से निकला, अब्दाली की छावनी मे जाकर उसने आत्म-समर्पण कर दिया (सन् १६-१-१७५७ ई०)। रुहेलों के बीच से मुश्किल से रास्ता काटते हुए अन्ताजी दिल्ली के दक्खिन फरीदाबाद तक हट गया।

अब्दाली ने दिल्ली में प्रवेश किया और नादिरशाह की तरह शहर के धन और इज्जत की मुहल्लेवार बाकायदा लूट शुरू की। बडे-बडे अमीर-उमरावों को साधारण चोरों की तरह यातनाएँ दी गयीं।

२० हजार अफगान सवारो ने फरीदाबाद में अन्ताजी को एकाएक घेर लिया। दिन भर लड़ने और अपनी तिहाई सेना के कटाने के बाद वह घेरा तोड कर मथुरा में जा निकला। वहाँ उसने सूरजमल से कहा, आओ मिल कर मुकाबला करें। पर सूरज तैयार न हुआ, और जब २२ फरवरी को अब्दाली दिल्ली से दक्खिन को बढा तो उसने कुम्भेरगढ मे शरण ली। ब्रज मे घुसते ही अब्दाली ने खुली लूट, कत्ले-आम और बलात्कार का हुक्म दे दिया। "सूरजमल ब्रज की यह बरबादी कुम्भेर से देखता रहा।" लेकिन उसके बेटे जवाहरसिंह ने कहा कि जाटों की लाशों के ऊपर से अफगान भले ही ब्रज में घुसें, ऐसे ही न घुस पायेंगे। १० हजार जवानों के साथ जवाहर ने मथुरा का रास्ता रोका। उस टुकडी के काटे जाने पर वह थोडे से साथियों के साथ बच कर निकल गया और अफगानों ने मथुरा में प्रवेश किया। २१ मार्च को अफगान हरावल आगरे में घुसी, लेकिन वहाँ किले की तोपों ने मुकाबला किया। इस बीच सडती हुई लाशों के कारण अफगान सेना में जोर का हैजा फैला, और अब्दाली ने एकाएक वापसी का हुक्म दिया। नजीब को दिल्ली मे अपना प्रतिनिधि नियत कर, तथा पंजाब का शासन अपने बेटे तैमूर और अपने मुख्य सेनापति जहानखाँ को सौंप कर, कई करोड की लूट लिये वह वापस चला गया। वापसी में पटियाले के सिक्ख जाट आलसिंह तथा दूसरे सिक्खों ने उसकी लूट का बोझा हलका किया।

क्लाइव के कलकत्ता वापस लेने पर सिराज ने बुसी को मदद के लिए लिखा। लेकिन बुसी को तुरन्त न आते देख तथा अब्दाली के हमले का आतंक बंगाल तक पहुँच जाने से उसने क्लाइव से समझौते की बात की। उसे समझौते की बातों में रखते हुए क्लाइव ने चन्द्रनगर भी ले लिया (२३-३-१७५७)। उधर आन्ध्र जिलों का पूरा बन्दोबस्त कर बुसी गंजाम पहुँचा और समाचारों की राह देखने लगा। इतने में उसे चन्द्रनगर के पतन की खबर मिली। तब बंगाल जाना व्यर्थ समझ वह दक्खिन लौटा और आन्ध्र तट से अँगरेज़ी बस्तियों की एक एक कर सफाई करता गया।

तभी क्लाइव ने सिराज पर चढ़ाई कर दी। अलीवर्दी का बहनोई मीरजाफर सिराज का सेनापति था। क्लाइव ने उसके साथ षड्यन्त्र रचा। सिराज मुर्शिदाबाद से बढ़ा। हुगली और मोर के संगम पर पलाशी गाँव में लड़ाई हुई (२३-६-१७५७)। लड़ाई के बीच में मीर जाफर शत्रु से जा मिला। सिराज की हार हुई और वह मारा गया। क्लाइव ने मीर जाफर को मुर्शिदाबाद ले जा कर नवाब बनाया। मीर जाफर ने अँगरेज कम्पनी और उसके कर्मचारियों को प्रकट और गुप्त सन्धियों से करीब पौने तीन करोड़ रुपया हरजाने, भेंट और रिशवत के रूप में तथा चौबीस-परगना जिला जागीर के रूप में देना स्वीकार किया था। मुर्शिदाबाद के खजाने में कुल डेढ़ करोड़ रुपया था। इसलिए जवाहरात और सामान को नीलाम कर और नकद मिला कर आधी रकम नावों में कलकत्ता भेजी गयी और बाकी को तीन सालाना किस्तों में देना तय हुआ।

उत्तर और पूरब भारत में जब ये घटनाएँ घट रही थीं तब पेशवा अपनी दक्खिनी चढ़ाई में उलझा था। अब्दाली का पंजाब लेना सुन कर उसने मल्हार और राघोबा को उत्तर की ओर भेजा, लेकिन स्वयम् कर्णाटक की तीसरी चढ़ाई जारी रक्खी। उस प्रसंग में मैसूर राज्य के १४ जिले उसके हाथ आये। बलवन्तराव मेहन्दले को वहाँ छोड़ कर १६ जून को पेशवा पूना लौटा और उसके बाद सलाबतजंग के राज्य में षड्यन्त्र करके बुसी को निकालने की कोशिश में उसने अपनी सारी ताकत लगा दी। लेकिन बुसी ने उसकी सब कोशिशें बेकार कर दीं (जनवरी १७५८)।

बलवन्तराव ने मैसूर के इलाकों पर काबू कर तथा कड़प, कर्नूल, सावनूर के नवाबों के गुट्ट को कुचल कर तामिल सीमा के घाटों तक अधिकार कर लिया

और तब आरकाट के नवाब मुहम्मद अली से बकाया चौथ तलब की। हम देख चुके हैं कि १७५५ ई० से अँगरेजों का रक्षित मुहम्मद अली वहाँ निर्विवाद स्थापित हो चुका था। बलवन्तराव अब भी तामिलनाड में नहीं आया, उसने केवल चौथ माँगी, जो अँगरेजों ने दे दी। लेकिन अब वहाँ फ्रान्सीसियों ने भी फिर युद्ध जारी कर त्रिची को घेर लिया और पुदुदुचेरी और आरकाट के बीच बन्दिवाश तथा नौ और क़िले ले लिये। यों सन् १७५७ में जहाँ बगाल-बिहार पर अँगरेज़ों और आन्ध्र तट पर फ्रान्सीसियों का पूरा अधिकार हो गया, वहाँ तामिलनाड में फिर युद्ध जारी हो गया।

रघुनाथ १४ फरवरी को इन्दौर पहुँचा। लेकिन उसे सामान जुटाने समय लग गया। मई में मराठा हरावल ने आगरा पहुँच सूरजमल से समझौता किया। रुहेलों से दोआब वापिस ले कर उन्होंने दिल्ली को घेर लिया। नजीब ने सन्धि करके दिल्ली छोड़ दी (६-६-१७५७) और यह भी कहा कि कहो तो मैं अब्दाली के पास जाऊँ और सीमाएँ निश्चित करके स्थायी सन्धि करा दूँ। लेकिन रघुनाथ ने इसपर ध्यान न दिया। मराठों के उभाड़ने से पजाब में सिक्ख भी विद्रोह करने लगे। अन्त में २१ मार्च १७५८ को रघुनाथ ने सरहिन्द जीत लिया, तथा एक मास बाद लाहौर में प्रवेश किया। तैमूर और जहानखाँ अटक पार भाग गये, मुलतान में भी मराठा छावनी पड़ गयी। पजाब का शासन अदीना बेग को सौंपा गया। इसके बाद रघुनाथ दक्खिन लौट गया।

रघुनाथराव [ भा० इ० म० म० ]

§८. फ्रान्सीसी शक्ति का अन्त तथा निजामअली का पराभव (१७५८–६१ ई०)—सन् १७५६ में इगलैंड से फिर युद्ध छिड़ने पर फ्रान्सीसी सरकार ने लाली नामक सेनापति को भारत भेजा। वह एप्रिल १७५८ में चोल-

मडल पहुँचा। आते ही उसने देवनपटम को घेर लिया, और एक महीने बाद ले लिया। तब उसने बुसी को लिखा, "अब मद्रास लेते ही मेरा इरादा स्थल या समुद्र के रास्ते फौरन गंगा पर पहुँचने का है।" लाली के आने से पहले बुसी आन्ध्र तट के जिलों का पक्का बन्दोबस्त कर हैदराबाद में अपना पूरा प्रभुत्व स्थापित कर चुका था। लाली से वह बड़ी आशाएँ लगाये हुए था।

देवनपटम के बाद मद्रास की बारी थी। लेकिन पुदुच्चेरी का खजाना खाली था। रुपये के लिए लाली ने तांजोर पर चढाई की, पर उसमे उसे विफलता हुई। वह वीर और कुशल सेनापति था, लेकिन उतावला और किसी की न सुनने वाला। अब मद्रास पर हमला करने के लिए उसने त्रिची और मसुलीपटम वाली टुकड़ियों तथा बुसी को भी बुला लिया। बुसी ने उसे समझाना चाहा कि उसे हैदराबाद मे रहने दिया जाय। लेकिन लाली ने कहा, "मुझे बादशाह और कम्पनी ने हिन्दुस्तान भेजा है अँगरेजों को मार भगाने के लिए। . मुझे इससे क्या मतलब कि अमुक अमुक राजा अमुक नवाबी के लिए लड रहे हैं।

बुसी के चले आने पर आन्ध्र तट के एक पालयगार ( जमींन्दार ) ने विजगापट्टम ले कर अँगरेज कम्पनी को अपनी फोज भेजने को लिखा। क्लाइव ने बगाल से कर्नल फोर्ड का वहाँ भेज दिया। फोर्ड ने बचे-खुचे फ्रान्सीसियों के साथ सलाबतजग को भी मसुलीपटम पर हरा दिया। सलाबत ने आन्ध्र तट का ८० × २० वर्ग मील इलाका अँगरेजों को दे दिया और आगे से फ्रान्सीसियों से सम्बन्ध त्याग दिया। यों जिस जमीन से लाली को युद्ध का सारा खर्चा मिल सकता था, वह उसकी अपनी बेसमझी से अँगरेजो के हाथ चली गयी।

इस बीच मे राजसाहब ने आरकाट ले लिया और लाली ने मद्रास को आ घेरा। लेकिन ठीक सकट के समय अँगरेजी बेडे के आ जाने से लाली को मद्रास से हटना पडा। ( १७ ८-१७५९ )।

सलाबत मसुलीपटम आया तो पीछे उसके भाई निजामअली ने हैदराबाद ले लिया। लौटने पर सलाबत को उसे अपना दीवान बनाना पडा और वह खुद नाम का सूबेदार रह गया।

सन् १७५९ के शुरू में पेशवा ने मैसूर में गोपालराव पटवर्धन को भेजा था। उसे पहले तो बराबर सफलता हुई, पर जब वह बेंगलूर को घेरे हुए था, तब हैदरअली नामक एक मैसूरी सेनापति ने बहादुरी से मुकाबिला करके घेरा

उठवा दिया। गोपालराव वहाँ से तामिलनाड गया, पर वहाँ उसे कुछ न सूझा कि क्या करे। हैदरअली इसके बाद श्रीरंगपट्टम जा कर उस राज्य का सर्वेसर्वा बन गया।

पेशवा अब अँगरेजों से आशंकित हो उठा था। सन १७५८ में उसने जजीरा के सिद्दी के खिलाफ मदद माँगी, जो उन्होंने नहीं दी। उन्हें डर था कि जजीरा के बाद वह मुम्बई लेने की कोशिश न करे। फिर १७५६ ई० में अँगरेजों ने धोखे से सूरत का कोटला छीन लिया। पेशवा अब फ्रान्सीसियों से मिल कर जजीरा और मुम्बई पर चढ़ाई करने की सोचने लगा। लेकिन अक्तूबर १७५६ में अब्दाली के फिर चढ़ाई करने पर मराठे कठिनाई में पड़ गये, और ठीक उसी समय आयरकूट इंगलैंड से ताजी सेना के साथ मद्रास आ पहुँचा। उसने आते ही विन्दवास ले लिया। उस किले को वापस लेने की चेष्टा में लाली की हार हुई और बुसी कैद हुआ ( २२-१२-१७५६ )। इसके बाद मुरारीराव घोरपडे, जो अब तक फ्रान्सीसियों की मदद कर रहा था, अपने दल के साथ तामिलनाड से चलता बना, और कूट ने आरकाट भी ले लिया।

निजामअली ने पेशवा के रोकने पर भी अँगरेजों से मैत्री की। इसलिए १७५६ ई० के अन्त में पेशवा ने चिमाजी अप्पा के पुत्र सदाशिवराव तथा अपने बेटे विश्वासराव को उसपर चढ़ाई के लिए भेजा। इब्राहीमखाँ गार्दी* नामक बुसी का सिखाया हुआ एक पदातिनायक उनकी सेवा में था। माजरा नदी के काँठे में उद्गीर पर निजामअली हार गया, और अउसा के कोटले में घिर गया। चार दिन बाद उसने सन्धि की और असीरगढ, दौलताबाद, बीजापुर, अहमदनगर और बुरहानपुर के किले तथा ६२ लाख आय का प्रदेश मराठों को दे दिया ( जन० १७६० )। यों निजाम की शक्ति चूर-चूर हुई, और मराठे दो तीन वर्ष में समूचा दक्खिन जीत लेने के सपने देखने लगे।

सितम्बर १७६० में कूट ने पुद्दूचेरी को जा घेरा। लाली ने तब बालाजी-राव से मदद माँगी। जिञ्जी का किला तब तक फ्रान्सीसियों के हाथ में था, और पेशवा की मदद के बदले में लाली उसे देने को तैयार था। पेशवा के लिए तामिल-नाड में दखल दे कर युरोपियन शक्ति को तोड़ देने का यह अच्छा मौका था, पर वह मोलभाव करता रह गया—शायद इस कारण कि उसकी सारी शक्ति तब उत्तर

* 'गादी' शब्द का मूल फ्रान्सीसी गार्द ही है।

भारत में लगी हुई थी—और जनवरी १७६१ ई० में कूट ने पुद्दूचेरी को ले लिया। बाद में जिञ्जी भी लिया गया। १७६३ ई० में पैरिस की सन्धि में फ्रान्स को उसकी पुरानी बस्तियाँ लौटा दी गयीं।

§९ मराठा अफ़गान मघर्ष (१७५९–६१)—सन् १७५८ के अन्त में पेशवा ने मल्हार होलकर के बजाय दत्ताजी शिन्दे को आगरे का सूबेदार बना कर भेजा। पजाब पर अधिकार दृढ करना और बिहार को जीतना, ये दो कार्य उसे सौंपे गये थे। अदीना बेग मर चुका था, उसकी जगह दत्ताजी का छोटा भाई साबाजी लाहौर का सूबेदार नियत हुआ। पेशवा ने अब यह समझ लिया था कि इमाद झूठा और निकम्मा आदमी है। उसकी जगह शुजाउद्दौला को वजीर बनाने का प्रस्ताव था। इसके बदले मे शुजा से प्रयाग और बनारस इस तरह ले लेना था कि दत्ताजी बादशाह और वज़ीर के साथ बिहार पर चढाई करे और उसी समय रघुनाथदादा बुन्देलखड के रास्ते प्रयाग पर उससे आ मिले।

बिहार की चढाई के लिए नजीब से हो सके तो समझौता करना, अन्यथा उसे उखाड देना था, क्योंकि उत्तर भारत में मराठा नीति के मार्ग में वह एकमात्र काँटा था। दत्ताजी कोरा लडाका सैनिक था। इमाद तो उसके आगे झुक कर वजीर बना रहा, पर नजीब से समझौता न हो पाया। जून के अन्त में उसस लड़ाई छिड गयी। हरद्वार के ३२ मील दक्खिन गगा के खादर मे शुक्रताल नामक नीची जगह थी। नजीब ने उसकी मोर्चाबन्दी कर और गगा पर पुल बाँध कर वहाँ शरण ली। दत्ताजी ने उसका घेरा डाला। लेकिन शुक्रताल दूसरा नागोर बन गया और उसमें फँस कर दत्ताजी न तो बिहार पर चढाई कर सका और न पजाब को बचा सका। उसने गोविन्दपन्त बुन्देले* को हरद्वार के रास्ते नजीबाबाद पर हमला करने भेजा। वह हमला सफल न हुआ। गोविन्द तब शुक्रताल के पूरब तरफ पहुँचा, लेकिन वहाँ अवध की सेना खुद शुजा के नेतृत्व में रुहेलों की मदद को आ गयी थी, इससे वह कुछ न कर सका।

इस बीच अब्दाली ने पजाब पर चढाई कर दी थी। दत्ताजी की मदद न आती देख साबाजी को लाहौर छोड़ना पडा, और वह शुक्रताल पहुँचा (८-११-१७५९), परन्तु दत्ताजी इसके बाद भी वहीं अड़ा रहा।

---

* गोविन्दपन्त का असल उपनाम् खेर था पर वह अपने को बुन्देला कहता था।

नवम्बर बीतते-बीतते अब्दाली ने सरहिन्द ले लिया। इमाद ने यह सोच कर कि कहीं अब्दाली बादशाह का उपयोग न करे, आलमगीर २य को कत्ल कर दिया और कामबख्श के एक पोते को शाहजहाँ २य नाम से गद्दी दी। एक साल पहले उसने शाहजादा अली-गौहर को मारने की कोशिश की थी। अली-गौहर बचकर अवध भाग गया था और बिहार को फिर जीतने की विफल कोशिशें कर रहा था। उसने भी अब अपने को शाहआलम नाम से बादशाह घोषित किया।

८ दिसम्बर को दत्ताजी ने शुकताल का घेरा उठाया और जमना पार कर अब्दाली के मुकाबले को बढ़ा। तरावडी पर अफगान हरावल से उसकी मुठभेड़ हुई, पर अब्दाली जमना पार कर नजीब से जा मिला और दोआब के रास्ते दिल्ली की ओर बढ़ा। दत्ताजी यह देख फौरन दिल्ली आ गया और जमना के घाटों पर सेना तैनात कर प्रतीक्षा करने लगा। ६ जनवरी १७६० को दिल्ली के सामने जमना के बीच टापू में अफगानों से लड़ता हुआ वह मारा गया। अब्दाली ने दिल्ली ले ली, इमाद भरतपुर भागा, जयप्पा शिन्दे का बेटा जनकोजी बची-खुची मराठा सेना के साथ नारनोल की तरफ हट गया।

इसी बीच मल्हार ने तेजी से राजपूताने से आकर नारनोल के पास मराठा सेना का नेतृत्व ले लिया। अब्दाली ने दिल्ली से डीग पर, जहाँ सूरजमल था, चढ़ाई की, पर मल्हार उसके पीछे दिल्ली की ओर बढ़ा। अब्दाली को पीछे हटना पड़ा और मल्हार इसी तरह उसे दिल्ली से दोआब वापस ले गया। सिकन्दराबाद के पास नजीब का खजाना लूटने के लिए मल्हार दो-चार दिन रुक गया, वहाँ जहानखाँ उस पर अचानक आ टूटा ( ४ मार्च )। मल्हार हार कर भरतपुर भागा, लेकिन उसकी दाँवपेंच की लड़ाई से इस बार व्रज का इलाका साफ बच गया।

दत्ताजी की मृत्यु से एक दिन पहले तक की खबरें पेशवा को उदगीर की सन्धि से पहले मिल चुकी थीं। वह दक्खिन से एक बड़ी सेना भेज रहा था। इसलिए नजीब ने अब्दाली से प्रार्थना की कि वह गरमियों में न लौटे। अब्दाली ने अनूपशहर में छावनी डाल दी। पेशवा ने भी अपनी सेना शीघ्र भेज दी। सदाशिवराव भाऊ, जिसने दक्खिन के युद्धों में योग्यता दिखायी थी, इस सेना का नेता था। ३० मई को वह ग्वालियर आ पहुँचा। उत्तर भारत की मराठा सेना व्रज में थी, उसका कुछ अंश गोविन्द बुन्देले के अधीन इटावा में था। भाऊ ने मल्हार और गोविन्द को लिखा था कि राजपूताना-बुन्देलखंड में मित्र ढूँढें और शुजा को

अपनी तरफ मिलायें। उसने बुन्देले को इटावा पर नावें तैयार रखने को भी लिखा था, जिससे वह आते ही जमना पार कर अवध और रुहेलखंड के बीच अपनी सेना का पच्चर घुसेड़ दे। पर उस साल जल्दी बरसात शुरू हुई और जमना में भारी बाढ आ गयी थी। सदाशिवराव ने राजपूत राजाओं को मनाने की बड़ी कोशिशें कीं, पर उन लोगों ने तटस्थ रहना ही तय किया* और जुलाई में शुजा भी अब्दाली से जा मिला। शुजा ने सोचा कि अब्दाली जीत गया तो वापस चला जायगा, पर मराठे जीत गये तो उसे अधीन करेंगे। यदि सफ्दरजंग की १७५२ वाली सन्धि के समय से मराठा सरकार किसी टिकाऊ और दूरदर्शिता-पूर्ण नीति पर चली होती तो इस समय ऐसी असहाय दशा न होती।

सदाशिवराव [ भा० इ० म० म० ]

---

* यह प्रचलित विश्वास है कि भाऊ के अभिमानी बर्त्ताव से खीझ कर राजपूताने और अवध के राजा अलग हो गये। समकालीन कागजों की नयी खोज से यह बिलकुल गलत साबित हुआ है।

१४ जुलाई को भाऊ आगरा आया। तब भी जमना मे बाढ देख कर उसने दोआब में घुसने का इरादा छोड दिया। मल्हार और सूरजमल उत्तर भारत के अनुभवी योद्धा थे। उन्होंने सलाह दी कि भरतपुर को आधार बनाकर तोपखाने, पैदल सेना स्त्रियों और भारी सामान को वहाँ छोड़ दिया जाय और हलके सवारों के साथ शत्रु से मुठभेड़ की जाय। पर सदाशिव फ्रान्सीसी शैली से लडने वाले अपने गार्दियों का अचूक प्रभाव देख चुका था, उसने उनकी सलाह न मानी। इससे सूरजमल का जी ऊब गया।

२ अगस्त को भाऊ ने दिल्ली ले ली। इससे उसे कोई वास्तविक लाभ न था, तो भी शत्रु पर इसका बडा प्रभाव पडा, और सन्धि की चर्चा जारी हो गयी। सन्धि की बात शुरू होते ही सूरजमल रूठ कर चला गया। उसे अलग होने का कोई बहाना चाहिए था। मराठे और अफगान दोनों पर उसे भरोसा न था, वे दोनों लड मरे तो अच्छा, इसीसे उसे अब सन्धि होना पसन्द न था। मराठे यदि पजाब पर दावा छोड दें और रुहेलों को न सताने का वचन दें तो अब्दाली अब लौटने को उत्सुक था। परन्तु पेशवा की पजाब के लिए जिद थी और भाऊ को भी दिल्ली लेने के बाद अपनी शक्ति का मिथ्याभिमान हो गया था। यों सन्धि की बाते विफल हुई।

अक्तूबर मे शाहआलम को बादशाह तथा शुजाउद्दौला को वजीर घोपित कर सदाशिव पंजाब की तरफ बढा। उसका उद्देश सरहिन्द ले कर अब्दाली का आधार काट देना था। उसने जमना के तट पर कुजपुरा ले लिया, जहाँ अफगानों की १६ लाख की नकदी और माल उसके हाथ लगा और सरहिन्द का फौजदार मारा गया। इससे सिक्खों के भी हौसले बढे और उन्होंने लाहौर और स्यालकोट घेर लिये। सदाशिव की यह योजना बहुत अच्छी होती यदि वह अगस्त मे ही जाब की ओर बढता, जब कि जमना मे बाढ थी, और यदि वह पुरानी मराठा शैली से लडता होता। लेकिन भारी सामान, तोपखाने और पैदल सेना को लिये हुए अपने आधार से अटूट सम्बन्ध रक्खे बिना आगे नहीं बढा जा सकता, युरोपी शैली के इस सिद्धान्त को वह बिलकुल समझा न था। उसने अपना आधार भरतपुर क्या दिल्ली मे भी न रक्खा था, वह सब कुछ साथ लिये फिरता था। जब वह कुजपुरा से आगे कुरुक्षेत्र जा रहा था, तभी खबर मिली कि नीचे बागपत पर जमना पार कर अब्दाली उसके और दिल्ली के बीच आ गया। सदाशिव पीछे

# पानीपत की तीसरी लड़ाई

( १७६१ ई० )

---

## व्याख्या

| मराठी सेना | | अब्दाली की सेना | |
|---|---|---|---|
| १—इब्राहीम गार्दी | ( ८,००० ) | १४—बरखुरदार और अमीर बेग | ( ३,००० ) |
| २—दमाजी गायकवाड़ | ( २,५०० ) | १५—१६—रुहेले सरदार | ( १४,००० ) |
| ३—विट्ठल शिवदेव | ( १,५०० ) | १७—अहमद बगश | ( १,००० ) |
| ४—छोटे सरदार | ( २,००० ) | १८—ऊँट सवार जम्बुरक लिए हुए | ( १,०००×२ ) |
| ५—भाऊ का झंडा | | १९—काबुली पैदल सेना | ( १,००० ) |
| ६—केन्द्र | ( १३,५००० ) | २०—केन्द्र, शाह वली | ( १५,००० ) |
| ७—अन्ताजी माणकेश्वर | ( १,००० ) | २१—शुजा | ( ३,००० ) |
| ८—पिलाजी जादव के बेटे | ( १,५०० ) | २२—नजीब | ( १५,००० ) |
| ९—छोटे सरदार | ( २,००० ) | २३—शाहपसन्द | ( ५,००० ) |
| १०—जसवन्त पँवार | ( १,५०० ) | २४—रक्षित सेना ( नसरुल्ला ) | |
| ११—शमशेर बहादुर | ( १,५०० ) | २५—मुल्की हाकिम आदि | |
| १२—जनकोजी शिन्दे | ( ७,००० ) | २६—शरीर रक्षक गुलामों का दल | ( ३,००० ) |
| १३—मल्हार होलकर | ( ३,००० ) | २७—अब्दाली का खेमा | |
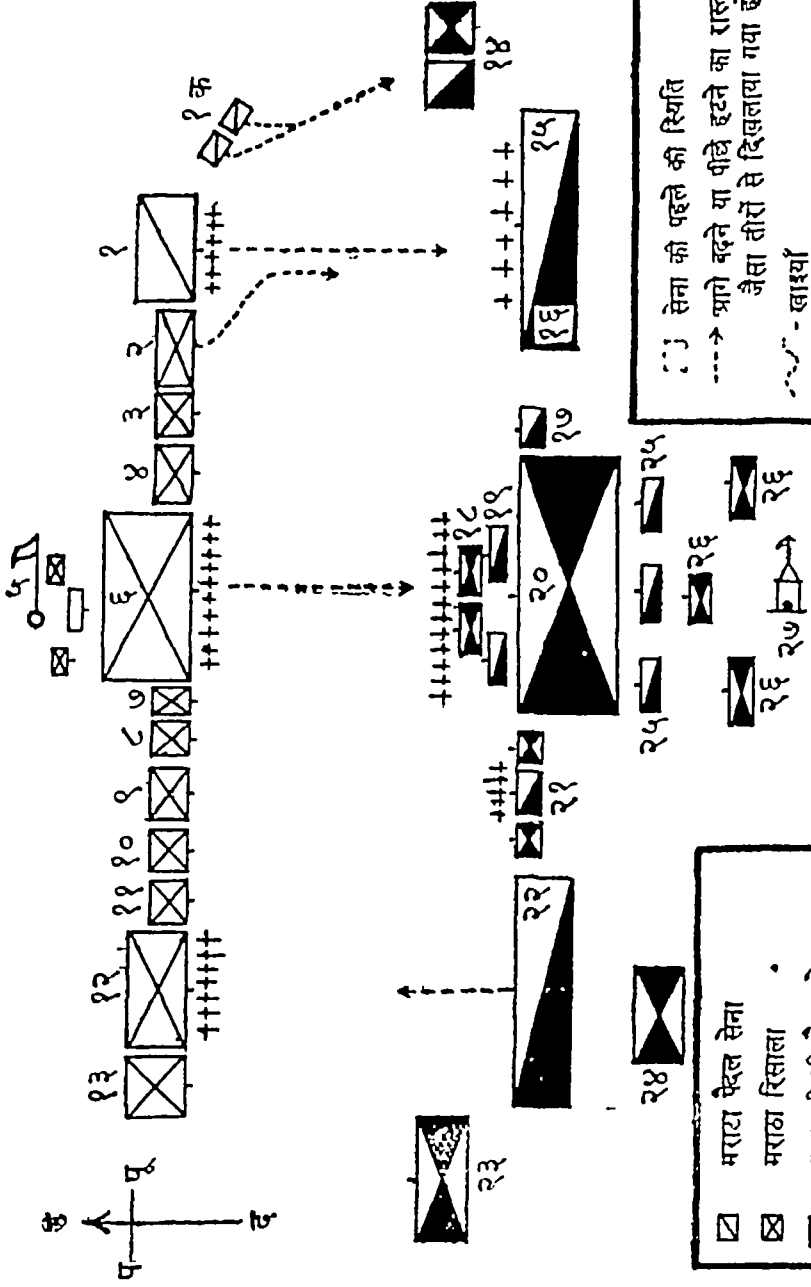
पानीपत की लड़ाई— १० बजे प्रात.
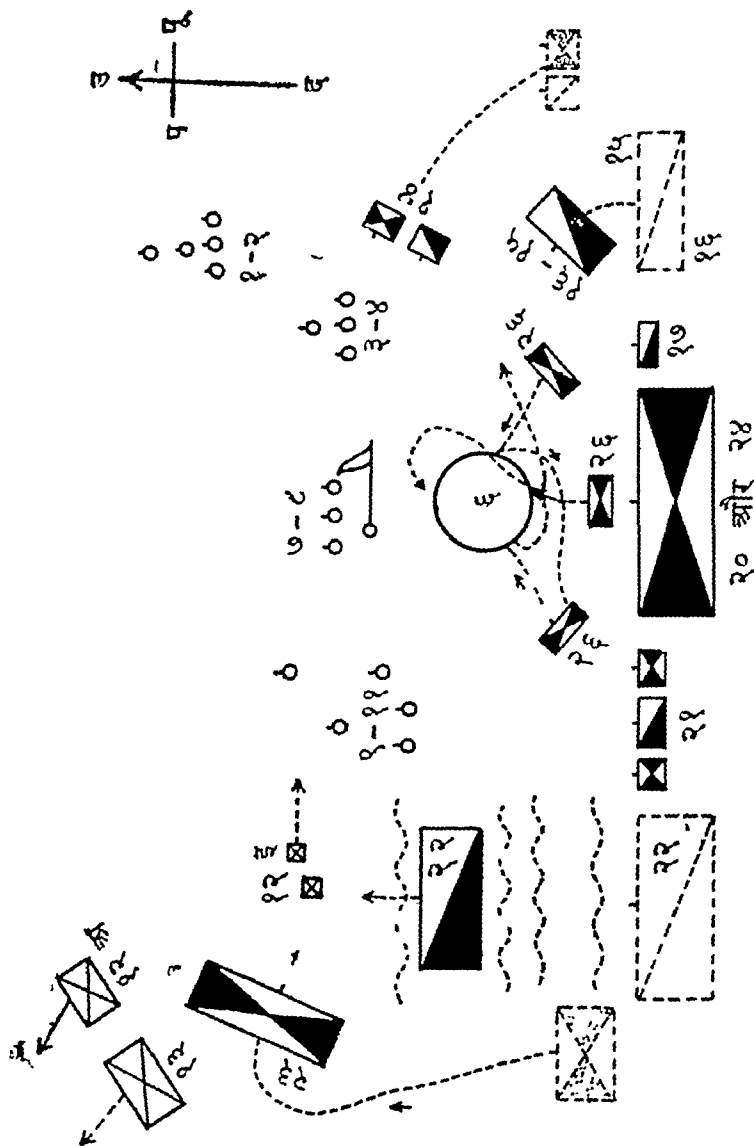
पानीपत की लड़ाई—ढाई बजे मध्याह्न

[ सर यदुनाथ सरकार के 'फ़ाल आव दि मुग़ल एम्पायर' से ]

लौटा। १ नवम्बर को पानीपत पर दोनों सेनाएँ आमने-सामने हुई, और मोर्चा-बन्दी कर जम गयीं।

दो मास तक चपावले (झपटा-झपटी) होती रहीं। शुरू मे मराठों ने मैदान पर काबू रखा। लेकिन ७ दिसम्बर को रात की एक चपावल मे बलवन्त राव मेहन्देले, जो भाऊ का मानो दाहिना हाथ था, मारा गया। तब से मराठा पक्ष दबने लगा। अफ़गान सवारों ने चौगिर्द इलाके पर काबू कर पटियाले के आलासिंह से मराठों का सम्बन्ध तोड़ दिया। भाऊ ने गोविन्द बुन्देले को लिखा था कि वह रुहेलों और अवध के इलाके पर छापे मारे। यदि वह मुजफ्फरनगर तक पहुँच जाता तो दिल्ली के बजाय दूसरा रास्ता भाऊ के लिए खुल जाता। वह इटावे से गाजियाबाद तक बढा, और वहाँ मारा गया (१७ दिसम्बर)। इसके बाद मराठा सेना पूरी तरह घिर गयी। अन्त मे १४ जनवरी को सवेरे वह निराश हो कर लड़ने के लिए निकली।

अब्दाली की ६० हजार सेना के मुकाबले मे भाऊ की कुल ४५ हजार ही थी। उसका बायाँ पहलू इब्राहीम गार्दी के तिलगे बन्दूकचियों का था, मध्य मे खुद भाऊ और सब से पच्छिम तरफ मल्हार था। व्यूह-रचना में भी भाऊ ने फ्रान्सीसी शैली को समझा न था। पैदल बन्दूकचियों की पाँत के पीछे-पीछे सवारों को रखना जरूरी था, जिससे बन्दूकची जब एक बार शत्रु को पछाड़े तभी सवार हमला कर के उसे कुचल दें। लेकिन भाऊ के पदाति एक तरफ थे और सवार दूसरी तरफ। पदातियों की बन्दूकों के सिवाय दोनो सेनाओं की शस्त्र-सज्जा मे भी वही अन्तर था जो नादिरशाह की चढाई के समय। अफ़ग़ान रिसाला जिजैलों से लड़ता था, मराठे सवार भालों-तलवारों से। अफगानो की ऊँटों पर लदी दस्ती जम्बुरकों के मुकाबले में मराठों का भारी और अचल तोपखाना था।

इब्राहीम गार्दी के तिलगों ने रुहेलों को पछाड़ दिया, पर उनके पीछे से कोई दत्ताजी शिन्दे जैसा रिसाले का नेता नहीं बढा। भाऊ ने अफगान-मध्य को पीछे धकेल दिया, लेकिन अब्दाली ने अपने भगोड़ों को घेर कर वापस लौटाया। मराठा दाहिना पहलू लडा ही नहीं। मल्हार के सामने नजीब था, जिसे मल्हार अपना बेटा कहा करता था, उन्होंने आपस में समझौता कर लिया। दो बजे के बाद विश्वासराव के माथे में गोली लगी, उसे दो घाव पहले लग चुके थे। भाऊ का वह प्रिय भतीजा अपने दादा की तरह अत्यन्त सुन्दर और होनहार था।

उसके शव को हाथी पर लेटवा कर भाऊ ने एक वार निहारा, और फिर सेनापति का कर्त्तव्य भूल वह घमसान में कूद पड़ा। बिना नेता की मराठा सेना में अब हर किसी ने अपनी समझ से काम लिया। मल्हार अपने दल को पच्छिम भगा कर शत्रु की पाँत के किनारे से घूम कर भाग निकला। बाकी सैनिकों और असैनिकों में से बहुत थोड़े बच कर निकल पाये। शुजा ने कुछ को बचाने में मदद की। सूरजमल के यहाँ उन सब को शरण मिली।

पेशवा मालवे तक आ गया था, जब उसे ये खबरें मिलीं। पछार पर उसे पानीपत से बचे हुए लोग मिले। इस चोट ने उसे असाध्य-रोगी बना दिया।

अब्दाली की सेना का भी भारी सहार हुआ। उसने दिल्ली में प्रवेश किया और राजपूत राजाओं से कर तलब किया। तब जयपुर के माधोसिंह ने पेशवा से, जो मालवे में था, बूँदी आने की मिन्नत की और लिखा कि सब राजपूत राजा सेना सहित वहाँ आ मिलेंगे। पेशवा ने उसे डाँट कर लिखा—"पहले आप विजयसिंह के साथ अजमेर आइये। भाऊ ने सब अपराधों को माफ कर पिछली बातें भूलने को कहा था;... राजपूतों को कुछ होश आना चाहिए। हमें विदेशियों ने हरा दिया तो नर्मदा पार चले जायेंगे। मुझे अब अब्दाली का डर नहीं है।" लेकिन अब्दाली की सेना भी बकाया वेतन के लिए विद्रोही हो रही थी और उसमें अब सिया-सुन्नी (मुसलमानों के दो मूल फिरके) आपस में लड़ रहे थे। दिल्ली को नजीब के हाथ सौंप वह २० मार्च को बिदा हुआ, पेशवा भी तब मालवे से पूने को रवाना हुआ। रास्ते से अब्दाली ने पेशवा को मनाने तथा उसके पुत्र और भाऊ की मृत्यु के लिए शोक प्रकट करने को अपना दूत भेजा। वह दूत मथुरा में सूरजमल, इमाद तथा मराठा प्रतिनिधियों से मिला। उन लोगों ने उसे वहीं रोक लिया, क्योंकि पेशवा अब मौत के मुँह में था। लाहौर में आबिदखाँ को सूबेदार नियत कर अब्दाली वापिस चला गया।

मथुरा की शान्ति-सभा में रुहेलों, बगश और शुजा के प्रतिनिधि भी शामिल हुए, पर फल कुछ न निकला। कारण यह था कि सूरजमल को अब शान्ति पसन्द न थी, मराठे और अफगान दोनों पस्त हो गये थे, अब उसके लिए मौका था कि वह अपना राज बढा ले। शान्ति-सभा के उठते ही उसने आगरे का किला ले लिया (१२-६-१७६१ ई०)।

शाहआलम को सब ने बादशाह माना था, पर वह नजीब के डर से दिल्ली न आया और अवध में ही रहा। २३-६-१७६१ ई० को बालाजीराव की मृत्यु हुई।

बालाजीराव शासन-प्रबन्ध में अपने पिता से अधिक योग्य था। उसने महाराष्ट्र की कर-प्रणाली और न्याय-प्रणाली को बहुत नियमित कर दिया, और सेना की खुराक और साज-सामान में भी बड़ी उन्नति की। किन्तु बाजीराव का सा महापुरुषत्व और दूरदर्शिता बालाजी में न थी। जिस दूरदर्शिता से हमारा देश स्वाधीन रह सकता, वह तब शायद किसी भी भारतवासी में न थी।

---

## अध्याय ३

### पेशवा माधवराव

### ( १७६१–७३ ई० )

§१ मराठा साम्राज्य की कठिनाइयाँ ( १७६१–६३ ई० )—बालाजीराव की मृत्यु पर उसका दूसरा बेटा माधवराव, १६ वर्ष की उमर में, पेशवा बना, और राघोबा उसके नाम पर शासन करने लगा। सब तरफ मराठा साम्राज्य के सामन्त और पड़ोसी महाराष्ट्र की विपत्ति से लाभ उठाने की कोशिश कर रहे थे। राजपूतों ने अब्दाली के हटते ही विद्रोह किया। मल्हार होल्कर ने इन्दौर से उनपर चढाई कर बानगगा के किनारे मॉगरोल पर जयपुर की सेना को हराया (२६-११-१७६१ ई०)। लेकिन उसके बाद तुरन्त ही शुजा ने बुन्देलखड पर चढाई कर कालपी और झाँसी जीत ली। उसी समय निजाम अली अपने भाई को कैद में डाल पूने की ओर बढा। उसे तो राघोबा ने मार भगाया, पर हैदर अली ने उसके बाद शिरा, गुत्ति, हरपनहल्ली, चितलद्रुग आदि पर दखल कर लिया।

सन् १७६२ में माधवराव ने शासन अपने हाथ में ले लिया। इसपर राघोबा बिगड़ गया। माधवराव ने जिन व्यक्तियों को अपना सहायक बनाया था, उनमे से उसके मन्त्री बालाजी जनार्दन भानु उर्फ नाना फडनीस और हरि बल्लाल फडके तथा न्यायाधीश रामशास्त्री प्रभुणे आगे चल कर बहुत प्रसिद्ध हुए। राघोबा ने निज़ामअली से मिल कर पूने पर चढाई की। घरेलू युद्ध से शत्रु का लाभ होता

देख कर माधवराव ने अपने को राघोवा के हाथ सौंप दिया और राघोवा फिर पेशवा के नाम से शासन करने लगा। परन्तु उसने अपने अन्यायपूर्ण शासन से अनेक सरदारों और नेताओं को विरोधी बना लिया और वे अब उसके देशद्रोह के दृष्टान्त का अनुसरण करने लगे। निज़ामअली ने फिर युद्ध छेड़ा। गोदावरी के किनारे पैठन के पास राक्षसभुवन पर राघोवा को शत्रु ने घेर लिया। उसकी सेना भाग खड़ी हुई। माधवराव ने, जो मराठा सेना की चन्दावल में कैद था, भागती हुई सेना को लौटा कर उस पराजय को विजय में परिणत कर दिया और राघोवा को बचा लिया ( १०-८-१७६३ )। तब राघोवा को उसे शासन में भाग देना पड़ा। माधवराव के सुशासन से महाराष्ट्र में शीघ्र शान्ति स्थापित हो गयी।

§२. पठानों तथा सिक्खों-जाटों का संघर्ष, सिक्ख राज्य की स्थापना ( १७६१-६७ ई० )—अब्दाली के जाते ही पंजाब में चारों तरफ सिक्ख गढ़ियाँ बनने लगीं। आबिदखाँ ने गुजराँवाला पर, जहाँ चड़तसिंह नामक एक नेता ने गढ़ी बना ली थी, चढ़ाई की। सिक्खों ने आबिद को हरा कर भगा दिया। तब उन्होंने जलन्धर दोआबे पर हमला किया और सरहिन्द से पेशावर का रास्ता बन्द कर दिया। अब्दाली फिर लौट कर आया। सिक्ख सतलज पार भाग गये। अढ़ाई दिन में लाहौर से लुधियाने पहुँच वह उनपर एकाएक टूट पड़ा और उनका संहार किया ( ५-२-१७६२ )। यह लड़ाई 'बुल्लू घेरा' नाम से प्रसिद्ध हुई। अब्दाली इस साल लाहौर में ही ठहर गया। उसने दिल्ली से पेशवा के वकील तथा नजीब को बुलाया, और अपना दूत पेशवा को मनाने के लिए पूना भेजा। इस बार उसने जम्मू के राजा रणजीतदेव की मदद से कश्मीर भी जीत लिया। वहाँ अब तक दिल्ली की ओर से दीवान सुखजीवनराम शासन कर रहा था। दिसम्बर में अब्दाली लौट गया।

सूरजमल ने आगरा लेने के बाद मेवात पर भी दखल कर लिया था। अब वह हरियाने ( गुड़गाँव-रोहतक ) की तरफ बढ़ने लगा। इसपर उसकी नजीब से ठन गयी और वह गाज़ियाबाद के पास लड़ता हुआ मारा गया (२५-११-१७६३ ई०) नवम्बर १७६३ में सिक्खों ने फिर विद्रोह किया, कसूर और मालेरकोटला की पठान बस्तियों को उजाड़ डाला, और सरहिन्द को जीत कर सारा इलाका आपस में बाँट लिया। जहानखाँ ने अटक पार से उनपर चढ़ाई की, लेकिन चनाब पर उनके दूसरे

दल ने उसे हरा दिया, और फिर लाहौर पर हमला कर आबिदखाँ को भी मार डाला। नजीब ब्रज-राज्य की विपत्ति से लाभ उठाता, पर सिक्खों ने जमना पार कर उसके सहारनपुर और शामली कसबे लूट लिये। इस दशा में अब्दाली खुद आया (मार्च १७६४)। सिक्ख मैदान से हट गये और वह काबुलीमल नामक एक अफगान ब्राह्मण को लाहौर का शासन सौंप कर वापिस चला गया। उसके पीठ फेरते ही लहनासिंह, गुज्जरसिंह और शोभासिंह ने काबुलीमल से लाहौर का किला छीन कर गुरु नानक और गुरु गोविन्दसिंह के नाम का सिक्का चलाया। दूसरे सिक्ख दलों ने जेहलम तक जीत लिया। लहनासिंह अपने सुशासन के लिए शीघ्र प्रसिद्ध हो गया। जमना से जेहलम तक सिक्ख दलों के छोटे-छोटे राज्य स्थापित हो गये।

नवम्बर १७६४ में ब्रज के नये जाट राजा जवारसिंह ने दिल्ली को आ घेरा। उसने मराठों और सिक्खों से भी सहायता ली। पेशवा की आज्ञा से मल्हार उसकी मदद को गया। तीन महीने तक दिल्ली घिरी रही, लेकिन मल्हार ने नजीब से भीतर-भीतर समझौता कर लिया, और जवाहर के सरदार, जो उसके छोटे भाई को गद्दी देना चाहते थे, विश्वासघात करते रहे। जयपुर के राजा माधोसिंह भी नजीब को मदद देता रहा। अन्त में घेरा उठ गया। उसके बाद मे जवाहर ने मराठों, माधोसिंह तथा अपने भाई और सरदारों से बदला लेना ही अपना कार्य मान लिया।

सन् १७६७ के शुरू में अब्दाली अन्तिम बार भारत आया। सिक्ख एक हार के बाद मैदान से हट गये। अब्दाली ने आलासिंह के पोते अमरसिंह को सरहिन्द का फौजदार बनाया, पर दूसरे सिक्ख दलों का पीछा करता रहा। लेकिन अब उसके सैनिक खुल्लमखुल्ला बलवा करके अफगानिस्तान चल दिये। उनके हटते ही सिक्खों के एक दल ने रोहतासगढ ले कर सिक्ख राज्य को अटक तक पहुँचा दिया।

इस प्रकार सारा पजाब सिक्ख दलों के छोटे-छोटे बारह राज्यों में बँट गया। वे राज्य 'मिसल' कहलाते थे। ये मिसलें वास्तव में सैनिक और पान्थिक (सिक्ख पन्थ की) पचायतें थीं, जिनके मुखिया सिक्ख सैनिकों के दलों द्वारा चुने जाते थे। प्रायः प्रत्येक सिक्ख सैनिक था और उन सैनिकों में से अधिकाश कृषक थे। जिन सैनिकों में युद्ध मे नेतृत्व करने की योग्यता थी, वे दलों के नेता बनते गये और अब उन दलों के छोटे-छोटे राज बन गये। नेताओं को चुनने की रस्म जरूर

की जाती थी, भले ही बाप के बाद बेटा चुना जाता। साधारण सैनिक मिसल की जमीन में या तो मुखिया के 'पत्तीदार' होते थे या ( सैनिक सेवा की शर्त पर ज़मीन पाने वाले ) 'मिसलदार', किन्तु ये मिसलदार चाहे जब एक मिसल को छोड कर दूसरी की सेवा में जा सकते थे। उनके अतिरिक्त दूसरे लोग 'तावेदार' या 'जागीर-दार' के रूप में भी ज़मीन पाते थे, पर उनपर मिसल के सरदार का पूरा निजी अधिकार रहता था। जो इलाके सिक्खों के सरक्षण में, पर उनके सीधे नियन्त्रण में न होते, उनसे 'राखी' कर लिया जाता था, और अपने इलाकों से 'मालिया' ( मालगुजारी )। कृषक जनता कहीं इतनी सुखी न थी जितनी इन कृषक-सैनिकों के राज में। सिक्खों ने यह शीघ्र समझ लिया कि व्यापार पर भारी चुगी होने से उन्हें हानि होती है, इसलिए उन्होंने चुगी बहुत कम कर दी। उनका दड-विधान भी कठोर न था। आपस की छीन-झपट से मिसलों की सीमाएँ प्राय बदलती रहती थीं, तो भी सामूहिक विपत्ति के समय सब सरदार मिल जाते थे। हर साल दशहरे पर अमृतसर में सब सरदारों की सगत लगती थी, जहाँ सामूहिक कार्यों का निश्चय किया जाता था। अमृतसर का मन्दिर अकाली लोगों के हाथ में रहा जो किसी मिसल में शामिल न थे और सिक्ख धर्म की परम्परा के विशेष रक्षक थे—विशेष धार्मिक प्रवृत्ति वाले लोग ही अकाली बन जाते थे। अमृतसर नगरी में कई मिसलों के सरदारों ने अपनी अलग-अलग गढियाँ बना लीं। वह नगरी इन्हीं मिसलों के शासन के बीच एक समृद्ध व्यापारी बस्ती बन गयी।

§३ बगाल-बिहार, आन्ध्रतट और तामिलनाड में अँगरेज़ी राज्य की स्थापना ( १७६०–६७ )—मीर जाफर को शासन चलाने की कतई तमीज न थी और न वह अँगरेज़ों की रकमें चुका पाया। इसलिए सन् १७६० में कलकत्ता कौन्सिल ने उसे हटा कर उसके दामाद मीर कासिम को नवाब बनाया। कौन्सिल ने उससे कम्पनी के लिए बर्दवान, मेदिनीपुर, चटगाँव ज़िलों की मालगुज़ारी और ५ लाख रुपया तथा अपने लिए २० लाख रुपये की रिशवतें लीं। मीर कासिम ने अपने दरबार का खर्च घटा कर अँगरेजों की बाकी रकमें और अपनी सेना की बकाया तनखाहें शीघ्र चुका दीं। वह अपनी राजधानी मुँगेर ले गया। वहाँ उसने बन्दूकें बनाने का कारखाना खोला और सिपाहियों को कवायद सिखा कर नये ढग की सेना तैयार की। शासन को हर पहलू से उसने व्यवस्थित करना चाहा, लेकिन अँगरेज़ों ने उसे वैसा करने न दिया।

ई० इ० कम्पनी बंगाल-बिहार में आयात-निर्यात का जो व्यापार करती थी, उसपर फर्रुखसियर ने चुंगी माफ कर दी थी। कम्पनी के नौकर खानगी तौर पर भीतरी व्यापार भी करने लगे थे और पलाशी की विजय के बाद से वे उसपर भी नवाब के अधिकारियों को चुंगी न देते थे। आयात-निर्यात वाले माल को प्रमाणित करने के लिए कम्पनी के मुखिया 'दस्तक' दिया करते थे। वैसे 'दस्तक' लिये हुए और नावों पर अँगरेजी झंडे उड़ाते हुए अँगरेज़ों के गुमाश्ते अब जनता के रोजमर्रा के बरतने की हर चीज का व्यापार करते फिरते और नवाब के अधिकारी यदि उन्हें कहीं टोकते तो उनकी मुश्कें बँधवा कर उन्हें पिटवाते थे। यही नहीं, वे जनता से मनमाने दामों पर खरीदने के नाम से माल छीन लेते, और उसी प्रकार मुँह-माँगे दामों पर जबरदस्ती उसे 'बेचते'। जो लोग लेने देने से इनकार करते, उन्हें वे कोडों से पिटवाते और कैद की सजा देते। हर गुमाश्ता जहाँ कहीं अपनी 'कचहरी' लगा लेता, छोटे बड़े सब पर हुक्म चलाता और चौकी बैठा कर लोगों के मकानों की तलाशियाँ ले कर जुरमाने वसूल करता। यह तो खानगी 'व्यापार' था। कम्पनी के निर्यात 'व्यापार' का ढंग यह था कि गुमाश्ता किसी भी औरंग (कारीगरों की बस्ती) में जा कर 'कचहरी' लगा देता। हरकारों को भेज कर वह दलालों और जुलाहों को वहाँ बुलवाता, और कुछ पेशगी दे कर उनसे यह मुचलका लिखवा लेता कि अमुक दाम पर अमुक दिन इतना माल देना होगा। जुलाहों की स्वीकृति का कोई प्रश्न न था। यदि वे पेशगी लेने से इनकार करते तो कोडों से मरम्मत की जाती। जिन जुलाहों के नाम गुमाश्ते की बही में चढ जाते, वे किसी दूसरे का काम न कर पाते। इन जुल्मों से बचने के लिए अनेक नागोड (रेशम के कारीगर) अपने अँगूठे काट लेते।

मीर कासिम ने देखा कि वह इन गुंडों से प्रजा के व्यापार-व्यवसाय को बचा नहीं सकता, तो उसने अपनी आमदनी की परवाह न कर कुल व्यापार से चुंगी उठा दी। इसपर कलकत्ता कौन्सिल ने युद्ध छेड़ दिया और मीरजाफ़र से ५० लाख घूँस ले कर उसे फिर नवाब बनाया (दिसम्बर १७६३)। कासिम ने नागपुर के जनोजी भोंसले से मदद माँगी। जनोजी के कटक के हाकिम ने १७६०-६१ में बंगाल की चौथ के लिए चढाई की थी और उसके विफल होने पर नागपुर का दूत कलकत्ते आकर चौथ माँग रहा था। अँगरेजों ने अब उससे कहा कि हम चौथ देंगे, पर कासिम को मदद न देना। घेरिया पर तथा राजमहल

के दक्खिन उधुआ नाला पर मीर कासिम की सेना वीरता से लड़ी, पर अन्त में हारी। कासिम और उसका स्विस सेनापति समरू, पटना में दो सौ अँगरेज़ कैदियों को कत्ल करके अवध को ओर भागे। फिर शुजा और शाहआलम को साथ ले कर उन्होंने बिहार पर चढाई की। मेजर मुनरो ने बक्सर पर उन्हें हरा दिया

नवाब मीर कासिम [ खुदाबख्श पुस्तकालय, पटना ]

( २३-१०-१७६४ ) शाहआलम तब अँगरेज़ों की शरण में आ गया। कर्मनाशा पार कर वे अवध के सूबे में घुसे। उन्होंने चुनार का किला घेरा, पर उसे ले न सके, तो भी इलाहाबाद और लखनऊ ले लिये। शुजा ने रुहेलों और मराठों की मदद ली। वह मराठों से बुन्देलखण्ड छीन चुका था, तो भी मल्हार उसकी मदद को

आया। कोड़ा* की लड़ाई में अँगरेजी तोपों के सामने उसे भागना पड़ा ( ३-५-१७६५ ) शुजा ने तब आत्म-समर्पण कर दिया। उसी वर्ष क्लाइव फिर बंगाल में कम्पनी का मुखिया बन कर आया। उसने बनारस पहुँच कर शुजा-उद्दौला से और इलाहाबाद में शाहआलम से अलग-अलग सन्धियाँ कीं।

शुजा ने अँगरेजों को ५० लाख रुपया हर्जाना दिया, तथा काशी के राजा को, एक तरह से, अँगरेजों की रक्षा में सौंप दिया। इसके अलावा उसने अँगरेजों के शत्रुओं को अपना शत्रु माना तथा अपने राज्य की रक्षा के लिए उनपर निर्भर रहना मंजूर किया।

शाह आलम ने ईस्ट इंडिया कम्पनी को बंगाल-बिहार और उड़ीसा की दीवानी दे दी। उड़ीसा का केवल मेदिनीपुर जिला अँगरेजों के हाथ में था। इसके अतिरिक्त आन्ध्र तट के जिलों पर भी बादशाह ने अँगरेजों का सीधा अधिकार मान लिया। 'कर्णाटक' अर्थात् तामिलनाड की नवाबी मुहम्मदअली को दी गयी और वह निजामअली से स्वतन्त्र माना गया। बंगाल की आमदनी में से २६ लाख रुपया कम्पनी ने बादशाह को देना स्वीकार किया तथा कोड़ा और कड़ा† जिले बादशाह के खर्च के लिए अवध से दिला दिये। शाहआलम इलाहाबाद में अँगरेजों की रक्षा में रहने लगा। इस बीच मीर जाफर मर चुका था। कलकत्ता कौन्सिल ने फिर २३ लाख रुपया घूस लेकर उसके बेटे को गद्दी पर बैठाया, पर उसे केवल नाम का नवाब रहने दिया।

कोड़ा से लौट कर मल्हार ने झाँसी वापिस ले ली, परन्तु कुछ समय बाद वह चल बसा ( २०-५-१७६६ )। इस बीच राघोबा फिर उत्तर भारत आया था। मराठों को फिर आया देख क्लाइव ने छपरा में एक 'कांग्रेस' बुलायी ( जुलाई १७६६ ), जिसमें शुजा खुद तथा ब्रज और रुहेलखंड के दूत आये और सब ने मराठों के खिलाफ गुट्ट बनाने की कोशिश की। बंगाल-बिहार की आमदनी में से खर्चा निकाल कर सवा करोड़ रुपया वार्षिक कम्पनी को बचने लगा, जो अब

---

* फतहपुर जिले में एक कस्बा कड़ा-जहानाबाद। उन दिनों जिले का नाम इसी से पड़ता था।

† इलाहाबाद जिले में कड़ा मानिकपुर का कस्बा है। जिले का नाम पहले उसी से पड़ता था।

हर साल भारत से इग्लैंड को जाने लगा। कम्पनी के नौकरों की निजी लूट इससे अलग थी। डाइरेक्टरों ने क्लाइव को तीसरी बार इसीलिए भेजा था कि वह 'भेंट' और खानगी 'व्यापार' के नाम से होने वाली इस लूट को बन्द कर दे। पलाशी युद्ध के बाद से नौ साल में बगाल-विहार से कम्पनी के नौकरों ने प्राय ६ करोड रुपया निजी तौर से भेंट या हरजाने के नाम से लिया था। 'भेंट' लेने की अब सख्त मनाही की गयी। खानगी व्यापार को बन्द करने के बजाय क्लाइव ने उसे शृखलाबद्ध कर दिया। सब अँगरेज अफसरों की, पद के अनुसार, पत्ती डाल कर एक साझेदारी बना दी गयी जिसके हाथ में बगाल-विहार के नमक, सुपारी और अफीम के व्यापार का एकाधिकार दे दिया गया। ये सुधार करके सन् १७६७ के शुरू में क्लाइव लौट गया। डाइरेक्टरों ने इस नये खानगी व्यापार को भी रोक दिया, परन्तु नमक और अफीम का एकाधिकार खुद ले लिया।

मुहम्मदअली तामिलनाड का नवाब बना, पर अँरेगजों ने बीस बरस के युद्ध का सारा खर्च उसपर डाल दिया। आगे के लिए भी देश की रक्षा उसने कम्पनी को सौंप दी और उसके लिए कई जिलों की मालगुजारी उन्हें दे दी। युद्ध के खर्च को वह चुका न सका और उसपर वह कर्ज लद गया। कम्पनी के उस कर्ज या उसके सूद को चुकाने के लिए वह कम्पनी के नौकरों से उधार लेने लगा! धीरे-धीरे तामिल देश के तमाम खेतों की खडी फसलें तक उन सूदखोरों के हाथ में गिरवी रक्खी जाने लगीं!

§४ हैदरअली ( १७६१-६६ ई० )—सन् १७६३ में हैदर बेदनूर, सावनूर और धारवार लेकर कृष्णा के करीब तक आ पहुँचा। घरेलू झगडों से छुट्टी पा कर मई १७६४ में माधवराव ने कृष्णा पार की। साल भर युद्ध चलता रहा जिसके अन्त में हैदर ने सावनूर, गुत्ति, अनन्तपुर आदि इलाके छोड दिये और बड़ा हरजाना दिया।

सन् १७६६ में हैदर ने मलबार पर चढाई कर पूरा दखल कर लिया। पर १७६७ ई० के शुरू में पेशवा ने उसपर चढाई की और शिरा का इलाका ले लिया। उसी समय निजामअली और अँगरेज़ों ने भी उसपर चढाई कर दी थी—और अँगरेज़ बारामहाल ( सेलम, कृष्णगिरि ) में घुस आये थे। हैदर ने पेशवा से शरण माँगी और वे सब इलाके लौटा दिये जिन्हें बालाजी ले चुका था। तब उसने अँगरेज़ों के उस बेडे को नष्ट कर दिया जो मुम्बई से कनाडा पर चढाई करने

आया था। वह पूरब की तरफ बढा तो निज़ामअली अँगरेज़ों का साथ छोड उससे मिल गया। अँगरेज सेनापति ने तिरुवरणमले किले की शरण ली। छः मास के युद्ध के बाद निजामअली ने अँगरेजों से सन्धि कर ली और वे नवाब मुहम्मदअली को साथ ले मैसूर जीतने को निकले। जवाब में हैदर ने सारे तामिलनाड पर छापे मारना शुरू किया, और एकाएक मद्रास पर पहुँचकर वहाँ अँगरेजों से सन्धि की शर्त्तें लिखवायीं (४-४-१७६६)। वे शर्त्तें ये थीं कि दोनों एक दूसरे के इलाके लौटा देंगे तथा आगे से यदि एक पर शत्रु हमला करे तो दूसरा मदद करेगा।

§४ **नेपाल मे गोरखा राज्य की स्थापना**—जब पजाब में सिक्ख राज्य की स्थापना हो रही थी, ठीक उसी समय नेपाल में एक नया और मज़बूत हिन्दू राज्य स्थापित हुआ। अलाउद्दीन खिलजी ने जब मेवाड़ जीता था, तब वहाँ के राजवश की एक शाखा दक्खिन चली गयी थी, जिसमें शिवाजी पैदा हुआ था, और एक शाखा कुमाऊँ के पहाडों में चली आयी थी। कुमाऊँ से ये लोग और पूरब बढ़े और काली गडक की दून मे पालपा और गोरखा की बस्तियों में जा बसे।। ठेठ नेपाल की दून अर्थात् काठमाडू, भातगाँव और पाटन की बस्तियों मे वहाँ के मूल निवासी नेवारों* के, जिनमें मिथिला के लिच्छिवियों का खून मिल चुका था, तीन सरदार राज करते थे। गोरखा के ठाकुर पृथ्वीनारायण ने नेपाल पर चढाई कर वहाँ अपना राज्य स्थापित किया। पराजित नेवारों ने अँगरेज़ों से मदद माँगी। बेतिया से मेजर किनलोच तराई के पहाडों में घुसा, पर परास्त होकर लौटा (१७६७ ई०)। गोरखा बस्ती से आने के कारण पृथ्वीनारायण और उसके वशज गोरखा कहलाने लगे।

§६ **साम्राज्य-स्थापना का पुनः प्रयत्न (१७६९-७२ ई०)**—उत्तर भारत से लौट कर राघोबा ने फिर षड्यन्त्र शुरू किये। माधवराव ने उसे बड़ी जागीर देनी चाही, पर वह आधा राज्य माँगता था। इसी समय मुम्बई के अँगरेज़ों ने अपना एक कारिन्दा उसके पास षड्यन्त्र करने भेजा। माधवराव ने तब उसे एकाएक नासिक के पास कैद करके पूना ला कर महल में नजरबन्द कर दिया (१७६८ ई०)। हैदरअली ने अँगरेजों की नयी सन्धि के भरोसे पेशवा को

---

* नेवारों की भाषा तिब्बती से मिलती है और गोरखों की भाषा गोरखाली या परबतिया राजस्थानी से निकली है।

सालाना कर न भेजा और सावनूर पर हमला किया। इसलिए माधवराव ने उसके राज्य पर तीसरी चढ़ाई की ( १७६६ ई० ) और जीते हुए ज़िलों पर पूरा दखल और बन्दोबस्त करता हुआ वह बेंगलूर तक जा पहुँचा। हैदर ने तब बेंगलूर तक का सब इलाका दे कर सन्धि की ( जून १७७२ )। इस प्रकार मैसूर राज्य पहले से भी छोटा रह गया और पूरी तरह मराठों का सामन्त बन गया।

१७६६ ई० मे पेशवा ने एक सेना रामचन्द्र गणेश के नेतृत्व में हिन्दुस्तान भी भेजी। रामचन्द्र के साथ विसाजी कृष्ण पंडित, रानोजी शिन्दे का छोटा बेटा महादजी और मल्हार होल्कर की उत्तराधिकारिणी—खंडेराव की विधवा-अहल्याबाई का सेनापति तुकोजी होल्कर भी गये। मराठों के आने से एक साल पहले व्रज का राजा जवाहरसिंह अपने एक सैनिक के हाथों मारा जा चुका था और नजीब अपने बेटे ज़ाबिता को दिल्ली में छोड़ नजीबाबाद चला गया था। जवाहर की हत्या से व्रज की शक्ति टूट गयी थी। नजीब मराठों से मिलने आया और ज़ाबिता का हाथ तुकोजी के हाथ में देते हुए उसने कहा कि इसपर वैसी ही दया रखना जैसे मल्हार ने मुझपर रक्खी थी। इसके बाद वह शीघ्र ही चल बसा। उत्तर भारत में मराठों की पहले सी स्थिति हो जाने पर शाहआलम ने अँगरेज़ों के बजाय उनकी शरण ली और मराठा सेना के साथ दिल्ली में प्रवेश किया ( ६-१-१७७२ )। मराठों ने बादशाह की तरफ से रुहेलखंड को अधीन किया। शुजा ने घबरा कर अँगरेजों से मदद माँगी और वह अँगरेजी सेना के साथ रुहेलखंड की सीमा पर पहरा देता रहा। मराठों ने कोड़ा और इलाहाबाद भी लेने चाहे। वे कहीं झाड़खंड ( रामगढ़ राज्य ) के रास्ते बंगाल पर चढ़ाई न करें इसलिए अँगरेजों ने झाड़खंड के सब राज्यों को अपने अधीन कर लेने को कप्तान कैमक को बड़ी सेना के साथ भेजा।

अब मराठों और अँगरेजों का मुकाबला होता। माधवराव ने हैदरअली से सन्धि करते समय उसके साथ मिल कर मद्रास पर चढ़ाई करने का गुप्त प्रस्ताव किया। वह एक साथ उत्तर और दक्खिन में अँगरेज़ों पर आक्रमण करना चाहता था। हैदर का हित मराठों के साथ रहने में था, किन्तु उसने भोलेपन में, इस आशा से कि अँगरेज़ उसे मराठों के विरुद्ध मदद देंगे, वह प्रस्ताव अँगरेज़ों के आगे खोल दिया। अँगरेज़ों ने तब अपने दूत मोस्टिन को पूना भेजा। पर इसी

बीच महाराष्ट्र का सब से योग्य पेशवा मृत्युशय्या पर पड गया था और वह शीघ्र ही परलोक सिधार गया ( १८-११-१७७२ )।

पेशवा माधवराव को युद्धों से जो फुरसत मिली, वह उसने राष्ट्र का शासन-प्रबन्ध ठीक करने में लगा दी। उसमें अपने पिता की सी प्रबन्ध-योग्यता और अपने दादा की सी समर-नायकता और महापुरुषता थी। उसकी अकाल मृत्यु से महाराष्ट्र को पानीपत की हार से भी अधिक सदमा पहुँचा।

§६. बिहार और बंगाल में दुराज और दुर्भिक्ष, रेग्युलेटिंग ऐक्ट ( १७६७–७३ ई० )—बिहार-बंगाल की सेना और कोष अब अँगरेजों के हाथ में आ गये थे। शासन और न्याय का काम अभी तक नवाब के हाकिम चलाते, जिन्हें अँगरेजों के कारिन्दे आसानी से अपनी कठपुतली बना लेते थे। मालगुजारी की वसूली भी पुराने हाकिमों द्वारा होती, पर उनके ऊपर हर जिले में अँगरेज हाकिमों की एक कौन्सिल बना दी गयी थी। यह एक तरह का दुराज था।

सन् १७५७ और ६० में कम्पनी के हाथ में जो जिले आये थे, उनमें मालगुजारी नीलाम करके सख्ती से वसूली शुरू की गयी थी। अब सारे बिहार-बंगाल और आन्ध्र-तट में वही होने लगा। हर जिले में अँगरेज मुखिया और कौन्सिलें नियुक्त कर दी गयीं। वे ऊँची से ऊँची बोली देने वाले को मालगुज़ारी की वसूली सौंप देते थे। इस प्रकार पुराने जागीरदारों की जगह, जिन्हें सैनिक सेवा के बदले में मालगुजारी सौंपी गयी थी और जो परम्परा से बँधी दरों में कर वसूल करते थे, अब कलकत्ते के दलाल और अँगरेजों के तुच्छ गुमाश्ते और पिछलग्गू मालगुज़ारी का ठीका ले कर किसानों पर अकथनीय जुल्म करने लगे। कम्पनी को तो केवल अपने नफे से मतलब था। सन् १७६५ से ७१ ई० तक छ: बरस में कम्पनी को बंगाल और बिहार की मालगुजारी में से साढे चालीस लाख पौंड ( लगभग ३ करोड़ रुपये ) का मुनाफा हुआ। कम्पनी के नौकर भीतरी व्यापार से जो निजी लाभ उठाते, या तनख्वाहें आदि पाते थे, सो अलग था। सन् १७६६ से ले कर अगले तीन बरसों में इन प्रान्तों में विलायत से जो माल आया, उससे करीब ४३३ लाख रु० का अधिक माल विलायत गया। यह वास्तव में खिराज था जो अब भारत से बाहर जाने लगा था। विलायत से डाइरेक्टरों ने हुक्म भेजा कि बिहार और बंगाल में रेशम के कपडे न बनें, केवल 'कच्चा' रेशम तैयार हो, और रेशम अटेरने वाले केवल कम्पनी की कोठियों ही में उसे अटेरें। ( इस हुक्म के कारण पर हम आगे

विचार करेंगे )। इस तरह उद्योग-धन्धों का नाश होने लगा। उद्योग-धन्धों का नाश, धन की सालाना निकासी और दुराज से उन प्रान्तों की बड़ी दुर्गति हो गयी। १७७० ई० में बिहार-बंगाल में भीषण दुर्भिक्ष पड़ा। कम्पनी के नौकरों ने तब अन्न के व्यापार पर एकाधिकार कर जनता का कष्ट और बढ़ा दिया। तीन करोड़ आबादी में से १ करोड़ जनता उस दुर्भिक्ष में मर गयी।

इंग्लैंड के लोगों के सामने यह प्रश्न आया कि उनके देश के कुछ व्यापारियों ने जो एक नया देश जीत लिया, वह किसका है? उन व्यापारियों का या अँगरेज़ी राष्ट्र का? स्वभावत वहाँ यह सिद्धान्त स्थापित हुआ कि राष्ट्र का कोई व्यक्ति जो भूमि जीतता है, वह राष्ट्र के लिए जीतता है। इन व्यापारियों को भारत में व्यापार करने का एकाधिकार ब्रिटिश राष्ट्र से ही तो मिला था। इसलिए सन् १७६७ में अँगरेज़ी पार्लिमेन्ट ने एक कानून द्वारा कम्पनी के मुनाफे की दर नियत कर दी और यह तय किया कि कम्पनी ब्रिटिश सरकार के कोष में ४ लाख पौंड वार्षिक दिया करे। कुछ बरस बाद जब कम्पनी यह रकम न दे सकी तो उसके कार्य को नियमित करने के लिए एक 'रेग्युलेटिंग ऐक्ट' या नियामक कानून बनाया गया ( १७७३ ई० )। इन कार्रवाइयों को समझने के लिए इंग्लैंड की राज्यसंस्था के विषय में कुछ जानना आवश्यक है।

अँगरेज जाति के पुरखा मुख्यत ऐंग्लो-सैक्सन कबीलों के थे जो प्राचीन जर्मनी से इंग्लैंड में जा बसे थे। वे आर्य वंश की जर्मन या त्यूतन शाखा के थे। प्राचीन आर्य कबीलों में यह रिवाज था कि राजा सरदारों की सलाह से शासन करता था। उत्तर भारत को जब तुर्कों ने जीता, तभी इंग्लैंड को फ्रान्स के नॉर्मन कबीले ने फतह किया। नॉर्मन राजाओं ने जब प्रजा के पुराने अधिकार कुचलने चाहे, तब प्रजा ने उन्हें बाधित किया कि वे सरदारों की सभा या 'पार्लिमेन्ट' की सलाह से ही शासन करें। धीरे-धीरे पार्लिमेन्ट में सरदारों के अतिरिक्त नगरों के नेता भी शामिल होने लगे। यह रिवाज बराबर जारी रहा है। इंग्लैंड के राजा जो कर लगाते वह पार्लिमेन्ट की स्वीकृति ले कर लगाते थे। जहाँगीर और शाहजहाँ के समकालीन इंग्लैंड के राजा जेम्स प्रथम और चार्ल्स प्रथम थे। उन्होंने निरंकुश होना चाहा, तब प्रजा ने कर देना बन्द कर विद्रोह किया और चार्ल्स को कैद कर फाँसी दे दी ( १६४९ ई०—शिवाजी के उत्थान का वर्ष )। कुछ वर्ष प्रजा के मुखिया क्रामवेल के शासन के बाद चार्ल्स के बेटे फिर बुलाये गये। किन्तु प्राज-

ने उन्हें फिर निकाल कर हालैंड के एक राजकुमार को, जिसने स्पेन के खिलाफ विद्रोह में प्रमुख भाग लिया था, इस शर्त्त के साथ अपने देश की गद्दी दी कि वह प्रजा के अधिकार स्वीकृत करे ( १६८८-८६ ई०—सम्भाजी के पतन का वर्ष )।

इस क्रान्ति से प्रजा के अनेक बुनियादी अधिकार स्थापित हो गये। पार्लिमेन्ट की स्वीकृति बिना राजा कोई भी कर नहीं लगा सकता और न कहीं से रुपया उधार ले सकता था। पहले करों की स्वीकृति राजा को आयु भर के लिए दी जाती थी, अब वार्षिक आय-व्यय की स्वीकृति दी जाने लगी। इसका अर्थ राज-कर्मचारियों के वेतन को काबू मे करना था। व्यय की स्वीकृति देने से पहले पार्लिमेन्ट उनके कार्यों की पूरी जाँच-पडताल करती। सेना की सख्या भी पार्लिमेन्ट प्रतिवर्ष नियत करने लगी। कानून बनाना और राजा का उत्तराधिकारी नियत करना भी पार्लिमेन्ट के ही हाथ में आ गया। पार्लिमेन्ट के सदस्यों को भाषण और विचार-विवाद की पूरी स्वतन्त्रता दी गयी। किसी व्यक्ति को अकारण और बेकायदा कैद करने का अधिकार राजा को न रहा। पार्लिमेन्ट में सरदारों के बजाय क्रमशः प्रजा के प्रतिनिधियों का पद बढता गया; इस प्रकार समूचा शासन वास्तव में प्रजा के अपने हाथों में आ गया। पार्लिमेन्ट के हाथ में सब शक्ति आ जाने से राजा के लिए यह आवश्यक हो गया कि पार्लिमेन्ट में जो बहुपक्ष हो, उसी के नेताओं को अपना मन्त्री चुने। समय-समय पर पार्लिमेन्ट का नया चुनाव होने से प्रजा के रुझान के अनुसार उसका बहुपक्ष बनने लगा। अठारहवीं सदी के मध्य तक इंग्लैंड की यह राज्यसस्था पूरी तरह स्थापित हो गयी। तब से राजा केवल नाम और प्रभाव के लिए रह गया। प्रबन्ध-सम्बन्धी और गोपनीय कार्य मन्त्रि-मडल द्वारा होते हैं; किन्तु पार्लिमेन्ट बाद में उनकी सफाई माँग सकती है। इस राज्यसस्था में प्रजा का योग्यतम आदमी सुगमता से राष्ट्र का नेता बन जाता है और आन्तरिक उलझनों में राष्ट्र की कम से कम शक्ति का नाश होता है। अठारहवीं सदी में फ्रान्स भारत और अमेरिका में अपने लोगों को सहारा न दे सका, या योग्य आदमी न भेज सका, इसका कारण यही था कि तब फ्रान्स का आन्तरिक शासन खराब था। फ्रान्स की प्रजा ने इंग्लैंड से १०० वर्ष पीछे अपना घर सँभाला, तब तक अँगरेजी साम्राज्य की नींव पड़ चुकी थी।

भारत की प्रजा अपने घर का जो प्रबन्ध स्वयम् न कर सकी, सो इंग्लैंड की प्रजा अब इतनी दूर से करने लगी। रेग्यूलेटिंग ऐक्ट के अनुसार, कलकत्ते में

बंगाल-विहार के मुल्की और फौजी शासन के लिए एक गवर्नर-जनरल ४ सदस्यों की एक कौन्सिल के साथ, तथा न्याय के लिए एक सुप्रीम कोर्ट नियत किया गया। सुप्रीम कोर्ट की नियुक्ति ब्रिटिश सरकार द्वारा होती थी। पहले पाँच वर्ष के लिए गवर्नर-जनरल और कौन्सिल की नियुक्ति भी ब्रिटिश सरकार ने की। मद्रास और बम्बई की 'प्रेसीडेन्सियों' पर गवर्नर-जनरल का निरीक्षण और नियन्त्रण रक्खा गया। गवर्नर-जनरल और कौन्सिल को रेगुलेशन (नियम) बनाने का अधिकार दिया गया। वे रेगुलेशन सुप्रीम कोर्ट में प्रकाशित होने से कानून बन जाते थे, किन्तु ब्रिटिश सरकार उन्हें रद्द कर सकती थी। अपने कार्यों के लिए गवर्नर-जनरल और कौन्सिल पार्लिमेन्ट के सामने जवाबदेह बनाये गये। डायरेक्टरों के लिए भारत की मालगुज़ारी तथा मुल्की और फौजी शासन सम्बन्धी सब कागजात ब्रिटिश सरकार के सामने पेश करना आवश्यक कर दिया गया।

---

## अध्याय ४

### नाना फड़नीस

(१७७३–१७९९ ई०)

§१. **विहार-बंगाल में अँगरेज़ी शासन की स्थापना**—सन् १७७२ से बंगाल का गवर्नर वारन हेस्टिंग्स था। रेगुलेटिंग ऐक्ट के अनुसार वही पहला गवर्नर-जनरल नियुक्त हुआ। उसने दुराज का अन्त कर विहार और बंगाल में सीधे ब्रिटिश शासन की स्थापना की। कलकत्ते में एक बोर्ड आव रेवन्यू स्थापित कर उसके अधीन हर ज़िले में एक अँगरेज कलक्टर नियत किया गया। एक सदर दीवानी और एक सदर निज़ामत अदालत कलकत्ते में बैठा कर उनकी देखरेख में कलक्टरों को ज़िलों में दीवानी मामले और पुराने देशी अधिकारियों को फौजदारी मामले सुनना सौंपा गया। ये अदालतें किस कानून के अनुसार चलें, यह एक बड़ा प्रश्न था। हेस्टिंग्स ने हिन्दू और मुस्लिम विद्वानों द्वारा उनके कानून का एक संकलन करा के एक 'कोड' या स्मृति बनवायी। भारतवर्ष और पूरबी देशों के विषय में जानकारी प्राप्त करने और ज्ञान का संग्रह और खोज करने के लिए सर विलियम जोन्स ने वारन हेस्टिंग्स के प्रोत्साहन और संरक्षण में 'एशियाटिक सोसाइटी आव बंगाल' की स्थापना की (१७८४ ई०)

मालगुज़ारी का बन्दोबस्त नीलामी द्वारा ही होता रहा। उसके कारण पुरानी जागीरें कलकत्ते के दलालों और गुमाश्तों के हाथ बिकती गयीं। इनके ज़ुल्मों से प्रजा में त्राहि-त्राहि की पुकार मच गयी। कहीं कहीं पुराने जमीन्दारों ने प्रजा को बचाने की कोशिश की—रानी भवानी नाम की राजशाही की एक जमीन्दारिन का नाम इस प्रसग में प्रसिद्ध है। किन्तु इन्हें सफलता न हुई। कई जगह किसान खेत छोड कर भागे, तब उन्हें अँगरेज़ी फौज ने घेर कर वापिस ढकेल दिया।

तामिलनाड के नवाब मुहम्मदअली से कर्ज़ चुकाते न बना तो उसने अपने उत्तमर्णों से कहा कि तांजोर के राजा को लूट कर वसूल कर लें इस प्रकार १७७१ ई० में अँगरेज़ी फौज ने तांजोर पर चढाई कर ४० लाख रुपया वसूल किया। १७७३ ई० में फिर चढाई करके उन्होंने राजा को केद किया और उसका इलाका मुहम्मद-अली ने उन सूदखोरों के हाथ रहन रख दिया। दक्खिन भारत का वह बाग तब वीरान हो गया।

सन् १७७५ में लार्ड पिगोट को मद्रास का गवर्नर बना कर इस उद्देश से भेजा गया कि वह नौकरों के खानगी कर्ज़ से पहले कम्पनी का कर्ज़ वसूल करने का प्रबन्ध करे। पिगोट ने तांजोर के राजा को छोड दिया, लेकिन मद्रास के कौन्सिलरों ने पिगोट को ही केद कर लिया! वारन हेस्टिंग्स ने उसकी सुधि न ली और वह कैद में ही मरा। मुहम्मदअली के कर्ज़ बढते ही गये, उनका कोई लिखित हिसाब भी न था! उसे भी क्या परवा थी, कर्ज़ चुकाने वाले तो तामिल किसान थे। १७८३ ई० में उस प्रान्त में भयकर दुर्भिक्ष पड़ा।

वारन हेस्टिंग्स को अपनी कौंन्सिल के कारण सदा दिक्कत रही। बहुमत के अनुसार कानून और बजट बनाना आदि ठीक होता है, किन्तु शासन-प्रबन्ध कभी बहुमत से नहीं चल सकता। ५ में से ३ सदस्यों के मत से यदि युद्ध शुरू कर दिया जाता, तो कुमुक भेजने का मौका आने पर एक सदस्य अपना मत बदल लेता। इससे यह तजरबा हुआ कि शासन-समितियों का काम केवल सलाह देना होना चाहिए, और शासन का अन्तिम दायित्व सदा एक व्यक्ति पर रहना चाहिए। यदि वह अपने दायित्व का दुरुपयोग करे तो पीछे उससे पार्लिमेन्ट सफाई माँग सकती है।

**§२. पेशवा नारायणराव और राघोबा; बारा भाई की समिति ( १७७२–७५ ई० )**—माधवराव के बाद उसका छोटा भाई नारायणराव पेशवा

चना। माघव ने मृत्यु से पहले राघोवा से समझौता करके उसे छोड़ दिया था। नारायणराव ने उसे फिर कैद कर लिया। अँगरेज टून मास्टिन से राघोवा का विशेष मेलजोल था। राघोवा ने नारायण को कैद कर स्वयम् छूटने का षड्यन्त्र किया, जिसका फल यह हुआ कि महल के रक्षक 'गार्दियों' ने नारायणराव की हत्या कर डाली (३०-८-१७७३ ई०)। राघोवा ने अपने को निर्दोष कह कर राज-काज अपने अधिकार में कर लिया, किन्तु नारायण को तिलाञ्जलि के दिन नाना फडनीस, हरि बल्लाल फडके आदि बारह नेताओं ने शपथ ली कि वे उस हत्यारे को देश का शासन न करने देंगे।

इसी समय निजामअली और हैदरअली ने महाराष्ट्र की इस विपत्ति से लाभ उठा कर अपने छिने हुए इलाके वापिस लेने की कोशिश की। राघोवा उनकी तरफ बढा। पीछे उन बारह नेताओं या "बारा भाई" की समिति ने नारायण की विधवा गंगाबाई और उसके गर्भस्थ बालक के नाम पर शासन अपने हाथ में ले लिया। राघोवा हैदरअली की सीमा से लौटा, किन्तु उसे पूना में घुसने की हिम्मत न हुई। उसने मुम्बई के अँगरेजों से बातचीत शुरू की और नर्मदा पार कर गुजरात जा पहुँचा। तभी गंगाबाई के पुत्र हुआ (१८-४-१७७४ ई०)। चालीसवें दिन उस सवाई माधवराव को पेशवाई के वस्त्र मिले। हरि फडके, महादजी शिन्दे और तुकोजी होल्कर ने राघोवा का पीछा किया। तब वह परेशान हो कर अँगरेजों की शरण में सूरत पहुँचा।

पलाशी और बक्सर की विजयों से अँगरेजों के दिलों में भारत में साम्राज्य बनाने की जो आकांक्षा जग गयी थी, पेशवा माधवराव के चरित्र ने उसे बहुत कुछ ठंडा कर दिया था। माधवराव की मृत्यु से वह आकांक्षा फिर भड़क उठी, और नारायणराव की हत्या से उसका रास्ता साफ हो गया। मोस्टिन से इस हत्या की खबर पाते ही वारन हेस्टिंग्स बनारस पहुँचा और शुजा से सन्धि कर अवध-रुहेलखंड को अपने शिकंजे में कस लिया। सूरत पहुँच कर राघोवा ने उनसे पूरी सन्धि की॥ उसी वर्ष नेलसन, जो बाद में इंग्लैंड का प्रसिद्ध नाविक हुआ, मुम्बई आया था।

§३ अवध और रुहेलखंड पर ब्रिटिश आधिपत्य (१७७४-७५ ई०)—बनारस की नयी सन्धि के अनुसार शुजाउद्दौला ने कोडा और कडा* जिले

* इलाहाबाद जिले में कडा मानिकपुर का कस्बा है। जिले का नाम पहले उसी से पड़ता था।

अँगरेजों से ५० लाख रुपये में खरीद लिये तथा उनकी सेना के खर्च का एक हिस्सा देते रहना स्वीकार किया। अँगरेजों ने और ४० लाख रुपया ले कर उसे रुहेलखंड जीतने के लिए सैनिक सहायता देना स्वीकार किया। अब से उन्होंने बादशाह को २६ लाख वार्षिक देना भी बन्द कर दिया।

अँगरेजी सेना ने शुजा के साथ रुहेलखंड पर चढाई की। मीरनपुरकटरा के पास बबूल नाले में रुहेले वीरता से लडे पर हार गये। शुजा ने तब रुहेलखंड को बुरी तरह लूटा और रुहेलों का संहार किया। अन्त में एक रुहेले सरदार की बेटी ने उसे मार डाला। उसके बेटे आसफुद्दौला को हेस्टिंग्स ने अपने राज्य में अधिक ब्रिटिश फौज रखने के लिए बाधित किया, और उस फौज के खर्चे के लिए गोरखपुर, बहराइच जिलों की मालगुजारी ले ली। यों अवध अब पूरी तरह अँगरेजी का रक्षित राज्य बन गया। इसके अतिरिक्त उसने अब बनारस राज्य अँगरेजों को दे दिया। गोरखपुर-बहराइच में बंगाल-बिहार की तरह मालगुजारी की नीलामी के साथ प्रजा पर घोर जुल्म होने लगे। लगान न दे सकने वाले किसानों को पिंजरे में बन्द कर धूप में छोड देना अँगरेजी कारिन्दों का एक साधारण तरीका था। इन जिलों में बंगाल-बिहार की तरह विद्रोह हुआ जो कुचला गया।

§४. पहला अंगरेज मराठा युद्ध (१८७५–८४ ई०) [अ] पुरन्दर की सन्धि तक—मुम्बई से कर्नल कीटिंग राघोबा की मदद के लिए खम्भात भेजा गया। उसे पूने पर चढाई करने का हुक्म मिला था, पर वह नर्मदा पार न कर सका। उधर राघोबा और मोस्टिन की प्रेरणा से गुजरात के फतेसिंह गायकवाड ने भरुच अँगरेजों को दे दिया। कलकत्ते की बड़ी कौन्सिलने इस युद्ध को रोक कर अपने प्रतिनिधि उप्टन को बारह भाइयों से सन्धि करने के लिए पुरन्दर भेजा। १-३-१७७६ को सन्धि हुई जिसकी शर्त्तें ये थीं कि (१) साष्टी और भरुच अँगरेजों के पास रहे, और (२) राघोबा पेन्शन ले कर महाराष्ट्र में में रहे। परन्तु सन्धि के बावजूद भी मुम्बई सरकार ने राघोबा को मराठों के हाथ न सौंपा।

कलकत्ता और मुम्बई की कौन्सिलों की तरह अब तक महाराष्ट्र में भी 'बारह भाइयों', की समिति शासन चला रही थी। किन्तु इस बीच धीरे-धीरे उसका अन्त हो कर एक ही अधिनायक का शासन स्थापित हो गया।

[ इ ] वडगाँव का ठहराव और गौडर्ड का प्रयाण—इंग्लैंड की साम्राज्य-कांक्षा को फिर एक भारी धक्का लगा। अमेरिका की अँगरेज़ बस्तियों पर ब्रिटिश पार्लियामेन्ट ने कुछ टैक्स लगाने चाहे, परन्तु उन लोगों ने कहा कि हमारे प्रतिनिधि ही हम पर टैक्स लगा सकते हैं, और विद्रोह कर अपनी स्वतन्त्रता घोषित कर दी ( १७७६ ई० )। आठ वर्ष तक उन बस्तियों के साथ इंग्लैंड ने विफल युद्ध किया। यों साम्राज्य पर संकट आने से भारत में भी अँगरेज़ सतर्क हो गये।

वारन हेस्टिंग्स ने नागपुर के राजा मुधोजी भोंसले को मराठा संघ में से फोड़ लेने की कोशिश की और कर्नल लेस्ली को प्रयाग की तरफ से मराठा साम्राज्य में घुसने को भेजा। मुम्बई सरकार ने राघोवा के साथ पूने पर चढ़ाई को फौज भेजी ( नव० १७७८ ई० )। सागर के हाकिम बालाजी गोविन्द बुन्देला ने लेस्ली को रोके रक्खा, जो वहीं बीमार होकर मर गया। राघोवा के साथ वाली अँगरेज़ी सेना बडी परेशानी के बाद पूने से १८ मील तक पहुँच गयी। तब एक मराठा टुकड़ी ने कोंकण उतर कर उनका मुम्बई से सम्बन्ध तोड़ दिया। अपनी तोपें एक तालाब में फेंक कर वे वहीं से लौटने लगे, मगर दो दिन बाद वडगाँव में चारों तरफ घिर कर उन्होंने सन्धि के लिए प्रार्थना की। राघोवा ने महादजी शिन्दे को आत्म-समर्पण कर दिया और अँगरेज़ों ने यह ठहराव किया कि १७७३ ई० के बाद उन्होंने कोंकण में जो कुछ जीता है सब लौटा देंगे, भरुच महादजी को देंगे और बंगाल से आती हुई कुमुक को रोक देंगे।

सन्धि की शर्तें पूरी कराये बिना मराठों ने उस कैदी सेना को जाने दिया। उसके मुम्बई पहुँचते ही अँगरेज़ों ने सन्धि तोड दी। डेढ मास बाद लेस्ली का उत्तराधिकारी जनरल गौडर्ड भोपाल के नवाब के सहयोग और मुधोजी भोंसले की चश्मपोशी से लाभ उठा कर, "मराठा साम्राज्य को सूखे बाँस की तरह बीचोबीच से चीरता हुआ" सूरत जा पहुँचा। इधर राघोवा को जब झाँसी में नज़रबन्द रखने भेजा जा रहा था तब वह भी नर्मदा के घाट से भाग कर भरुच जा पहुँचा।

[ उ ] अन्तिम मराठा युद्ध ( १७८०–८१ ई० )—गौडर्ड ने गुजरात में युद्ध छेड़ना तय किया, क्योंकि वहाँ फतेसिंह गायकवाड की मदद मिल रही थी। उन दोनों ने गुजरात में पेशवा के इलाक़ों पर चढ़ाई की और डाभोई और अहमदाबाद ले लिये। महादजी शिन्दे और तुकोजी होल्कर गौडर्ड के खिलाफ़ भेजे गये। वे उसे लुभा कर आगे-आगे बढ़ाने लगे। पीछे से एक मराठा टुकड़ी

ने कोंकण से आ कर उसे सूरत के आधार से काटना चाहा। कोंकण में एक अँगरेज टुकडी काट डाली गयी।

नाना ने अब अँगरेजों की तीनों प्रेसिडेन्सियों पर एक साथ हमला करना तय किया। मुधोजी भोंसले का मीशा करके उसने हैदर और निजाम अली के साथ सन्धियाँ कीं। निजाम से कुछ न बन पडा। मुधोजी को ३० हजार सेना बंगाल पर भेजने का हुक्म हुआ, परन्तु वह टालता रहा और उधर हेस्टिंग्स को पता दे दिया कि उसे यह सेना भेजनी पडेगी। हैदरअली के मराठों से मिल जाने की सूचना अँगरेजों को मद्रास के पास के जलते हुए गाँव देख कर मिली। मद्रास को घेर कर उसने तामिलनाट में जहाँ तहाँ अँगरेज़ी फौज को खोज-खोज कर कैद किया।

हैदरअली
[विक्टोरिया मिमोरियल, इ०म्यू०, कलकत्ता, श्री० सुन्दरलालजी के सौजन्य से]

उत्तरी रणांगण में अँगरेजों ने गोहाद के राणा को फोड लिया और उसकी मदद से कप्तान पौफम ने ग्वालियर ले लिया। शिन्दे को गौडर्ड का पीछा छोड कर उधर लौटना पडा। गौडर्ड तब कोंकण में हारती हुई अँगरेजी फौज की मदद को गया। हैदरअली के खिलाफ गुण्टूर से बेली और मुनरो दो फौजें ले कर चले। उन्हें मिलने न देकर हैदर ने बेली की सारी फौज कैद कर ली या काट डाली। और मुनरो—बक्सर के मैदान का विजेता—अपनी तोपें काञ्जीवरम के तालाब में फेंक लस्टमपस्टम मद्रास भागा।

उधर गोडर्ड ने बसई को ले लिया। हेस्टिंग्स ने तब सन्धि का प्रस्ताव किया, परन्तु नाना और हरि फडके ने कोई उत्तर न दिया। गौडर्ड ने अरनाला द्वीप लेकर फिर सन्धि का प्रस्ताव भेजा। जवाब में नाना ने परशुरामभाऊ पटवर्धन और हरि फडके को सेना के साथ भेजा। उन्होंने गौडर्ड को पूरी तरह हरा कर कोंकण को अँगरेजी फ़ौज से साफ कर दिया।

जिस कप्तान कैमक को सन् १७७२ में झाडखड जीतने को नियुक्त किया गया था, वह १७८० ई० तक उस प्रान्त को पूरी तरह अधीन कर चुका था। अब उसे भी शिन्दे के राज पर उत्तर से चढाई करने भेजा गया। मालवे में सिपरी ले कर वह सिरोंज तक बढ आया।

सवाई माधवराव पेशवा

सामने हरिपन्त फडके ( उजले कपड़े पहने ) और महादजी शिन्दे

[ भा० इ० स० म० ]

युद्ध के खर्चे के लिए भी वारन हेस्टिंग्स को परेशान होना पड रहा था। काशी के राजा चेतसिंह पर दबाव डाल कर वह सन् १८७८ से कर तथा सेना के खर्च के अलावा ५ लाख रुपये वार्षिक ले रहा था। १७८१ ई० में उसने और रकम माँगी। चेतसिंह ने इनकार किया और मराठों से बात की, तब हेस्टिंग्स ने बनारस पहुँच कर उसे कैद कर लिया। इसपर प्रजा भडक उठी और हेस्टिंग्स को घेर लिया। मुधोजी भोंसले के दूत उसके साथ थे। उन्होंने उसे बचा कर गगा पार उसकी छावनी में पहुँचा दिया। अवध के आसफुद्दौला पर दबाव डाल कर हेस्टिंग्स ने उसकी माँ और दादी से एक करोड रुपया ऐंठ लिया। बनारस का राज्य हेस्टिंग्स ने चेतसिंह के भानजे को दिया और उसकी शक्ति बहुत परिमित कर दी।

सन् १७७८ में फ्रान्स ने और उसके बाद स्पेन और हॉलैंड ने भी अमेरिका का पक्ष ले कर इग्लैंड से युद्ध-घोषणा कर दी थी। फ्रान्सीसी एक ज़बरदस्त जगी बेड़ा

भारत भेजने को तैयार कर रहे थे। इस दशा में हेस्टिंग्स ने बूढ़े आयरकूट को मद्रास भेजा। इसके साथ ही उसने मुधोजी भोंसले को ५० लाख रु० रिशवत दे कर न केवल बंगाल पर चढ़ाई करने से रोक दिया, प्रत्युत बंगाल से उसके इलाके द्वारा एक सेना मद्रास को कूट की कुमुक में भेजी। स्थल द्वारा बंगाल से मद्रास जाने वाली अँगरेजों की यह पहली फौज थी। कूट ने हैदर की रोकथाम की और जगह-जगह घिरी हुई अंगरेजी फौजों को छुडाया। (जुलाई-सितम्बर १७८१), तो भी वह उसे तामिलनाड से निकाल न सका। फ्रान्सीसी बेडा भी तब भारतीय समुद्र में पहुँचने वाला था। नाना ने निश्चय किया कि उस साल जाडे में बंगाल के साथ-साथ मुम्बई पर भी चढ़ाई की जाय। लेकिन बरसात में केमक ने महादजी के इलाके बुरी तरह उजाडे थे, इसी से महादजी शिन्दे ने अब हिम्मत हार कर तटस्थ रहना और नाना से भी समझौता करा देना मान लिया (१३-१०-१७८१)।

[ऋ] साल्बाई और मंगलूर की सन्धियाँ (१७८२—८४ ई०)—महादजी की मध्यस्थता से ग्वालियर के पास साल्बाई में सन्धि हुई (१७-५-१७८२ ई०)। अंगरेजों ने राघोबा को मराठों के हाथ सौंप दिया और पुरन्दर की सन्धि के बाद जो इलाका जीता था सब लौटा दिया। भरुच शिन्दे को और अहमदाबाद आदि गायकवाड को इस शर्त पर दिये गये कि वे नियम से पूना को कर भेजते रहेंगे। पेशवा ने हैदरअली से तामिल प्रदेश लौटवाने का जिम्मा लिया। अँगरेजों ने राघोबा द्वारा मराठा साम्राज्य में वही खेल खेलना चाहा था जो मीर जाफर द्वारा बंगाल में खेला था, पर वे विफल हुए। इसी तरह गायकवाड और भोंसले को उन्होंने मराठा संघ से तोडना चाहा था, उसमें भी उन्होंने हार मानी। राघोबा गोदावरी के तट पर कोपरगाँव में आ रहा और दो वर्ष बाद मर गया।

हैदर ने युद्ध बन्द न किया था। सिंहल द्वीप का विशाल बन्दरगाह त्रिंकोमले अँगरेजों ने हालैंड से छीन लिया था (सन० १७८२ ई०), पर तभी हैदर के बेटे टीपू ने ताञ्जोर पर एक ब्रिटिश टुकडी की पूरी सफाई कर दी और फ्रान्स के श्रेष्ठ नाविक सूफ्रॉ ने २००० फ्रान्सीसी सेना तट पर उतार दी। उनकी मदद से हैदर ने कुड्डलूर जीत लिया और सूफ्राँ ने त्रिंकोमले भी वापिस छीन लिया। किन्तु युद्ध के बीच ही हैदरअली की मृत्यु हुई (७-१२-१७८२)। वह पहला स्वतन्त्र हिन्दुस्तानी शासक था जिसने अपनी सेना को युरोपी कवायद सिखा कर तैयार किया था। उसका शासन दृढ़ और निष्पक्ष था। मज़हबी तअस्सुब उसे छू न गया था।

उसके बेटे टीपू ने युद्ध जारी रक्खा। फ्रान्स से बुसी भी फिर भारत आया, पर उसके आने के बाद शीघ्र ही फ्रान्स-इंग्लैंड की सन्धि हो गयी। टीपू तब अकेला लड़ता रहा। अँगरेज़ों ने पच्छिम तट से उसके राज्य पर हमला किया, इसलिए उसे उधर जाना पड़ा। मार्च १७८४ में उसने मंगलूर में अँगरेज़ों से नफ़े के साथ सन्धि की।

§५. पिट का इण्डिया ऐक्ट तथा **कार्नवालिस** का शासन—वारन हेस्टिंग्स के शासन-काल के तजरबे से ब्रिटिश भारत के शासन-विधान को बदलने की जरूरत मालूम हुई, इससे प्रधान-मन्त्री (छोटे) पिट ने पार्लियामेन्ट से एक नया विधान-कानून पास कराया ( १७८४ ई० )। इस कानून का सार यह था कि ब्रिटिश सरकार ६ व्यक्तियों का एक नियन्त्रण-वर्ग ( बोर्ड आव कन्ट्रोल ) नियत करे, तथा कम्पनी के डाइरेक्टर भारत के शासन और मालगुज़ारी-विषयक तमाम कागज़ात उसके पास भेजा करें, और वर्ग उनपर जो आज्ञा दे उसे वे भारत में अपने कर्मचारियों के पास पहुँचा दें। डाइरेक्टर कोई सीधी आज्ञा भारत में अपने कर्मचारियों को न दें, वर्ग के जो आदेश युद्ध आदि गोपनीय विषयों से सम्बन्ध रखते हों वे डाइरेक्टरों की समूची सभा के बजाय उस सभा के सदस्यों की गुप्त समिति द्वारा भेजे जाँय, गवर्नरों और प्रधान सेनापतियों के सिवाय बाकी सब कर्मचारियों की नियुक्ति कम्पनी करे, कलकत्ता कौन्सिल में ३ सदस्य हों, भारत के गवर्नर कोई युद्ध या युद्धपरक सन्धि गुप्त समिति की आज्ञा बिना न करें। इस कानून से कम्पनी का सासन-सम्बन्धी सब कार्य ब्रिटिश सरकार के पूरे नियन्त्रण में चला गया। कम्पनी का काम केवल बोर्ड के आगे प्रस्ताव रखना और उस की आज्ञाओं को भारत में पहुँचाना रह गया। हाँ, नियुक्ति का अधिकार भी कम्पनी के हाथ में बना रहा। ब्रिटिश भारत के शासन-विधान में बाद में चाहे जो परिवर्तन होते रहे, परन्तु उस विधान का ढाँचा बराबर वही रहा जो छोटे पिट ने खड़ा किया था। १७८६ ई० के एक सशोधन से गवर्नर-जनरल को अपनी कौन्सिल के बहुमत को भी न मानने का अधिकार दिया गया।

इस विधान-कानून के साथ-साथ नवाब मुहम्मद अली के कर्ज़ों का प्रश्न भी पार्लियामेन्ट के सामने आया। उस जमाने में इंग्लैंड के निर्वाचकमंडल बड़े भ्रष्ट थे। मुहम्मदअली के अँगरेज़ उत्तमर्णों ने लूट के रुपये से उनकी वोटें खरीद कर अपने प्रतिनिधि पार्लियामेन्ट में भी भर लिये थे। मन्त्रिमंडल को उन प्रति-

निधियों की उन वोटों की जरूरत थी, इसलिए पार्लियामेन्ट ने उनके सब असली और फर्जी कर्जों को स्वीकार कर लिया—अर्थात् तामिल किसानों की लूट पर अपनी मुहर लगा दी। तब गोरे सूदखोरों का एक नया दल, गिद्धों के झुंड की तरह तामिल भूमि पर आ मँडराने लगा और मुहम्मद अली के कर्ज और बढते ही गये।

वारन हेस्टिंग्स के उत्तराधिकारी लार्ड कार्नवालिस ( १७८६–९३ ई० ) ने अपना ध्यान मुख्यत. शासन को व्यवस्थित करने पर लगाया। उसने पुलिस का सगठन किया, कलक्टरों के पास केवल वसूली का काम रहने दिया, और न्याय-कार्य के लिए अलग जज नियत किये। बगाल-बिहार-बनारस मे उसने जमीन का "स्थायी बन्दोबस्त" किया ( १७९३ ई० ), पर आन्ध्र तट के जिलों मे की पहले सी नीलामी चलती रहने दी। पुराने जागीरदारों को सैनिक सेवा तथा स्थानीय शासन के कार्य के बदले मे मालगुजारी सौंपी जाती थी। ब्रिटिश शासन मे उनका सैनिक और शासन-सम्बन्धी कार्य कुछ नहीं बचा, और पिछले २८ वर्षों (१७६५-९३ई०) मे उन जागीरदारों का स्थान प्राय नये ठेकेदारों ने ले लिया। कार्नवालिस ने नीलामी की प्रथा हटाकर इन ठेकेदारों को मालगुजारी का ९० फी सदी अँश जितना होता था स्थायी रूप से राज्य का अँश नियत कर दिया। बाद में इन ठेकेदारों का अँश बढता गया और धीरे-धीरे वे ज़मीन के मालिक बन बैठे।

§६. नेपालियों का पहाडी साम्राज्य ( १७७८-९२ ई० ) नेपाल में प्रथ्वी नारायण ने ७ वर्ष और उसके बेटे प्रतापसाह ने पौने तीन वर्ष तक राज किया। प्रताप के बाद उसकी विधवा राजेन्द्रलक्ष्मी अपने बेटे रणबहादुर के नाम पर ९ वर्ष तक राज करती रही। उस शासन-काल में गोरखों ने ठेठ नेपाल के पच्छिम का सप्तगडकी प्रदेश ( गडक की धाराओं का प्रस्रवणक्षेत्र ) तथा पूरब का सप्तकौशिकी प्रदेश ( कोसी का प्रस्रवणक्षेत्र ) जीत लिया। राजेन्द्रलक्ष्मी के बाद रणबहादुर के नाम पर उसके चचा बहादुरसाह ने ५ वर्ष राज किया ( १७८७-९२ ई० )। उस समय पच्छिम तरफ घाघरा का प्रस्रवणक्षेत्र तथा कुमाऊँ जीते गये। नेपालियों ने तिब्बत पर भी चढ़ाई की, जिसके बदले में ल्हासा की चीनी सेना ने नेपाल पर चढ़ाई कर उन्हे बुरी तरह हराया ( १७९२ ई० )।

§७ उत्तर भारत मे महादजी शिन्दे ( १७८२-९२ ई० )—पिछले तजरबे से महादजी ने यह समझ लिया कि मराठों को पुरानी समर शैली छोड कर

पच्छिमी कवायद अपनानी होगी। उसने फ्रान्सीसी अफसर अपने यहाँ रख कर पैदल बन्दूकची सेना तैयार करायी। उन अफसरों में द-ब्वाञ और पेरों बहुत प्रसिद्ध हुए।

पेशवा नारायणराव ने १७७३ ई० में मराठा सेना को दिल्ली से वापिस बुला लिया था। उसका विचार था कि पहले सारी शक्ति लगा कर तामिलनाड को जीता जाय। उसी वर्ष अहमदशाह अब्दाली की मृत्यु हुई। उसके बेटे तैमूर-शाह ने सिक्खों से मुलतान वापिस ले लिया (१७७६ ई०), सिन्ध पर अब्दालियों का अधिकार बना ही था। महादजी अब फिर दिल्ली पहुँचा (१७८२ ई०)। बादशाह ने उसे सब शक्ति दे दी और पेशवा को अपना वकीले-मुतलक्क अर्थात् एकमात्र प्रतिनिधि बना दिया। महादजी ने सिक्खों के साथ अवध जीतने के लिए सन्धि की। किन्तु वह जैसा योग्य सेनापति था, शासन-प्रबन्ध में वैसा ही निकम्मा था। अनेक विरोधी पैदा हो जाने से उसे दिल्ली से भागना पडा (१७८५ ई०)। नजीबुद्दौला के पोते गुलाम क़ादिर ने तब दिल्ली पर अधिकार कर लिया। उसने शाहआलम की आँखें अपने हाथ से निकालीं, उसे बेतों से मारा, और शाही परिवार पर घृणित अत्याचार किये (१७८८ ई०)। महादजी उस समय नाना फडनीस की मदद पा कर दिल्ली वापिस आया और बादशाह की रक्षा कर गुलाम क़ादिर को उचित पुरस्कार दिया। द-ब्वाञ को राजपूताना भेजा (१७९०ई०)। पाटन और मेडतों में राजपूतों से दो घोर युद्ध हुए। अजमेर, जोधपुर, जयपुर, मेवाड, सभी ने मराठों की अधीनता मानी। बादशाह ने पेशवा के वंश में वकीले-मुतलक्क पद स्थायी कर महादजी को अपना "फरज़न्द जिगरबन्द" कहा और सारे साम्राज्य में गोहत्या बन्द करने का फरमान निकाला। पेशवा को वह पद सौंपने के लिए महादजी ने पूना की यात्रा की (१७९२ ई०)।

§८. टीपू से युद्ध (१७८५-९२ ई०)—टीपू कई बातों में अपने पिता से उलटा था। वह धर्मान्ध था। नाना ने हैदर का सहयोग लेने के लिए उसे जो इलाके सौंपे थे, उन्हीं में अब टीपू के अत्याचारों से ऊब कर दो हजार हिन्दुओं ने आत्मघात कर लिया। मराठों और निजामअली ने मिल कर तब उसपर चढाई की (१७८६ ई०)। एक वर्ष बाद टीपू ने उनसे सन्धि की। १७८९-९० में उसने त्रावकोर पर चढाई की। तब नाना फडनीस, निजामअली और लार्ड कार्नवालिस तीनों ने उसके खिलाफ़ सन्धि कर एक साथ चढाई की। परशुरामभाऊ पटवर्धन
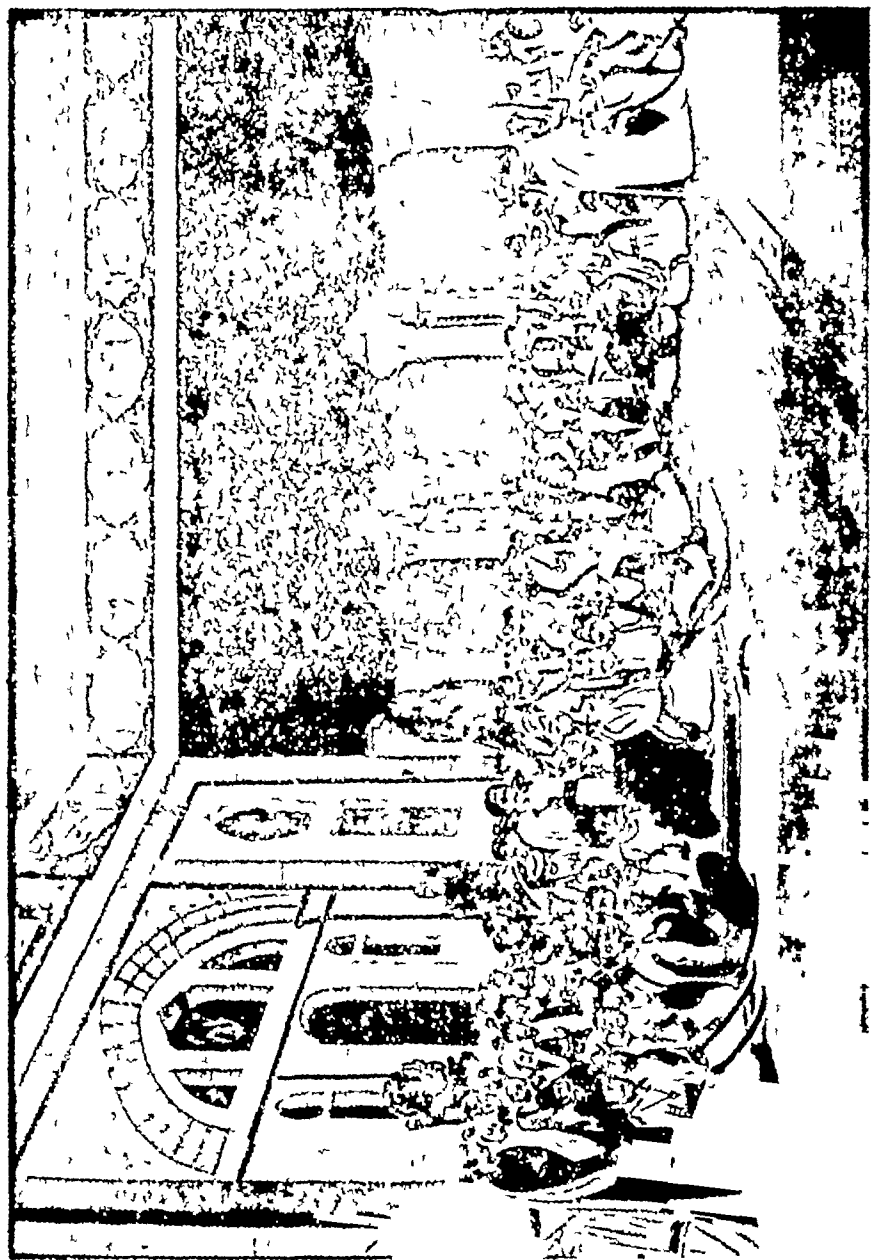
सवाई माधवराव पेशवा के दरबार में कार्नवालिस का दूत मैलेट, टीपू के खिलाफ़ सन्धि करते हुए। पेशवा के पास नाना फडनीस बैठे हैं।

[ (शनिवार?) शरखिंड महल, पूना में लगा चित्र, श्री पिपलखरे द्वारा प्रतिलिपि, भा० इ० सं० मं० पूना के सौजन्य से ]

और हरिपन्त फडके धारवार और शिरा से दक्खिन की ओर बढ़े। अँगरेज़ों ने मलबार से मैसूरी फौज को निकाल दिया। मद्रास की तरफ से जनरल मीडोज आगे बढा, पर उसे टीपू ने हरा दिया। तब खुद कार्नवालिस ने उधर आ कर बेंगलूर लेते हुए श्रीरंगपट्टम् आ घेरा। टीपू ने उसका सम्बन्ध चारों तरफ से काट कर उसे लौटने को बाधित किया। उस दशा में उसे एक सेना दिखायी दी जिसे शत्रु जान वह मरने को तैयार हुआ। किन्तु वह सेना मराठों की निकली। तीनों सेनाओं ने मिल कर फिर से श्रीरंगपट्टम् घेर लिया। टीपू ने सन्धि-भिक्षा की। कार्नवालिस टीपू के राज्य का अन्त करना, पर नाना उसे बनाये रखना चाहता था। इसलिए तीन करोड रुपया और आधा राज्य टीपू ने विजेताओं को दिया ( १७६३ ई० )। उत्तरपच्छिमी और उत्तरपूरबी ज़िले क्रमशः मराठों और निजामअली को तथा कोडगु ( कुर्ग ), मलबार, दिन्दिगुल और बारामहाल ( सेलम, कृष्णागिरि ) अँगरेज़ों को मिले।

§९ मराठों की अन्तिम सफलता ( १७६२-६५ ई० )—शाही खिलत और फरमान लेकर महादजी के पूना आने पर भारी समारोह किया गया। वह बादशाह की तरफ से यह सन्देश लाया था कि टीपू से युद्ध करना बडी भूल थी, इस समय अँगरेजों के खिलाफ उससे मिलना चाहिए। दिल्ली में भी इस बात की चर्चा थी। अँगरेज़ों ने तब अपने दूत मराठा राज्यों में भेज कर बडी सतर्कता से कोशिश की कि वैसा गुट्ट न बन पाय। डेढ वर्ष बाद पूने में ही महादजी का देहान्त हुआ। तभी हरिपन्त फडके और अहल्याबाई भी चल बसीं।

निजामअली कई बरस से चौथ न दे रहा था। उसने भी रेमों नामक फ्रान्सीसी को अपनी सेना को क़वायद सिखाने के लिए रख लिया था, और उसके भरोसे पर उसके दीवान ने पूने को जलाने की डींग मारनी शुरू कर दी थी। नाना फडनीस ने युद्ध की तैयारी की। निजामअली ने अँगरेज गवर्नरजनरल सर जौन शोर से मदद माँगी। शोर ने मराठों से लडना उचित न समझा। निजामअली अकेला बिदर से आगे बढा। परशुरामभाऊ के नेतृत्व में मराठे पूना से बढ़े। एक लडाई के बाद निजामअली एकाएक भाग निकला और खर्डा के कोटले में शरण ली। दौलताबाद का किला, तापी से परिन्दा किले तक का सारा प्रदेश और ३ करोड़ रुपया उसने पेशवा को तथा उसी हिसाब से भूमि और रुपया सुधोजी

भोंसले के बेटे रघुजी को दिया, और अपने दीवान को पेशवा के हाथ सौंप कर मराठों से सन्धि की ( १७९५ ई० )।

इस विजय से मराठा सघ की धाक बँध गयी। नाना फड़नीस तब सारे भारत मे प्रमुख पुरुष गिना जाने लगा। किन्तु उसी साल पेशवा सवाई माधवराव की एकाएक मृत्यु हुई। उसके कोई सन्तान न थी। उसके वश का एकमात्र पुरुष राघोबा का बेटा बाजीराव ( २य ) बाकी था। इसलिए वह उसे अपना उत्तराधिकारी बनाने को कह गया।

कानवालिस के बाद सर जौन शोर १७९३ से ९८, ई० तक ब्रिटिश भारत का गवर्नर रहा। उसने कोई नया प्रदेश नहीं जीता, पर रुहेलखड, अवध और आरकाट की रियासतों पर अपना शिकजा और कसा।

§१०. मराठा साम्राज्य की दुर्दशा ( १७९५-९९ ई० )—बाजीराव २य सुन्दर और मधुरभाषी, किन्तु क्रूर, कायर और मूर्ख था। नाना ने चाहा सवाई माधराव की विधवा किसी को गोद ले ले, पर महादजी के उत्तराधिकारी—उसके भाई के पोते—दौलतराव शिन्दे और उसके मन्त्री बालोबा ने इसका विरोध किया। तब नाना को बाजीराव को कैद से छोड कर पेशवाई देनी पडी। बाजीराव ने नाना को अपना प्रधान मन्त्री बनाया। इसपर दौलतराव और बालोबा ने पूना पर चढ़ाई की। उन्होंने बाजीराव को कैद कर लिया और उसके भाई चिमाजी को जबरदस्ती पेशवा बनाया। नाना इस समय भाग गया था। कुछ मास बाद उसने दौलतराव को समझा कर बाजीराव को छुडा लिया।

मराठा सघ की इस अव्यवस्था को अँगरेज सतर्कता से देख रहे थे। सन् १७९६ में प्रसिद्ध अँगरेज नेता टामस मुनरो ने लिखा—"अपने शासन की एकमुखता और अपनी महान् सामरिक शक्ति के कारण हम देसी राज्यों से आसानी से बाजी ले सकते हैं, और यदि हम केवल मौकों की ताक में ही रहें तो भी निकट भविष्य में बिना विशेष खटके और खर्चे के अपना राज्य सारे भारत पर फैला सकते हैं।"

१७९७ ई० में तुकोजी होल्कर की मृत्यु हुई। उसके बेटों के झगडों में दौलतराव शिन्दे ने दखल दे कर एक को मार डाला और दो को भगा दिया। उसके बाद बाजीराव ने दौलतराव द्वारा नाना को कैद करा लिया। पूना दरबार में यों दौलतराव सर्वेसर्वा हो गया। उसकी कृपा के बदले में बाजीराव को दो

करोड़ रुपया देना था। जब वह दे न सका तो उसने उसे पूना लूटने की छुट्टी दे दी। बाजीराव अब दौलतराव के खिलाफ तैयारी करने लगा तो दौलत ने नाना को छोड़ दिया और नाना फिर मन्त्री बना (१५-१०-१७६८)। पर इस बीच साम्राज्य में अराजकता मच चुकी थी।

इसी बीच अँगरेज़ों ने दो तरफ बाजी मार ली। उन्होंने निजामअली से सन्धि करके हैदराबाद में ब्रिटिश "आश्रित" सेना रख दी (१७६८ ई०)। खर्डा की विजय के बाद मराठे निजामअली को अपना सामन्त माने हुए थे, अब वह अँगरेज़ों का रक्षित हो गया। इसके बाद उन्होंने टीपू के राज्य पर चढ़ाई की। श्रीरंगपट्टम् के घेरे में टीपू लडता हुआ मारा गया (४-५-१७६६ ई०)। उसके राज्य का बडा अंश अँगरेज़ों और निजामअली ने बाँट लिया, तथा बाकी मैसूर के उस राजा के पोते को दे दिया जिसे हैदर ने पदच्युत किया था। वह राजा भी अँगरेज़ों का रक्षित बना। टीपू की मृत्यु की खबर मराठा दरबार पर गाज सी गिरी। हैदराबाद और मैसूर में ब्रिटिश आधिपत्य स्थापित हो जाने से अँगरेजों का पलडा एकाएक भारी हो गया। वे महाराष्ट्र की ठीक सीमा पर पहुँच गये। अगले वर्ष नाना फडनीस चल बसा। "उसके साथ मराठा राज्य का सब सयानापन विदा हो गया।"

# अध्याय ५

## अठारहवीं शती का भारतीय समाज

§१. हिन्दू पुनरुत्थान—१७वीं-१८वीं सदियों मे महाराष्ट्र, बुन्देलखड, व्रज, पजाव और नेपाल में जो राजनीतिक सचेष्टता और अग्रसर प्रवृत्ति प्रकट हुई, वह स्पष्ट ही एक पुनरुत्थान था, जो बहुत अशों में १५वीं-१६वीं सदियों के धार्मिक सुधार से उत्पन्न हुआ था। गगा के कॉठे, सिन्ध, गुजरात, आन्ध्र और तामिल मैदानों मे—अर्थात् भारतवर्ष के सब से उपजाऊ प्रान्तों में—वह पुनरुत्थान प्रकट नहीं हुआ और इन्हीं प्रान्तों मे अँगरेजों को पहले-पहल पैर जमाने का अवसर मिला।

बाबर, अकबर और उनके साथियों मे जो विशाल महत्वाकाक्षा थी, वह औरंगज़ेब के बाद उनके वशजों में क्षीण और नष्ट हो गयी। जिन प्रान्तों में पुनरुत्थान नहीं हुआ, वहाँ दिल्ली साम्राज्य के टुकडे कुछ समय पीछे तक बचे रहे। यदि फ्रान्सीसी और अँगरेज़ बीच मे न आ पडते, तो वे भी मराठों या सिक्खों के हाथ आने को थे। वैभव के शिखर पर पहुँच कर और महत्वाकाक्षा के मिट जाने पर जो ऐशपसन्दी आ जाती है, पिछले मुगलों मे वह घृणित रूप से प्रकट हुई।

§२. साहित्य और कला—दिल्ली साम्राज्य के विस्तार और पतन तथा हिन्दुओं के पुनरुत्थान का प्रभाव सामाजिक जीवन पर भी हुआ। पचाल ( रुहेलखड और कनौज ) और शूरसेन ( व्रज ) की बोलियो में से कोई एक सदा भारत की राष्ट्रभाषा बनती रही है—वे बोलियाँ तमाम आर्यावर्त्ती भाषाओं की केन्द्रवर्त्ती हैं। इस बार दिल्ली साम्राज्य के सहारे उत्तर पचाल की 'खडी बोली' भारत भर में समझी जाने लगी। साम्राज्य के अन्तिम विस्तार के साथ उसमें एक नयी शैली की कविता प्रकट हुई जिसे हम उर्दू कविता कहते हैं। फारसी लिपि में लिखी खड़ी बोली का नाम ही उर्दू है। सब से पहले उर्दू कवियों मे औरगाबाद के वली ( १६६८-१७४४ ई० ) का नाम प्रसिद्ध है।

हिन्दू पुनरुत्थान का साहित्य पर भी प्रभाव पडा। भूषण और लाल कवि ने शिवाजी और छत्रसाल के विषय में हिन्दी में कविताएँ की, पर उनका दर्जा भटैती

से बहुत ऊँचा नहीं है। मराठी पोवाडे अर्थात् गाथाएँ, जो मराठा इतिहास की घटनाओं पर निर्भर हैं, काफी जानदार हैं। पंजाबी कवि वारिसशाह के 'हीर-राँझा' में ग्राम्य जीवन का चित्र है, और पश्तो कवि अकमल की रचनाएँ भी सुन्दर हैं। पिछले मुगलों और उनके प्रान्तीय दरबारों का साहित्य कृत्रिम, अतिरंजित और विषयैषणापूर्ण है। मराठी के सिवाय भारतवर्ष की विद्यमान भाषाओं में तब गद्य
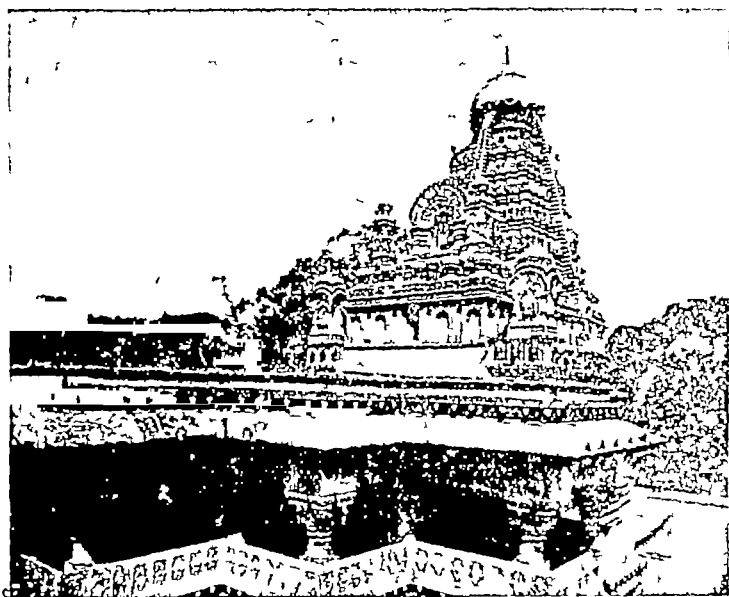
घृसणेश्वर, वेरूल [ निज़ाम हैदरा० पु० वि० ]

नहीं के बराबर था। महाराष्ट्र में शिवाजी के अभिषेक के बाद से राज्य-कार्य के लिए गद्य का विकास हुआ। वहाँ अनेक 'बखर' अर्थात् ऐतिहासिक वृत्तान्त भी लिखे गये, किन्तु वे कहानियों से भरे हुए और अप्रामाणिक हैं। साहित्य और इतिहास की दृष्टि से उनसे कहीं अधिक महत्व के वे सैकड़ों फुटकर पत्र हैं जिनमें समकालीन घटनाओं का वर्णन है। उनकी भाषा नपी-तुली और अर्थपूर्ण तथा शैली विषद और सजीव है। उनमें ऊँचे दरजे की प्रतिभा झलकती है।

जहाँ-जहाँ मराठों का राज्य पहुँचा, उन्होंने हिन्दू मन्दिरों और तीर्थों का पुनरुद्धार किया, और सार्वजनिक उपयोगिता के घाट, बगीचे, धर्मशालाएँ आदि

बनाने की ओर विशेष ध्यान दिया। उज्जैन का महाकाल और काशी का विश्वनाथ मन्दिर तथा अजमेर का दौलतबाग आदि इसके नमूने हैं। इस सम्बन्ध में अहल्या बाई होल्कर का नाम उल्लेखनीय है। वेरूल ('इलोरा') के पास उसका घृष्णेश्वर मन्दिर, पन्ना में छत्रसाल और कमलावती की समाधि, अमृतसर का 'दरबार-साहब', कन्दहार में अहमदशाह अब्दाली का मकबरा, पूना में नाना फडनीस का बेलबाग आदि इस युग की स्थापत्य-कला के सुन्दर नमूने हैं। उज्जैन, जयपुर, बनारस
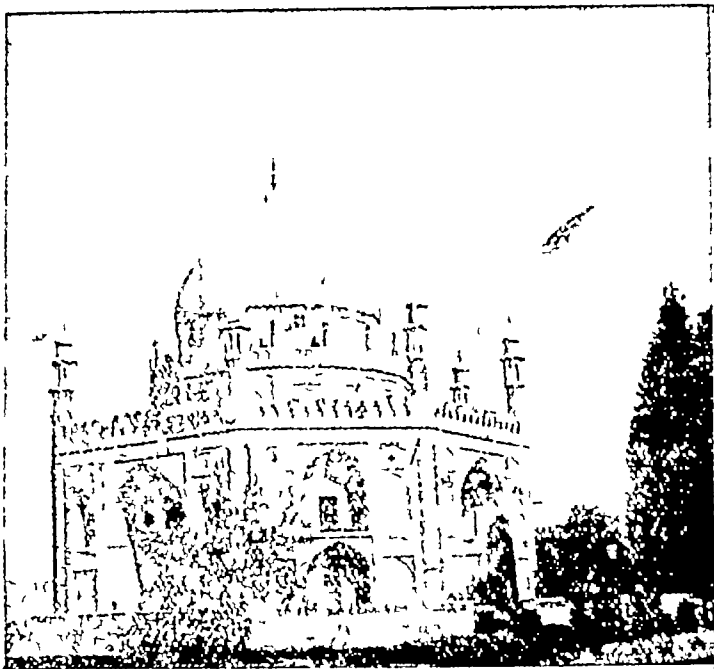
अहमदशाह अब्दाली का मकबरा, [ फादर हेरस के सौजन्य से ]

और दिल्ली में जयपुर के संस्थापक सवाई जयसिंह की बनवायी वेधशालाएँ इस युग की मनोरंजक रचनाएँ हैं। उनकी अब खाली इमारतें बची हैं, यन्त्र सब गायब हो चुके हैं। ये सूचित करती हैं कि हिन्दुओं का पुराना ज्योतिष का ज्ञान इस युग में भी बना हुआ था तथा उनमें नये ज्ञान को अपनाने की शक्ति भी सर्वथा लुप्त न हो गयी थी। जयसिंह स्वयम् बड़ा ज्योतिषी था; उसने ज्योतिष की अनेक नयी तालिकाएँ तैयार की थीं। जब उसे मालूम हुआ कि युरोप में ज्योतिष की नयी खोजें

हुई हैं तो उसने बड़ा खर्च कर जर्मन ज्योतिषियों को बुलाया और उनकी तालिकाओं को जाँचा समझा।

§३. जनता का सुख-दुःख, आर्थिक तथा सामाजिक जीवन— अठारहवीं सदी के राजविप्लवों के बीच भी कृषक, कारीगर और व्यापारी जनता प्राय: खुशहाल और सुखी रही। परिवर्तन-काल में कुछ कष्ट ज़रूर होता था। पंजाब की सिक्ख मिसलें राज्य-संस्था का बड़ा अस्थिर नमूना थीं, तो भी उनके अधीन कृषक, शिल्पी और व्यापारी कितने खुशहाल थे, सो हम देख चुके हैं। अमृतसर जैसे व्यापार-केन्द्र का विकास उन्हीं के शासन में हुआ।
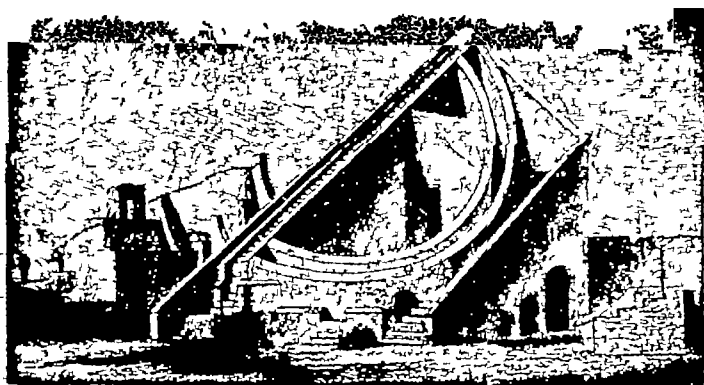
जन्तरमन्तर ( =यन्त्रमन्दिर ) दिल्ली का एक अंश

पठानों की अपने शत्रुओं के प्रति खूंख्वारी और दगाबाज़ी प्रसिद्ध है, तो भी रुहेलों की अपनी हिन्दू प्रजा उनके शासन में सुखी सुरक्षित और समृद्ध थी। कश्मीर के अफगान शासकों के विषय में यह बात नहीं कही जा सकती।

मराठा शासन के विषय में अनेक मत प्रचलित हैं। उन्नीसवीं शती के शुरू में जिन अँगरेज़ों ने मराठों को हरा कर दक्खिन और विन्ध्यमेखला में अँगरेजी शासन खड़ा किया, उनमें सर जौन मालकम से अधिक योग्य व्यक्ति कोई नहीं हुआ। उसके जीवन का मुख्य भाग महाराष्ट्र और मालवे में बीता। मालकम का कहना था कि उसने "सन् १८०३ में दक्खिनी मराठा जिलों को जैसा पाया उनसे अधिक धन-धान्य पूरित प्रदेश कभी कहीं नहीं देखे।" "पेशवा की राजधानी पूना बड़ी धनी और फूलती-फलती नगरी थी।" "मालवे में "मैंने आश्चर्य से देखा कि

उज्जैन में व्यापारियों के बड़ी रकमों के लेन-देन बराबर चलते थे, ऊँची हैसियत और साख वाले साहूकार बड़ी समृद्ध दशा में थे, न केवल बड़ी तादाद मे माल का आना-जाना बराबर जारी था; प्रत्युत वहाँ के बीमे के दफ्तरों ने, जो उस सारे इलाके में फैले हैं,...कभी अपना कारबार बन्द नहीं किया था।" "कृष्णा-तट के जिलों के समान कृषि और व्यापार की समृद्धि भारत के किसी और प्रान्त में न थी। मेरे विचार में इसके कारण थे—( एक तो ) उनकी शासन-पद्धति जो कभी-कभी ज्यादतियाँ करने के बावजूद भी नरम है", ( दूसरे ) हिन्दुओं की कृषि के विषय में पूरी जानकारी और भक्ति, (तीसरे) हमारी अपेक्षा उनका शासन के कई पहलुओं को, खासकर गाँवों और नगरों को समृद्ध बनाने के उपायों को, अच्छा समझना,... और सबसे बढ़कर जागीरदारों का अपनी जागीरों पर रहना तथा उन प्रान्तों का ऊँचे दर्जे के ऐसे आदमियों द्वारा शासन होना जिनका जीना और मरना उसी जमीन के साथ है। "किन्तु इन सब से भी बढ़कर समृद्ध का कारण यह था कि गाँवों की पचायतों और अन्य स्थानीय संस्थाओं को सदा बढ़ावा दिया जाता था।"

भारतीय कारीगरों ने अपनी पुरानी योग्यता इस युग में भी बनाये रक्खी और यदि किसी नयी बात पर उनका ध्यान चला जाता तो वे उसे शीघ्र अपना लेते, बल्कि उससे भी अच्छा नमूना तैयार कर देते थे। सूरत के बन्दरगाह में जहाज बनते थे, उन्हें युरोपी लोग खरीद ले जाते थे। उधुआ नाला की लड़ाई में मीरकासिम ने अपने कारखाने की जो बन्दूकें बरती थीं, वे अँगरेजी बन्दूकों से अच्छी पायी गयी थीं। पर इस युग के भारतीय कारीगरों में प्रगति का भाव न था, और वह जागरूकता न थी कि वे दुनियाँ की प्रगति का पता रख सकें। अधिकांश कारीगर महाजनों के काबू में थे। वे उनसे अगाऊ रकम ले कर उसका हिसाब चुकाने को अपना तैयार माल देते रहते थे। महाजनों के इसी मार्ग से अँगरेजी ईस्ट इंडिया कम्पनी ने हमारे कारीगरों को अपने कब्जे में करके तबाह कर दिया। हमने देखा है कि सातवाहन और गुप्त युगों में कारीगरों की श्रेणियों की इतनी हैसियत थी कि राजा लोग अपनी स्थायी धरोहर उनके पास जमा करते थे*। लेकिन मध्य काल में उनकी शक्ति टूट गयी, और उनकी श्रेणियाँ पथरा कर जातें बन गयीं, जिनका काम केवल अपने सदस्यों पर तुच्छ और व्यर्थ के सामाजिक बन्धन लगाना रह गया। जैसे किसानों पर जागीरदारों ने अपना प्रभुत्व जमा लिया,

---

*पृ० १२५, १४७।

वैसे ही कारीगरों पर महाजनों ने काबू कर लिया। यह परिवर्तन ठीक-ठीक कब और कैसे हुआ, इसकी खोज अभी तक नहीं हुई।

मराठों के उत्तर भारत जीतने से, उत्तर और दक्खिन के बीच आदान-प्रदान खूब बढ़ा। उत्तर भारत के अनेक रस्म-रिवाज और आराम-आसाइश के सामान दक्खिन में पहुँचे। संस्कृत के हस्त-लिखित ग्रन्थ बड़ी संख्या में उत्तर से दक्खिन में जाते रहे।

महाराष्ट्र और बुन्देलखंड ने इस युग में अनेक महान् स्त्रियाँ भी पैदा कीं। इस युग की प्रायः प्रत्येक मराठा और बुन्देला युवती को घुड़सवारी का अच्छा अभ्यास रहता था। लेकिन दूसरे प्रान्तों में स्त्रियों की हैसियत गिरी हुई थी। अधिक स्त्रियाँ रखना बड़प्पन का चिन्ह समझा जाता था। धार्मिक संशोधन और राजनीतिक पुनरुत्थान से हिन्दुओं की सामाजिक संकीर्णता कुछ कम जरूर हुई, तो भी बहुत कुछ बनी रही। इसी का यह फल है कि भारतीय हिन्दू और मुस्लिम के रोजमर्रा के जीवन में आज भी एक अस्वाभाविक अन्तर बराबर बना हुआ है। इस युग का धार्मिक संशोधन इतना गहरा नहीं हुआ कि उस अन्तर को मिटा देता। इसका कारण हम अभी देखेंगे।

मराठों और बुन्देलों को एक बात का विशेष श्रेय है। महाराष्ट्र, चेदि, उड़ीसा और आन्ध्र की सीमा पर गोंडवाना में तथा महाराष्ट्र, गुजरात और मालव के बीच खानदेश में जो जंगली जातियाँ थीं, उन्होंने उन्हें सभ्य बनाया। दक्खिनी गोंडवाना—नागपुर, चाँदा और भंडारा—में मराठी इसी युग में फैली और उत्तरी गोंडवाना—जबलपुर तथा मंडला—बुन्देली भाषा के क्षेत्र में इसी युग में आ गया।

§२ ज्ञान-जागृति का अभाव—भारतवर्ष का यह पुनरुत्थान अन्त में सफल न हुआ। मराठे और सिक्ख अँगरेज़ों के मुकाबले में न ठहर सके। इसके दो कारण हमने देखे हैं। एक तो यह कि जल और स्थल के शस्त्रास्त्रों और समर-कला में भारतवासी युरोपियनों से पिछड़ गये थे। दूसरे, हमारा राष्ट्रीय संगठन अँगरेज़ों के मुकाबले में अत्यन्त शिथिल और अशक्त था। राष्ट्रीयता का भाव महाराष्ट्र में काफी था। तो भी महाराष्ट्र की राष्ट्रीयता इतनी गहरी न थी कि वह मराठों को अपने समूचे राष्ट्र-संगठन को विचार पूर्वक ऐसा ढाल लेने को प्रेरित करती कि जिससे राष्ट्र का अधिकतम हित हो सकता। अँगरेज़ों में एक योग्य नेता के हटने पर दूसरा उसका स्थान झट ले लेता था। इधर यह दशा थी कि बाजीराव

२य सा पतित व्यक्ति केवल इसलिए राष्ट्र का मुखिया बन गया कि वह बाजीराव १म का पोता था। अच्छा राष्ट्र-संगठन वह है जहाँ राष्ट्र के प्रत्येक व्यक्ति को अपनी योग्यता का अधिकतम विकास करने का अवसर मिले और उसकी योग्यता से राष्ट्र को अधिकतम लाभ पहुँच सके।

लेकिन, हमारे पुरखों ने अपनी इन त्रुटियों को पहचान कर सुधार क्यों नहीं किया? अकबर, शाहजहाँ, औरंगज़ेब, शिवाजी, बाजीराव, बालाजीराव जैसे हमारे योग्य शासक बराबर यह देखते रहे कि पच्छिमी लोग जहाज़रानी में, तोपों-बन्दूकों को बनाने और बरतने में तथा समरकला में हमसे आगे निकलते जाते हैं, किन्तु उनमें से किसी को भी यह न सूझा कि पच्छिम के उस ज्ञान को प्राप्त कर लें। अठारहवीं शती के शुरू में कोल्हापुर के अमात्य रामचन्द्र पन्त ने "आज्ञापत्र" नामक राजनीति का एक ग्रन्थ लिखा। उसमें उसने यह बात तो दर्ज की कि युरोपी लोग जहाजरानी में और तोप-बन्दूक गोला-बारूद बनाने में दक्ष हैं, पर न तो उसने यह सोचा कि वे क्यों इन बातों में बढ़े हुए हैं और न उसे यह सूझा कि उनसे ये शिल्प हमें ले लेने चाहिएँ। उसे केवल यह सूझा कि वे लोग इन शिल्पों के कारण खतरनाक हैं, उन्हें भारत में बसने न देना चाहिए।

औरंगज़ेब को युरोपी समुद्री डाकुओं की समस्या से कितना परेशान होना पड़ा! उस जैसा योग्य और शक्त सम्राट अपना ध्यान उस समस्या को जड से सुलझाने में लगा देता तो भारतवर्ष की वह कमजोरी शायद उसके शासन-काल में ही दूर हो जाती। अन्तिम संकट आ जाने पर मीरकासिम, हैदरअली और महादजी शिन्दे ने जब पाश्चात्य युद्ध-शैली अपनायी भी तो केवल काम चलाऊ ढंग से। उन्होंने युरोपी अफसर जरूर रख लिये, परन्तु ऐसा उपाय उन्होंने न किया कि अगर वे अफसर कभी धोखा दें तब हम स्वयम् ज्ञानपूर्वक उनका स्थान ले सकें। नाना फडनीस को अँगरेजों की मुम्बई और कलकत्ता कौन्सिलों की गुप्ततम कार्रवाइयों का पता तुरत मिल जाता था, उनकी पूरी कार्य्यप्रणाली उसकी आँखों के सामने रहती थी, तो भी नाना को यह कभी न सूझा कि महाराष्ट्र में भी उसी नमूने पर बाराभाई-समिति को एक सुसंगठित और स्थिर संस्था बना दिया जाय। गोवा में पुर्त्तगाली १६वीं सदी से पुस्तकें छापने लगे थे। यदि मराठों का ध्यान उनकी मुद्रणकला को अपनाने की ओर चला जाता तो उनके देश में भी कैसी जागृति हो सकती थी! बसई जीत लेने पर
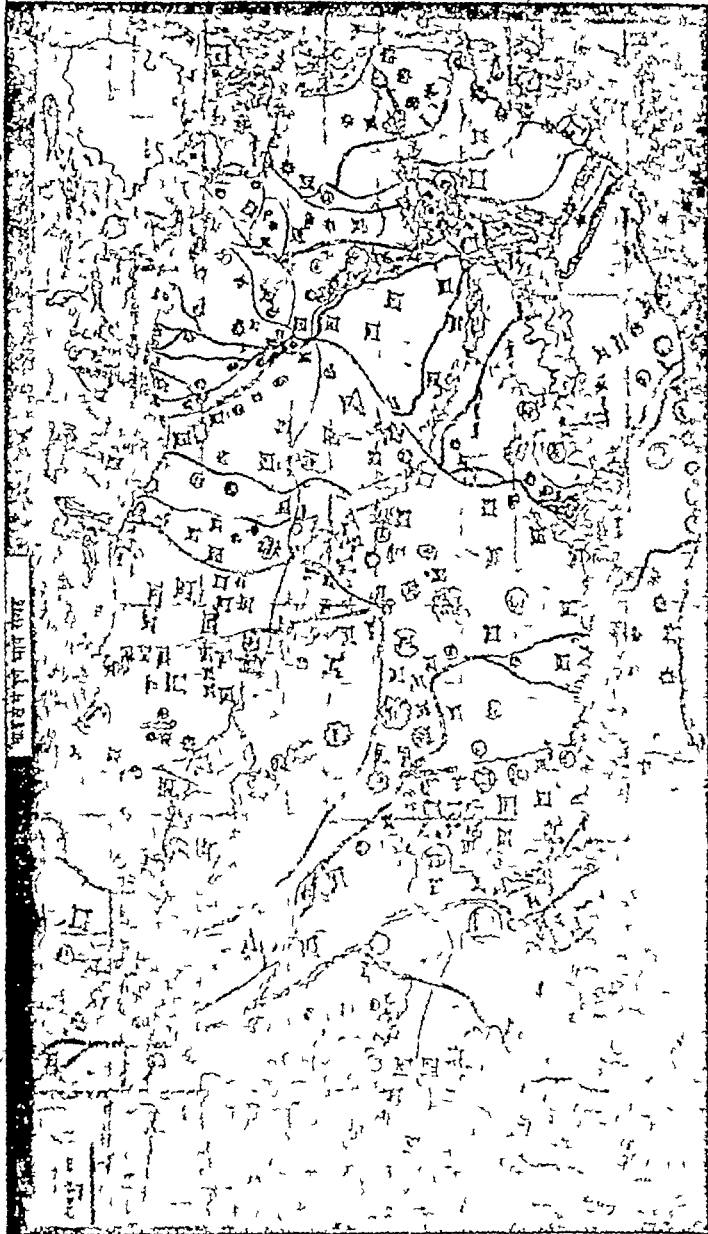
पेशवाई जमाने का दक्खिन भारत का नक्शा [ भा० इ० स० मं० ]

रेनल का बनाया भारत का नक़्शा

पुर्तगालियों के जहाज़ी कारखाने मराठों के हाथ आ गये, किन्तु उनका उपयोग उन्होंने नहीं किया।

इन उदाहरणों से स्पष्ट सिद्ध होता है कि १९वीं सदी तक हमारे पुरखों में जागरूकता और जिज्ञासा न थी, उनके ज्ञान-नेत्र बन्द थे, वे मानो घोर मोह-निद्रा में थे। वे अपने बँधे हुए मार्ग पर ही चले जा रहे थे, किन्तु अपने चारों तरफ की दुनिया की प्रगति के विषय में कुछ भी सतर्क न रहते थे। और तो और, उनके अपने देश के विषय में भी पच्छिमी लोगों की जिज्ञासा उनसे अधिक थी। 'हिन्दुस्तानी' ( उर्दू ) का सबसे पहला व्याकरण किसी भारतवासी ने नहीं, प्रत्युत कॉटलर नामी एक ओलन्देज ने लिखा था। यह ओलन्देज दूतों के साथ बहादुरशाह के दरबार में लाहौर आया था ( १७१२ ई० )। पेशवाई जमाने का दक्खिन भारत का मराठा नक्शा मौजूद है, उसी शताब्दी का रेनल नामक अँगरेज़ का ई० इ० कम्पनी की प्रेरणा से तैयार किया हुआ नक्शा भी है। इन दोनों की तुलना से साफ मालूम हो जायगा कि भारतवर्ष के विषय में मराठों का ज्ञान कैसा था और अँगरेज़ों का कैसा। पेशवा बालाजीराव ने अपनी परिस्थिति को न समझ कर कैसी भूलें कीं, सो हम देख चुके हैं।

एक-दो उदाहरण इस मोह-निद्रा के अपवाद-रूप भी हैं। सन् १७५६ में अँगरेज़ों के विजयदुर्ग छीनने के समय हरि दामोदर नामक व्यक्ति वहाँ उपस्थित था। उसी वर्ष वह झाँसी का सूबेदार नियत हो कर आया और १७६५ ई० में अपनी मृत्यु के समय तक उस पद पर रहा। उसका बेटा रघुनाथ बराबर उसके साथ था। पानीपत के बाद मल्हार होल्कर के नेतृत्व में उत्तर भारत में मराठा साम्राज्य को पुन: स्थापित करने में इन पिता-पुत्र ने विशेष भाग लिया। सन् १७६५ से ९४ ई० तक रघुनाथ हरि झाँसी का सूबेदार रहा। इलाहाबाद के अँगरेजों से उसे प्रायः वास्ता पड़ता था। रघुनाथ ने यह समझ लिया था कि पच्छिम के नये ज्ञान को अपनाये बिना भारतवासियों का बचाव नहीं है। इस विचार से उसने अँगरेजी सीखी और अँगरेजी विश्वकोष ( इन्साइक्लोपीडिया ब्रिटानिका ) का दूसरा संस्करण, जो तब प्रचलित था, मँगाया। उसके द्वारा उसने भौतिकी ( फिजिक्स ), रसायन ( केमिस्ट्री ) आदि विज्ञान पढ़े। उसने झाँसी में एक विशाल पुस्तकालय, परीक्षणालय ( लैबोरेटरी ) और वेधशाला स्थापित कीं। किन्तु रघुनाथ हरि उस युग के भारत में एक अपवाद रूप व्यक्ति था। काश कि अठारहवीं सदी के भारतीय

शिक्षित समाज में साधारण रूप से वह जागृति हो गयी होती जो रघुनाथ हरि के विचार में हुई थी।

१७वीं-१८वीं सदी के राजनीतिक पुनरुत्थान में भारतवासियों की कर्म-चेष्टा ही पुनर्जीवित हुई; ज्ञान और जिज्ञासा पुनर्जीवित नहीं हुई। नानक ने पंजाबियों को पाखंड और ढोंग के बदले शुद्ध भक्ति सिखायी थी, अर्जुन, गोविन्दसिंह और बन्दा ने भक्ति से सरल बने हृदयों में कर्मवीरता जगा दी, पर ज्ञान की ज्योति ने उन सच्चे और सचेष्ट सिक्खों को जागरूक न बनाया। १५वीं-१६वीं सदी के धार्मिक संशोधन ने मध्य काल की हिन्दुओं की शिथिलता और निष्क्रियता बहुत कुछ दूर की, ढोंग-ढकोसले को बहुत कुछ हटा कर सामाजिक अन्यायों को दूर किया, किन्तु वह सुधार की लहर इतनी गहरी न थी कि ज्ञान पाने के लिए बेचैनी पैदा करती और प्रत्येक वस्तु को विचारपूर्वक समझने और सुधारने की प्रवृत्ति भी जगा देती। १५वीं-१६वीं सदी की सुधार की लहर प्राचीन भारत के ज्ञान और जीवन का पुनरुद्धार नहीं कर सकी। वह पुनरुद्धार आज युरोपियन आर्य जातियों के संसर्ग में हो रहा है।

हम अचरज करते हैं कि औरंगजेब और बाजीराव जैसे महापुरुषों ने जागरूकता क्यों न दिखायी? हमारा यह अचरज अपनी आज की स्थिति पर विचार करने से दूर हो सकता है। क्या आज सवा सौ बरस के ब्रिटिश शासन के बाद भी हममें सच्ची जिज्ञासा जाग गयी है? हम आवश्यकता से बाधित हो कर आज अँगरेज़ी सीख लेते हैं; पर क्या संसार के उस ज्ञान को हमने आज भी अपनाने का यत्न किया है जो सारी शक्ति का स्रोत है?

§ ६. इंग्लैंड में व्यावसायिक क्रान्ति—और हम लोग जब मोह-निद्रा में पड़े थे, तभी युरोप वाले एक ओर मैदान मारते जा रहे थे। वे अपनी शिल्प-व्यवसाय की प्रक्रियाओं में विचारपूर्वक सुधार और उन्नति करने लगे थे जिससे वहाँ—सबसे पहले इंग्लैंड में और फिर अन्य देशों में—एक "व्यावसायिक क्रान्ति" हो गयी।

युरोप में बहुत से शिल्प मध्य काल में भारत, चीन आदि पूरबी देशों से ही गये थे। चर्खा वहाँ मध्य काल में पहुँच चुका था। इटली वाले चीन से रेशम का कीड़ा चुरा ले गये थे। इंग्लैंड में तो सत्रहवीं सदी में ईस्ट इंडिया कम्पनी ने ही सूती कपड़ा पहनने का प्रचार किया। तब तक वहाँ ऊनी कपड़ा ही बनता था। सूती कपड़े के व्यवसाय का दुनिया भर का केन्द्र ५वीं शताब्दी ई० पू० से १८वीं शताब्दी ई० तक भारतवर्ष ही था। लेकिन हम लोग जहाँ अपनी परम्परागत

अवस्था से सन्तुष्ट बैठे थे, वहाँ इग्लैंड की प्रजा और राष्ट्र के नेताओं को अपने शिल्पों को आगे बढाने का बराबर ध्यान था।

१६वीं सदी में ही युरोप में पैर से चलने वाला एक चरखा चल पड़ा था। सन् १६०७ म इटली में रेशम का डोरा बटने और अटेरने के लिए पनचक्की का प्रयोग होने लगा था। भारतवर्ष की छींट इग्लैंड में बहुत पसन्द की जाती थी। पर ब्रिटिश पार्लियामेन्ट ने अपने ऊनी कपडे के कारबार को बचाने के लिए १७०० और १७२१ ई० में भारतीय छींट का इग्लैंड में लाना और पहनना या बरतना भी रोक दिया। ई० इ० कम्पनी तब वह कपडा युरोप के दूसरे देशों में ले जाती थी। एक जर्मन अर्थशास्त्री के शब्दों में "भारत के नफीस सस्ते कपडे इग्लैंड खुद नहीं लेता, वह अपने मोटे मँहगे से सन्तोष कर लेता है। पर युरोपी राष्ट्रों को वह खुशी से सस्ता नफीस माल देता है।"

सन् १७३३ में जौन के नामक अँगरेज़ ने "उड़ती ढरकी" ( फ्लाईशटल ) की ईजाद की, जिससे ताने में बाना जल्दी डाला जाने लगा और कपडे की उपज दूनी होने लगी। सन् १७६७ में हार्ग्रीव्स ने एक ऐसा चरखा निकाला जिसमें आठ तकुए एक ही पहिये से चलते थे और चिमटियों से पूनियाँ पकड़ी जातीं थीं जिन्हें एक ही आदमी सँभाल सकता था। इस चरखे को उसने अपनी स्त्री के नाम से "जेनी" कहा। बाद में उसने ऐसी जेनी बनायी जो १०० धागे एक साथ निकाल सकती थी। १७६९ ई० में आर्कराइट नामक नाई ने कातने का एक नया यन्त्र बनवाया जिसमें बेलनों के बीच से रेशे निकलते और घूमते तकुओं द्वारा काते जाते थे। यह "बेलन-ढाँचा" पनचक्की से चलता था। १७७९ ई० में क्राम्पटन ने जेनी और बेलन-ढाँचे को मिला कर एक नया यन्त्र बनाया जिसे उसने मिश्रित होने के कारण "खच्चर" ( म्यूल ) कहा। इन ईजादों से इग्लैंड में इतना सूत पैदा होने लगा कि उसे हाथ के करघे पूरा बुन न पाते थे। उस दशा में १७८५ ई० में कार्टराइट ने शक्ति-करघा ( पावर-लूम ) निकाला जो पहले घोड़ों से चलाया जाता पर १७८९ ई० से भाप की शक्ति से चलने लगा। इसी अरसे में बेलने, धुनने, रँगने, छापने आदि के भी नये यन्त्र और तरीके निकल रहे थे। इनके कारण १८वीं सदी के अन्त तक इग्लैंड में कपडे का एक नया व्यवसाय उठ खड़ा हुआ। पलाशी के बाद से भारत की लूट की जो पूँजी ब्रिटेन पहुँच रही थी, उससे इन ईजादों को पनपने में बडी मदद मिली।

किन्तु इन ईजादों और इस मदद के बावजूद भी इंग्लैंड का यह व्यवसाय भारत के अढाई हज़ार वर्ष पुराने व्यवसाय का मुकाबला न कर सकता था। इस दशा में इंग्लैंड ने अपनी नयी राजनीतिक शक्ति से लाभ उठाया। हम देख चुके हैं कि पलाशी के बाद बगाल-बिहार के जुलाहों पर कैसे जुल्म ढाये गये तथा रेशमी कपडा बुनने का काम कैसे ज़बरदस्ती रोका गया। सन् १७६३ मे मान्चेस्टर और ग्लास्गो के नये व्यवसायियों ने पार्लियामेन्ट द्वारा यह कोशिश की कि भारत से कुल कपडे का आयात बन्द किया जाय तथा कातने-बुनने के नये यन्त्र भारत मे न जाने पायँ। लेकिन भारत में इन यन्त्रों की नकल करने का होश ही किसे था? और यदि होता तो क्या भारत के बडे भाग में, जो तब तक मराठों और सिक्खों के अधीन था, अँगरेज उन यन्त्रों का खडा होना रोक सकते थे?

कपडे के शिल्प के साथ-साथ धात-शिल्प में तथा प्रकृति की शक्तियों से काम लेने के तरीकों में युरोप वाले जो उन्नति कर रहे थे, वह भी उल्लेखनीय है।

भाप की शक्ति से काम लेने का विचार बहुत पुराना था। सन् १६०१ में पोर्ता नामक इटालियन ने एक भद्दा सा भाप-ऐंजिन बना डाला था। १६२० ई० में एक और इटालियन ब्राँका ने उसमे सुधार किया। सत्रहवीं सदी के उत्तरार्द्ध में कई अँगरेजो ने उसमें और उन्नति की। अन्त में १७१२ ई० में न्यूकोमन नामी अँगरेज ने एक ऐसा भाप-ऐंजिन बना दिखाया जो खानों के भीतर से पानी उठाने वाले पिचकारों (पम्पों) को बखूबी चला सकता था।

लोहे की धात से लोहा निकालने की भट्ठियों में पनचक्की द्वारा हथौडे और धौकनियाँ चलाने का तरीका जर्मनी मे १७वीं सदी में ही जारी हो गया था। इंग्लैंड में तब खानों से पत्थर-कोयला भी निकाला जाता था। १६०६ ई० में डार्बी नामक अँगरेज और उसके बेटे ने जले हुए पत्थर-कोयले के 'कोक' के साथ जला कर लोहा साफ कर दिखाया। छोटे डार्बी ने अपनी भट्ठी में न्यूकोमन-ऐंजिन का प्रयोग किया। इसके बाद १७६० ई० में स्मीटन नामक अँगरेज़ ने, चमडे की धौंकनी के बजाय चार बेलनों वाला हवा का पिचकारा ईजाद किया, और १७६६ ई० में जेम्स वाट ने नया भाप-ऐंजिन तैयार कर दिखाया।

प्राय. इसी समय गाल्वानी और वोल्ता नामक इटालियन बिजली की शक्ति पर परीक्षण कर रहे थे।

आवाजाही के साधनों में भी उन्नति की जा रही थी। खानों से बन्दरगाहों तक कोयला-गाड़ियों को खींचने के लिए तख्तों से मढी सडकें इंग्लैंड में १७वीं शती में ही बन चुकी थीं। सन् १७३६ में उनके किनारे पर लोहे की पटरी (रेल) गाड़ देने का तरीक़ा निकला। तब से ऐंजिनों से गाड़ी खींचने की बात लोग सोचने लगे। १७८१ ई० में जेम्स वाट ने एक ऐसा तरीका निकाला जिससे ऐंजिन के नल के भीतर चकिया (पिस्टन) की गति, जो ऊपर नीचे ही होती थी, चक्करदार भी हो सके। इससे अनेक यन्त्रों का ऐंजिन से चलना सम्भव हो गया। १७८४ ई० में कोर्ट ने लोहा कमाने की नयी प्रक्रियाएँ निकालीं, और दस बरस बाद मौडस्ले ने नयी खराद निकाली जिससे यन्त्रों के औज़ार शुद्धता से बनने लगे। १८०० ई० में अकेले इंग्लैंड की लोहे और कोयले की उपज दुनियाँ के और सब देशों के बराबर थी। भारत में भी ईस्ट इंडिया कम्पनी लोहे का माल काफी लाती थी, यहाँ तक कि मराठी कागजों में हमें लोहे की कील के लिए 'इंग्रज' शब्द मिलता है।

यह व्यावसायिक क्रान्ति उन्नीसवीं शती में भी जारी रही। १८३० ई० तक बहुत सी बड़ी-बड़ी ईजादें हो गयीं। सन् १८०० तक कपडे और धात-शिल्प की नयी ईजादों में सम्बन्ध जुड़ गया, और चरखे और करघे सब लोहे के बनने लगे और भाप से चलने लगे।

युरोपियन लोग जब यों शिल्प-व्यवसाय के नये तरीके निकाल रहे थे, तब भारतवासी अपने पुराने रास्ते पर ही चले जा रहे थे।